महात्मा गांधी
१०० वर्ष

राष्ट्रीय गांधी जन्म शताब्दी समिति
के
तत्वावधान में प्रकाशित

अध्यक्ष
जाकिर हुसेन, भू० पू० राष्ट्रपति, भारत सरकार

उपाध्यक्ष
वी० वी० गिरि, कार्यवाहक राष्ट्रपति, भारत सरकार

अध्यक्ष . कार्यकारिणी समिति
इन्दिरा गाधी, प्रधान मत्री, भारत सरकार

अवैतनिक मंत्री
आर० आर० दिवाकर

प्रमुख लेखक

हीरम अलेक्जेण्डर, वीरा ब्रिटेन एम० सी० छागला,
सिबिल थानडाइक कैसन, हेलसिलासी प्रथम, कमलादेवी चट्टोपाध्याय
मोरारजी देसाई, आर० आर० दिवाकर इंदिरा गांधी डब्ल्यू० होसेनबग
वर्गरियन कार्डिनल ग्रेसियस जाकिर हुसैन बारबरा वार्ड जैक्सन
कैथलीन लामडेल एफ० मिरिल जम्स सुचेना कृपालानी
एल० बी० पियर्सन, ई० स्टैनली जान्स, खान अब्दुलगफ्फार खान
जैम्टा मौरिना, अर्ल माउन्टबैटन आव बर्मा गुन्नार मिर्डाल
प्यारेलाल सी० रामचन्द्रन बी० शिवराव हर्बर्टरीड
मुल्कराज आनन्द ए० सतानम् आर० मार्गमा सोफिया वाडिया
ऊ थां लार्ड केसी सुनीतिकुमार चटर्जी जार्ज कैटलिन
मार्गरेट बाउ, लुई फिशर यू० एन० ढेबर रिनाल्ड बी० ग्रग
डब्ल्यू० के० हैनकाक डोरथी थ्राफ्ट गार्जियन होमर ए० जक
जगजीवनराम बार्न जेप्सन हुमायूं कबिर जे० बी० कृपालानी
ह्येन मेनिन हीरेन मुकर्जी वी० वी० गिरि एच० एन० कुंजरू
सीग बा, सुशीला नायर पार्कर हार्लिंग पायर
सी० राजगोपालाचारी स्वामी रंगनाथानन्द सिसर नागराव
बी० एन० राव रुक्मिणी देवी श्रीराम, हेरोल्ड विल्सन
प्रोफेसर बार्न गालनबी कुर जाव कॉलिन्स

महात्मा गांधी
१00 वर्ष

सम्पादक

एस० राधाकृष्णन्

सह सम्पादक

आर० आर० दिवाकर

के० स्वामिनाथन्

प्रकाशक :

गांधी शान्ति प्रतिष्ठान, नई दिल्ली

की आज्ञा से

सर्वोदय-साहित्य प्रकाशन, वाराणसी

१९६९

प्रकाशकीय

गांधी-जन्म-शताब्दीके अवसरपर हिन्दी पाठकोंके लिए कोई ऐसी सामग्री मिलना जिससे गाधीजीके जीवन, कार्य और आदर्शोंपर पूरा प्रकाश पडे, आवश्यक था। कुछ दिनो पहले इस दृष्टिसे "महात्मा गाधी हण्ड्रेड इयर्स" पुस्तक अंग्रेजीमे प्रकाशित मिली। यह पुस्तक भू० पू० राष्ट्रपति डॉ० एस० राधाकृष्णन् द्वारा नये रूपमे तैयारकी गयी है और इसमे भारत एव विश्वके प्रमुख विचारकोके लेख सुलभ है। यह पुस्तक देखनेके बाद मुझे सहज लगा कि हिन्दीमे इसे प्रकाशित किया जाय तो उत्तम होगा।

केन्द्रीय गाधी स्मारक निधिके मत्री श्री देवेन्द्रभाई एव गाधी शांति प्रतिष्ठानके मन्त्री श्री राधाकृष्ण भाई और श्री महादेवन्जीका मै विशेष कृतज्ञ हूँ जिन्होने इस कार्यको पूरा करनेमे मेरी मदद की।

श्री शंकरजी शुक्ल, जिन्होने इस पुस्तकका अनुवाद किया, उन्हे धन्यवाद देना उचित होगा। मेरा विश्वास है कि सारे देशमे गाधी-जन्म-शताब्दीके काममे लगे हुए मित्रगण इसे अपनाकर और हिन्दी प्रेमियोंतक पहुँचाकर एक बडे कामके भागीदार होगे।

तरुण भाई

विषय-सूची

एस० राधाकृष्णन्

आमुख

गांधीजीकी जन्मशती ३० जनवरी, १९४८ को उनकी शहादतके बीस वर्ष बाद २ अक्तूबर, १९६९ को पड रही है। यही वह अवसर है जब भारत और विश्वपर पडनेवाले उनके जीवन और चिन्तनके प्रभावका आकलन होगा। इस ग्रन्थमें इस विषयपर उनके कुछ घनिष्ठ सहकर्मियो एवं हमारे युगके कतिपय प्रमुख चिन्तकोके विचार प्रस्तुत किये गये है। हम उन सबके प्रति विशेष रूपमे आभारी है।

गांधीजी क्रान्तिकारी चिन्तक थे। उन्होने मानवीय स्वभावमे एक महान् परिवर्तन लानेका कार्य किया। उनकी आवाज आनेवाले युगकी आवाज है। वह आवाज उस युगकी आवाज नही है जो ह्रासोन्मुख है या जिसका ह्रास अवश्यम्भावी है। हमे भविष्यको एक नया उद्देश्य और दिशा देनी है, न कि यथास्थितिके साथ समझौता करना है। क्रान्तियाँ महान् उद्देश्यकी तीव्र प्रेरणापर प्रतिष्ठित होती है, किसी प्रकारकी जडता या उदासीनता उनका आधार नही बन सकती।

हम आज इतिहासके चौराहेपर खडे है। आज मनुष्यका सबसे बडा शत्रु रोग, दुर्भिक्ष या जनसख्याका विस्फोट नही है, अपितु वे पारमाणविक शस्त्रास्त्र है, जो युद्धकी स्थितिमे समूची सभ्यताका पूर्ण विनाश और शान्तिके समय मानवजातिके लिए स्थायी संकट पैदा कर सकते है।

गांधीजीने हमे एक नि.शस्त्र ससारमे जीवन-यापनके लिए तैयार करनेका महान् कार्य किया। हमे अपनेको सघर्ष और घृणाके ससारसे बाहर निकालना है और सहकार तथा सामञ्जस्यके आधारपर कार्य करनेके लिए तैयार हो जाना है। गांधीजीने युद्धका विकल्प सत्याग्रहके रूपमे प्रस्तुत किया है। सघर्षकी स्थितियोमे उनका सत्याग्रह व्यक्तिसे यह माँग करता है कि वह अपने प्रतिरोधको पूर्णत. सत्यनिष्ठा, प्रेमव्यवहार और कष्ट-सहिष्णुतापर प्रतिष्ठित करे।

जब परिस्थितियाँ सबमें अधिक गराब होती हैं मानिका सङ्कल्प सर्वाधिक सुदृढ हो उठता है। आजकल समस्त बुद्धिमान मुविन एवं सद्भावसम्पन्न व्यक्ति पारमाणविक युद्धसे मानवके अस्तित्वके लिए उत्पन्न गभीरतम सकटके प्रति तीव्रतम सजग हो उठे हैं। यद्यपि आज होश हवासमें रहनेवाला कोई भी समझदार आदमी किसी भी एस युद्धके पक्षमें स्तवन नहीं कर सकता फिर भी आश्चर्य तो यह है कि हमलोग इस युद्धको रोकने लिए कुछ भी उठा नहीं रख रहे है। मानवस्वभावकी यह एक अद्भुत विडम्बना है कि हम जब चेतन रूपसे किसी वस्तुको नहीं चाहते तो अचेतन और विवेकहीन ढगसे उसीके लिए काम करते जाते हैं। सहारकारी शस्त्रास्त्रोंकी होड दिनपर दिन उग्र ही होती जा रही है कम होनेका नाम नहीं ले रही है। जबतक हम सम्पूर्ण पारमाणविक निःशस्त्रीकरणकी व्यवस्था नहीं कर लेंगे, पारमाणविक शस्त्रास्त्रोंके प्रयोगका प्रलोभन निरालं वास्तविक दशा रहेगा।

हम सार्वभौम विनाशके खतरेके प्रति सोद्देश्य शत्रुताकी दृढ अभिवृत्तिका विकास करनेमें असमर्थ रहे हैं। उल्टे हम अपनी अभिवृत्तियों और कर्मोंसे उसका स्वागत ही करते जा रहे हैं। हमारी आँखें पूरी तरह खुली हुई हैं फिर भी हम विश्वव्यापी सर्वनाशकी ओर बढ़ते जा रहे हैं। हमारे कान स यकी यह आवाज नहीं सुन पा रहे हैं—

पुण्यस्य फलमिच्छन्ति पुण्य नेच्छन्ति मानवा ।
न पापफलमिच्छन्ति पाप कुर्वन्ति यत्नत ॥

(२)

मनुष्य जो कुछ है और जो कुछ होना चाहता है उसमें एक बहुत ही भयानक असन्तुलन है। यही असन्तुलन हमारी बेचैनीका कारण है। हम बातें तो बुद्धिमानोंकी तरह करते हैं किन्तु हमारा आचरण पागलोंकी तरह होता है। यह कदापि सभव नहीं है कि हम युद्धके साथ-ही-साथ विश्व-समुदायकी भी तैयारी करते रहें। ईसाने घोषणा की थी कि जो कुछ हम अपने दानके लिए करते हैं यदि वही हम अपने लिए करने लगें तो हम कितने बड़े शैतान होंगे। हमलोग आन्तरिक बेचैनी और अन्तःकरणके अन्तर्द्वन्द्वसे उत्पीडित हैं। यदि हम अपनी भ्रातृहन्ता प्रवृत्तियोंको पराभूत करना चाहते हैं तो हम अपने स्वभावके इन परस्पर विरोधी पक्षोंका समाधान खोजना होगा। हम अपनी स्वार्थवृत्ति उस अहकारकी भावनाको नष्ट करना होगा जो हमारे जीवनकी सभी दिशाओंमें व्याप्त है। मनुष्य में निरन्तर अपने स्व का अतिक्रमण कर जानेकी प्रेरणा निहित होती है किन्तु

करनेवाला प्रेम उस शक्तिसे कहीं अधिक शक्तिमान् है, जो दूसरोंपर कष्टोंकी वर्षा करता है।

(४)

आजकी सबसे बडी समस्या जातीय सघर्ष की समस्या है। आज विभिन्न जातियाँ एक-दूसरेके इतना पास आकर रहने लगी हैं जितनी निकट वे इतिहास मे कभी नही आयी थी। गाधीजीको अपने आरम्भिक जीवनमे ही दक्षिण अफ्रीकामे जातीय विद्वेषका सामना करना पडा था। उन्होने अपने पडोसियोको मानवताकी उच्चतर भावनाके स्तरतक उठानेका प्रयास किया था। उनका प्रयास विभिन्न जातियोमे सराधन कराना था। उन्होने पूर्वाग्रहोको दूर करने और विशेषाधिकारोको छोडनेका आन्दोलन चलाया था। जातीय पूर्वाग्रह और भेदभाव सामाजिक तथ्य है।

जातीय समस्याएँ मानवनिर्मित है। जातीय पूर्वाग्रह कोई जन्मजात वस्तु नही है। वह सामाजिक प्रशिक्षणका परिणाम होता है। ऊँची और नीची जातियोका विभाजन हालके इतिहासकी वस्तु है। मानवीय अधिकारोकी सार्वभौमिक घोषणा जातियोकी समानताका प्रतिपादन करती है। यह मानवकी नैसर्गिक गरिमा और व्यक्तिके मूल्यपर बल देती है।

शुक्रवार, ५ अप्रैलको मार्टिन लूथर किंग जूनियरकी नृशस हत्याका समाचार सुनकर सारा ससार स्तब्ध रह गया। उन्होने सामाजिक न्याय तथा जातीय समताके लिए अहिंसाके साधनो से यत्न किया था। मार्च, १९६३ मे उन्होने लिंकन मेमोरियलकी सीढियोपर अपने एक स्वप्नकी चर्चा इन शब्दोमे की थी :

> यद्यपि हमे आज और कलकी कठिनाइयोका सामना करना पड रहा है, फिर भी मेरे पास एक स्वप्न है। मै यह स्वप्न देखता हूँ कि एक दिन यह राष्ट्र उठेगा और अपनी उस धर्मनिष्ठाके अनुरूप अपना जीवन ढालेगा जिसके अनुसार सभी मनुष्य समान पैदा हुए है। मेरा यह स्वप्न है कि एक दिन मिसिसिपी राज्य भी, जहाँ इस समय उत्पीडनकी प्रचण्ड ज्वाला जल रही है, स्वतंत्रता और न्यायके शाद्वल मे बदल जायगा। मेरा यह स्वप्न है कि एक दिन मेरे चारो बच्चे एक ऐसे राष्ट्रमे निवास करेगे जहाँ उनका मूल्याङ्कन उनके चमडेके रगसे न होकर उनकी चारित्रिक विशेषताओके आधारपर होगा। मै आज एक स्वप्न देख रहा हूँ, किन्तु यदि अमेरिकाको एक महान् राष्ट्र बनना है तो मेरा यह स्वप्न अवश्य साकार होगा।

यदि हमने हिंसाका निग्रह न ग्रहण किया और गांधीजी तथा किंग जूनियर-ने अपने जीवन और मृत्युसे जिन साधनोंको पवित्रता बनायी है उनका उपयोग किया तो एक दिन अमेरिकाका आत्म-नाशाकार अवश्य होगा, यह एक महान् राष्ट्र बन जायगा और मानवजाति सच्ची स्वतंत्रताकी दिशामें कई कदम आगे बढ़ जायगा।

भारतमें साम्प्रदायिक सामंजस्य प्राप्त करनेके लिए गांधीजीने कठिन संघर्ष किया। अपने हार्दिक प्रयत्नोंके बावजूद उन्हें इस दिशामें उतनी सफलता नहीं मिल सकी जितना वे चाहते थे। भारतका विभाजन इस तथ्यका स्पष्ट संकेत था कि साम्प्रदायिक ऐक्य प्राप्त करनेका लक्ष्य विफल हो चुका है। दिसम्बर १९४७ में जब मैं गांधीजीसे अंतिम बार मिला, मैंने उनसे पूछा कि देशके विभाजनपर आपकी भावनाएँ क्या हैं? उन्होंने इसकी अत्यंत तीव्र वेदना व्यक्त करते हुए कहा कि यह व्यावहारिक नीतिका प्रश्न नहीं है, बल्कि सिद्धान्तका प्रश्न है। अतएव आधारभूत सिद्धान्तोंपर किसी प्रकारके समझौतेकी अनुमति नहीं दी जा सकती। उनका यही उत्तर था कि मैं अब बूढ़ा हो चुका हूँ, अतएव कोई नया अभियान चलानेकी स्थितिमें नहीं हूँ और मेरे विश्वस्त साथियोंने इसे मान लिया है।

अपने जीवनके अन्तमें वे अपनेको एकाकी और निराश अनुभव कर रहे थे। उनकी आत्मामें शांतिभंगकी एक दारुण अनुभूति प्रवेश कर चुकी थी। हत्यारेकी गोलीने तो उनके शरीरमें केवल बादमें प्रवेश किया। दुर्भाग्यवश अभी भी हमारे यहाँ साम्प्रदायिक उपद्रव होते रहते हैं। इससे यही पता चलता है कि अभी हमें लंबी यात्रा तय करनी है।

धनी और गरीब राष्ट्रोंके बीच वर्तमान असमानताएँ अशांतिका कारण बनी हुई हैं। गरीब राष्ट्रोंमें व्याप्त गरीबी, बीमारी, अज्ञान और निरक्षरता असन्तोषके स्थायी कारण हैं। गरीब और नवोदित राष्ट्र अपनी इस स्थितिके प्रति अधिकाधिक जागरूक होते जा रहे हैं और इसे सुधारनेके लिए व्यग्र हैं। आज कोई भी गरीबीमें रहनेके लिए तैयार नहीं है और कोई यह माननेको भी तैयार नहीं है कि दरिद्रता हमारे भाग्यमें ही बदी है। यदि गरीब लोग भूखसे मरनेको तैयार नहीं हैं तो वे दूसरोंके पास जो कुछ है उसे बलपूर्वक छीन लेनेके लिए बाध्य हो जायँगे। इस प्रकार हिंसा और प्रतिहिंसाका सिलसिला शुरू हो जायगा। अतएव यह आवश्यक है कि समाजका संगठन कुछ इस ढंगका बनाया जाय जिसमें अमीर और गरीबके बीच पाये जानेवाले अन्तर कम हो सकें।

गाधीजीने भारतके करोडों भूखे लोगोके लिए ही आजादीकी माँग की थी। उनका लक्ष्य मानवजातिके गरीब-से-गरीब समुदायके साथ पूर्ण तादात्म्य प्राप्त करना था। उन गरीबोसे अच्छा जीवन व्यतीत करना उन्हे मंजूर नही था। यदि हम ससारसे हीनता और आक्रोशकी भावना समाप्त करना चाहते है तो मानव-जातिके सभी समुदायोका आर्थिक विकास करना अत्यन्त आवश्यक है।

आज राजनीतिक सघर्ष सबसे अधिक भयानक हो जाते है। गाधीजीने अपने सत्याग्रहके तरीकेसे अंग्रेज सरकारको समझानेका प्रयत्न किया था।

राष्ट्रवाद कोई तर्कसगत सिद्धात होनेकी अपेक्षा भावनात्मक वस्तु है। यद्यपि गाधीजी भारतीय जनताके कुछ गुणोके प्रति निष्ठावान् थे, फिर भी वे कहा करते थे कि यदि भारतके लुप्त हो जानेसे संसारकी रक्षा हो सके तो वे इसके लिए भी तैयार है। १८ अगस्त, १९२५ को कलकत्ताके रोटेरियनोके समक्ष भाषण करते हुए गाधीजीने कहा था :

> हम अपने देशके लिए आजादी चाहते है, लेकिन दूसरोकी कीमतपर या उनके शोषणके आधारपर नही, इस ढंगसे नही कि दूसरे देशोके सम्मानको आघात पहुँचे। जहाँतक मेरा सम्बन्ध है, भारत भी ऐसी आजादी नही चाहता जिसका अर्थ इंगलैण्डका समाप्त हो जाना अथवा अग्रेज जातिका विनाश हो जाना हो। मै अपने देशकी आजादी इसलिए चाहता हूँ कि दूसरे देश मेरे स्वतन्त्र देशसे कुछ सीख सके, जिससे मेरे देशके साधनोका उपयोग मानवजातिकी भलाईके लिए हो सके। जैसे राष्ट्रवादका सिद्धान्त हमे आज यह सिखाता है कि व्यक्तिको गाँवके लिए, गाँवको जिलेके लिए, जिलेको प्रान्तके लिए और प्रान्तको देशके लिए मरनेको तैयार रहना चाहिए, वैसे ही किसी देशको भी इसीलिए आजाद होना चाहिए कि वह भी, यदि आवश्यक हो, तो ससारके कल्याणके लिए मरमिटनेको तैयार रहे।[3]

अग्रेज सोचते थे कि गाधीजी उपद्रवकारी है। आक्सफोर्डमे सेण्ट मेरीके सम्मानमे भवन-निर्माताने छतोपर मध्ययुगीन परम्पराओके अनुरूप छतोकी कलाकारितामे समसामयिक घटनाओका कुछ ऐसा सदर्भ सजो दिया था जिससे उसकी निर्माण-तिथिका ज्ञान हो जाय। इसी तरह हाईस्ट्रीटके उस ओर कुछ दूरी-पर सीढियोपर चढते समय हमे एक ऐसी प्रतिकृति मिलती है जिसमे ब्रिटिश सिहकी जीभ बाहर निकाले हुए दिखाया गया है और उसके साथ ही एक जगली आयरिश व्यक्ति, एक रूसी भालू और लंगोटी पहने तथा चश्मा लगाये गाधीजी

गई हैं। ये, व कुछ लोग हैं जिन्होंने उन लोगों बिगाड़ो बहुत परेशान कर रखा था। अहिंसामें अगाध्यात्मिक आत्मानोंसे बिगाड़ा अभियानका आधार परिवर्तित था। भारत और पाकिस्तानको सत्ता-हस्तान्तरण अगस्त १९४७ के मध्य किया गया।[x] इसके बाद अनेक दूसरे राज्य भी स्वतन्त्र हो गये, किन्तु अभी भी अफ्रीकाके अनेक हिस्सोंमें औपनिवेशिक शासन चल रहा है।

आज दुनिया राजनीतिक सिद्धान्तोंमें बंटी हुई है। मनुष्यकी यह प्रवृत्ति हो गयी है कि वह अपने सिद्धान्तोंको पूर्णत सही और दूसरे विरोधी सिद्धान्तोंको पूरी तरह गलत मानता है। यूनानियों और बबर्क युगसे लेकर रोमन कैथो जनियनके समय और आतंक इस तरहके संघर्ष बराबर धार्मिक स्वरूप ग्रहण करते चले आ रहे हैं। आजका मुख्य समस्या यह है कि हम दूसरोंका अविश्वास और स्वयं अपने भीतरका अविश्वास कैसे दूर करें। यदि हमारा यह दृढ़ विश्वास हो कि हमारी मान्यता ही एकमात्र पूर्ण सत्य है तो हम कभी भी दूसरोंकी बात पर विश्वास नहीं कर सकते किन्तु हम तो सत्य और प्रचारमें अन्तर समझनेकी योग्यता पैदा करनी चाहिए।

भारतमें सुदृढ़ समाजके विकासके लिए गांधीजीने हरिजनों और गरीबोंकी स्थिति ऊंचा करने और पुरुषों तथा स्त्रियोंको समान दर्जा दिलानेका आन्दोलन किया। समाजके इस समन्वयकी प्रक्रिया अभी भी चल रही है किन्तु वह अभी पूर्ण नहीं हुई है। सीधे-सादे नागरिक लोग अभी भी एक-दूसरेपर विश्वास नहीं करते और लूट अग्निकाण्ड चोरी और सम्पत्तिको क्षति पहुंचानेके कार्यमें लग जाते हैं। इस स्थितिके सुधारमें अज्ञान पारस्परिक अविश्वास भेदभाव और बेरोजगारी इसी मुख्य कठिनाइयां हैं जो आड़े आ जाती हैं जिन्हें दूर करना आवश्यक है। यह समय क्रुद्ध प्रतिक्रिया रोका नहीं है। हिंसामें संलग्न होकर हम अपनी ही क्षति करते हैं। भीड़के शासन और सरकारोंके व्यवहारकी स्थितिमें किसी प्रकारकी आजादी, समान अवसर और सामाजिक न्यायकी कल्पना ही नहीं की जा सकती।

दुर्भाग्यवश तथाकथित युवक-आन्दोलन छात्रोंके व्यवहार हड़ताल और प्रदर्शन आत्मानुशासनकी आवश्यकतापर पर्याप्त बल नहीं देते। निकायताके नाम पर इनका महत्व करतवाले लोग मनमाने व्यवहार और प्रतिष्ठित शासनसत्ताको चुनौती देनेकी प्रवृत्तिको प्रोत्साहन देने लगते हैं। इस तरहके सारे आन्दोलन एक उत्तेजित राष्ट्रकी विरोधभावनाके प्रतीक हैं। यदि राष्ट्रको अपना आध्यात्मिक स्वास्थ्य बनाये रखना है तो उन्हें सार्वजनिक जीवनमें बेईमानी व्यापारमें भ्रष्टाचार आदिकी बढ़ती प्रवृत्तिपर अंकुश लगाना होगा। हम चाहे जिस किसी

धर्मके अनुयायी हो, आत्मनियन्त्रण धर्ममात्रकी बुनियादी माँग है—जैसा कि उपनिषद्का कथन है भोग त्याग द्वारा ही संभव हो सकता है। हमे समर्पणकी भावनासे एक क्रान्तिकारी सामाजिक प्रणालीकी रचनाके लिए कार्य करना चाहिए।

हमे यह अनुभव करना चाहिए कि ससारकी सभी महान् संस्कृतियाँ विभिन्न सस्कृतियोके आदान-प्रदान का परिणाम है। ईसाई-सभ्यताका विकास यहूदी परपराके यूनानी मिश्रण तथा रोमन सभ्यताके सघटनसे हुआ है। आज सभी महान् सस्कृतियाँ एक दूसरेके निकट आ गयी है। ऐसी स्थितिमे हमे मनुष्यको उसके समस्त वैचित्र्य तथा उसकी सम्पूर्ण समग्रताकी दृष्टिसे देखना चाहिए। आत्माकी निष्ठासे ही मानवताका ऐक्य और मोक्ष सम्पन्न हो सकता है।

(५)

इस तेजीसे बदलनेवाली दुनियामे जहाँ सचार, वार्तावहन, यातायात और अन्तरिक्ष-यात्राके साधनोमे निरन्तर परिवर्तन हो रहा है, मानव प्राणीका ही अस्तित्व नगण्य होता जा रहा है। वह धीरे-धीरे मात्र एक वस्तु बन गया है। उसकी आशाएँ और उदात्त कल्पनाएँ बढे हुए उत्पादन और उपभोगके भौतिक लक्ष्योके सामने नतमस्तक होती जा रही है। उसके लिए अपना स्वतत्र निर्णय लागू करना असभव नही तो नितान्त दुष्कर हो गया है। हमारा अपना कोई वैयक्तिक आयाम रह ही नही गया है। व्यक्तिगत जीवनकी हमारी इच्छा ही समाप्त हो गयी है। हमारा जीवन भोगबन्धक हो गया है, असहाय हो गया है, हमारी स्वतंत्रता खो गयी है। कार्यका हमारा अपना कोई चुनाव नही रह गया है। हम एक बडे यन्त्रके पुर्जे होते जा रहे है। मशीनकी भलाईके उत्साहमे आनन्दविभोर होकर हम अपनी कुर्बानी करते जा रहे है।

अब विभिन्न जातियो, राष्ट्रो और धर्मोमे सघर्षकी स्थिति उत्पन्न हो तो उसे मानवजातिके प्रति एक दूसरी महान् निष्ठासे दूर करनी चाहिए। इस निष्ठाको सभी प्रकारकी जातीय, राष्ट्रीय और धार्मिक निष्ठाओसे ऊपर रखना चाहिए।

गाधीजीकी अहिंसा मानवस्वभावके उन उच्चतर स्वरूपोपर आधारित है, जो निरकुशता, अन्याय और अधिनायकवादके विरुद्ध विद्रोह करते है। मूल्योका जन्म मनुष्योके हृदयो और संकल्पोसे होता है। गाधीजी मानवीय प्रकृतिमे अन्तर्निहित शान्ति और स्वतन्त्रताकी दुर्दमनीय प्रेरणामे विश्वास करते है। जिस समाजकी रचना करना उनका लक्ष्य है वह अभी भी सार्वजनिक रूपसे मनुष्योके

गलत-फहमीसे विभक्त संसारमे गाधीजी प्रेम और समझदारीके शाश्वत प्रतीक है। वे युगोके व्यक्ति है, इतिहास-पुरुष है।

---

१. १४ जुलाई, १९४७; प्रार्थना-सभा। उन्होंने कहा था : "मेरे घनिष्ठतम मित्रोंने जो कुछ किया है या कर रहे है, उससे मैं सहमत नहीं हूँ।"

२. २ अक्तूबर, १९४७, अपने अन्तिम जन्म-दिवसपर प्राप्त शुभाशंसाओं एवं बधाइयोंके उत्तरमें उन्होंने कहा, "ये बधाइयां कहाँ आ रही हैं? इन्हे शोक सदेश कहना अधिक उपयुक्त है। मेरे हृदयमे व्यथाके अतिरिक्त कुछ भी शेष नही है।"

३ तेंदुलकर : महात्मा, भाग २, पृ० २६३।

४. भारतको स्वतन्त्रता देनेमे लार्ड एटलीने ही अन्तिम भाग लिया था। एक अमेरिकी-पत्रकारने एटलीसे कहा : "भारत और बर्मा के सबधमे मैं आपकी नीतिसे सहमत हूँ, किन्तु मै यह सोचे बिना नहीं रह सकता कि आपने बडी जल्दबाजी की है। क्या इस कार्यमे कुछ वर्ष और विलब कर देना और इतने बडे परिवर्तनोंको जरा और धीरे-धीरे करना बेहतर न होता?" लार्ड एटलीने उत्तर दिया "निस्सन्देह हम लोग भारत और बर्माको अभी दो या तीन वर्ष अपने अधीन और रख सकते थे, लेकिन हम लोग धन-जनकी एक बडी क्षति उठाकर ही ऐसा कर सकते थे और फिर ऐसा करने पर यह तो तय ही था कि बादमे आजादी प्राप्त करनेपर उनमे कटुता उत्पन्न हो जाती और वे हमेशाके लिए ब्रिटेनसे सम्बन्ध विच्छिन्न कर लेनेका निश्चय कर लेते। कटुता और अविश्वासकी बुनियादपर आप राष्ट्रमण्डलका न तो निर्माण ही कर सकते है और न उसे कायम ही रख सकते हैं। दोस्ती और सम्मान हिन ही एकमात्र सुरक्षित बुनियाद हो सकती है। हमने उन राष्ट्रोंको अपना मित्र बना लिया है जो हमारे दुश्मन हो जाते। इसके लिए खतरे उठाये जा सकते हैं।"

हॉरेस अलेक्जेण्डर

महात्मा गांधीकी अहिंसाकी विरासत

आज जब गांधीजीकी जन्मशती करीब आ रही है, हमें अपने-आपसे पूछना चाहिए कि इस महापुरुषने हमारे लिए कौन-सी विरासत छोड़ी है? जो सबक वे हमें सिखाना चाहते थे, क्या हम उन्हें भूल रहे हैं? एक ऐसे संसारमें जो हिंसाकी आगमें अपनेको भस्म करनेके खतरेमें पड़ा हुआ है, जिस व्यक्तिने अपने सारे जीवनमें यही प्रदर्शित करनेका प्रयत्न किया कि अहिंसक तरीके ही सत्य और न्यायको प्राप्त करनेमें समर्थ हैं, वह तो निश्चय ही यही कहेगा कि मैंने तुम्हें जो सिखानेका प्रयत्न किया उसे तुमने नहीं सीखा है।

अतएव अहिंसासंबंधी उनके उपदेशोंकी परीक्षा और इस तथ्यकी सत्यता जाँच कर लेना समीचीन होगा कि उत्पीड़ित [illegible] लोग जिन लक्ष्योंको प्राप्त करनेके लिए संघर्ष कर रहे हैं, उन्हें प्राप्त करनेमें अहिंसा एक कारगर रूपमें सार्थक और समर्थ है या नहीं?

जिस समय मैं ये पंक्तियाँ लिख रहा हूँ, वियतनाममें युद्ध पूरे जोर-शोरसे चल रहा है, जिसमें उस जनताको नाना प्रकारकी यन्त्रणाएँ भोगनी पड़ रही हैं और बर्बाद होना पड़ रहा है, जिसे विनाश और बड़ी विपत्तिसे बचानेका दावा नाना पक्ष कर रहे हैं। मध्यपूर्वमें अरब और यहूदी राष्ट्र नये संघर्षके लिए फिर शस्त्र सज्ज हो रहे हैं। अफ्रीकाके अनेक भाग सशस्त्र संघर्षमें संलग्न हैं या उनके सामने हिंसाके नये विस्फोटोंका तात्कालिक खतरा बना हुआ है। अमरिकामें जहाँ बैठा हुआ मैं लिख रहा हूँ, व्यापक रूपसे ऐसी आशंका व्यक्त की जा रही है कि अगली गर्मियोंमें जातीय संघर्षके जो हिंसक विस्फोट होंगे वे पिछली गर्मियोंमें हुए विस्फोटोंसे कहीं उग्र और भयानक होंगे। ऐसे स्थानोंकी काफी बड़ी सूची तैयार की जा सकती है जहाँ हिंसा या तो खुल्लमखुल्ला प्रयोगमें लायी जा रही है या फिर छिपे रूपमें चल रही है। इसके अलावा आज दुनियाके शक्तिशाली प्रभुसत्तासम्पन्न

राष्ट्र संभावित युद्धके लिए अपनेको शस्त्रसज्ज करने जा रहे है और अपनी कथित "राष्ट्रीय प्रतिरक्षा" पर ऐसी भारी-भरकम रकमे खर्च करते जा रहे है जिन्हे आज सर्वत्र गरीबी और अभावके विरुद्ध युद्धमे खर्च करनेकी आवश्यकता है। ऐसे ससारमे गाधीजीके इस जोरदार कथन की, कि सभी सामाजिक और राष्ट्रीय गलतियोको अहिसक कार्रवाई द्वारा दूर किया जा सकता है, सभी विचारशील स्त्री-पुरुषो द्वारा उत्सुकतापूर्वक अध्ययनकी बडी गुंजाइश होनी चाहिए क्योकि इसी तरीकेसे संसारको विनाशसे बचानेकी सर्वोत्तम आशा की जा सकती है, किन्तु बात ऐसी नही है। आखिर क्यो ?

इस प्रश्नका उत्तर निश्चित रूपसे यही दिया जायगा कि उनका तरीका हम-लोगोमेसे अधिकाशके लिए अत्यन्त कठिन है। हम लोग चिन्तनके पुराने तरीकोसे इतनी गभीरतासे आबद्ध हैं कि उनसे अलग होनेके लिए प्रयत्न ही नही कर सकते। इसके लिए हम हर तरहके बहाने निकाल लेते है। हम लोग सोचते है कि उत्पीडन की जमी ताकतवर शक्तियोका सामना अहिसक प्रतिरोध द्वारा करपाना अत्यन्त दुष्कर है। गाधीजीके समान केवल असाधारण साहस और अनुशासनसे सम्पन्न व्यक्ति ही इस ऊँचाई तक उठ सकते है। लेकिन इसका उत्तर तो यही है कि गाधीजीके कुछ अत्यधिक प्रभावकारी अहिसक आन्दोलन दक्षिण अफ्रीकामे ही चलाये गये थे, जहाँ उनकी अहिसक सेना अत्यन्त साधारण, सीधे-सादे विनम्र स्त्री-पुरुषो द्वारा ही सघटित हुई थी।

दूसरा बहाना हम यह याद दिलाकर करना चाहते है कि गाधीजी कहा करते थे कि उत्पीडनके मुकाबले कायरोकी तरह भाग जानेसे कही अच्छा है उसके खिलाफ उग्र हिसक युद्ध करना। अतएव हमलोग कम-से-कम यह तो सिद्ध कर दें कि हम कायर नही है। लेकिन इस बहानेको गलत साबित करनेके लिए किसी खास प्रमाणकी आवश्यकता नही है। प्राय. सर्वत्र नौजवानोमे अपने राष्ट्र या अपने आदर्शके लिए उग्र सघर्ष करते हुए अपने प्राणोकी बलि दे देनेकी बडी ही तीव्र भावना होती है। किसी महान् उद्देश्यके लिए मर मिटनेकी मानवीय तत्परताको सिद्ध करनेके लिए ज्यादा प्रमाण देना जरूरी नही है। किन्तु मुस्कराते हुए और उत्पीडकके प्रति अपने हृदयमे प्रेम रखते हुए मरनेका उदाहरण निस्सन्देह अभी भी अत्यन्त विरल है, और यदि इस पीढीको किसी नये साहसिक कार्यके लिए उद्बुद्ध करना है तो यही वह मार्ग हो सकता है जिसका चुनाव अभी बहुत कम लोगोने किया है, लेकिन निश्चय ही यही मार्ग मानवजातिके उद्धारका मार्ग है। फिर भी आज दिन अनेक देशोमे ऐसे लोगोका सर्वथा अभाव नही है जिनमे अपने

बद्धमूल रूप पारस्परिक व्यवहारोंमें सर्वसम्मिलित कर देनका मार्ग मौजूद है जो इस प्रकार अपने स्वतंत्र व्यक्ति वका परिचय दे सकते हैं और जिनका सम्बन्ध प्रतिरक्षा की क्रांतियोंकी असलियत समझ रहा है। उदाहरणके लिए अमरिकामें आय दिन अनजानक युवक अनिवाय रानिक भरतीका विरोध करके अपने परिचय पत्रोंको जला रहे हैं और इसके फलस्वरूप मिलनवाली हर तरहकी सजाओं और कारावासको बार-बार हँसते हुए स्वीकार कर रहे हैं।

यह भी कहा जाता है कि अग्रेज लोग अहिंसक प्रतिकार करनेवाले नताओंके प्रति असाधारण रूपम मानवीय व्यवहार करते थे नहीं तो दूसरे दर्जेकी सरकार होती तो गांधी नेहरू जैसे तमाम नताओंको चुन-चुन कर गोलियोंस भून डालती। यदि हम केवल अमेरिकी संघके दक्षिणी राज्योंकी हालतपर नजर डालें तो हम इस अन्तरका औचित्य समझने देर न लगेगी। हालमें ही कुछ वर्षोंमें नागरिक अधिकारोंके लिए लडनवाले न जाने कितने काले और गोरे कार्यकर्ता मार डाले गये और हत्याके अपराधमें किसी हत्यारेके प्रति न्याय न हो सका। ऐसा प्रतीत होता है कि दक्षिणी राज्योंके अनेक गोरोंका यह विश्वास है कि जो हब्शी मर जाय वही अच्छा हब्शी है। जैसा कि विभिन्न पश्चिमी देशोंमें अनेक लोगोंका यह ख्याल है कि केवल वही अच्छा कम्युनिस्ट है जिसे इस संसारसे विदा कर दिया जाय। फिर भी दक्षिणी गोरोंका ख्याल चाहे जितना उग्र और दूषित क्यों न हो रेवरेण्ड मार्टिन लूथर किंगने[1] अपनी हालमें प्रकाशित पुस्तक 'ह्वयर डू वी गो फ्राम हियर : केआस आर कम्युनिटी ?' में तुलनात्मक दृष्टिसे यह दिखाया है कि विगत कुछ वर्षोंमें अहिंसात्मक कारवाई द्वारा जो सफलता मिली है उसके मुकाबले हिंसा द्वारा प्राप्त सफलता कितनी नगण्य है।

> सन १९६० में जिन भोजनालयोंमें रंग भेद बरता जाता था वहाँ कालोंको भी गोरोंके समान अधिकार दिलानेके लिए जो धरने दिये गये उनसे उसी साल १५० नगरोंके भोजनालयोंमें रंगभेद समाप्त हो गया। सन १९६१ में गाडियोंमें व्याप्त रंग भेदके विरुद्ध यात्रोंकी स्वतन्त्रताका जो अभियान चलाया गया उससे अंतरराज्यीय यातायात प्रचलित रंग भेद खत्म हो गया। सन १९५६ में माण्टगामरी अल्बामामें बसोंके बहिष्कारका जो आन्दोलन चला उसके फलस्वरूप न केवल उसी शहरमें बल्कि व्यवहारतः दक्षिणके प्राय सभी शहरोंमें बसोंमें प्रचलित रंग भेद समाप्त हो गया। सन १९६३ के बरमिंघम आन्दोलन और वाशिंगटनकी ओर किये गये अभियानके फलस्वरूप जैसा शक्तिशाली नागरिक-अधिकार कानून पास

हुआ वह किसी भी राष्ट्रके लिए महत्त्वकी वात हो सकती है । सेल्मा अभियानमे मतदान-अधिकार कानून पारित कराया गया । पिछली गर्मियोमे (१९६६) शिकागोमे हमने जो अहिंसक प्रदर्शन किये, उससे आवाससंबधी एक ऐसा समझौता सम्पन्न हुआ जिसे यदि कार्यान्वित कर दिया जाय तो राष्ट्रके किसी भी नगरमे रंग-भेदसे मुक्त आवास-व्यवस्थाकी प्राप्तिकी दिशामे उठाया गया सबसे गौरवपूर्ण कदम होगा । सबसे महत्त्वकी वात तो यह है कि यह सारी प्रगति कम-मे-कम वलिदान और जनक्षति द्वारा प्राप्त की गयी है ।

इसके विपरीत हालके वर्षोमे जो हिंसक कार्य हुए है, उनके सबधमे यही कहा जा सकता है कि "कही भी उपद्रवो द्वारा कोई ऐसा ठोस सुधार नही हो सका जैसा कि प्रतिवादी विरोधी प्रदर्शनो द्वारा सभव हुआ है ।" हब्शियोकी नयी पीढीकी वेसब्रीको समझ पाना बिलकुल आसान बात है, खासकर उन हब्शियोकी, जो उत्तरके नगरोमे बसते है । वे गदी बस्तियोमे रहनेके लिए मजबूर है । उनके सामने स्थायी रूपसे वेरोजगारीकी समस्या वनी हुई है । ऐसी हालतमे यदि वे निराश होकर अपने गोरे प्रभुओके औद्धत्यके विरुद्ध बौखला उठते है और उनके विरुद्ध हिंसक कारनामोमे कूद पडते है तो उन्हे क्या खोना है—उनके पास खोनेके लिए अपना है ही क्या ? किन्तु इसका परिणाम अवश्य ही यह होता है कि गोरे लोग, जो प्राय सभी शहरोमे वडी सख्यामे है, उपद्रवोसे भयभीत हो जाते है, जिससे सुधारोको लागू करनेका उनका सङ्कल्प टूट जाता है ।

एक ओर मार्टिन लूथर किंग तथा ऐसे ही अन्य लोगोके नेतृत्वमे चलनेवाले अहिंसाके अनुयायियो तथा दूसरी ओर "काली सत्ता" के उग्र और अधीर समर्थकोके वीच, जो अहिंसाकी जरा भी परवाह नही करते, आज जो संघर्ष हो रहा है उससे १९२० और ३० के कालमे भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलनमे गाधी तथा हिंसाके समर्थकोके वीच चलते सघर्षकी याद ताजी हो जाती है । यह एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि किंगकी पुस्तकके काले आवरणपर किंगको एक डेस्कपर खडा हुआ दिखाया गया है और उनके पीछेकी दीवालपर गाधीजीका चित्र लटक रहा है । वे इस सत्यको नही छिपाते कि उनकी आत्मिक प्रेरणाके स्रोत गाधीजी ही रहे है । उनकी सबसे ताजी किताबमे पाठकोको अहिंसाके प्रतिपादनमे किंग द्वारा प्रयुक्त उसी शान्त-गभीर तर्कशैलीके दर्शन होगे जिसका प्रयोग गाधीजीने 'यग इण्डिया' और 'हरिजन'के पृष्ठोमे प्रति सप्ताह किया है ।

गाधीके समान ही किंगने भी अपने कार्यो और शब्दोसे यह बिलकुल स्पष्ट कर

दिया है कि हमें इसमें चुनाव नहीं करना है कि हम चुपचाप घरमें बैठे रहें या उपद्रव शुरू कर दें। हमें दो तरहके कार्योंमें चुनाव करना है : बुराईका प्रतिरोध हिंसासे किया जाय या अहिंसासे। हमें यह भी याद रखना चाहिए कि अहिंसामें हिंसाकी अपेक्षा कहीं अधिक साहस, अनुशासन और अध्यवसायकी जरूरत होती है। हमारा चुनाव कुछ हदतक इस विश्वासपर भी निर्भर करता है कि परिणामों की प्राप्तिमें अहिंसक तरीके अधिक प्रभावकारी हैं।

इसके अतिरिक्त एक दूसरी बात भी है जिसपर जोर देते हुए गांधीजी कभी थकते नहीं थे। उनका विश्वास था कि साध्य और साधन घनिष्ठ रूपमें अन्योन्याश्रित होते हैं। यदि तुम ऐसे न्याय और निष्पक्षताकी माँग करते हो जो सबके लिए है तो तुम्हारे आगे और आनेवाले कलके सारे कार्योंका तरीका कुछ ऐसा अवश्य होना चाहिए कि उसका कुछ-न-कुछ संबंध परिणामों—साध्यके साथ बना रहे। हिंसा वह शस्त्र है जिसका उपयोग उत्पीड़क हमेशा अपनी निरंकुशता कायम रखनेके लिए करते रहते हैं। यह वह शस्त्र है जिससे निरंकुशतासे हाथ धो बैठना पड़ता है। एक प्राचीन कविने कहा है कि "युद्ध सिवा अनन्त युद्धोंके और किसे जन्म दे सकता है?" गांधीजीका विश्वास था कि हिंसासे हिंसा और निरंकुशता ही जन्म लेती है। हमारे समयमें व इतिहासमें सबसे क्रूर तथा शासन लागू रहे हैं। सैनिक शक्ति तरीकों और हिंसाके द्वारा स्थापित पशुबल और सम्पूर्ण शक्तिका ही शासन कायम होता है। यदि तुम शान्तिपूर्ण साध्योंको ही प्राप्त करना चाहते हो तो शान्तिपूर्ण साधनोंका ही प्रयोग करो।

गांधीजीने इसे बार-बार स्पष्ट कर दिया था कि उनकी ऐसी कोई भी इच्छा नहीं है जो किसी दूसरे राष्ट्र या जनतापर, फिर चाहे वह कितना ही छोटा क्यों न हो, प्रभुत्व करे। १९२५ में यंग इण्डिया में उन्होंने लिखा था :

> राष्ट्रवाद कोई बुरी चीज नहीं है। आधुनिक राष्ट्रोंका अभिशाप है उनकी संकीर्णता, स्वार्थपरता और निरंकुश पृथक्करणशीलता। यही बुराई है। प्रत्येक राष्ट्र दूसरेकी कीमतपर लाभ उठाना चाहता है और दूसरेके विनाशपर उठना चाहता है।

इतना ही नहीं :

> आज विश्वकी उन्नत सभ्यताएँ परस्पर हथियारबंद एवं स्वतन्त्र राष्ट्रोंकी सत्ता नहीं चाहतीं, बल्कि अन्योन्याश्रित मित्रतापूर्ण राष्ट्रोंका संघ चाहती हैं। इस कल्पनाकी परिपूर्णता दूरकी भी बात हो सकती है। मैं इस सिलसिलेमें अपने दावेके लिए कोई लम्बा-चौड़ा दावा नहीं करना चाहता।

लेकिन स्वतन्त्रताकी अपेक्षा सार्वभौम अन्योन्याश्रयताके लिए अपनी तत्परताको प्रकटकर देनेमे मै कोई वहुत वडी या असंभव वात नही देखता।

वे इससे भी आगे वढकर कहते है .

जैसे आज राष्ट्रवादका धर्म हमे यह शिक्षा देता है कि व्यक्तिको परिवारके लिए, परिवारको गाँवके लिए, गाँवको जिलेके लिए, जिलेको प्रान्तके लिए और प्रान्तको देशके लिए मर मिटना चाहिए, उसी तरह एक देशको भी इसीलिए आजाद होना चाहिए कि यदि आवश्यक हो, तो वह संसारके कल्याणके लिए मर मिटे। अत राष्ट्रवाद के संवंधमे मेरी यह धारणा है कि मेरा देश इसीलिए आजाद हो सकता है कि यदि आवश्यक हो तो मानव-जातिको जिंदा रखनेके लिए समूचा देश मर मिटे।

जीवनके प्रति ऐसा दृष्टिकोण रखनेके कारण, वे इसके लिए तैयार थे कि स्वतन्त्र भारत अपनी सशस्त्र सेनासे मुक्त हो जाय और अपनेको नि शस्त्र करनेवाला विश्वका पहला राष्ट्र वने। जव समय आया तो उन्हे यह पता चला कि भारतकी जनता इसके लिए तैयार नही है; फिर भी यह उनका आदर्श वना रहा। इस आदर्शको माननेवाले वे अकेले व्यक्ति नही थे। स्वर्गीय डाक्टर राजेन्द्रप्रसादने, जिस समय वे भारतके राष्ट्रपति थे, स्पष्टरूपसे घोपणा की थी कि मेरे ख्यालसे विश्वशातिके लिए भारतका यही सर्वोत्तम योगदान होगा और पाकिस्तानकी जनताका हृदय जीतनेके लिए भी यही सवसे सरल उपाय होगा। उन्होने इस वातपर खेद प्रकट किया कि भारतीय जनता इसके लिए तैयार नही और निस्सन्देह अभी भी यह स्थिति वनी हुई है। किन्तु विश्व अभी भी, करीव-करीव निराश होकर, एक ऐसे राष्ट्रकी प्रतीक्षा कर रहा है जो इस मार्गपर चलकर नेतृत्व प्रदान करे। 'शान्तिप्रियता' की घोपणाओका कोई अर्थ नही होता; राष्ट्रीय प्रतिरक्षामे एक भी सैनिककी वृद्धि किसी भी राष्ट्र द्वारा शान्तिप्रेमकी घोपणा करनेवाले अनेकानेक भापणोके वजनसे कही अधिक वजनी हो जाती है। वस्तुत कौन-सा राष्ट्र शान्ति नही चाहता? शान्तिके लिए सच्चे और हार्दिक प्रेमका प्रमाण तो तभी मिलेगा जव कोई राष्ट्र इस शत्रुतापूर्ण विश्वके मुकावले अपने सर्वस्वकी वाजी लगाकर सशस्त्र सेनामे अपने विश्वासको तिलाजलि देनेको प्रस्तुत हो जाय। यदि हमलोग गाधीजीके जीवनके कार्यको गभीरतासे ग्रहण करते है और उनके साथ यह विश्वास करते है कि 'सत्यके लाजवाव शस्त्र' मे, जिसे गाधीजी अहिंसक शक्तिमे विश्वासके रूपमे ही मानते थे, विश्वासका रास्ता ही वह रास्ता है जिससे

संसार विनाशसे बच सकता है, तो हमें, चाहे हम कहीं भी रहते हों, अपने देशवासियोंको एक गौरवपूर्ण अज्ञातकी ओर दृढ़तापूर्वक यह कदम उठानेके लिए तैयार करनेका प्रयत्न करना चाहिए।

---

१ यह लेख ५ अप्रैल १९६८ को डाक्टर किंगकी हत्याके पूर्व लिखा गया था।

मुल्कराज आनन्द

एक बातचीत

१९२९ में मै खासकर अपने उपन्यास 'अनटचेबुल' को महात्मा गाधीको सलाहपर पुन. लिखनेके उद्देश्यसे लंदनसे भारत आया। मैने अछूतो (जाति-बहिष्कृतो) के प्रश्नपर 'यंग इडिया' में उनके द्वारा लिखे गये कुछ लेख पढे थे। वंवई पहुँचनेपर दूसरे दिन अहमदाबादमें गांधीजीसे मेरा मिलना तय था। जब मै उनसे मिला तो मेरी उनसे निम्नलिखित वार्ता हुई :

गाधीजो . आपने लंदनमें एक वात सीख ली है—वक्तकी पावंदी। दर-असल मुझे देर हो गयी है, क्योकि मै कताई कर रहा था।

लेखक . जैसा कि मैने आपको वताया है, मैने एक अछूतके वारेमे एक उपन्यास लिखा है।

गाधीजी हम उन्हें यहाँ 'हरिजन' कहते है।

लेखक . और उसे लिखनेके वाद मैने ऐसा अनुभव किया कि यद्यपि यह उपन्यास उत्तरी भारतमें वसे जाति-वहिष्कृत लोगोके जीवनके वास्तविक अनुभवपर आधारित है, उसमें गंभीरताका अभाव है।

गाधीजी . 'जाति-वहिष्कृत'! मैने आपको अभी वताया है कि हम उनके लिए 'हरिजन' शब्दका व्यवहार करना अधिक उपयुक्त समझते है।

लेखक : 'हरिजन' का अर्थ तो परमात्माकी सन्तान होता है। मुझे अफसोस है कि हमारा समाज उन्हें परमात्माकी सन्तानोका दर्जा नही देता। ....इसके अलावा मेरा ईश्वरमें विश्वास भी नही है।

गाधीजी . तव तो आप हिंदू नही है।

लेखक . नही, जो धर्म जाति-प्रथाको वर्दाश्त करता है उसका अनुयायी होना मै पसद नही करूँगा। दरअसल मै तो ईसाई-धर्म स्वीकार

करनेकी बात सोचता रहा हूँ क्योंकि कम-से-कम उससे जाति-प्रथा की अनुमति तो नहीं दी जाती। किन्तु मेरी कठिनाई यह है कि ऐसा भी अपने अनुयायियोंसे परमात्मामें विश्वास रखनेकी अपेक्षा करते हैं।

गांधीजी — अच्छा तो आप नास्तिक होना पसंद करते हैं?

लेखक — जी हाँ, मैं समाजवादी हूँ।

गांधीजी — मैं आपसे इस बातमें सहमत नहीं हूँ कि हिन्दूधर्म जातिप्रथाको बर्दाश्त करता है। परन्तु ख्यालसे हिन्दू द्वारा जातियोंके हिंदुओंके खिलाफ भेदभावका व्यवहार अवश्य करते हैं किन्तु अच्छे हिन्दू ऐसा नहीं करते।

लेखक — मेरा ख्याल है कि आप हिन्दू धर्मके प्रति बड़े उदार हैं और इस तथ्यको भूल जाते हैं कि जाति प्रथा हजारों वर्षोंसे हिन्दूधर्मका आधार बनी हुई है।

गांधीजी — यदि मैं ऐसा सोचता होता कि जाति प्रथा हिन्दू धर्मका आधार है तो मैं हिन्दूधर्ममें बना न रहता।

लेखक — जो भी हो मेरा तो यही विश्वास है और इसीलिए मैंने एक प्रतिवादके रूपमें अपना उपन्यास लिखा है।

गांधीजी — इस प्रश्न पर लिखना महत्त्वपूर्ण है किन्तु जाति प्रथापर सीधा प्रहार करनेवाली कोई किताब क्यों न लिखी जाय? ऐसी कोई भी सीधी किताब सत्यसे परिपूर्ण होगी और आप तथ्योंको साफ साफ कहकर जनताका सुधार कर सकते हैं।

लेखक — मैं उपन्यास लिखना चाहता हूँ कोई प्रचार-पुस्तिका नहीं। उपन्यासमें आप किसी समस्याकी व्याख्या भर कर देते हैं उसका समाधान नहीं करते। सुधारका काम आप सुधारकोंपर छोड़ देते हैं। यद्यपि मैं भी जनताका सुधार ही चाहता हूँ फिर भी मेरा विश्वास किसी प्रश्नके उत्तर देनेकी अपेक्षा उसे साफ तौरपर रख देने भरमें है।

गांधीजी — सम्भवतः जनता अंग्रेजीमें लिखी हुई आपकी किताब नहीं पढ़ सकेगी। अतएव केवल अपने गौरवकी दृष्टिसे ही आपने यह उपन्यास अंग्रेजीमें लिखा है।

लेखक — शायद आप ठीक कह रहे हैं क्योंकि यूरोपमें बहुतसे बार

धीरे एक हीरो (नायक) बन गया है। किन्तु मै आपके पास केवल इसलिए आया हूँ कि मै अपने अहंकारको कुचलना चाहता हूँ और आपसे अछूतोपर प्रेम करनेका पाठ पढना चाहता हूँ। मै अपने चरित्रोकी भावनाओ और विचारोको मूल पजाबी और हिन्दुस्तानीसे ही अंग्रेजीमे अनूदित करनेका प्रयत्न करता हूँ। पंजाबीमें ऐसे कोई प्रकाशक नही है जो किसी उपन्यासका प्रकाशन कर सकें। अतएव मै अग्रेजीमे लिखनेके लिए बाध्य हूँ।

गाधीजी . यह ठीक है कि हमे व्यर्थ समय नही खोना चाहिए और जो भी भाषा हाथ लग जाय, उसमे हमे जो कुछ कहना हो कह डालना चाहिए। अत कोई कारण नही है कि आपकी पुस्तक अंग्रेजीमे ही क्यो न लिखी जाय।

लेखक . इसके अतिरिक्त अनेक भारतीयोका कहना है कि हिन्दुस्तानकी बुरी बातोंको बाहरी संसारके सामने खोलकर रखना गलत है।

गाधीजी · सत्य तो अवश्य ही कहना चाहिए, फिर चाहे इससे किसीको भी चोट पहुँचे। 'सत्य' से यदि किसीको कुछ आघात भी पहुँचता है तो भी वह सत्य ही है।

लेखक रूसियोने भी गोगोल, दास्तोवेस्की और टॉल्स्टॉयसे उस समय यही कहा था जब इन लेखकोने अपने देशकी बुराइयोको संसारके सामने खोलकर रखा।

गाधीजी · आपने टॉल्स्टॉयको पढा है ?

लेखक मैने प्राय. उनके द्वारा लिखी सारी चीजे पढी है—काउण्टेस-टॉल्स्टॉयने उनके बारेमे जो कुछ लिखा है मैने उसे भी पढा है।

गाधीजी . मै सुनता हूँ कि वह उनके प्रति बहुत सदय नही थी।

लेखक क्या आप मुझे आश्रममे रहनेकी अनुमति देते है ?

गाधीजी आप यहाँ ठहर सकते है। आशा है, हमारे व्यवहारसे आप सन्तुष्ट होगे। अब मेरी प्रार्थनाका समय हो गया है।

वीरा ब्रिटेन

गांधीजी ब्रिटेनमें

मैंने महात्मा गांधीको पहले-पहल उस समय देखा था जब मेरी उमर कम ही थी। उसके पहले मैं कभी भारत नहीं गया था, यद्यपि आगाथा हैरिसन, फैनर ब्राकवे और अमिय चक्रवर्तीसे अनुप्रेरित होकर मैं भारतीय स्वातन्त्र्यके लिए काम करने लगा था। मुझे गांधीजीके दर्शनोंका यह अनुपम सौभाग्य उस समय प्राप्त हुआ, जब वे १९३१ में गोलमेज-सम्मेलनके सिलसिलेमें ब्रिटेन आये थे।

मुझे विक्टोरिया-स्ट्रीटपर स्थित एक साधारणसे रेस्तरांमें आयोजित एक [illegible] भोजमें शामिल होनेका निमंत्रण मिला। यह निमंत्रण भारतकी स्वतंत्रताके लिए काम करनेवाले किसी ऐसे संघटनसे मिला था जिससे मैं स्वयं सम्बद्ध थी। मैंने महात्माजीकी तस्वीर देखी थी और यह आशा रखती थी कि भोजमें मैं उन्हें उसी वेशभूषामें देखूँगी। फिर भी नवम्बरके घोर जाड़ेमें, जिसके लिए लन्दन प्रसिद्ध है, इतने कम कपड़ोंमें उन्हें देखकर मैं दहल गयी। फिर भी उनके व्यक्तित्वका जो अविस्मरणीय प्रभाव मुझपर उस दिन पड़ा उसका उनकी वेशभूषासे उतना सम्बन्ध नहीं था।

जब अक्तूबर १९६७ में लार्ड एटलीका, जिन्होंने भारतकी बड़ी सेवा की थी, देहान्त हुआ, उस समय न्यूयार्क हेरल्ड ट्रिब्यूनने भूतपूर्व मजदूर प्रधानमंत्रीके सम्बन्धमें चर्चिलकी उस टिप्पणीकी, जिसमें उन्होंने श्री एटलीको भेड़की वेशभूषामें एक भेड़ कहा था, सख्त आलोचना की थी और लिखा था कि चर्चिल अपने विरोधियोंपर जो फब्तियाँ कसा करते थे उनमें यह टिप्पणी सबसे बेतुकी और वहशियाना लगती है। उनकी इससे भी अधिक बेतुकी और वहशियाना उक्ति थी गांधीजीके सम्बन्धमें, जिसमें गांधीजीको उन्होंने 'एक अधनंगा फकीर' कहा था। मुझे प्रायः ऐसा संदेह हुआ है कि चर्चिलकी गांधीसे कभी

प्रत्यक्ष भेंट हुई भी थी या नही, क्योंकि मैं उन अनेक व्यक्तियोंमें हूँ जिन्होने गाधीजीको जीवनमे केवल एक वार देखा है और जीवनभर उनसे प्रभावित रहे है। आज वे उस युगके, जिसका निर्माण करनेमे उनका हाथ रहा है, ऐसे अभिन्न अंग वन गये है कि यह सोच पाना भी मुश्किल हो रहा है कि उनको जन्म लिये सौ वर्ष बीत चुके।

मै हालमे कृष्णा कृपालानी-लिखित रवीन्द्रनाथ टैगोरकी जीवनी पढ रही थी। उसमें एक स्थानपर वताया गया है कि यद्यपि गाधीजी भावनाकी दृष्टिसे टैगोरके अत्यन्त निकट थे, किन्तु जव उन्होने एक वार शान्तिनिकेतन जानेपर देखा कि वहाँके भोजनालयोमे ब्राह्मण लडकोके लिए विशेष आसन लगे हुए है तो इससे वे इतने व्यथित हुए कि उसके लिए टैगोरकी भर्त्सना करनेसे अपनेको न रोक सके। इस प्रसंगने मुझे उस समयकी याद दिला दी जव वे कुछ सप्ताहोके लिए ब्रिटेनमे ठहरे थे। उन्होने उस समय दिखावटी सभ्य समाजकी जानबूझकर अवहेलना की थी।

ब्रिटेनमे गाधीजीके लिए एक-से-एक वढकर ऐसे होटलोकी व्यवस्था थी जो वाहरी शान-शौकतमे अपना सानी नही रखते थे और जिनमें हर प्रकारकी अच्छी-से-अच्छी सुविधाएँ उपलब्ध थी। किन्तु गांधीजीने इन होटलोको छोडकर ईस्ट एण्डकी सवसे साधारण-सी वस्तीमे वने 'वो'के उस मकानकी सबसे ऊपरकी मजिलमे रहना पसन्द किया, जिसमे म्यूरियल और डोरिसलेस्टर लंदनके मजदूरवर्गके दीन-हीन नागरिकोके शिक्षण और आध्यात्मिक मनोरजनका केन्द्र चलाते थे। यदि गाधीजीसे मिलनेके लिए इच्छुक पत्रकारो और विशिष्ट अधिकारियोको वो-स्थित यह आवास लंदन महानगरके केन्द्रसे काफी दूर होनेके कारण असुविधाजनक लगता था, तो यह उनका दुर्भाग्य था। डाक्टर कृपालानीने सी० एफ० एण्ड्रूज की यह टिप्पणी उद्धृत की है जो अत्यन्त समीचीन है. "टैगोर मुख्यत आधुनिक है, जव कि महात्मा गाधी हमारे युगके असिसिके सेण्ट फ्रासिस है।"

१९४९-५० मे मैं उस छोटेसे ब्रिटिश प्रतिनिधि-मण्डलकी सदस्या थी जिसे महात्मा गाधीके शिष्योने शान्तिनिकेतन और सेवाग्राममे उनकी स्मृतिके सम्मानमे आयोजित महत्त्वपूर्ण अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलनमे शामिल होनेके लिए आमन्त्रित किया था। इस प्रसिद्ध सम्मेलनको 'विश्वशान्तिवादी सम्मेलन' की सज्ञा दी गयी। स्वयं गाधीजीका यह विचार था कि अनेक देशोके कुछ लोग उनके देशमे आये और उनके दोनो सुप्रसिद्ध आश्रमोमे रहकर उनके सदेशका गंभीर अववोध

-प्रास परें। किन्तु इस अद्वितीय आयोजनके लिए तिथि निर्धारित किये जानेसे पूर्व ही नाथूराम विनायक गोडसे जैसे राजनीतिक उन्मादीने उनकी हत्या कर दी।

यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि उस सम्मेलनके जो प्रतिनिधि सबसे पहले भारत पहुंचे थे उन्होंने मृत्युदण्डके सम्बन्धमें गांधीजीके जो विचार थे उनके प्रति सम्मान दिखानेके लिए उनके हत्यारोंको फांसीसे बचानेका विफल प्रयास किया था।

तेरह वर्ष बाद सन् १९६३ में मैं शान्तिनिकेतन वापस आया, यद्यपि सेवाग्राम न जा सकी। उस समय मैंने कुछ ऐसे स्थानोंका दूसरी बार दौरा किया जिनका गांधीजीके नेतृत्वसे सम्बन्ध रहा है। उस समय जवाहरलाल नेहरूकी लोकप्रियता अपनी चरमसीमापर पहुंच गयी थी। वे भारतके लिए और विश्वके लिए [illegible] बन चुके थे। इस बार मेरे पतिको और मुझे जो नया निमन्त्रण मिला था वह उनकी ही सरकारकी आतिथ्य भावनासे अनुप्रेरित था। हमारी दूसरी यात्रा पहलीसे सर्वथा भिन्न थी। इस बार हमारा सम्मानित अतिथियोंके रूपमें भव्य स्वागत हुआ और हमें झोपड़ियों तथा शिविरोंमें छात्रोंके तौर पर रखनेके बजाय शानदार कमरों और उद्यानोंसे सज्जित उन आलीशान इमारतोंमें ठहराया गया, जिन्हें अंग्रेज देशसे विदा होते समय यहीं छोड़ गये थे। स्वतन्त्र भारतमें जो हमें बहुतसे परिवर्तन दिखाई पड़े, उनमें एक यह भी था कि इस बार देशमें गांधीजीकी अनेक मूर्तियाँ स्थापित हो गयी थीं।

इन मूर्तियों और शानदार आतिथ्यके बावजूद मेरा ऐसा ख्याल है कि मैं अपनी दूसरी यात्राके बजाय प्रथम यात्रामें अहिंसक असहयोगकी भावनाको अधिक अच्छी तरह समझ पायी थी फिर भी मैंने यह अनुभव किया कि युद्धहीन विश्वकी कल्पना मात्र गांधीजीकी ही नहीं थी। अपनी इस जन्मशतीपर गांधीजीकी आत्मा यह सबसे पहले अनुभव करेगी कि उनकी कल्पनामें रवीन्द्रनाथ टैगोर और जवाहरलाल नेहरूका भी भाग था। पश्चिम भारतको इसके लिए बधाई दे सकता है कि उसने ठीक उस समय तीन महापुरुषोंको जन्म दिया जब कि उसको अपनी स्वतन्त्रताके लिए उनकी अपेक्षा थी। अहिंसाकी यात्रामें मानवजातिके आध्यात्मिक विकासके लिए इन तीनों विभूतियोंने जो भूमिका अदा की है, उसे भी कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करना चाहिए।

लोकोत्तर व्यक्तित्व

१९४६ में भारतसे विदा होनेके बाद मैंने एक छोटी-सी पुस्तिका लिखी थी, जिसका नाम रखा था "भारतमें एक आस्ट्रेलियाई।" इस पुस्तिकामें मैंने लिखा था कि "भारतमे जिस सर्वोत्कृष्ट और रोचक व्यक्तिसे मै मिला, वे महात्मा गाधी थे।" इतना लिखनेके बाद मैंने उनका तथा मुझपर पडे उनके प्रभावका वर्णन किया था।

१९४५ मे कलकत्तामे मेरी उनसे घण्टो बातचीत हुई थी और मेरी-उनकी कई मुलाकातें भी हुई थी। मेरी ये मुलाकातें करीब एक पखवारेतक चलती रही। हमलोग इतनी बार मिले और इतनी देर तक साथ रहे कि जब एक दिन हमारी भेंट नही हुई तो दूसरे दिन कलकत्तेके एक समाचार-पत्रने छापा कि "श्री केसी कल गाधीसे नही मिले।"

हमारे पास वार्ताके अनेक विषय थे। अविभाजित बंगालके गवर्नरके रूपमे मुझसे गांधीजी अनेक काम करवाना चाहते थे और मैं भी अनेक कामोको करनेमे यह चाहता था कि गाधीजी अपने असदिग्ध प्रभावका उपयोगकर मेरी सहायता करे। हम दोनोको यह दृढ विश्वास था कि हम एक दूसरेसे जो कुछ करवाना चाहते हैं, वह बगालकी जनताके हितमे होगा। यद्यपि अनेक बातोपर हममे मतैक्य रहता था, किन्तु बंगालकी जनताका हित किस बातमे होगा, इस प्रश्नको लेकर कभी-कभी हममे मतभेद भी हो जाया करता था। इसलिए विचार-विमर्शकी भी कुछ गुंजाइश निकल आती थी। किन्तु यह विचार-विमर्श सदैव मैत्रीपूर्ण होता था, क्योकि मुझे यह कहनेमें बडी प्रसन्नता हो रही है कि हमलोग जबसे एक-दूसरे-को थोडा जानने-समझने लगे, तभीसे हम एक-दूसरेके प्रति यह महसूस करने लगे कि उसका दृष्टिकोण तथ्यात्मक और निष्पक्ष है, वह सही काम ही करना चाहता है।

महात्मा गांधीका व्यक्तित्व सत्यनिष्ठ, वास्तविक, जीवन्त और लुभावना था। भारतीय जनसमाजके सभी वर्गोंका उनके प्रति बड़ा स्नेह और सम्मान था। जहाँ कहीं भी और जब भी वे जाते थे, उनके दर्शन और अनुगमनके लिए भारी भीड़ एकत्र हो जाती थी। उनके व्यक्तित्व, चारित्रिक बल, ईमानदारी और हार्दिक मानवताकी भावनाका उनके देशवासियोंके हृदय और मस्तिष्कपर तो अत्यन्त गहरा प्रभाव था ही, मेरी पत्नी और मैं भी उनसे अत्यधिक प्रभावित था।

हमारी प्रत्येक वार्ताके समय अन्तमें मेरी पत्नी अवश्य आ जाती थी, जिससे हमारी वार्ता सरस हो उठती थी और कभी दूसरी दिशाओंमें भी बदल जाती थी। मेरे समान ही मेरी पत्नी भी उनके प्रति आकृष्ट थी।

वार्ताओंके बीच-बीचमें हममें काफी पत्राचार भी हुआ करता था। जब हम लोग परस्पर थोड़ा निकट आ गये तब वे अपने पत्रोंका आरम्भ "प्रिय मित्र" (डियर फ्रेंड) सम्बोधनसे करने लगे। जब कभी वे कुछ जल्दीमें लिखते थे तो उनके लिफाफेमें "डियर फ्रेंड" "डियर फ्रीण्ड" (प्रिय [illegible]) जैसा पता लिखा जाता था।

गांधीजीसे हुई अनेक वार्ताओंके दौरान मुझे शीघ्र ही यह अनुभव होने लगा कि कुछ ऐसे विषय हैं जिनके सम्बन्धमें उन्हें विश्वास दिलाने या समझानेका मेरा प्रयत्न व्यर्थ होगा, क्योंकि उनके सम्बन्धमें उन्होंने अपना एक ऐसा पक्का विचार बना लिया है जिसे बदला नहीं जा सकता। यद्यपि उनका व्यवहार सदैव अत्यधिक सौजन्यपूर्ण हुआ करता था, किन्तु इसके साथ ही उनमें अपने विचारोंके प्रति बड़ी दृढ़ता थी। ग्रामोद्योग एक ऐसा ही विषय था जिसके सम्बन्धमें ऐसा प्रतीत होता था कि उनकी अपनी पक्की धारणाएँ हैं जिनके सम्बन्धमें वे कोई तर्क सुन नहीं सकते। मैंने जब-जब और कुछ बड़े विस्तारसे उद्योगोंकी चर्चा करते हुए यह सुझाया कि इनसे जनताको कहीं अधिक रोजगार मिल सकता है तो मैंने पाया कि इसपर वे मेरी कोई बात सुननेको तैयार नहीं हैं। इसी तरह जब मैंने जानबूझकर [illegible] कुछ कर [illegible] लगाकर उनको [illegible] लिए ही कुछ सार्वजनिक राजस्व एकत्र करनेका सुझाव दिया तो उसका भी उन्होंने विरोध ही किया।

उनकी जिन दूसरी प्रशंसनीय और असाधारण विशेषताओंका मुझे अनुभव हुआ वह यह थी कि वे कभी किसी दूसरे व्यक्तिके सम्बन्धमें कोई कड़ी बात नहीं कहते थे और न ही ऐसा लगता था कि किसी तरहकी नुक्ताचीनी ही करते थे। यह उनका स्वभाव ही था। जिस व्यक्तिने [illegible] प्रति [illegible] प्रयास किया हो उसके प्रति भी उनका [illegible] बना रहता था। जब कभी मैं [illegible] सामने [illegible] बिना किसी अपवादके ही [illegible]

निकालते और उसकी किसी तरहकी बुराई नही करते थे।

मैने अपनी पुस्तिकाके अन्तमे महात्मा गाधीके संबंधमे लिखा था कि, "वे आजके भारतमे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति है और मेरा विश्वास है कि उनका यह व्यक्तित्व बराबर बना रहेगा।"

लेकिन दुर्भाग्यसे यह नही होना था। ३० जनवरी १९४८को उनकी हत्या कर दी गयी और इस भीषण घटनासे भारतकी एक विशेष प्रकारकी ज्योति बुझ गयी।

सिबिल थार्नडाइक कैसन

सत गाधी

मै व्यक्तिगत रूप से महात्मा गाधीसे कभी नही मिला फिर भी मेरे जीवन पर उनका बडा प्रभाव पडा है। म उनके सबसे करीब इसी रूप म आयी हूँ कि म ठीक उसी समय किंग्स्ले हाल, बो (वह आवास जो उन्हें बहुत प्रिय था) के उस कमरमें सोने गयी जिस समय गाधीजी इग्लण्डकी अपनी चुनौतीभरी यात्रा क बाद उसे खाली कर गये थे। मेरा यह विश्वास ह कि उस छोटे स साधारण कमर म उस समय भी उनके व्यक्तिगत प्रभावका कुछ अश विद्यमान था। मेरे पति लेविस कैसन बो में उनसे मिले थे। उस समय म यात्रापर गयी हुई थी। उन्होन मुझे जो पत्र लिखा था उसमें एक महात्माके प्रभावका वणन किया गया था। जिन लोगोको उनसे मिलनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ ह वे इसी प्रकार प्रभावित हुए ह। वे अपने ढगके मौलिक किस्मके सत थे। मुझे उनका एक सन्देश भी प्राप्त हुआ जिसे किंग्स्ले हालके समुदायके प्रधान एक दूसरे साधु पुरुष म्यूरियल लेस्टर ने मेरे पास भेजा था। इस सन्देशमें भलाई में विश्वास करने तथा उसीक लिए काम करत रहने की प्रेरणा दी गयी थी। शान्तिके मार्गका अनुसरण करनेक लिए हम जसे अनेक लोगोको उन्होन यही प्रेरणा दी ह। सकटक समय हमें शातिपूवक यही सोचना चाहिए कि इन परिस्थितियाम यदि वे होत तो क्या करते इससे हमेशा कोई न कोई रास्ता मिल जायगा। कुछ इसी प्रकारका सन्देश मुझ उस शानदार महिला राजकुमारी अमृतकौरसे मिला था जो उनके और उनक परिवारक साथ रहती और काम करती थी। उन्हीके माध्यमसे मुझ व्यक्तिगत कौटुम्बिक जीवन तथा समाजके बहत्तर कौटुम्बिक जीवनके प्रति गाधीजीकी अभिरुचिका पूरा परिचय प्राप्त हुआ। मेरा विश्वास ह कि यदि हम अभिवृत्तिका अनुसरण किया जाय तो हम जिस सकटपूर्ण ससारमें निवास कर रहे ह उसका सामना किया जा सकता ह। उनकी कृतियोंमें उन्हें जानकर एक ईमानदार का

ईसाई धर्मके प्रति निष्ठा व्यापक और गम्भीर हो उठती है और ऐसा अनुभव होने लगता है कि जहाँ कही भी सच्ची साधुता है, वहाँ नाम के भेदो की कोई बाधा नही हो सकती। हमारे प्रभु ईसामसीह की तरह उन्होने वैयक्तिक और राष्ट्रीय दोनो प्रकारकी वस्तुओका तलस्पर्शी दर्शन किया था और जब कभी दो व्यक्तियो अथवा दो राष्ट्रोके पारस्परिक सबंधोमे कोई कठिनाई आती थी तो वे सहायताके अमोघ और अजस्र स्रोत बन जाते थे। आज भी दुनियामे महात्मा गाधीके अनेक शिष्य है और दृढतापूर्वक यह विश्वास किया जा सकता है कि उनके तथा उनके अनुयायी अन्य सन्तो द्वारा यह ससार अंधकारसे उस प्रकाश की ओर अग्रसर होगा जो कभी-कभी बहुत दूर मालूम पडता है, किन्तु जिसका साम्राज्य अवश्यभावी है। 'भगवान् हमारी निष्ठा दृढ करे'—महात्मा गाधीका स्मरण करते हुए यही अनुभव होता है। इस अनुभवके साथ ही हमे उस शक्तिका आभास मिलता है, जो सदा हमारी सहायता करनेको तत्पर है।

जार्ज कैटलिन

महात्मा गाधी केवल राजनेता न थे

महात्मा गाधी निर्विवाद रूपमे इस शताब्दीके चुने हुए आधा दजन विशिष्टतम व्यक्तियोंमें थे। यदि हम अपने अर्वाचीन इतिहासके कुछ खलनायकोंको भी इस सूचीमें शामिल कर लें तो भी इस तथ्यकी सचाईसे इनकार नही किया जा सकता। यह एक बहुत बडी बात ह। आखिर हम इस सच क्या मानत ह? भोजनके सबधमें उनकी कुछ अजीब रुचियाँ थी। उनके चारित्रिक लक्षणोंमें अनेक प्रकारकी हठधर्मिता भरी पडी थी। वे अपने भक्तोंके प्रति भी बडा ही रूक्ष व्यवहार कर बैठते थे। क्या इसीलिए हम अपेक्षाकृत कुछ अनुपयुक्त रीतिसे कामिसारक शासनके विरुद्ध उन्हें एक योगीका रूप दे डालते ह? आमूलचूल एक शान्तिवादी के रूपमें, जिसके शान्तिवादमें अनेक प्रकारकी सन्दिग्धताएँ थी क्या वे जन साधारणके एक प्रकारके बर्ट्रेण्ड रसेल थे? या फिर क्या वे शाश्वत भारतीय ग्रामके प्रमुखतम प्रतिनिधि और प्रतीक थे? क्या वे दूसरे राम-कृष्ण थे?

इन सारी व्याख्याओंमें कोई भी व्याख्या उनके सबधमें सही नही उतरती और न तो उनसे उनके व्यक्तित्वका ही कोई निर्वचन हो पाता ह। प्रथमत वे आजके स्वतन्त्र भारतके सस्थापकोंमें थे। इतना ही नही, वे उनमें सबसे महान् थे। दूसरे नेहरू और टगोरके समान भारतने मोहनदास गाधीमें एक ऐसे सर्वातिशायी व्यक्तित्व की उपलब्धि की थी जो एक महान् राष्ट्रीय नेता तो था ही साथ ही अन्तरराष्ट्रीय अराजकताके इस युगमें एक महान् अन्तरराष्ट्रीयतावादी भी था। केवल इटलीको ही मेजिनी के रूप में एक ऐसा व्यक्तित्व पाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। यद्यपि कुछ लोगोंने उन्हें मात्र मिडिल टेम्पुल का वकील बताकर अवमानित किया ह (जब कि कमसे कम उनपर गुजरातका एक साधु मात्र होनेका आरोप कोई नही लगा सका)। वे वस्तुत एक ऐसे राजनेता थे जो स्वभावत एक ओर वकील की विशेष प्रकारकी वकालत और दूसरी ओर राजनीतिक सद्भाव

अनुमानोसे ऊपर उठ सकने मे समर्थ होता है। इसका वास्तविक कारण यह था कि वे प्रथमत. महात्मा--एक महान् आत्मा थे और उसके साथ ही अपने युगकी आवश्यकताओके लिए सर्वाधिक उपयुक्त एक महान् राजनेता भी।

मुझे उनसे लदन, शिमला और दिल्लीमे कमसे कम पाँच वार मिलनेका गौरव प्राप्त हुआ है। एक वार जब उन्होने मुझे एकान्तमे मिलने के लिए बुलाया, दलाईलामा के उपहार लेकर सुदूर तिव्वतसे आये हुए प्रतिनिधिमण्डलोसे मिलनेकी विवशताके कारण उन्हें नहानेके समय ही मुझसे वाते करनी पडी थीं। मुख्यत हमारी वार्ता शान्तिवादके सिद्धान्तो पर हुई, क्योकि मेरा प्रमुख विपय यही रहा है। हालमे ही कुछ लोगोने यह संकेत किया था कि उनका शान्तिवाद केवल घरेलू मामलोका सिद्धान्त था, किन्तु यह विचार सही नही है। वे उस तर्क-सम्मत शान्तिवाद के समर्थक थे जिसमें प्राथमिकताओकी पूर्ण व्यवस्था होती है। उन्होने मुझसे कहा था कि यदि सचमुच किसी अन्तरराष्ट्रीय न्यायालयका निर्णय निष्पक्ष हो तो मै उसे कार्यान्वित करनेमे पुलिस-काररवाई तक की सहायता लेनेका समर्थन कर सकता हूँ। किन्तु उन्होने लौकिक विवेक से इस तरह की निष्पक्षता प्राप्त करनेकी संभावनामें सन्देह व्यक्त किया था। यदि दूसरे लोग दास-प्रथाके विरुद्ध अभियान चला रहे थे तो उनका अभियान जातिप्रथाके विरुद्ध था। किन्तु इन सवसे वढकर युद्धविरोधी विश्व-अभियानके वे एक महान् नेता थे और इसी रूपमें मानवता उन्हें वरावर कृतज्ञतापूर्वक स्मरण करती रहेगी। कैसर और कैसरे-हिन्द दानोके मुकावले उन्होने भगवान् और प्रेमके दावे प्रस्तुत किये। इसीलिए उनकी और भारतके हैलिफाक्स जैसे सर्वोत्तम वाइसरायो की भापामे वडी समानता थी। स्टालिन और हिटलर जैसे 'महापुरुपो' के विपरीत वे पूर्णत मानव थे और वरावर विनम्र तथा न्यायनिष्ठ मानवताकी वाणीमे ही वोलते थे। इसीलिए उन्होने 'शक्तिशाली को अपने चरणोके नीचे दवा लिया।'

विश्वपुरुप के रूपमें गांधीजी किसी राजनेता और युद्धके विरोध में अभियान चलानेवाले किसी धर्म-निरपेक्ष आन्दोलनकारीकी अपेक्षा कही महान् थे। वे मनुष्य और परमात्मा दोनो को परस्पर अभिन्न मानकर दोनोंसे प्यार करते थे। किंग्स्ले-मार्टिनके अधीन 'न्यू स्टेट्समैन' जैसे अखवार जिस तथ्यको हजम नही कर पाते थे वह यह था कि वे महान् धार्मिक नेता थे और इसीलिए उनके संवधमें 'प्रतिक्रिया-वादो' शब्दका वरावर प्रयोग हुआ करता था। निश्चय ही कुछ मामलोमे वे टैगोर के समान उदार नही थे। महात्मा गाधीकी यह दृढ धारणा थी कि, "धर्मको राजनीतिसे अलग नही किया जा सकता, जो ऐसा सोचता है कि इन्हें एक दूसरे

से अलग किया जा सकता है वह न तो धर्मको जानता है, न राजनीतिको।" उनके सार्वदेशिक धर्म और उनकी मानवतामें जो घनिष्ठ संबंध था वही उनकी प्रेरणाका स्रोत था और इसी कारण वे कभी मानव जातिका नेतृत्व एक "चमत्कार" (करामात) के रूपमें नहीं कर सकते थे। इसका यह तात्पर्य नहीं कि वे स्वयं अवतार बनना या किसी ऐसे अंधविश्वासका समर्थन करना चाहते थे, जिसके वे स्वयं तीव्र आलोचक थे। इसका केवल यही तात्पर्य है कि उनके पवित्र हृदयमें निवास करनेवाली दिव्य सत्ता उन्हें एक गरिमा प्रदान करती थी—वह गरिमा जो मानवताके प्रति करुणा और कष्टसहिष्णुतासे उद्भूत होती है। उनकी आत्मा-का परिगणन शान्तिनिर्माताओंमें होगा, क्योंकि ऐसी ही आत्मामें स्वर्ग का राज्य होता है और प्रभुका सिंहासन भी इतना ही ऊँचा होता है।

एम० सी० छागला

आधुनिक युगमें गांधी

वाइविलकी उक्ति है कि जो तलवारके सहारे जीता है वह तलवारसे ही नष्ट हो जायगा। इतिहासकी यह एक अत्यन्त शोकपूर्ण घटना है कि अहिंसाके सबसे बडे पुजारियो, खड्ग-धर्मके सबसे शक्तिशाली विरोधियोकी मृत्यु अहिंसाके सिद्धान्तपर तलवारकी विजयके फलस्वरूप हुई। क्राइस्टकी मृत्यु क्रासपर हुई, गाधीजीकी हत्या की गयी और सबसे ताजा उदाहरण डाक्टर मार्टिन लूथर किंगकी मृत्यु है। तो क्या अहिंसा कोई खोखला स्वप्न है? क्या अहिंसा एक द्वन्द्वात्मक दर्शन मात्र है, जिसका उद्देश्य केवल व्यक्ति और राष्ट्र दोनोको आन्दोलित करने-वाले उफनते हुए भावावेगोपर आवरण देना है?

यह सत्य नही है। मृत कैसर जीवित कैसरसे कही अधिक शक्तिशाली होता है—ईसाकी शूलीसे एक महान् धर्मका प्रादुर्भाव हुआ जिसने करोडो व्यक्तियो के चिंतन और विचारधाराको एक नया रूप दे दिया। गाधीजीकी मृत्यु ने एक ऐसे दर्शनको जन्म दिया है, जो न केवल हमारे देशके राजनयका आधार है, वल्कि जिसने सारे संसारकी जनताको प्रभावित किया है। जहाँ तक हम समझते है, डाक्टर किंगकी हत्यासे भी शीघ्र ही इस संसारसे रंगभेदका कलक मिट जायगा।

प्रत्येक महान् धर्मोपदेष्टा और पैगम्वर सदासे एक वडा खतरा उठाता आ रहा है। वह यह कि उसका सदेश अपरिवर्तनीयताका एक अचल रूप ग्रहण कर लेता है। किसी भी धर्मोपदेष्टाका मूल्याङ्कन उसके युग और उसकी उन समस्याओ के सन्दर्भमें होना चाहिए जिनका उसे सामना करना पडा था। युग वदलते रहते है, पुरानी समस्याएँ हल हो जाती है और नयी समस्याएँ अपनी चुनौती प्रस्तुत कर देती है। किन्तु हम धर्मोपदेष्टाके विचारोको गतिशीलता प्रदान करनेसे इनकार कर देते है। हम उसके उपदेशोको अर्थहीन नारोमें वदल देते है और वह अपने अनुयायियोंसे जो कुछ करनेकी अपेक्षा रखता था, उससे थोड़ा भी हटनेसे इन्कार

कर देते हैं फिर चाहे वह काम आज कितना भी निरर्थक हो गया हो और उसके दर्शनकी सच्ची आत्मासे उसका चाहे कितना भी विच्छेद हो गया हो।

गांधीजीके सिद्धान्तोंकी भी यही दुर्दशा हुई है और आज भी हो रही है। शायद ही ऐसा कोई मंच हो जिसपर उनका नाम न लिया जाता हो। मुझे तो यही आशंका है कि अधिकांशतः उनका नाम व्यर्थ ही लिया जाता है। सबसे बेईमान, सबसे बदनाम और सबसे भ्रष्ट राजनीतिज्ञ उनके नामका लाभ उठाते हैं और इस तरह प्रतिदिन उनकी हत्या शरीरसे नहीं आत्मासे की जा रही है।

इसमें सन्देह नहीं कि राजनीति दर्शनको उनकी सबसे बड़ी देन अहिंसाका सिद्धान्त है। किन्तु यह सोचना गलत है कि उन्होंने केवल भौतिक अहिंसाका उपदेश किया था। वे आध्यात्मिक अहिंसापर इसकी अपेक्षा अधिक नहीं तो समान बल अवश्य देते थे। अब यह बिल्कुल स्पष्ट हो गया है कि जब तक लोगोंके दिमाग और भावनाएं बिल्कुल स्वच्छ नहीं हो जातीं युद्धोंकी समाप्ति नहीं हो सकती और सर्वनाशका खतरा भी मानवजातिपर बराबर मंडराता रहेगा। आज आध्यात्मिक हिंसाका खतरा भी कम नहीं है। दक्षिण अफ्रीका, रोडेशिया और अमरीकामें जातीय औद्धत्य और भेदभाव दिनपर दिन बढ़ता जा रहा है। हमारे देशमें भी प्रान्तीयता और साम्प्रदायिकताकी जो लहर आयी है वह आध्यात्मिक असहिष्णुताको ही व्यक्त करती है। सरकारमें भी एकाकार समरूप समाजकी रचनाकी प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। स्वतन्त्र और स्वायत्तशासी संघटनों पर निरन्तर प्रहार हो रहे हैं। विचारभेद और रुचिभेदका व्यवहार राजनीतिक और सामाजिक बहिष्कारका भी खतरा उठाकर ही किया जा सकता है। हमारे समाजकी चिरकालसे चली आ रही परम्परा सहिष्णुता और सहानुभूतिकी ही रही है। महान् बुद्धने इसीका उपदेश किया था और गांधीजीने इसे विश्वधर्म बनाने और एक नाम और एक झण्डा देनेके लिए ही काम किया था।

गांधीजीकी दूसरी महान देन मानवीय गरिमाके सिद्धान्तको भारतीय समाज पर लागू करना था। सदियों तक हमने अपने सामाजिक बन्धुओंके एक बड़े वर्ग के साथ पशुओं जैसा व्यवहार किया था और उन्हें मौलिक मानवीय अधिकारोंसे भी वंचित कर रखा था। हमारे समाजसे इस कलंकको मिटा देनेके लिए गांधीजीसे बढ़कर और किसीने काम नहीं किया। यदि हमारे संविधानमें अभिमानपूर्वक अस्पृश्यताकी समाप्ति करनेकी घोषणा की गयी है तो इसका अधिकांश श्रेय उस जागरणको है जिसे गांधीजीने सवर्ण हिन्दुओंके विचारोंमें पैदा कर दिया था। उन्होंने स्वयं हर प्रकारका श्रम इस उद्देश्यसे किया था कि किसी भी तरहका

शारीरिक श्रमके साथ लज्जाकी कोई भावना लगी न रह जाय।

गाधीजीकी धर्मनिरपेक्षता एक दृष्टिसे उनके उक्त दर्शनका ही अग था। सभी धर्मोका आदर करके उन्होने समस्त मानव-समुदायका सम्मान किया। उन्होने ऐसा करते हुए किसी भी धर्मके प्रति कोई भेदभाव नही बरता। नेहरूकी धर्म-निरपेक्षता उनकी सहज बौद्धिकता एवं तार्किकताका परिणाम था, जब कि इसके विपरीत गाधीजीकी धर्मनिरपेक्षता गंभीर धार्मिक भावनासे उद्भूत थी। वे निष्ठापूर्वक इस तथ्यमे विश्वास करते थे कि सभी धर्मोका लक्ष्य एक है यद्यपि उस लक्ष्य तक पहुँचनेके मार्ग भिन्न हो सकते है। इसीसे वे अपनी प्रार्थना-सभाओमे विभिन्न धर्मोके मान्य ग्रन्थोके पाठका आयोजन करते थे। स्वय निष्ठा-वान् हिन्दू होनेके कारण वे दूसरे धर्मोके निष्ठावान् लोगोके प्रति आदरकी भावना रखते थे। उनका विश्वास था कि सच्चे धार्मिक लोगोमे परस्पर अविच्छिन्न सम्बन्ध है। अतएव धर्मके कारण मनुष्योमे भेदभाव पैदा नही होना चाहिए। यह एक दुर्भाग्यकी बात है कि धर्मके नामपर इतना भेदभाव समय-समयपर पैदा हुआ है, जब कि धर्मको सेतुका कार्य करना चाहिए।

आज हम जिस धर्मनिरपेक्षताका व्यवहार कर रहे है, वह गाधीजीके सिद्धान्तोके अनुरूप नही है। यह बहुत कुछ ब्रिटिश सरकारकी साम्प्रदायिक नीति-के अनुरूप है। हम अभी भी अल्पसंख्यकोको मुख्य राष्ट्रीय धारासे अलग और बाहर समझते है। हम उन्हे विशेष प्रतिनिधित्व देना चाहते है और नियुक्तियाँ देशके सभी नागरिकोको समान मानते हुए व्यक्तिकी योग्यताओके आधारपर न करके प्राय. उसके सम्प्रदायके आधारपर करते है। सच्ची धर्मनिरपेक्षताका अर्थ यह है कि किसी व्यक्तिको उसकी जाति या सम्प्रदायके आधारपर अयोग्य न ठहराया जाय, उसकी साम्प्रदायिक योग्यताओका ख्याल न किया जाय। यह हमारे भूतपूर्व अग्रेज प्रभुओकी "फूट डालो और शासन करो" की नीति थी जिसने बहुसंख्यक जनतामे असन्तोपके बीज बो दिये। क्योकि इसके आधारपर अल्पसंख्यक समुदायके अयोग्य और निम्नकोटिके व्यक्ति चुन लिये जाते थे जो अपने समुदाय की भी कोई भलाई इसलिए नही कर पाते थे कि वे अपने साम्प्रदायिक नामपत्र पर निर्भर थे, अपनी किसी योग्यतापर नही। गाधीजी मनुष्यकी और इसीलिए उससे भी अधिक भारतीय जनसमाजकी एकताके आधारपर स्थापित ऐक्यका उपदेश करते थे। देशका विभाजन एक ऐसी दुःखद घटना और ऐसी भयानक भूल थी, जिसका गाधीजीने अन्त तक विरोध किया, किन्तु उसे वे रोक न सके। इससे उनके राजनीतिक दर्शनको बड़ा आघात पहुँचा। लेकिन विभाजनके बाद

भी वे साम्प्रदायिक ऐक्यके लिए काम करते रहे और अन्तमें इसी उद्देश्यके लिए उन्होंने अपनी जान भी दे दी। हमारे देशके अल्पसंख्यक वर्ग कभी-कभी यह अनुभव नहीं कर पाते कि यदि आज उन्हें बहुसंख्यक समुदायके समान ही मौलिक अधिकार प्राप्त हैं और उनका ऊँचा-से ऊँचा पद उनके लिए सुलभ है तो इसका अधिकांश श्रेय गांधीजीकी महानताको है। मैं कुछ कांग्रेसजनोंमें व्याप्त उग्र राष्ट्र-वाद और धर्मोन्मादकी भावनासे परिचित हूँ। किन्तु उनमें भी जो सबसे निकृष्ट कोटिका व्यक्ति है, उसकी भी बोलती लज्जासे बन्द हो जाती है जब वह यह सोचता है कि इन प्रवृत्तियोंके कारण भारतके सबसे बड़े सन्तका जीवन चला गया।

इतिहासके उस निर्णयके सबधमें पहलेसे कुछ भी सोचा-समझा नहीं जा सकता, जो अन्तिम निर्णय होता है और जिसके विरुद्ध कहीं कोई अपील नहीं की जा सकती। किन्तु मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि गांधीजी न केवल उन लोगोंके हृदयोंमें जिन्हें उन्हें जानने और उनके साथ काम करनेका मौका मिला है बल्कि आनेवाली उन पीढ़ियोंके हृदयोंमें भी जीवित रहेंगे जिन्हें उनका नाम इतिहासके पृष्ठोंपर अंकित मिलेगा। गांधीजीके ये उपदेश आनेवाले युगोंको प्रेरणा देते रहेंगे जिन्होंने हमेशा महान कार्योंको प्रेरणा दी है, जीवनमें गुणात्मक सुधार किया है तथा जिनके कारण मानवता शान्ति और सार्वभौम भ्रातृत्वके लक्ष्यके निकट आयी है।

सुनीतिकुमार चटर्जी

संस्मरण

मुझे तिथिकी याद नही है, किन्तु घटनाकी याद है जो तिथिसे कही बडी होती है। इस शताब्दीके द्वितीय दशकके मध्य किसी समय गाधीजी कलकत्ता आये थे। उनके यहाँ आनेके पूर्व ही उनकी ख्याति सर्वत्र फैल गयी थी। दक्षिण अफ्रीकामे अपने देशवासियो के आत्मसम्मान और मानवीय अधिकारोके लिए किस प्रकार वे सघर्ष कर रहे है और अपने अहिंसाके सिद्धान्तके प्रसारके लिए बिना किसी दुर्भावनाके नाना प्रकारके कष्ट उठा रहे है, इस सम्बन्धमे चारो ओर चर्चाएँ होने लगी थी। अखबारोमे उनके कलकत्ता-आगमनकी घोषणा की गयी थी। जनता उन्हे देखने और उनसे प्रेरणा एवं मार्गदर्शन प्राप्त करनेके लिए अत्यन्त उत्सुक थी।

उस समय मै अभी-अभी कालेजसे बाहर आया था और अपने वयके अन्य युवकोके समान दूरसे ही सही, गाधीजीकी एक झलक पा जानेके लिए लालायित था। महात्माजीके स्वागत के लिए कलकत्तामे एक समिति सघटित हुई थी और कासिम-बाजारके स्वर्गीय महाराजा मणीन्द्रचन्द्र नन्दीके निवासस्थानपर उनके स्वागतके लिए एक सार्वजनिक सभाका आयोजन किया गया था। महाराजाका यह वासस्थान अपर सर्कुलर रोड पर है जिसका अब नया नामकरण 'आचार्य प्रफुल्ल चन्द्र रोड' किया गया है। अपराह्लमे सभाके लिए नियत समयपर मै भी वही मौजूद था। हम सबलोग आशा कर रहे थे कि गाधीजी किसी शानदार सवारीमे आते होगे। गाधीजी उस समय 'महात्मा'के नामसे प्रसिद्ध नही हुए थे। वे यह नही चाहते थे कि उन्हे कोई लेने जाय। अभी हमलोग उनके आगमनकी प्रतीक्षा ही कर रहे थे कि किसीने जोरसे एक नारा दिया और उँगलीसे एक नाटे कदके व्यक्तिकी ओर इशारा किया। ये ही गाधीजी थे। वे सफेद धोती, कुर्ता और चद्दर-मे थे। नगे पैर चल रहे थे। किन्तु उनके सिरपर गुजराती पगडी बंधी थी।

हाथमें छड़ी लिये हुए पटरीसे तेजीके साथ कदम बढ़ाते व उस मुख्य गेटकी ओर चले जा रहे थे, जहां उनके आतिथ्य उनकी प्रतीक्षामें खड़े थे। देखते-देखते सब लोग उनकी ओर दौड़ पड़े और उन्होंने हाथ उठाकर सब लोगोंको नमस्कार किया। वे घरमें ले जाये गये जहाँ उन्हें अभिनन्दनपत्र समर्पित किया गया। उन्होंने अंग्रेजीमें भाषण किया। इस तरह इस महापुरुषका पहला धाका मुझे मिला।

कलकत्ता-आगमनके इस अवसरपर महात्माजीने विश्वविद्यालय भवनके सामने कालेज स्क्वायर (गोल दिघी स्क्वायर) में आयोजित एक सार्वजनिक सभामें भाषण किया। इस समय भी उनकी वेश-भूषा वही थी—सफेद धोती कुर्ता और पगड़ी किन्तु इसबार उन्होंने भाषण हिन्दीमें किया। उनकी भाषा गुजराती हिन्दी थी जिसमें मुख्य रूपसे गुजराती शब्दों और मुहावरोंका मेल होता जाता था और उच्चारणका ढंग भी गुजराती था। उन्होंने वहां कि संस्कृत भाषाकी दुहिता हमारी उत्तर भारतकी भाषाओं (हमारी उत्तर भारतीय भाषाएँ जो संस्कृतकी बेटियां हैं)। श्रोताओंकी संख्या कोई बहुत नहीं थी और पासमें ही कलकत्ता पुलिसकी एक टुकड़ी तैनात थी। किन्तु सभी लोग उनकी बातें बड़े ध्यान और रुचिके साथ सुन रहे थे।

बादमें मुझे मालूम हुआ कि रवीन्द्रनाथ टैगोरने अपना रहस्यात्मक नाटक 'डाकघर' देखनेके लिए महात्मा गांधीको आमन्त्रित किया है। इस नाटककी भूमिकामें शान्तिनिकेतनके छात्रोंके साथ-साथ स्वयं रवीन्द्रनाथ और उनके भांजा गगनेन्द्रनाथ, समरेन्द्रनाथ और अवनीन्द्रनाथने भाग लिया था। महात्माजी तथा कस्तूर बा भी इस नाटकसे बड़े प्रभावित हुए थे।

१९२१–२२ में हमने अपना राष्ट्रीय असहयोग आन्दोलन सत्याग्रह अहिंसा और राष्ट्रीय कायाकल्प तथा स्वतन्त्रताके लिए महात्माजी द्वारा प्रवर्तित अभियानकी नयी योजनाके सबधमें पढ़ा। यह सब कुछ हमारे राष्ट्रीय मंचपर प्रचलित पुरानी रीति-नीतिसे सर्वथा भिन्न था क्योंकि इससे पूर्व हम बंगाल महाराष्ट्र और पंजाबके अराजकतावादी एवं आतंकवादी स्वातन्त्र्य योद्धाओंके आत्मबलिदानसे ही परिचित थे। सत्याग्रह और अहिंसाके इस नये तरीकेकी अन्तिम सफलताके सम्बन्धमें कुछ शंकाएं भी उठायी जाती थीं, किन्तु अन्ततोगत्वा इस नये विचारने जड़ें जमा लीं। इस सम्बन्धमें कुछ लोगोंका मत था कि महात्मा गांधी और रवीन्द्रनाथ टैगोरमें मतभेद था। ब्रिटिश साम्राज्यवादके दमन और जनभावनाके उद्बोधनके लिए चरखेको एक अस्त्रके रूपमें प्रयोग किया जाना रवीन्द्रनाथको कुछ जंचा नहीं। किन्तु कविवर बाबू भाई द्विजेन्द्रनाथ टैगोर इसके पक्षमें सम्बन्धमें

पूर्णत विश्वस्त हो गये थे । फिर भी इस मतभेदसे दोनो पक्षोमे एक दूसरेके प्रति सम्मान या समादरकी भावनामे कोई कमी नही आयी । द्विजेन्द्रनाथके प्रति महात्माजीके हृदयमे अत्यधिक सम्मानकी भावना थी और वे स्वयं रवीन्द्रनाथके ही समान उन्हे अपना 'वडे दादा' (वडा भाई) ही मानते थे । जव महात्माजी हमेशाके लिए दक्षिण अफ्रीका छोडकर अपने देशवासियोके वीच काम करनेके लिए भारत आ गये तो रवीन्द्रनाथने शान्तिनिकेतनकी पूर्ण स्वतन्त्रता उन्हें प्रदान कर दी । शान्तिनिकेतनके वंगाली और गैरवंगाली दोनो प्रकारके छात्र अधिकाशत. महात्माजीके समर्थक थे । नन्दलाल वोस भी गाधीजीके कुछ विचारोके अनुयायी वन गये और उन्होने अपनी कलाके माध्यमसे उन्हे अभिव्यक्ति देनेका भी प्रयत्न किया ।

गाधीजीसे मिलनेका दूसरा अवसर मुझे १९३० के कुछ वाद मिला, जव वे वंगीय साहित्य-परिपद्मे पधारे थे । उस अवसरपर उन्होने स्वर्गीय नगेन्द्रनाथ वसुसे मिलनेकी इच्छा प्रकट की थी । श्री वसुने अपने एकाकी प्रयाससे ही 'वगला विश्वकोप'का प्रकाशन किया था । उनके इस महान् कार्यकी गाधीजीने जैसी हार्दिक सराहना की उससे प्रत्येक भारतीय भाषामे वगला विश्वकोश जैसे कोशोके प्रकाशनका आन्दोलन ही चल पडा । जव गाधीजी साहित्य-परिपद्मे पधारे, मै भी परिपद्की कार्य-कारिणी समितिके सदस्यके रूपमे उनका स्वागत करनेके लिए उपस्थित था । इस अवसरपर मैने हिन्दीमे जो थोडा भापण किया था, उसके कारण मुझसे महात्माजीके दुभापियेका काम करनेकी अपेक्षा की जाने लगी । उस समय महात्माजी कुर्ता और पगडी त्यागकर लगोटी, चद्दर और चप्पल धारण कर चुके थे । उनके वायें कंधेपर खद्दरका एक छोटा-सा झोला लटक रहा था और एक घडी कमरमे खोसे हुए काले धागेसे लटक रही थी । उनके आगमन पर हम सव लोगोका उनसे परिचय कराया गया । यह पूछे जाने पर कि वंगला समझ पाते है या नही, उन्होने वताया कि यद्यपि वे वंगला वोल नही सकते, किन्तु उसे अच्छी तरह समझ लेते है और रवीन्द्रनाथ तथा कुछ अन्य लोगोके गीत उन्हे वडे प्रिय है । अत. दुभापियेकी जरूरत नही रह गयी और मुझे अपने हिन्दीज्ञानकी परीक्षा देनेसे मुक्ति मिली । गाधीजी परिपद् भवनकी वीथियो और कमरोमे गये । हम लोग वरावर उनके साथ रहे और उनसे जनकल्याण, चरखा तथा खद्दरके महत्व आदि विपयोपर वार्ता होती रही । महात्माजी तपस्वी प्रवृत्तिके व्यक्ति थे । इतिहास, पुरातत्व, कला और प्राचीन वस्तुओमे उनकी उतनी रुचि नही थी । परिपद्के संग्रहालयमे रखी प्राचीन भारतीय मूर्तिकलाको कुछ अत्यन्त सुन्दर

कृतियाँ दिखायी जानेपर उन्होने उनपर केवल एक नजर भर डाल दी और आगे बढ गये। किन्तु हमने परिषदभवनमें अपने साहित्यकारो की स्मृति रक्षा का जो प्रयत्न किया था, उसमें उन्होने बडी दिलचस्पी दिखायी। एक बीथाम साहित्यकारो के चित्र टग हुए थे और उनकी कृतियाकी मुद्रित प्रतिलिपिया और उनसे सम्बद्ध अध्ययन-ग्रथोका सग्रह किया गया था। यह सब उन्हे पसद आया। पाण्डित्यपूर्ण चितनकी अपेक्षा व्यावहारिक वस्तुओमें उनकी विशेष रुचि थी। मूलस्रोतो और विकासके अध्ययनकी अपेक्षा, जिसमें शोधकर्ता विज्ञान उलझे रहते है उनकी रुचि ऐसे नैतिक या दार्शनिक सिद्धातमें अधिक थी जिससे हमारे जीवनको मार्गदर्शन मिल सके। अपनी यात्राके अन्तमें जब वे अतिथि-पुस्तिकाम हस्ताक्षर और हमारे प्रकाशनोकी प्रतियाँ स्वीकार करनेके बाद साहित्य-परिषदके अहातेसे बाहर हुए, उस समय भी हमें उनकी इसी प्रकृतिका परिचय मिला। बाहर एकत्र भीडमें अधिकाश लोग हाथ जोडे हुए थे और महात्मा गाधीकी जय" के नारे लगा रहे थे। उस भीडके समक्ष उन्होने बाजारू हिन्दी या हिन्दुस्तानीमें सक्षिप्त भाषण किया। उन्होने कहा आपमें ज्यादातर लोग कलकत्ताके मजदूर मालूम होते है। आप सीधे-सादे लोग है। आपको हमेशा सीधा-सादा नेक और ईमानदार बने रहनेकी कोशिश करनी चाहिए। इसके साथ ही आपको अपने गरीब भाई-बहनोकी मदद और अपने मुल्कके लिए स्वराज्य लानेकी कोशिश करनी चाहिए। आप सब लोग खद्दर जरूर पहनें। आप लोग अपने घरोसे काफी दूर कलकत्तामें रह रहे है। आपको ताडी और शराबका सेवन नही करना चाहिए। आपको पवित्र जीवन बिताना चाहिए और सबसे बढकर ईमानदार होना चाहिए। आप लोग बराबर रामनामका भजन किया करें। इसे कभी न भूलें। उनका भाषण अत्यन्त सरल था जिसने वहा एकत्र सीधे-सादे लोगोके दिलोको छू लिया। कुछकी आँखें तो आँसुओसे भर आयी थी। वे अब धीमी आवाजमे महात्मा गाधीकी जय के नारे लगा रहे थे।

मैं महात्मा गाधीके विनम्र व्यक्तित्व और मजदूरवर्गपर पडनेवाले उनके प्रभावसे अत्यधिक प्रभावित हुआ। उन्होने मजदूरोके अदर जो कुछ सर्वोत्तमका था उसे अपील की थी लडाई-झगडे और सघर्षकी प्रवृत्ति हटाकर शान्तिपूर्ण मैत्री और सहकारकी भावना उभाडी थी।

१९३५ में यूरोप जाते समय मुझे बम्बईके लिए गाडी पकडनी थी और वहाँ से जहाज द्वारा जेनेवा जाना था। मेरा ऐसा ख्याल है कि वर्धासे ही इसी गाडीमे महात्मा गाधी बम्बई जानेके लिए सवार हो गये थे। मेरे डिब्बे में एक ऐंग्लो

इण्डियन सज्जन थे जिन्होने कहा कि दूसरे ही स्टेशनपर गाडी रुकनेपर मै गाधीजीसे मिलूँगा। इतना कहते ही उन्होने अपनी कोट पहन ली। क्योकि स्वभावत: उन्होने ऐसा अनुभव किया कि गाधीजीसे मिलनेके लिए औपचारिक वेशभूपामे ही जाना चाहिए। मै धोती-कुर्तामे था। दूसरे स्टेशनपर मै उस तीसरे दर्जेके डिब्बेके पास गया जिसमे गाधीजी और उनके कुछ साथी बैठे थे। मैने देखा, महात्माजी खिडकीके पास न होकर एक बिचली बेंचके सहारे उठंगे हुए है। प्लेटफार्मपर गाडीकी खिडकियोके समानान्तर नारे लगाती हुई भीड एकत्र थी। गाधीजी थके दिखाई दे रहे थे, फिर भी उन्होने यन्त्रवत् उस भीड के समक्ष भाषण कर ही दिया। उनका एक सेवक भीड़ द्वारा प्रस्तुत पैसोका उपहार लेकर एक कपडेके थैलेमे डालता जा रहा था। मै किसी प्रकार डिब्बेमे चढ गया। गाडी छूटनेपर मुझे उनसे दो बाते करनेका अवसर मिला। मैने उन्हे कलकत्तामें साहित्य-परिषद्की उनकी यात्राकी याद दिलाते हुए कहा कि, "उस समय मै आपसे मिला था। इस समय मै ध्वनि-विज्ञान की द्वितीय अन्तर-राष्ट्रीय काग्रसमें शामिल होनेके लिए लन्दन जा रहा हूँ। वहाँ मै सम्मेलनके भारतीय-प्रभागकी अध्यक्षता करूँगा। लंदन जाते हुए रास्तेमे मै यूरोपका चक्कर लगाते हुए जाऊँगा और अन्य लोगोके अतिरिक्त वियेनामे सुभाप बोससे भी मिलूँगा। वे स्वास्थ्य-सुधारके लिए यूरोप गये हुए है।" इसपर गाधीजीने मुझसे हिन्दीमे कहा . "मुझे इसकी बडी खुशी है कि तुम सुभापसे मिलने जा रहे हो। उन्हे मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ निवेदित करना और कहना कि उनके बराबर बीमार रहने से काम न चलेगा। वे जल्दीसे तन्दुरुस्त हो जायँ, क्योकि मुल्कको उनकी जरूरत है।"

कुछ साल बाद जब गाधीजी फिर कलकत्ता गये, तो देशबधु चित्तरंजनदासकी ज्येष्ठ पुत्री श्रीमती अपर्णा रायने महात्माजी तथा उनके दलको अपने और ब्रज-माधुरी-संघके सदस्यो द्वारा किया जानेवाला बंगाली वैष्णव कीर्तन सुननेके लिए अपने निवासस्थानपर आमन्त्रित किया। श्रीमती रायको गाधीजी तथा कस्तूरबा बहुत अच्छी तरह जानते थे। उन्होने उक्त सघकी स्थापना बगाली कीर्तनके विकास और प्रचारके लिए ही की थी। उन्होने मुझे भी संघकी समितिका सदस्य बना रखा था। महात्माजीने खुशीसे निमन्त्रण स्वीकार कर लिया और इसके लिए एक दिन निर्धारित कर दिया गया। इसमे मुझे और मेरी पत्नीको भी उपस्थित होनेका आदेश मिला। कीर्तनके लिए कुल २०० व्यक्तियोके बैठनेकी ही व्यवस्था थी। श्रीमती अपर्णादेवीने स्त्रियोको सतर्क कर दिया था कि वे कीमती जेवर

आदि पहनकर न आयें। वे जानती थीं कि महात्माजी अवश्य ही हरिजन-कल्याण कार्यके लिए दान मांगेंगे और उस समय स्त्रियाँ बिना कुछ सोचे-समझे उनके शरीरपर जो भी गहने रहेंगे, उन्हें उतारकर दे देंगी और बादमें शायद पछतायेंगी। इस सिलसिलेमें श्रीमती अपर्णादेवीने हमें अपने सम्बन्धमें घटी एक छोटी-सी घटनाका विवरण भी सुना दिया। यह उस समयकी बात है जब उनके प्रथम पुत्र श्री सिद्धार्थशंकर राय अभी बच्चे थे। उनके पिता श्री देशबन्धु, जो अभी भी बैरिस्टरी कर रहे थे, अपने पहले नातीको सिरसे लेकर पैरतक पहनानेके लिए सोनेके कीमती गहनोंकी भेंट दी थी। इसी बीच महात्माजी श्री देशबन्धुसे मिलनेके लिए उनके निवासस्थानपर आये। उस समय बच्चेकी गर्वीली माँने उसे उसके नाना द्वारा दिये गये गहनोंसे पूरी तरह सजा दिया और आशीर्वाद प्राप्त करनेके लिए महात्माजीके पास ले आयीं। कस्तूरबा भी महात्माजीके साथ आयी थीं। महात्माजीने बच्चेको गोदमें ले लिया और उसे खिलाने लगे। इसके बाद बोले, "बच्चेको कैसे सजाना चाहिए, यह तुम्हें मालूम नहीं है।" इतना कहकर उन्होंने बच्चेको बिस्तरपर बिठाया और उसके सारे गहने उतारकर एक कपड़े पर रखने लगे। इसपर कस्तूरबाने प्रतिवाद करते हुए कहा, 'आप कितने निष्ठुर हैं जो इतने प्यारे बच्चेके सारे गहने उतार ले रहे हैं।' यह सुनते ही गांधीजी मुस्करा उठे और बोले, "तुम कुछ नहीं समझतीं। जरा देखो तो मैं क्या कर रहा हूँ।" इसके बाद जब बच्चेके शरीर पर कोई गहना नहीं रह गया तो उन्होंने उसे बिस्तरपर सुलाकर कहा, "देखो, अब यह बच्चा अपने प्राकृतिक सौंदर्यमें एक राजाकी तरह कितना ऐश्वर्यवान् लग रहा है।" इतना कहकर वे बोले, "मैं बच्चेकी ओरसे हरिजनोंके लिए उसके उपहारके रूपमें गहनोंकी यह राशि अपने साथ लिये जा रहा हूँ। अब मेहरबानी करके आप अपने गहनोंकी सन्दूक ला दीजिए।" श्रीमती अपर्णादेवीने हमें बताया कि यह सब देखकर वे रुआँसी हो गयी थीं किन्तु उन्होंने किसी तरह अपनेको रोका और महात्माजीके आदेशानुसार अपने गहनोंका सन्दूक लाकर उन्हें दे दिया। गांधीजीने बारीकीसे गहनोंको देखा फिर कुछ बड़े गहनोंको छाँट लिया जिनमेंसे कुछको उन्होंने अपने हाथों पर तौला था। इसके बाद उन्होंने इन गहनोंको ले लिया और बोले, 'देखो, तुम एक महात्माको क्या दान कर [illegible] रही हो, उसे समझ सकती हो। मैं इन गहनोंको हरिजन-आन्दोलनमें तुम्हारे नामसे [illegible] प्रयोग कर रहा हूँ। मुझसे वादा करो कि फिर तुम कभी अपनेको इस तरहके गहनोंसे नहीं सजाओगी।'

अन्तमें अपर्णादेवीने बताया कि इस त्यागके पश्चात् जीवनमें मुझे एक प्रकार

की मुक्ति, आनन्द और शान्तिका अनुभव हुआ किन्तु नही कहा जा सकता कि दूसरे लोगोको इस तरहका अनुभव कैसा लगेगा। इसीलिए मैने कीर्तनमे आनेवाली स्त्रियोको कीमती जेवर पहनकर न आनेके लिए सतर्क कर दिया है। अतएव वहाँ आयी हुई सभी स्त्रियाँ कम-से-कम केवल बहुत जरूरी गहने ही पहने हुई थी।

जब महात्माजीने वहाँ आकर पुरानी बंगलाके गीतोमे कीर्तन सुननेकी इच्छा प्रकट की तो मैने श्रीमती अपर्णादेवी तथा दूसरे लोगो द्वारा गानेके लिए छाँटे गये एक दर्जन गीतोको नागरीमे लिखकर उनका हिंदी अनुवाद कर देने और बीच-बीचमे गायको द्वारा प्रयुक्त अपूर्ण कडियोको समझाकर लिख देनेका सुझाव दिया। श्रीमती अपर्णादेवी इस विचारसे बडी प्रसन्न हुईं और मैने कुछ कष्ट उठाकर गानोकी एक ऐसी ही पाण्डुलिपि तैयार कर दी।

निर्धारित दिनपर महात्माजी और उनके दलके आनेपर श्रीमती अपर्णादेवी और उनके पति प्रसिद्ध बैरिस्टर श्री सुधीर रायने अतिथियोका स्वागत किया। महात्माजीकी एक झलक पा जानेके लिए उत्सुक भीडसे सारी सडक भर गयी थी जिससे मेजवानोको कुछ दिक्कत हुई। हम लोग किसी तरह गांधीजीको घरके अदर ले आये (घरके दरवाजे बंद कर देने पडे थे)। इसके बाद उन्हे गाना सुननेके लिए सीढियोसे ऊपर ले जाया गया। गाना तत्काल शुरू हो गया, किन्तु मुझे यह जानकर बडा ताज्जुब हुआ कि बंगला गानोकी जो पाण्डुलिपि मैने नागरीमे प्रस्तुत की थी, उसका कही पता न था। पूछताछ करनेपर महात्माजीके सचिवसे पता चला कि उस पाण्डुलिपिको मै भूलसे उन्हीके निवासस्थानपर छोड आया हूँ। श्री सुधीर रायने किसीको अपनी कारसे तत्काल वहाँ भेजा और कोई आध घण्टेमे वह पाण्डुलिपि आ गयी और महात्माजीको दे दी गयी। मै और मेरे अन्य मित्रो-को बडी प्रसन्नता हुई कि अब गाधीजी मूल गीतोको अनुवादके सहारे पूरी तरह समझ सकेगे और इस आयोजनका पूरा आनन्द उठा सकेंगे। गाधीजीने धैर्य पूर्वक बैठकर सभी गानोको सुना। आयोजन करीब दो घटे चलता रहा।

इसके बाद सकटकी घडी आयी। महात्माजीने हिन्दीमे कहा, "कीर्तन तो सुनाया, बहुत अच्छा! अब हरिजनके लिए कुछ दान तो दो।" हर ओरसे दस-पाँचके और बीच-बीचमे इससे भी कमके नोट गिरने लगे। इस तरह काफी धन एकत्र हो गया। इसके बाद दूसरा दौर शुरू हुआ। एक युवतीने अपने कानोकी दोनो ऐरने उतारकर गाधीजीके चरणोपर रख दिया और उन्होने धन्यवाद देकर उन्हे अपनी झोलीके हवाले किया। फिर क्या था, देखते-देखते ऐरनोके अनेक जोडे उनकी झोलीमे चले आये। इसके बाद एक स्त्रीने अपनी सोनेकी दोनो चूडियाँ दे

चल आग्रह और निष्ठाके कारण मेरी आपत्तिको कुछ वेसब्रीके साथ ठुकरा दिया और कहा : "मै जो कुछ कह रहा हूँ, उसका एक वार परीक्षण तो होने दीजिये। मेरा दृढ विश्वास है कि यह प्रयोग पूर्णत. व्यावहारिक होगा। आपको इस लक्ष्यकी पूर्तिके लिए केवल अपना सङ्कल्प दृढ करना है।"

महात्माजीके व्यक्तित्वके सवधमे मुझे जो अनुभव प्राप्त हुए है, उनके आधार-पर यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वे एक ऐसे महापुरुष थे जिनकी अपने और अपने विचारोमे दृढ आस्था थी। उन्हे हमारी जनताके प्रति सच्चा प्रेम था। वे चाहते थे कि हमारी जनता इस ससारमे उन्नति करते हुए आध्यात्मिक दृष्टिसे भी स्वस्थ रहे और अच्छा जीवनयापन करे। विभिन्न प्रकारके ऐसे वैज्ञानिक साधनोमे उनका कोई विश्वास न था, जिनसे केवल शारीरिक सुख-सुविधाएँ ही प्राप्त होती हो। वे इस वातके लिए चिन्तित थे कि मनुष्यके शरीर, मन और आत्माका एक साथ विकास कैसे सम्पन्न हो। महात्माजी इस तरहके व्यक्ति थे जो अनेक पीढियोमे केवल एक वार इस संसारमे पदार्पण करते है। भारतमे हमारा यह परम सौभाग्य था कि हमारे वीच मानवताका इतना वडा प्रेमी और एक ऐसी महती दृष्टिका व्यक्ति पैदा हुआ, जिसने हमे सन्मार्ग पर चलानेका प्रयत्न किया।

कमलादेवी चट्टोपाध्याय

गाधीजी और भारतीय समाजवादी

गाधीजीने अपने सार्वजनिक जीवनके प्रारम्भिक दिनोंसे ही सामाजिक न्यायके सिद्धान्तका समर्थन और अपने विचारोंके अनुसार उसे कार्यान्वित करनेका प्रयत्न किया था, चाहे वे अपनेको भले ही शास्त्रीय दृष्टिसे समाजवादी न कहते रहे हों। टॉलस्टॉय फार्मकी स्थापना करके और कुछ दृढ़ सिद्धान्तोंके आधारपर एक बस्तीका निर्माणकर, व्यक्तिगत सम्पत्तिका त्याग और सम्पत्ति पर सामुदायिक अधिकार तथा दायित्वके लिए प्रयत्न करते हुए उन्होंने किसानों और मजदूरोंके गणतन्त्रकी स्थापना करनेवाले आदि सदस्योंमें स्थान पाने का अपना दावा बहुत पहले ही प्रस्तुत कर दिया था। जो लोग वर्तमानके समाजवादी होनेका दावा करते हैं वे इस तथ्यको चुनौती दे सकते हैं। किन्तु ऐसे लोगोंको इस तथ्यकी ओर भी ध्यान देना होगा कि गाधीजीका आश्रम और उससे सम्बद्ध संस्थाएँ 'प्रत्येकसे उसकी सामर्थ्यके अनुसार प्रत्येकको उसकी आवश्यकताके अनुसार" के नियामक सिद्धान्तके आधारपर उनके मार्गदर्शनमें चलाया जाती थी। समाजवादसे इन संस्थाओंका एक मौलिक अन्तर इस बातमें दिखाई देता है कि ये अहिंसाके आधारपर स्थापित थीं। किसी ऐसे व्यक्तिने जिसे एक बार सेवाग्रामस्थित तालीमी-संघके सामूहिक रसोईघरमें भोजन करनेका अवसर मिला था, विनोदपूर्वक कहा था कि 'गाधीजी इस सामूहिक रसोईघरको रसोआ कहते हैं और यह शब्द बहुत ही साधारण मालूम होता है। कम्युनिस्ट इसीको 'कम्यून' कहेंगे और यह शब्द सुनकर प्रत्येक व्यक्ति प्रभावित हो जायगा।' गाधीजी मुख्यतः मानववादी थे। उनके लिए किसी वस्तुका सारतत्त्व और गुण ही सर्वाधिक महत्त्व रखता था। उनके लिए स्वयं किसी विशिष्ट शब्दावलीका कोई खास महत्त्व नहीं था यद्यपि वे अपने शब्दोंके प्रयोगमें अत्यन्त सावधान और सतर्क रहा करते थे। अपनी निराली शैलीमें वे कहते हैं

पूँजीपतियो द्वारा पूँजीके दुरुपयोगकी जानकारी होनेके वाद ही समाज-वादका जन्म हुआ हो, ऐसी कोई वात नही है। उन्ने वरावर यह तर्क दिया है कि न केवल समाजवाद, अपितु साम्यवाद भी ईशोपनिपद्के प्रथम श्लोकमे ही अभिव्यक्त है। सत्य तो यह है कि जव हृदय-परिवर्तन-के तरीके परसे कुछ सुधारकोका विश्वास उठ गया तो वह तरीका पैदा हो गया, जिसे हम वैज्ञानिक समाजवाद कहते हैं। मै भी उन्ही समस्याओ-के समाधानमे लगा हुआ हूँ, जो वैज्ञानिक समाजवादियोके सामने हैं। यह ठीक है कि मेरा तरीका विशुद्ध अहिंसाका तरीका है।

उनकी इस तरहकी सभी उक्तियोका लेखन सन् '३०के दौरान ही हो गया था। उन्होने इन सारी वातोका निष्कर्ष विलकुल घरेलू और सजीव ढगसे अपनी ऐसी अनूठी शैलीमे प्रस्तुत कर दिया है जिसका कोई अनुकरण नही कर सकता.

समाजवाद एक सुन्दर शव्द है। जहाँतक मै समझता हूँ समाजवादमे समाजके सभी सदस्य समान होते हैं—कोई नीचा और कोई ऊँचा नही होता। व्यक्तिके शरीरमे सिर इसलिए ऊँचा नही होता कि शरीरके ऊपरी सिरेपर होता है और पैरके तलुए इसलिए नीचे नही होते कि ये पृथ्वी-का स्पर्श करते रहते हैं। जैसे शरीरके सभी अग वरावर होते हैं उसी तरह समाजके सभी सदस्य भी वरावर होते है। यही समाजवाद है।

भारतीय स्वतन्त्रताके शव्दोमे इन उक्तियोको रूपान्तरित करते हुए उन्होने अत्यन्त चित्रोपम भाषामे कहा था. "मेरे सपनोके स्वराजका अर्थ होता है—एक ऐसे राज्यका निर्माण, जिसमे जीवनकी सभी आवश्यकताओका उपयोग सव लोग कर सकेंगे।" उन्होने आगे लिखा है.

मुझे इस वातमे जरा भी सन्देह नही है कि स्वराज तवतक पूर्ण स्वराज नही है जवतक इन सुख-सुविधाओ की गारण्टी उसके अन्तर्गत रहनेवाले सभी लोगोको न मिल जाय ''

नमक-सत्याग्रहके अवसरपर उन्होने शव्दोको विना तोडे-मरोडे न्यस्त-स्वार्थी वर्गका प्रत्यक्ष उल्लेख किया था

अहिंसाके रास्तेमे सवसे वडा रोडा हम लोगोके वीच स्वदेशी निहित-स्वार्थवालोके उस वर्गरूपमे वर्तमान है जो ब्रिटिश शासनके फलस्वरूप अस्तित्वमे आया है। ये निहित-स्वार्थ हमे धनिको, सट्टेवाजो, जमीदारो, मिलमालिको आदिके रूपमे मिलते है। इन लोगोको कभी यह भान ही नही होता कि ये जनताके खूनपर जिंदा हैं। जव उन्हे इसका ज्ञान

> भी होता है तो ये उन अंग्रेज प्रभुओंके समान ही क्रूर और निष्ठुर बन जाते हैं जिनके वे एजेण्ट और औजार हैं। काश ये समझ पाते कि इन्हें खूनसे सने अपने मुनाफे छोड़ देने चाहिए तो अहिंसाका संग्राम जीत लिया जाता ... किन्तु अहिंसाको इनके प्रति भी वैसे ही धीरज धारण करना है जैसा कि अंग्रेज प्रभुओंके प्रति। अहिंसक कार्यकर्ताका उद्देश्य सदैव हृदयपरिवर्तन ही होगा।

ये उक्तियाँ न्यूनाधिक रूपमें उनकी निष्ठाकी आधारशिला मानी जा सकती है। ये उनकी निष्ठाका सार तत्त्व है। यह ठीक है कि इस निष्ठाके विभिन्न पक्षोंका निर्वचन करते हुए उनके विचारोंमें परस्पर गहरी विभिन्नताएँ दिखाई देने लगती हैं। यह अनिवार्य था, क्योंकि उनका मस्तिष्क निरन्तर जीवन्त, गतिशील और चिन्तनशील मस्तिष्क था जिसमें अविरल रूपसे उफान उठा करते थे और क्रान्ति तथा मूल्याङ्कनकी अविराम प्रक्रियाएँ चला करती थीं। उनके चिन्तनमें स्थिति-शीलता और जड़ताको कोई स्थान ही नहीं था। यदि ऐसी बात हुई होती तो उन्होंने अपनी गतिशीलता खो दी होती। इस तथ्यकी ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए राममनोहर लोहिया कहते हैं

> सार्वजनिक जीवनमें आधी या उससे भी अधिक शताब्दीतक सम्बद्ध रहनेवाले महापुरुषके लिए ऐसे वक्तव्य दे देना नितान्त स्वाभाविक है जिनमें कभी-कभी परस्पर विरोध दिखाई दे। महात्मा गांधीमें एक विलक्षण अन्तर्दृष्टि थी फिर भी उनकी अनेक परस्पर विरोधी उक्तियाँ मिलती हैं। जातिप्रथाको धर्मका अंग माननेसे लेकर उन्होंने उसे पातक कहा। उनका पहले यह विश्वास था कि कुल मिलाकर ब्रिटिश साम्राज्य भलाई-का ही काम कर रहा है किन्तु अन्तमें वे उसे शैतानकी रचना बताने लगे। इसी तरह कभी व्यक्तिगत सम्पत्तिकी पवित्रतामें विश्वास रखते हुए भी वे आगे चलकर सम्पत्तिके बिना मुआवजा दिये जब्त किये जाने और भू-स्वामित्वके समापनकी माँग करने लगे।

यह ध्यान रखना चाहिए कि यद्यपि गांधीजीने प्रचुर परिमाणमें लिखा है किन्तु लेखन-कार्य उनके लिए कोई मानसिक व्यायाम नहीं था। वह केवल कर्मका ही आनुषंगिक रूप था। वस्तुतः उनका अपना जीवन उनकी अपनी जीवनविधि, किसी स्थिति या चुनौतीका सामना करनेके लिए प्रस्तुत उनका अपना कार्यक्रम ही उनकी सच्ची अभिव्यक्तियाँ थीं। उनकी रचनाओंका उद्देश्य मात्र बौद्धिक या मानसिक उद्दीपन नहीं था। वे जो कुछ करनेमें संलग्न थे उनकी रचनाएँ उन्हींसे

पूर्णत संश्लिष्ट होती थी। अतएव उस विशिष्ट संदर्भमे ही उन रचनाओका कोई समुचित परिप्रेक्ष्य वन पाता है और उनकी कोई सार्थकता हो सकती है। इसलिए गाधीजी हमारे किसी भी पुराने धर्मसुधारकोकी अपेक्षा कही अधिक विशिष्ट व्यक्ति थे क्योकि उनकी जिन्दगी निष्ठाकी एक खुली पुस्तक थी, जिसे कोई भी पढ सकता है। यही कारण है कि ससारके असंख्य लोगोने उनमे अपना प्रवक्ता पाया है, अपने कष्टोका निदान और समाधान पाया है, अपनी अभिलाषाओं और पुकारोका प्रत्युत्तर पाया है।

फिर भी अनेक दुर्दमनीय समस्याओंसे उद्भूत तूफानके कारण युवकोके ऐसे अनेक समुदाय उभरने लगे जिन्हे गाधीजीमे इन समस्याओका कोई तात्कालिक समाधान नजर नही आता था। इन आरंभिक समाजवादियोको प्रभावित करने-वाले प्रमुख तत्त्व थे मार्क्सवाद और रूसी क्रान्ति।

काग्रेसमे समाजवाद उसके अन्तर्गत समाजवादी दलके निर्माणके वाद आया हो, ऐसी कोई वात नही है। सन् '२०के वादसे ही धीरे-धीरे काग्रेसमे एक ऐसी प्रवृत्ति प्रभावकारी ढगसे परिलक्षित होने लगी थी। युवक-वर्ग और अपेक्षाकृत युवक-नेतृवर्ग मौलिक दृष्टिकोण और समाजवादी सिद्धांतोका प्रतिपादन करने लगे थे। यही प्रवृत्ति क्रमश परिपक्व होती गयी और इसी प्रवृत्तिके लोगोने अन्तत. काग्रेसके अन्दर एक समाजवादी दलका निर्माण कर डाला। 'ह्वाई सोशलिज्म' (समाजवाद क्यो ?) नामक अपनी पुस्तकमे जयप्रकाश नारायणने इसी विचार-णीय प्रश्नका उत्तर दिया है और उस युगके समाजवादियो तथा गाधीजीके वीच पैदा होनेवाले अनेक वडे मतभेदोपर प्रकाश डाला है। इन समाजवादियोका विश्वास था कि शासनतन्त्रपर कब्जा करना समाजवादी कार्यक्रमके कार्यान्वयनकी पहली शर्त है। इसलिए प्रत्यक्ष कारवाईके उद्देश्यसे राष्ट्रीय काग्रेसको प्रभावकारी क्रान्तिकारी साधन वनाना आवश्यक है। कही गहरेमे गहरे स्तरपर एक ऐसा विन्दु जरूर था, जहाँ अपने सारे व्यापक मतभेदोके वावजूद गांधीजी और काग्रेसी समाजवादी परस्पर मिल जाते थे। गाधीजी चाहे क्रान्तिके परम्परा-प्राप्त ढांचेमे भले ही ढले न रहे हो, किन्तु वे क्रान्तिकारी अवश्य थे। क्रान्तिकारियोके समान वे भी प्रत्यक्ष कारवाईमे निष्ठा रखते थे। अस्थायी मतभेदोके वावजूद परस्पर मेल खानेवाले विचार-विन्दुओका विकास होता ही गया। गाधीजीने कहा था :

> सबसे ऊपर काग्रेस मूलत. भारतके कोने-कोनेमे विखरी करोडो मूक और अर्धक्षुधित जनताका ही प्रतिनिधित्व करती है। ...यदि स्वार्थोका

> कोई वास्तविक सघष हो तो मुझे काग्रेसकी ओर से यह कहनेम कोई सकोच नही ह कि वह इन करोडा मूक लोगाके स्वार्थोके लिए सभी प्रकारके स्वार्थोका बलिदान कर देगी ।

फिर भी काग्रेसमें देशके विशाल जनवगम उत्साह पैदा करने लायक किसी सुस्पष्ट सामाजिक-आर्थिक कायक्रमका अभाव था । काग्रेस समाजवादी दलके प्रथम सम्मेलनके अध्यक्षके रूपमें आचाय नरेन्द्रदेवने स्पष्ट रूपम कहा था

> राष्ट्रीय सघष उत्पीडित वर्गोके सघषके साथ अधिकाधिक तादात्म्य स्थापित करता जा रहा ह । इस तथ्यको पूण मान्यता देकर ही हम भविष्यके लिए सही नीतियाँ निर्धारित कर सकते ह ।

काग्रेसके पुराने कडवे नेता काग्रेसके अन्दर इस विरोधी युवक-समूहके सघटनसे तो जिसे वे विघटनात्मक शक्ति मानते थे नाराज थे ही । वे मजदूरा और किसानाके सघटन बनानेकी जरूरत भी नही महसूस करते थे क्योकि उनके लिए वतमान सघटन ही पर्याप्त था । किन्तु इस सबधम गाधीजीकी प्रतिक्रिया उनसे बिल्कुल भिन्न थी । वे कहते थे कि म समाजवादियोका स्वागत करता हू किन्तु वगसघष जसे उनके कुछ कायक्रम मुझे पसन्द नही ह । यदि समाजवादी अहिंसाको पूरी तरह अगीकार कर ल तो किसी भी एसे सघषम काग्रेसजनाके शामिल होने पर मुझे कोई आपत्ति न होगी ।

वास्तविकता तो यह ह कि आर्थिक सघषको राजनीतिक स्तरतक उठा ले जानका गाधीजीका प्रयत्न सन १९१८ में करामें किसाना द्वारा छेड गये लगान बदी आदोलनके समयसे ही शुरू हो गया था । उन्हान घोषित किया था

> कराके रय्यत साम्राज्यके एक बहुत हा अहम सवालको हल कर रहे ह । यह सघष स्वशासनका सघष ह ।

इसके अतिरिक्त और भा दूसरे कटीले सवाल थे जसे गाधीजी द्वारा प्रतिपादित ट्रस्टीशिपका सिद्धान्त जिसकी समाजवादी सख्त आलोचना करते थे । उनके अनुसार हम या तो साफ-साफ बात मान लेनी चाहिए—या तो हम यह मान लें कि सम्पत्तिशालियोकी सम्पत्ति गलत तरीकेसे अर्जितकी गयी ह और उस जब्त करनेकी माँग करें या यह मान लें कि उनकी सम्पत्ति न्यायोचित रूपसे उन्हींकी ह और उसका वे जो चाहे कर सकते ह । सम्पत्तिशालियोके पास जो सम्पत्ति ह उसकी उत्पादन और वितरणके तरीकेम बुनियादी व्याख्या होनी चाहिए । उसपर भावुकतावाले तरीके धम और नैतिकता की दृष्टिसे विचार नहीं किया जा सकता । समाजवादियोके अनुसार इस मामलेको

फैसला हृदयपरिवर्तनके तरीकेसे नही किया जा सकता । यह एक सामाजिक और आर्थिक ढाँचा है, जिसे तोडकर उसके स्थानपर न्याय और समानताके आधारपर प्रतिष्ठित नया ढाँचा तैयार करना होगा । अतएव समस्याका समाज-वादी समाधान सामाजिक क्रातिमे निहित है । सिर्फ ऐसी ही क्रातिसे एक दूसरे प्रकारके मानवीय सवंध और व्यवहारके लिए उपर्युक्त पर्यावरणका निर्माण हो सकता है । यह केवल कुछ व्यक्तियो मे लाये जानेवाले सुधारका प्रश्न नही है ।

यद्यपि सभी लोग गाधीजीके ट्रस्टीशिपके सिद्धातसे पूर्णत परिचित है, फिर भी मै यहाँ इस सम्बन्धमे उनके कुछ उदाहरण देना चाहूगी । हमे इसपर शुरूसे विचार करना चाहिए । गाधीजी न केवल मानववादी थे, उनकी प्रवृत्ति तपस्या और संयमकी ओर भी थी । इसलिए समाजवादका तो यह लक्ष्य हो सकता है कि विज्ञान और प्रविधिके माध्यमसे उत्पादन वढाकर एक धनसम्पन्न समाजकी रचनाकी जाय और उत्पादन-वृद्धिके अनुपातसे आवश्यकताओमे भी विस्तार किया जाय। किन्तु गाधीजीका लक्ष्य सरल जीवन था । उनकी दृष्टिमे अपनी न्यूनातिन्यून आवश्यकताओसे अधिक कुछ भी रखना, चाहना चोरीके समान था । वे तो यहाँ-तक कहते थे . "जिस चीजको हमने मूलत चुराया नही है, किन्तु जो हमारे पास फालतू पडी हुई है और जिसकी हमे आवश्यकता नही है, उसे भी चोरीकी सम्पत्तिकी ही श्रेणीमे रखना चाहिए ।" स्पष्टत. अपनेको वैज्ञानिक समाजवादी कहनेवाले लोग सयम और त्यागके इस सिद्धातसे कही भी सहमत नही हो सकते थे । क्योकि जैसा कि गाधीजीने स्वय स्वीकार किया है, यदि इस सिद्धातका तर्कसगत विकास किया जाय तो यह अन्तमे हमे "सम्पूर्ण त्याग और शरीरका उपयोग मात्र सेवाके उद्देश्यसे करनेकी दिशा" मे ही ले जायगा ।

ट्रस्टीशिपके सिद्धातका निर्माण इसलिए किया गया था कि अहिसा सामन्त-वादी और पूंजीवादी समाजके साथ नही चल सकती । गाधीजीका कहना था कि सम्पत्तिके सग्रह और संरक्षणका अनिवार्य परिणाम हिसा होती है । वलात् अधिग्रहणको हटानेके लिए ट्रस्टीशिपकी कल्पनाकी गयी । किन्तु गाधीजीने इसे केवल एक पवित्र सकल्प मानकर ही छोड नही दिया । २५-५-१९४७ के 'हरिजन' मे उन्होने सख्त चेतावनी देते हुए लिखा था .

> यदि वर्तमान सम्पत्तिशाली वर्ग स्वेच्छासे अपनी सम्पत्तिका ट्रस्टी नही वन जाता तो वदलती हुई परिस्थितियोके कारण उन्हे सुधार करनेके लिए वाध्य होना होगा । यदि इसपर भी उसने अपना हठ नही छोडा तो इसका विकल्प सम्पूर्ण विनाश ही होगा । जमीदारो, पूंजीपतियो

> और राजाओंकी वर्तमान सत्ता तभीतक चल सकती है जबतक साधारण जनताको अपनी शक्तिका भान नहीं हो जाता। यदि जनता जमींदारी और पूंजीवादकी बुराईसे असहयोग करना शुरूकर दे तो ये दोनों निर्जीव होकर स्वयं मर जायेंगे

आज यह तक अधिकांशत गलत सिद्ध हो चुका है कि यदि किसी व्यक्तिके पास उसकी आवश्यकतासे अधिक सम्पत्ति है तो इसका यह अर्थ होता है कि उसने किसी दूसरे व्यक्तिको उसकी आवश्यकतासे वंचित कर रखा है। यह ठीक है कि अभी हमलोग विकासोन्मुख राष्ट्रोंमें संक्रमणकालीन अवस्थासे गुजर रहे हैं जहाँ उत्पादनका स्तर बहुत ही पिछड़ा हुआ है। फिर भी यह तो तय है कि मनुष्यके हाथमें अपरिसीम संपत्तिकी कुञ्जी है। उसे सचमुच कुबेरके खजानेका सुराग मिल गया है। आधुनिक विज्ञान और प्रविधि सारी दरिद्रता और अभावको समाप्तकर सकती है और मानव-जातिको प्रचुर सम्पत्ति एवं ऐश्वर्यका स्वामी बना सकती है। यदि अभी ऐसा कुछ हो नहीं रहा है तो इसके दूसरे कारण हैं। भौतिक दृष्टिसे अब यह बात असंभव नहीं रह गयी है। इस संसारको जो भौतिक सुखोंकी अभूतपूर्व योजना कार्यान्वित करने जा रहा है आत्मत्यागका उपदेश देना असंभव है। आज हमें एक ऐसी जीवन प्रणालीका साक्षात्कार हो चुका है जिसमें संसारकी सभी अच्छी वस्तुओंको हमें अत्यधिक प्रचुरतासे प्रदान करनेकी असीम क्षमता भरी पड़ी है। इसीलिए किसी व्यक्तिने कहा है कि आत्मत्यागका यह जीवन किसी मठमें ही संभव है।

समाजवादियोंके साथ गांधीजीका दूसरा मतभेद भारतीय रियासतों में चल रहे आन्दोलनके स्वरूपके संबंधमें था। समाजवादी चाहते थे कि इन रियासतोंकी जनता राष्ट्रीय स्वतन्त्रता-संग्राममें पूरी तरह एकजुट होकर सहयोग दे। किन्तु गांधीजीने इसके लिए कुछ सख्त सीमाएं बाँध रखी थीं। अप्रैल १९४० में जयप्रकाश नारायणने समाजवादी दलकी कल्पनामें स्वतन्त्र भारतकी एक तस्वीर पेश करते हुए रामगढ़ कांग्रेस-समितिके समक्ष एक प्रस्ताव पेश किया जिसमें राष्ट्रीय जीवनके सभी महत्त्वपूर्ण पहलुओंपर विचार किया गया था। गांधीजीने इसे स्वीकार और पसन्द किया और अपनी टिप्पणीके साथ इसे पूरी तरह जयप्रकाशजीके [illegible] 'हरिजन' में प्रकाशित किया। समाजवादी प्रस्तावके अनुसार भूमि पर जोतनेवाले किसानोंका स्वामित्व होना चाहिए और किसीके पास उसके परिवारके भरण-पोषणके लिए आवश्यकतासे अधिक जमीन नहीं होनी चाहिए। इसपर गांधीजीने टिप्पणी दिया था

> श्री जयप्रकाशके प्रस्ताव भयानक लग सकते है, किन्तु असलमे वे ऐसे नही है। किसी भी आदमीके पास सम्मानपूर्वक जीवन व्यतीत करनेके लिए अपेक्षित भूमिसे अधिक भूमि नही होनी चाहिए। इस तथ्यसे कौन इनकारकर सकता है कि जनताकी भीषण गरीवी इसी कारण है कि अधिकाशके पास कोई ऐसी जमीन ही नही है जिसे वे अपनी कह सके।

भारतीय रियासतोके संवंधमे प्रस्तुत विचारको गाधीजी स्वीकार नही कर सके। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रस्तावकी भावनासे वे सहमत थे, किन्तु उसमे दी गयी कार्यपद्धति उन्हे स्वीकार न थी। उन्हे आशा थी कि समय आनेपर राजा लोग अपनी निरंकुशताका समर्पणकर देगे। वे ऐसी स्थिति ला देनेकी जिम्मेदारी पूरी तरह भारतीय जनतापर डालना चाहते थे। निष्कर्षत उन्होने लिखा.

> राजालोग तथा और दूसरे लोग पूरी निष्ठासे अपने स्वार्थोका समर्पण कर देगे। लेकिन पहले हमलोग स्वय तो निष्ठावान् वने। पहले हमे राष्ट्रके प्रति निष्ठावान् वनना चाहिए। वर्तमानमे हमारी निष्ठा आधे दिलकी है, स्वतंत्रताका रास्ता कभी आधे दिलसे तय नही किया जा सकता।

द्वितीय विश्वयुद्ध विश्वराजनीति और मुख्यत. औपनिवेशिक देशोके लिए निर्णायक घटना थी। हमारे देशमे उस समय काग्रेसके अन्दर गंभीर मतभेद पैदा हो गया, जव गाधीजीके विरोधके वावजूद काग्रेसने युद्धप्रयासमे सशर्त सहयोग देनेका प्रस्ताव पास कर दिया। यह भी कहा जा सकता है कि आगे काग्रेस और गाधीजीके पारस्परिक सवधोमे आनेवाले परिवर्तनोकी एक लम्वी शृंखलाका सूत्रपात इसी घटनासे होता है। उनके वीच पुराने सवंध फिर कभी कायम न हो सके। इसके विपरीत वे शिथिल ही होते गये।

इसी तरह कागेसके मुकावले समाजवादी दलके कार्यक्रमोमे भी एक परिवर्तन आया। कमसे कम इससे उसके नेताओके पारस्परिक सवधमे एक नये परिवर्तनका आरभ हुआ। समाजवादी न केवल युद्धसम्वन्धी काग्रेसके प्रस्तावसे अलग हो गये, अपितु उन्होने व्रिटिश सरकारके विरुद्ध राष्ट्रव्यापी आन्दोलन छेडनेके लिए भी उसका आह्वान किया। वस्तुत काग्रेसके लखनऊ-अधिवेशनमे जो पहला युद्धविरोधी प्रस्ताव उपस्थित किया गया था, वह मूलत. समाजवादियोका ही था। आगे चलकर काग्रेसके दूसरे अधिवेशनमे इसी प्रस्तावकी पुष्टिकी गयी। रामगढ काग्रेसके प्रस्तावपर समाजवादी दलने अपना दृढ निश्चय व्यक्त किया और द्वितीय विश्वयुद्धको 'साम्राज्यवादी युद्ध' की सज्ञा दी। उसने यह भी कहा कि अव राष्ट्रीय सघर्ष अनिवार्य है। दलने काग्रेसको अन्तिम सग्रामके लिए प्रभावकारी

दास्त्र बनानेके उद्देश्यसे उसे दृढ़ बनानेका भी निश्चय किया। इसीलिए समाजवादी दलने उन दूसरे वामपक्षीय दलोंसे अपनेको अलग कर लिया, जो कांग्रेसपर दोषारोपण और उसमें नेतृत्वके परिवर्तनकी मांगकर रहे थे। इसके विपरीत समाजवादियोंने एकता और नेतृत्व खासकर गांधीजीके हाथोंको मजबूत करनेकी आवश्यकतापर बल दिया और कहा कि इस समय गांधीवाद बनाम समाजवादका सवाल उठाना अप्रासङ्गिक है। उस मौलिक समाजवादी सिद्धान्तको बहरहाल ताकपर रख दिया गया कि जनसाधारणके सहयोगके आधारपर कांग्रेसमें संघटनात्मक एवं कार्यक्रममूलक परिवर्तन लाये बिना उस संघर्षका उचित माध्यम नहीं बनाया जा सकता। समाजवादियोंने इस तथ्यको स्वीकार कर लिया कि गांधीजीके अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति राष्ट्रीय संघर्षका नेतृत्व नहीं कर सकता और वही इस संघर्षकी टेकनिक तथा वस्तुगत रूपका निर्धारणकर सकते हैं। उन्हें इस बातका दृढ़ विश्वास था कि गांधीजी युद्ध और राष्ट्रीय स्वतन्त्रताके सवालपर कोई समझौता नहीं करेंगे। समाजवादी सही रास्तेपर थे। जिस समय कांग्रेस भी डाँवाडोल हो रही थी समाजवादियोंने गांधीजीका दृढ़तासे समर्थन किया। क्रिप्स मिशनकी विफलताके बाद कुछ हफ्तोंमें ही गांधीजीने जनताको 'भारत छोड़ो' नारेसे आन्दोलित करना शुरू कर दिया। इस आन्दोलनके साथ समाजवादी दलका पुन तादात्म्य स्थापित हो जानेपर कम्युनिस्ट पार्टीकी नयी भूमिका बिल्कुल साफ हो गया। कम्युनिस्ट पार्टी इस राष्ट्रीय संग्रामके विरुद्ध कार्य करनेमें संलग्न हो गयी और ब्रिटिश शासकोंने उस युद्धके समयसे अपना दोस्त मानकर वैधानिक मान्यता प्रदान कर दी।

भारत छोड़ो आन्दोलनके बादके समयमें भारतीय राजनीति तथा कांग्रेस और गांधीजीके पारस्परिक सम्बन्धमें एक नया मोड़ आया। युद्धके समय जो दरार पड़ना शुरू हो गया था वह अब और चौड़ा हो गया। भारतके सम्बन्धमें ब्रिटेनने जो प्रस्ताव किये वे गांधीजीको मान्य न थे। आगे चलकर देशके विभाजनके प्रश्नपर गांधीजीने कड़ा रुख अख्तियार किया था किन्तु कांग्रेसने इस सम्बन्धमें उनके विचारोंकी उपेक्षा कर दी।

एक बार फिर कांग्रेसी समाजवादी और गांधीजी एक दूसरेके बहुत पास आ गये। समाजवादियोंने गांधीजीको इसके लिए राजी करनेका प्रयत्न किया कि वे दलकी अपेक्षा और आत्मसम्मानकी अपनी शर्तोंपर आजादी करनेके लिए एक बार पुन नये जनसंघर्षका नेतृत्व करें। उस समय स्पष्टत गांधीजीको बड़ा मानसिक क्लेश हो रहा था। जैसा कि उन्होंने स्वयं स्वीकार किया था, उन्हें

चारो ओर अंधकार ही अधकार दिखाई दे रहा था। उनके जीवनव्यापी कार्यका जैसा दु'खद अन्त हुआ था, उसे देखते हुए गाधीजीकी मनोव्यथाको कोई भी समझ सकता है। इस स्थितिमे कुछ महत्त्वपूर्ण समाजवादी गाधीजीके इतने निकट आ गये जितने वे पहले कभी नही आये थे। गाधीजी और इन समाजवादियोमे वडे घनिष्ठ सम्वन्धका विकास हो रहा था। वे परस्पर अनेक विकल्पोपर गम्भीर विचार-विमर्श कर रहे थे। किन्तु वस्तुत विकल्प तो एक ही था जनसघर्षका। समाजवादियोको दृढ विश्वास था कि इसमे यदि काग्रेसने गाधीजीका साथ छोड भी दिया तो भी जनता अवश्य ही उनके साथ होगी। फिर भी गाधीजीने दूसरा ही निश्चय किया। ऐसा उन्होने क्यो किया, कोई भी नही वता सकता। इतना ही नही, उनकी यह इच्छा भी थी कि काग्रेस ही सयुक्त मोर्चेके रूपमे सामने आये। इसलिए उन्होने समाजवादी नेताओको समझा-वुझाकर व्रिटिश प्रस्ताव-सम्वन्धी काग्रेस-प्रस्तावका विरोध न करनेके लिए राजी कर लिया। गाधीजीकी भावनाओ और इच्छाओके प्रति समाजवादी नेता इतने संवेदनशील थे कि उन्होने केवल यही किया कि काग्रेसके प्रस्तावपर वोट देनेसे वे अलग रहे। इस सम्वन्धमे आगे चलकर एक नये युगका आरंभ होता दिखाई देता है। यद्यपि इसका सूत्रपात वहुत कुछ निजी हैसियतसे हुआ था, किन्तु दूसरे क्षेत्रोमे भी इसके प्रभाव परिलक्षित होने लगे।

'भारत छोडो'-आन्दोलनके वादके समयमे समाजवादी दल एक नये मोडपर आ गया। दलके नये सिद्धान्तमे क्रान्तिकारी पथके अनुसरण करनेकी घोपणा तो की ही गयी थी, उसमे यह भी घोपित किया गया कि जहाँ लोकतंत्र और नागरिक अधिकार प्राप्त हो, समाजवादकी ओर सक्रमण शान्तिपूर्ण तरीकेसे लोकतान्त्रिक साधनो द्वारा ही होना चाहिए। इन साधनोमे सविनय प्रतिरोध, सत्याग्रह और हडताले भी शामिल है। यह सिद्धान्त निश्चित रूपसे पूर्वघोपित मार्क्सवादी समाजवादसे भिन्न था, यद्यपि दलके आधारके रूपमे मार्क्सवाद पर अव भी जोर दिया जाता रहा। इसका कारण सभवत. यह था कि दलके कार्यकर्ता और सामान्य नेतृवर्ग मार्क्सवादसे विरहित समाजवादकी कल्पना करनेमे असमर्थ थे। इसके वाद भारतीय समाजवादियो और पश्चिमी लोकतान्त्रिक देशोके समाजवादियोके साथ कोई तादात्म्य स्थापित न हो सका, क्योकि वे औपनिवेशिक सघर्षका सम्पूर्ण हृदयसे समर्थन करनेमे विफल रहे और कुछ मामलोमे उनका दृष्टिकोण वहुत सदिग्ध रहा। युद्धके समय भारतीय कम्युनिस्टोका जो रेकार्ड रहा है, उसे देखते हुए देशमे कम्युनिस्टोकी साख गिर गयी। देशमे स्वयं समाजवादी चिन्तनमे नया ऊहापोह

शस्त्र बनानेके उद्देश्यसे उसे दृढ़ बनानेका भी निश्चय किया। इसलिए समाजवादी दलने उन दूसरे वामपक्षीय दलोंसे अपनेको अलग कर लिया, जो कांग्रेसपर दोषारोपण और उसमें नत वक्र परिवर्तनकी माँग कर रहे थे। इसके विपरीत समाजवादियोंने एकता और सतर्कता रखकर गांधीजीके हाथोंको मजबूत करनेकी आवश्यकतापर बल दिया और कहा कि इस समय गांधीवाद बनाम समाजवादका सवाल उठाना अप्रासंगिक है। उस मौलिक समाजवादी सिद्धान्तको बहरहाल ताकपर रख दिया गया कि जनसाधारणके सहयोगके आधारपर कांग्रेसमें संघटनात्मक एवं कार्यक्रममूलक परिवर्तन लाये बिना उसे संघर्षका उचित माध्यम नहीं बनाया जा सकता। समाजवादियोंने इस तथ्यको स्वीकार कर लिया कि गांधीजीके अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति राष्ट्रीय संघर्षका नेतृत्व नहीं कर सकता और वही इस संघर्षकी टेकनिक तथा वस्तुगत रूपका निर्धारण कर सकते हैं। उन्हें इस बातका दृढ़ विश्वास था कि गांधीजी युद्ध और राष्ट्रीय स्वतन्त्रताके सवालपर कोई समझौता नहीं करेंगे। समाजवादी सही रास्तेपर थे। जिस समय कांग्रेस भी डाँवाडोल हो रही थी समाजवादियोंने गांधीजीका दृढ़तासे समर्थन किया। क्रिप्स मिशनकी विफलताके बाद कुछ हफ्तोंमें ही गांधीजीने जनताको 'भारत छोड़ो' नारेसे आन्दोलित करना शुरू कर दिया। इस आन्दोलनसे साथ समाजवादी दलका पूर्ण तादात्म्य स्थापित हो जानेपर कम्युनिस्ट पार्टीकी नयी भूमिका बिलकुल साफ हो गया। कम्युनिस्ट पार्टी इस राष्ट्रीय संग्रामके विरुद्ध काम करनेमें संलग्न हो गयी और ब्रिटिश शासकोंने उसे युद्धके समयका अपना दोस्त मानकर वैधानिक मान्यता प्रदान कर दी।

भारत छोड़ो आन्दोलनके बादके समयमें भारतीय राजनीति तथा कांग्रेस और गांधीजीके पारस्परिक सम्बन्धोंमें एक नया मोड़ आया। युद्धके समय जो दरार पड़नी शुरू हो गयी थी वह अब और चौड़ी हो गयी। भारतके सम्बन्धमें ब्रिटेनने जो प्रस्ताव किये वे गांधीजीको मान्य न थे। आगे चलकर देशके विभाजनके प्रश्नपर गांधीजीने कड़ा रुख अख्तियार किया था किन्तु कांग्रेसने इस सम्बन्धमें उनके विचारोंकी उपेक्षा कर दी।

एक बार फिर कांग्रेसी समाजवादी और गांधीजी एक दूसरेके बहुत पास आ गये। समाजवादियोंने गांधीजीको इसके लिए राजी करनेका प्रयत्न किया कि वे देशकी अखण्डता और आत्मसम्मानकी अपनी शर्तोंपर आजाद करनेके लिए एक बार पुनः नये जनसंघर्षका नेतृत्व करें। उस समय स्पष्टतः गांधीजीको बड़ी मानसिक पीड़ा हो रही थी। जैसा कि उन्होंने स्वयं स्वीकार किया था, उन्हें

चारो ओर अंधकार ही अंधकार दिखाई दे रहा था। उनके जीवनव्यापी कार्यका जैसा दु'खद अन्त हुआ था, उसे देखते हुए गाधीजीकी मनोव्यथाको कोई भी समझ सकता है। इस स्थितिमे कुछ महत्त्वपूर्ण समाजवादी गाधीजीके इतने निकट आ गये जितने वे पहले कभी नही आये थे। गाधीजी और इन समाजवादियोमे वडे घनिष्ठ सम्वन्धका विकास हो रहा था। वे परस्पर अनेक विकल्पोपर गम्भीर विचार-विमर्श कर रहे थे। किन्तु वस्तुत विकल्प तो एक ही था जनसंघर्षका। समाजवादियोको दृढ विश्वास था कि इसमे यदि काग्रेसने गाधीजीका साथ छोड भी दिया तो भी जनता अवश्य ही उनके साथ होगी। फिर भी गाधीजीने दूसरा ही निश्चय किया। ऐसा उन्होने क्यो किया, कोई भी नही वता सकता। इतना ही नही, उनकी यह इच्छा भी थी कि काग्रेस ही संयुक्त मोर्चेके रूपमे सामने आये। इसलिए उन्होने समाजवादी नेताओको समझा-वुझाकर ब्रिटिश प्रस्ताव-सम्वन्धी काग्रेस-प्रस्तावका विरोध न करनेके लिए राजी कर लिया। गाधीजीकी भावनाओ और इच्छाओके प्रति समाजवादी नेता इतने संवेदनशील थे कि उन्होने केवल यही किया कि काग्रेसके प्रस्तावपर वोट देनेसे वे अलग रहे। इस सम्वन्धमे आगे चलकर एक नये युगका आरभ होता दिखाई देता है। यद्यपि इसका सूत्रपात वहुत कुछ निजी हैसियतसे हुआ था, किन्तु दूसरे क्षेत्रोमे भी इसके प्रभाव परिलक्षित होने लगे।

'भारत छोडो'-आन्दोलनके वादके समयमे समाजवादी दल एक नये मोडपर आ गया। दलके नये सिद्धान्तमे क्रान्तिकारी पथके अनुसरण करनेकी घोषणा तो की ही गयी थी, उसमे यह भी घोषित किया गया कि जहाँ लोकतंत्र और नागरिक अधिकार प्राप्त हो, समाजवादकी ओर सक्रमण शान्तिपूर्ण तरीकेसे लोकतान्त्रिक साधनो द्वारा ही होना चाहिए। इन साधनोमे सविनय प्रतिरोध, सत्याग्रह और हडताले भी शामिल है। यह सिद्धान्त निश्चित रूपसे पूर्वघोषित मार्क्सवादी समाजवादसे भिन्न था, यद्यपि दलके आधारके रूपमे मार्क्सवाद पर अब भी जोर दिया जाता रहा। इसका कारण सभवत. यह था कि दलके कार्यकर्ता और सामान्य नेतृवर्ग मार्क्सवादसे विरहित समाजवादकी कल्पना करनेमे असमर्थ थे। इसके वाद भारतीय समाजवादियो और पश्चिमी लोकतान्त्रिक देशोके समाजवादियोके साथ कोई तादात्म्य स्थापित न हो सका, क्योकि वे औपनिवेशिक सघर्षका सम्पूर्ण हृदयसे समर्थन करनेमे विफल रहे और कुछ मामलोमे उनका दृष्टिकोण वहुत सदिग्ध रहा। युद्धके समय भारतीय कम्युनिस्टोका जो रेकार्ड रहा है, उसे देखते हुए देशमे कम्युनिस्टोकी साख गिर गयी। देशमे स्वयं समाजवादी चिन्तनमे नया ऊहापोह

पैदा हो गया और समाजवादी दलमें भी पुनर्विचारकी प्रक्रिया शुरू हो गयी। फिर भी इसका कोई ठोस लक्षण प्रकट होनेमें कुछ समय लग गया।

गांधीजीकी शहादतने उनसे सम्बन्धित भावनाओंकी ग्रन्थियोंको उत्तेजित कर दिया। गांधीजी द्वारा अधूरे छोड़े गये कामोंको पूरा करने और उनकी विरासतको आगे बढ़ानेकी बाध्यता अधिकाधिक स्पष्ट रूपसे महसूस की जाने लगी। उनकी शहादतसे देशको जो आघात लगा था, उससे ऐसा लगा कि बहुत सारी चीजें अपने उचित परिप्रेक्ष्यमें आने लगी है। उसके बादसे गांधीजीकी भव्य मूर्ति भविष्यके लिए जो संदेश देती प्रतीत हो रही थी, उसे सुनना और कार्यान्वित करना अत्यन्त आवश्यक लगने लगा। १९४२ के संघर्षके बाद समाजवादी दलमें नये तत्वोंका बड़े पैमानेपर प्रवेश हुआ है। इनके पीछे कोई राजनीतिक पृष्ठभूमि नहीं थी। खासकर उन्हें कांग्रेस और गांधीजीके नेतृत्वकी कोई जानकारी नहीं थी। वे उस स्वातन्त्र्यसंघर्षके दौरान आये थे जिसने भारतीय युवकोंकी कल्पनाको उद्दीप्त कर दिया था। उनमें उत्साह और जोश-खरोश तो काफी था, किन्तु राजनीतिक या समाजवादी अनुशासन नहीं था, जिससे वे समय-समयपर असंभव मुद्दे और अव्यावहारिक मांग प्रस्तुत कर देते, जिसके फलस्वरूप प्रायः दलके अन्दर उलझनें पैदा हो जाती थीं।

धीरे धीरे समाजवादी नेतृत्व विघटित होता दिखाई देने लगा। दो महान ओजस्वी नेता यूसुफ मेहरअली और आचार्य नरेन्द्रदेव दिवंगत हो गये। जयप्रकाश नारायणका यह विश्वास धीरे धीरे अत्यन्त दृढ़ होता गया कि वर्तमान गतिहीन दलीय सरकारें भारतीय समस्याओंका समाधान नहीं कर सकतीं। अतएव वे भावे तथा गांधीजीके अन्य निकट सहकर्मियोंके साथ सर्वोदय और भूदानके गांधीवादी रास्तेकी ओर मुड़ गये। कुछ लोग राजनीतिसे संन्यास लेकर ऐसे कामोंमें लग गये जिन्हें गांधीजी रचनात्मक कहा करते थे। कुछ लोग समाजवाद और गांधीवादपर नये सिरेसे विचार करते हुए लेखन-कार्यमें संलग्न हो गये। डाक्टर लोहियाने इस सम्बन्धमें बहुत लिखा है। उन्होंने मार्क्सवादकी अपूर्णता और असंगतियोंपर भी प्रचुर साहित्य प्रणयन किया है।

राजनीतिक कलेवरसे मुक्त होकर गांधीजीकी अनेक उक्तियां और विश्वास पुनः परीक्षण द्वारा एक नये प्रकाशमें प्रकट होने लगते हैं।

गांधीजी समृद्धिकी अपेक्षा सरलता और सादगीपर अधिक जोर देते थे। हम पहले इसीपर विचार करें। आत्मत्याग और निर्ममता ही सुखकी कुंजी है, यह एक बहुत ही प्राचीन भारतीय अवधारणा है। आज हमें यह बात कुछ अजीब-सी

लगती है, किन्तु इसमे ऐसी कोई अजीब बात है नही। यह ठीक है कि विज्ञान और प्रविधि द्वारा अभूतपूर्व समृद्धिकी सृष्टि हुई है, किन्तु इससे सुख नही मिला है। हिप्पीवाद मानवजातिकी उस नयी क्षुधाका एक लक्षणमात्र है जिसकी परि-तृप्ति धनसे नही हो सकती। यहाँ हम एक अजीब दशा देख रहे है कि एक वडा युवक-समुदाय उस समृद्धिको लात मारकर भाग रहा है जो उसकी अपनी है। स्पष्टत. हमे जीवनके उच्चतर प्रतिमानोको प्राप्त करनेका लक्ष्य न वनाकर एक साधारण प्रतिमानको ही अपना लक्ष्य वनाना चाहिए जिससे जीवनकी सामान्य आवश्यकताएँ पूरी हो जायँ और उस अभाव एव दरिद्रताका अन्त हो जाय जो मानवको अधम वना देती है, उस दासताको नष्ट कर दिया जाय जो उसके नैतिक अध.पतनका कारण वनी हुई है। सभवत हमे एक औसत प्रतिमानकी खोज करनी है। जैसा कि डाक्टर लोहियाने सक्षेपमे प्रभावकारी ढगसे कहा है : "शिव और सुन्दरके सम्मिलनका दूसरा प्रयत्न होना चाहिए। पहला प्रयत्न वुद्ध कर चुके थे।" उन्होने अपनी इस उक्तिकी व्याख्यामे एक अमेरिकी युवक छात्र द्वारा प्रस्तुत यह चित्रोपम वर्णन उपस्थित किया है : "यदि हमने एक वार भौतिकवादी साँडको सीगोसे पकड़ लिया तो फिर हम उसे कभी छोड़ कैसे सकेगे? यदि हमे पहियेकी गतिको वरावर तेज ही करते जाना है तो हम विश्राम कैसे कर सकेगे।" गाधीजी ठीक ही कहते है "जिस मनुष्यके पास पैसा नही होता वह लखपती हो जाना चाहता है। जो लखपती है वह करोडपती हो जाना चाहता है। इस सिलसिलेका कोई अन्त नही है। "

पश्चिमका समृद्ध व्यक्ति आन्तरिक दृष्टिसे शान्ति नही पा रहा है। उसे ऐसा महसूस होता है जैसे वह स्वय अपने घरमे ही निर्वासित है। समाजवादियोको सवोधित करते हुए डाक्टर लोहियाने कहा था . "समाजवादके लवे सफरको इसे समाप्त करना होगा। उसे समाजवादीकी आत्मज्ञानहीनताको भी दूर करना होगा। समाजवाद आजके इन मनुष्योसे नयी दिशाकी अपेक्षा करता है।" समाजवादियो-ने गाधीजीके साथ जैसा संवध उनके निधनके समय वनाया था, यदि वैसा ही सवध उन्होने वहुत पहले ही वना लिया होता या जैसा कि गाधीजी चाहते थे, यदि वे स्वय १२५ वर्षो तक जीवित रह पाते तो संभवत उन्होने हमे यह कार्य पूरा कर लेनेमे मदद दी होती।

गाधीजीकी ट्रस्टीशिप तथा हृदय-परिवर्तनकी अवधारणाएँ परस्पर अविच्छेद्य है। वस्तुत उनका सम्पूर्ण दर्शन मनुष्यकी स्वाभाविक अच्छाईमे वद्धमूल विश्वास-पर आधारित है। जव किसी मामलेमे कोई किसीका हृदयपरिवर्तन नही कर पाता

तो गांधीजी ऐसा नहीं मानते कि इससे उनका यह विश्वास गलत हो गया। बल्कि वे यही कहते हैं कि स्वयं उस व्यक्तिमें ऐसी कमी थी जिससे वह दूसरेका हृदय परिवर्तन नहीं कर सका। संभवत इस विचारकी सत्यताको प्रमाणित करनेके लिए विभिन्न परिस्थितियोंमें अनेक प्रकारके लोगोंके साथ गांधीजीके हृदय-परिवर्तन की टेक्नीकको जाने कितनी बार प्रयोग करना पड़ेगा। फिर भी हमारा अपना अनुभव तो इतना है ही कि इस टेक्नीकके प्रयोगमें करोड़ों ऐसे लोगोंमें जिनमें सदियोंसे भय आलस्य क्षुद्रता आदिकी युगानुगत प्रवृत्तियोंने गहराईसे जड़ें जमा ली थी, एक व्यापक परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगा और वे साहस अनुशासन तथा उदारताका प्रदर्शन करने लगे। एक पुराने समाजवादीके अनुसार इससे गांधीजीकी यही मान्यता प्रमाणित होती है कि कुछ विशेष परिस्थितियोंमें चाहे आदमी निश्चय ही बुरा हो जाता हो फिर भी सामान्यत वह अच्छा ही व्यवहार करता है। भारतीय प्रयोगकी सफलताके मुकाबले रंगभेदके विरुद्ध दक्षिणियोंके संघर्षकी विफलता निराशाजनक हो सकती है। किन्तु वस्तुत इस टेक्नीकके प्रभावकारी प्रयोग बहुत कम हो पाते हैं और उनमें बड़ा फर्क पड़ जाता है। यदि हृदय परिवर्तनके प्रति निष्ठावान व्यक्तियोंकी संख्या काफी बढ़ जाय और इसके प्रयोगका क्षेत्र काफी व्यापक बना दिया जाय तो इसका और अच्छा परीक्षण हो सकता है। हर हालतमें भावुक सामाजिक भ्रान्तियोंसे मुक्त रहते हुए भी मनुष्य-समाजको काले गोरे या अच्छे-बुरे वर्गोंमें विभाजित कर देना ठीक न होगा। जो चिन्तन इस वर्गीकरणका समर्थन करता है वह अन्तत ऐसा निर्णय भी कर डालेगा कि चूंकि राजतन्त्र बुरा है इसलिए राजाका सिर काट डालना चाहिए और चूंकि सर्वहारा वर्ग शापित और पददलित है अत वही सही है और उसीको सिरमाथे ले लेना चाहिए। गांधीजी अन्तत यही करना चाहते थे कि सत्ताका केन्द्रीकरण समाप्त हो जाय और उसे पूरे समाजके हवाले कर दिया जाय। उनका कहना था कि उन सारे संघर्षोंमें प्रेम और अहिंसाके ही शस्त्रोंका प्रयोग किया जाय भय और घृणाके शस्त्रोंका नहीं। ऐसे संघर्षोंका परिणाम भिन्न भिन्न हो सकता है। यह भी हो सकता है कि इस संघर्षमें हमें पर्याप्त आँकड़े सुलभ न हों। संभव है हमारे संघर्षके पीछे कभी-कभी निष्ठाके स्थानपर एक नकारात्मक मानसिक प्रतिरोधकी भावना हो। यह भी हो सकता है कि इस टेक्नीकको स्वीकार करनेके बाद हम तात्कालिक सफलता न मिले किन्तु इसमें हमारी थोड़ी-सी निष्ठा ही बुझती हुई अग्निसे छिटककर पड़नेवाली एक चिनगारीके समान हमें लोगोंकी प्रेरणाका स्रोत बन जाय और बाकी लोग यह देखनेके लिए कि इसका एक प्रभावकारी अस्त्रके

रूपमे विकास किया जा सकता है या नही, आगे बढने लगे।

गाधीजी इस मानेमें अद्वितीय थे कि वे नितान्त स्वाभाविक और अचेतन भावसे ही सामाजिक और राजनीतिक कार्योंके साथ-ही-साथ आत्मा और अन्त करण-के विपयोको भी व्यवहारमे बराबर स्थान देते रहे। समाजवादके ऐसे सिद्धान्तो-ने अपने अनुयायियोके लिए सामाजिक व्यवहारकी कुछ सहिताएँ निर्धारित की है। किन्तु ये अधिक-से-अधिक सामूहिक व्यवहारतक सीमित है, जब कि गाधीजीने मूसाकी तरह अपने अनुयायियोंके लिए व्यक्तिश अपने स्वयं तथा अपने साथी समाजके लिए भी नैतिक आचरणोके पूरे धर्मादेश दे डाले है।

गाधीजी यह मानते थे कि समष्टि व्यष्टियोसे बना हुआ है। कोई भी प्रणाली समष्टिके लिए हो सकती है, किन्तु उसे यह ध्यान रखना चाहिए कि व्यष्टि ही समष्टि का मौलिक घटक है। समाजकी रचना करनेवाले प्रत्येक व्यक्तिके गुण ही सर्वाधिक मूल्य रखते है। व्यक्तिकी विशिष्ट सत्ता बराबर कायम रहनी चाहिए। समूहमे उसका खो जाना कभी भी वाछनीय नही है। दुर्धर्प समूहमे व्यक्तिको मिटा देनेकी प्रवृत्ति बराबर बनी रहती है। गाधीजीने समूहके इस दबावसे व्यक्तिका उद्धार करनेके प्रयत्नसे ही सत्याग्रह जैसे अमूल्य शस्त्रका विकास किया और उसे मानवताके लिए विरासतके रूपमे प्रदान किया। सत्याग्रह या सविनय प्रतिरोध द्वारा कोई भी पीडित व्यक्ति निरंकुशता और उत्पीडनके प्रतिरोधके लिए उठ खडा हो सकता है।

गाधीजीके विचारो एव उपदेशोका अध्ययन नये सिरेसे शुरू होना चाहिए और उनमेसे प्रत्येकका मूल्याङ्कन उसकी मौलिक विशेपताओके आधारपर किया जाना चाहिए। इसके लिए हमे बँधी-बँधाई प्रचलित शब्दावली और परम्परागत परिभापाओका मोह त्याग देना होगा। ऐसा मोह उन्हीको होता है जो स्वतन्त्र चिन्तन नही करना चाहते। क्या गाधीजी क्रान्तिकारी थे? क्या वे समाजवादी थे? गाधीजीके सबधमे ऐसे सवाल करते हुए हमे 'क्रान्तिकारी' या 'समाजवादी' जैसे परम्परागत परिचित शब्दोको यह मानकर एक किनारे फेक देना होगा कि ये शब्द एक प्रतिमित मान, वजन, ऊँचाई और ढगवाली वस्तुका द्योतन करते है। उदाहरणके लिए, कुछ पक्के मार्क्सवादियोके लिए गाधीजीका राजनीतिक संघर्प क्रान्ति नही हो सकता, क्योकि उसमे क्रान्तिके विशिष्ट लक्षण सैनिक शस्त्रोके प्रयोगका ही अभाव था। उसमे तो स्वयसेवकके लिए डंडा भाँजना तक वर्जित था।

हमे यह भी ध्यान रखना चाहिए कि परमात्मा और अन्त करण जैसे विपयो पर भी बोलते हुए गाधीजी पूरी तरह नये विचारक थे। उन्होने कभी भी किसी क्षेत्रमे बँधी-बँधाई परिभापाओ और मान्यताओको स्वीकार नही किया। उनकी

भारतमाताके लिए आवश्यकता थी। फिर भी वे उन अर्थोंमें पुराने ऋषियों और महात्माओंके अनुरूप थे। उन्होंने अपने समयमें उठे उन सवालोंको, जिनसे था उस युगका सरोकार, स्वीकार करके उन्हें दोहरा कर लिया। उन्होंने उस युगको अपना लिया और उसे नया रूप देनेका प्रयत्न किया। किन्तु उन्होंने कभी भी अन्वेषणका त्याग नहीं किया, वह बराबर चलता रहा। अन्वेषण संसारमें प्रथम मानवके प्रादुर्भावके साथ ही आरंभ हो गया है और यह अनन्त है, क्योंकि यदि मनुष्य अन्वेषण छोड़ दे तो उसका ह्रास हो जायगा, वह नष्ट हो जायगा। भारत भ्रमण करते समय देश पर्यटकको नगरों और ग्रामोंमें गांधीजीकी प्रस्तर या धातुकी बनी हुई मूर्तियाँ मिलती हैं। प्रत्येक मूर्ति उनकी अनुकृति करनेकी पुरजोर कोशिश करती प्रतीत होती है। ये मूर्तियाँ चाहे अनगढ़ हों, चाहे सुन्दर, इनमें सबमें एक विशेषता समानरूपसे मिलती है। ये सभी गांधीजीको चलते हुए दिखाती हैं। इनमें गांधीजी अनन्त अभियानकी ओर अग्रसर हैं। डांडी अभियानकी अर्थवत्ता प्रतीकात्मकतासे भी अधिक है। इस अभियानमें मानो समूचा राष्ट्र अपने सुदूर लक्ष्यकी ओर, जो हमारे लिए आज भी अलभ्य बना हुआ है, अभियान करनेके लिए अपने पैरों पर उठ खड़ा हुआ था। उस लक्ष्यका अन्वेषण अब भी जारी है। हमारा अभियान चल रहा है। अभियान हमें नित्य नयी स्फूर्ति देता रहता है। जब हमारे पैर आगे बढ़ते जाते हैं—हमारी इन्द्रियाँ सजग और सजीव रहती हैं—नये दृश्योंकी झलक पानेके लिए, नयी ध्वनियोंको सुननेके लिए और नये सुगन्धोंको श्वास द्वारा ग्रहण करनेके लिए। हमारा अभियान चलता रहे और हमारे शरीरके अंग प्रत्यंगमें नये-नये अनुभवोंकी सिहरन बराबर व्याप्त रहे। अभियान और अन्वेषणका यही आनन्द है। नमक सत्याग्रहका ऐतिहासिक अभियान आरंभ करते हुए इस अद्वितीय व्यक्तिको जवाहरलाल नेहरूने अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करके अपनी जीवन्त भाषा द्वारा बड़ी ही सजीदगी और चित्रानुकारिताके साथ इसी चित्रका अंकन किया है

> आज यात्री अपने लंबे अभियानपर निकल पड़ा है। उसके हाथमें लाठी है और वह धूलभरी राहोंपर चला जा रहा है। उसकी दृष्टि साफ है, उसके कदम मजबूत हैं। उसमें निष्ठा रखनेवाला दल उसके पीछे-पीछे घिसटता चला आ रहा है। उसमें एक महान संकल्पकी आग जल रही है। उसके हृदयमें अपने विपन्न देशवासियोंके प्रति अगाध प्रेम है और है सत्यप्रेमकी वह ज्वाला, जो अपने साधकको झुलसा देती है—स्वातन्त्र्य प्रेमकी वह लालसा जो उसे निरन्तर प्रेरणा देती रहती है।

मार्गरेट कोले

गांधी : एक मानव

मुझे दु ख है कि मै मोहनदास करमचन्द गाधीसे कभी नही मिली। गाधीजी-की जन्मशती अगले वर्ष मनायी जानेवाली है। इस अवसरपर आयोजित विचार-गोष्ठीके निमित्त अपने विचार प्रेषित करनेके लिए आमन्त्रित करके डाक्टर राधा-कृष्णन्ने मुझे सम्मानित किया है। मैं ऐसा अनुभव करती हूँ कि यह निमन्त्रण-पत्र मेरे पति स्वर्गीय जी० डी० एच० कोलेको मिलना चाहिए था। भारतकी समस्याओ और उसके नेताओके बारेमे उनकी जितनी जानकारी थी, उसके शताश-का भी मै दावा नही कर सकती। यदि वे स्वस्थ रहते तो आजसे बीस साल पहले भारतीय विश्वविद्यालय-आयोगके एकमात्र अग्रेज सदस्यके रूपमे अवश्य ही भारत गये होते। मुझे बराबर इसका बडा दु ख रहा है कि उनकी अस्वस्थताके कारण मैं भी उनके साथ भारत जाकर गाधीजीके देशके शिक्षाशास्त्रियो और शिक्षा-क्षेत्रके नेताओसे न मिल सकी। यद्यपि मै पण्डित नेहरू और अन्य लोगोको जानती थी और एक बार मुझे एनीबेसेटसे भी उनके प्रभावशाली वार्धक्यके समय मिलने-का सौभाग्य मिला था, फिर भी इस अवसरपर कुछ लिख सकनेके लिए यह सब पर्याप्त नही है। अतएव इस समय मुझे कुछ लिखपानेके लिए गाधीजीके अपने जीवनकी अनुभूतियो और उनकी रचनाओ तथा (बहुत कुछ) दूसरोपर पडनेवाले उनके प्रभावपर ही निर्भर होना पडेगा।

अतएव इस समय मेरा मस्तिष्क बीस साल पहले गाधीजीकी हत्याके भीषण आघातसे पूर्व, भारतकी आजादीसे भी पहले, युद्धकालीन उन दिनोसे भी पहले जिस समय अंग्रेज सोशलिस्टोको बडी आशा थी कि चर्चिलके उग्र विरोधके बावजूद सर स्टैफर्ड क्रिप्सके जानेसे भारत आजाद हो सकेगा, सन् ३० और उसके आगेके उन दिनोकी ओर चला जाता है जब नमक-सत्याग्रह चल रहा था, जब गाधीजी-के अनशन चल रहे थे और हजारो भारतीय उनके साथ जेल भेज दिये गये थे।

मुझे सन १९३० में मनाये गये स्वाधीनता दिवस और गोलमेज-सम्मेलनकी याद आ रही है। मैं यह समझ रहा हूँ कि अपनी स्मृतिके इस क्रममें मैं आगे पीछे होने वाली अनेक घटनाओंका घालमेल करती जा रही हूँ किन्तु लाचारी है। स्मृतियाँ एक एककर इसी रूपमें उभर रही हैं। मैं मेरठ षडयन्त्रके मुकदमोंको याद कर रही हूँ, प्रथम असहयोग आन्दोलन और सत्याग्रहकी बात सोच रही हूँ। मेरी स्मृति अमृतसरकी ओर जा रही है और उसके बाद १९०८ में दक्षिण अफ्रीका पहुँच रही है, जब एक मध्यमवर्गीय उन्नतिशील बैरिस्टरने वहाँ रहनेवाले भारतीयोंके प्रति न्यायोचित व्यवहारकी गारंटी प्राप्त करनेके लिए अपना सब कुछ दाँव पर लगा दिया और सविनय अवज्ञाका आन्दोलन चलाया, जिससे सभी लोग अचरजमें आ गये और उसकी भूरि भूरि सराहना करने लगे। मैं उस समय बहुत छोटी और नासमझ थी। अतएव इस आन्दोलनका महत्त्व समझ पानेमें बिल्कुल असमर्थ थी। मैं नहीं समझती कि आज केनियामें कोई भी ऐसा आदमी होगा, जिसे उन दिनोंकी स्मृति हो, फिर भी मुझे याद है कि इस आन्दोलनके सामने स्मटसके घुटने टेक देनेके समाचार हम मिले थे (मैं समझती हूँ यह १९१४ की बात है) और आगे चलकर नेहरूकी जीवनीमें मैंने पढ़ा कि दो वर्ष बाद पहला बार लखनऊमें गांधीजीसे मिलनेपर वे दक्षिण अफ्रीकाकी शानदार बहादुराना लड़ाईका नेतृत्व करनेके लिए गांधीजीके प्रति कैसी श्रद्धासे अभिभूत हो उठे थे।

मुझे इस बातमें बड़ा सन्देह है कि कोई भी साधारण अंग्रेज स्त्री-पुरुष अपनी सराहनाकी सारी भावना, सहानुभूति और वस्तुस्थितिको ठीकसे समझ पानेकी अपनी तीव्र इच्छाके बावजूद अपनेको गांधीजीके विचारोंके अनुरूप ढाल सकता है, क्योंकि मतभेदकी यह खाई बहुत बड़ी है। मुझे मालूम है कि स्वयं मेरे पतिने गांधीजीसे सहमत होनेकी बड़ी कोशिश की थी, किन्तु वे इसमें विफल हो गये थे। मैं स्वयं इस दिशामें प्रयत्न करके विफल हो चुकी हूँ। मैं यहाँ उनके मौलिक स्थान वैयक्तिक दर्शनपर विचार कर रही हूँ—उस दर्शनपर जिसे सामान्यतः विरक्ति वादकी संज्ञा दी जाती है, किन्तु जो वस्तुतः उस मार्ग पर आधारित है जो गांधीजी चिन्तन और कर्मके क्षेत्रमें व्यक्तिगत पवित्रताको प्रधान करते थे। इसे समझनेके लिए गांधीजीके उस असाधारण परामर्शपर ध्यान देना चाहिए जिसे उन्होंने सन १९२६ में इंग्लैण्डके ब्रिटिश मजदूरोंको दिया था। उन्होंने कहा था कि यदि मालिकोंकी विजय होती है तो इसका यही मतलब होगा कि खान मजदूरोंने अपने संघर्षमें संयमका पाठ ठीकसे नहीं पढ़ा है। हमारे लिए इस परामर्शका सही अर्थ समझ पाना कठिन है। हम यह भी महसूस करते हैं कि

गाधीजी अग्रेजजनोमे 'स्वेच्छया गृहीत अकिचनताके सौंदर्य' को समझनेका जो आग्रह किया करते थे अथवा खादीके संबधमे उनकी जो नीति थी उसका ठीक-ठीक अभिप्राय समझ पाना हमारे वशकी वात नही है। जहाँ तक उनकी खादी नीति-का सवाल है, इसका उद्देश्य उच्च तथा मध्यम वर्गके लोगोको किसान वर्गके अधिक निकट लाना था—इतना तो स्पष्ट है। किन्तु यह भी निश्चित है कि खादी-नीतिके पीछे गाधीजीका कुछ इससे भी गहरा अर्थ था जिसे हम नही समझ पाते। जहाँ तक "अहिंसा" का प्रश्न है, वह आजकी समस्याओके समाधानमे सारी दुनियाके लिए एक प्रासगिक और आवश्यक तत्त्व वन गया है। फिर भी "अहिंसा" से गांधी-जीका वास्तविक तात्पर्य क्या था, इसे हम नही समझ पाते। कम-से-कम अपने संबध-मे तो मै यही कह सकती हूँ। उन्होने स्वयं कहा था कि "अहिंसाका अर्थ केवल 'अप्रतिरोध' नही है और इसका यह भी अर्थ नही है कि हिंसा अंतत कोई ऐसी बुराई है, जिसे हर कीमतपर छोड देना चाहिए।" १९२० मे ही गाधीजीने लिखा था ("द डाक्ट्रिन आव द सोर्ड" मे) कि "मैं चाहूँगा कि भारत कायरतापूर्ण जडतामे स्तब्ध पडे रहनेकी अपेक्षा हिसा द्वारा ही अपने सम्मानकी रक्षा करे।" गाधीजीकी यह उक्ति "घुटने टेककर जीवित रहनेकी अपेक्षा पैरोपर खडा रहकर मर मिटना कही अच्छा है" जैसी उक्तिसे वहुत भिन्न नही प्रतीत होती फिर भी दोनोमे वहुत वडा अन्तर है।

ऐसा लगता है कि अहिंसाका उद्देश्य विरोधपक्ष या उत्पीडकको अपने विचार और व्यवहार वदल देनेके लिए विवश कर देना है। किन्तु यह कैसे सभव होगा, यह कही भी स्पष्ट नही है। सामान्य पश्चिमी व्याख्या यह है कि उत्पीडक-के अन्त करणको जागरित कर यह उद्देश्य सिद्ध किया जायगा, किन्तु यह व्याख्या मुझे लचर प्रतीत होती है। इसके विपरीत अहिंसासे यह अपेक्षा की जाती है कि वह उत्पीडितो मे ही परिवर्तन ला देती है। जैसा कि नेहरूजीने १९३५ में लिखा है

> उन्होने अपनी सपूर्ण विनम्रता और स्वाभिमानके साथ भारतीय जनतामें साहस और पुरुषत्वका सचार कर दिया और एक महान् उद्देश्यके लिए उसमे अनुशासित सहिष्णुता तथा आनन्दप्रद अनुशासनकी शक्ति भर दी।

निश्चय ही गाधीजीने यह सब कर डाला और उनके देशवासियोपर इसका प्रभाव भी स्पष्टरूपसे परिलक्षित हुआ। किन्तु जहाँतक उत्पीडक अग्रेजका प्रश्न है, मुझे इसमें संदेह है कि अहिंसासे उसका कोई खास हृदय-परिवर्तन हो गया अथवा जैसा कि कुछ लोग विश्वास करते है, इतने दिनोके वाद अग्रेज अन्त करणकी पश्चा-

सांप्रदायिक झगड़ोंके कारण भारत छोड़नेपर विवश हो गया। मैं तो यही समझती हूं कि इसके पीछे यह आशंका ही ज्यादा काम कर रही थी कि यदि भारत एक बार निहत्था हो गया तो उसे [illegible] अपने अधीन नहीं रखा जा सकेगा। एक बात यह भी है। गांधीजीकी मृत्युके बाद भारत 'अहिंसक' नहीं रहा। इतना ही नहीं, वह अहिंसासे बहुत दूर चला गया। इस तरह अहिंसाके प्रभावका सवाल अभी संदिग्ध है। मेरा तो यही ख्याल है। हो सकता है पश्चिममें पली होनेके कारण मैं इसे नहीं समझ पा रही हूं और इसलिए ऐसा सोचना सहज मेरी बेवकूफी है।

जो भी हो, इसमें तो दो राय नहीं हो सकती कि गांधीजी हमारे युगके सर्वश्रेष्ठ पुरुषोंमें एक थे। आप उन्हें तो यह भी कह सकते हैं कि वे एक आश्चर्य थे—उनका दूसरोंपर आश्चर्यजनक प्रभाव था। यह एक बड़ी विचित्र बात है कि जब चर्चिलने क्रोध और औद्धत्यसे गांधीजीको सीढ़ीपर बैठा हुआ एक ऐसा अधनंगा फकीर कहा था जिसकी भीगकी धोतीमें महान ब्रिटिश साम्राज्य पड़ा हुआ है, तो उन्होंने अनजानमें ही गांधीजीके प्रति एक विलक्षण श्रद्धांजलि ही अर्पित कर दी थी। इसके मुकाबले फेनर ब्रॉकवेका अपना अनुभव भी देखने योग्य है। इन्हें गांधी कोई विलक्षण फकीरके रूपमें नहीं दिखाई दिए, यद्यपि पहले कुछ कुछ ऐसी ही कल्पना लेकर वे गांधीजीके पास पहुंचे थे। उनके लिए गांधीजी 'एक जिन्दादिल वृद्ध आदमी थे जो कभी-कभी नाक सिकोड़कर कुछ शरारत भी कर गुजरते थे।' फिर भी उन्होंने अपने एक मौन दिवसपर हाथसे छूकर ब्रॉकवेका बुखार दूर कर दिया और वे गहरी नींदमें सो गये। दूसरा साक्ष्य नेहरूका है जिनका गांधीजीसे प्रायः मतभेद हुआ करता था, फिर भी जो उनसे बेहद प्रेम करते थे। गांधीजी पश्चिमी धारणाके अनुसार डेमोक्रेटिक थे या नहीं, इस संबंधमें संदेह किया जा सकता है। किन्तु यह एक असंदिग्ध तथ्य है कि वे भारतकी किसान जनताका पूर्ण प्रतिनिधित्व करते थे। इन सारी बातोंके अतिरिक्त हम भारतमें यात्रा करते हुए गांधीजीकी वह तस्वीर भी अपने सामने रख लें जब कि एक गांवसे केवल कुछ मील दूर दूसरे गांवतककी ही यात्रामें (जैसा कि लाहौर-अमृतसरके समय उन्होंने किया था) हर जगह दस दस बीस-चालीस हजार आदमियोंकी भीड़ इकट्ठी हो जाती थी—केवल उनकी एक झलक पाने या उनके दो शब्द सुन लेनेके लिए। इतने से ही कोई भी इसकी सहज ही कल्पना कर सकता है कि वे किस ढंगके आदमी थे। वे ऐसे आदमी थे जैसा अब हमें कभी भी देखनेको न मिलेगा, यह शब्दशः सत्य है।

मोरारजी देसाई

गांधीजी और मनुष्यका भविष्य

अभी गाधीजीके निधनको दो दशक भी नही हुए और हम देख रहे है कि अधिकाश लोग जीवनमे आदर्शवादके प्रति श्रान्त होते जा रहे है और उनके उपदेशको उतना मूल्य और महत्त्व नही दे रहे है, जितना वे पहले दिया करते थे। एक ओर कुछ लोग ऐसा अनुभव करते है, कि हम लोग उनके द्वारा प्रदर्शित मार्गसे विचलित हो गये है, दूसरी ओर अन्य लोगोका यह ख्याल है कि निकट भविष्यमे लोग उन्हीकी दिशामे लौट आयेगे। इस बातपर विचार करना आवश्यक है कि जीवनके मौलिक मूल्य किस आधारपर प्रतिष्ठित होनेसे साधारण आदमी द्वारा स्वीकार्य बन जाते है। अधिकाश लोग नैतिक मूल्योको केवल इसलिए स्वीकार करते है कि उनसे भौतिक लाभ होनेकी सभावना होती है। ऐसे लोगोकी सख्या बहुत कम होती है, जो जीवनमे इन मूल्योका पालन इन्हीके लिए करते है। मै उन लोगोमेसे हूँ, जिनका यह विश्वास है कि हम गांधीजीके जीवन और उपदेशोको, जो अत्यन्त उन्नायक और हमारी जीवन-प्रणालीके लिए मौलिक महत्त्वके है, केवल अपनी भारी क्षति उठाकर ही भूल सकते है। हम भारतकी शक्ति, समृद्धि और सौख्यके लिए चाहे जो भी तरीका अपनाये, हमे अपने ही लिए गाधीजीके संदेशके अनुरूप अपने आदर्शोका अनुकरण करना ही होगा।

गाधीजीने जो कुछ कहा और किया, वह किसी युग या केवल भारतकी जनताके लिए ही नही था, उनके सदेशका महत्त्व प्रत्येक युग और समग्र मानव-जातिके लिए है। हमे इसी परिप्रेक्ष्यमे गाधीजीका मूल्याङ्कन करना है। किसी राष्ट्रके इतिहासमे सौ वर्ष कोई ज्यादा नही होते, किन्तु भारतीय इतिहासमे पिछले सौ वर्षोका महत्त्व न केवल इसलिए है कि इन्ही वर्षोमें भारतीय राष्ट्रीयताका अभ्युत्थान हुआ, जिसकी परिणति शताब्दियोकी दासताके बाद स्वतन्त्रता-

की उपलब्धिमें हुई यदि इसलिए भी ह कि गाधीजीने इसके लिए जिस तरीकेसे काम किया उससे इस युगकी समग्र मानवताकी आवाक्षाओको एक नया उद्देश्य और श्रेय प्राप्त हुआ।

१८६९ म जिस समय गाधीजी पैदा हुए, भारत एक शासित और दरिद्र देश था भारतीय दुर्बल, जी-हुजूरी करनेवाले बुजदिल और अधविश्वासी थे और भारतीय समाज बुरी तरह विभाजित सकीर्ण दृष्टिवाला समाज था जिसमें राष्ट्रीयताकी भावनाका नितान्त अभाव था। जब १८८८ में गाधीजी जहाजसे ब्रिटेन रवाना हुए, उस समय धीरे धीरे देशमें विश्वविद्यालयीय शिक्षाका प्रसार हो रहा था सामाजिक सुधारके आन्दोलन लोकप्रिय हो रहे थ और नगराम राजनीतिक चेतनाका विकास होने लगा था। भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसकी स्थापना १८८५ में हुई। दक्षिण अफ्रीकामें प्रवासी भारतीयोंके हितोंकी रक्षाम सफल सघर्ष करनेके बाद जब १९१५ में गाधीजी भारत लौटे तो उन्होंने यहाँ पर्याप्त राजनीतिक जागृति पायी और उन्हें देशम उदारवादी मौलिक परिवर्तनवाला अराजकवादी कई पार्टियाँ काम करती हुई मिली। गाधीजीने यह भी देखा कि इस जागृतिके बावजूद साधारण भारतीय जनता पहलेकी ही तरह बुजदिल और जी-हुजूरी करनेवाली ह भारतीय समाज उसी तरह विभाजित और अध विश्वासी ह देश उसी तरह गरीब और शोषित ह और देहात पूर्ववत उपेक्षित और वीरान पडे हुए हैं।

गाधीजीने देखा कि भारतकी समस्या केवल राजनीतिक या आर्थिक नहीं ह, बल्कि यह समस्या बहुमुखी ह। सदियोंकी दासताके फलस्वरूप उत्पन्न दास मनोवृत्तिसे छुटकारा पानेके लिए जनतामें साहस और आत्मसम्मानकी भावनाका सचार होना आवश्यक ह। उन्होंने यह भी देखा कि यदि इन परिस्थितियो को बदलना ह तो देशकी शिक्षा-व्यवस्था सामाजिक सुधार, आर्थिक तथा राज नीतिक विकासकी सभी योजनाएँ देशकी सहज प्रतिभाके अनुकूल बननी चाहिए। आगे आनेवाले तीन दशकोंमें गाधीजीने इसके लिए अथक प्रयत्न किया और देशम मौनरूपसे एक व्यापक क्रान्तिका सृजन कर डाला। उन्होंने स्वराज प्राप्त करनेके लिए उस समयतक प्रचलित आतकवादी तरीकेके स्थानपर एक व्याव हारिक तरीका दिया जिसके फलस्वरूप राजनीतिक चेतना नगरोंतक ही सीमित न रहकर सुदूर देहातोंतक व्याप्त हो गयी। इससे स्वातन्त्र्य-सग्रामको अत्यन्त विस्तृत आधार प्राप्त हो गया शिक्षाको एक नया उद्देश्य और अर्थ मिला सामाजिक जीवन पहलेकी अपेक्षा उत्सुक हो गया और उसका छुई मुई रूप जाता रहा।

वातावरणमे नैतिक उत्साहका संचरण होने लगा। उन्होने हमे फूलसे उठाकर मनुष्य बना दिया। उस समयतक यद्यपि स्वराजकी इच्छा बलवती हो चली थी, किन्तु कोई भी उसे प्राप्त करनेका रास्ता नही दिखा सका था। गाधीजी दक्षिण अफ्रीकामे असहयोग और सविनय अवज्ञाके अस्त्रका निर्माण कर चुके थे। यहाँ आकर उन्होने स्वराज प्राप्त करनेके लिए इसी अस्त्रको भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसके माध्यमसे राष्ट्रको समर्पित कर दिया।

इस कालमे गाधीजी नैतिकता एव आध्यात्मिकताके उच्चतम शिखरतक पहुँच गये। एक क्षेप्र किस्मके साधारणसे बच्चेसे विकास करके वे अपने युगके सर्वश्रेष्ठ महापुरुष बन गये। अपने देशवासियोकी सेवाके प्रति लगन और निष्ठाके कारण उन्होने कुछ अद्भुत आविष्कार भी किये। उनका पहला आविष्कार 'सत्य' था। 'सत्' का अर्थ 'अस्तित्व या सत्ता' होता है और "सत्य" का तात्पर्य होता है "वह, जिसका अस्तित्व हो"। अतएव तर्कसगत दृष्टिसे कहा जाय तो सत्यके अलावा और किसी वस्तुका अस्तित्व ही नही है। उन्होने अपने जीवनमे बहुत पहले ही प्रथमत. अपनी माँसे और आगे चलकर एक तरुण अनुसंधाताके रूपमे गभीर चिन्तन द्वारा यह समझ लिया था कि सारे क्रिया-कलापोका आधार सत्य ही होना चाहिए।

उनकी दूसरी खोज अहिसा थी, जिसका अर्थ होता है समस्त जीवित प्राणियो-के प्रति प्रेम। गाधीजीने यह समझ लिया था कि मानव प्राणियोके पारस्परिक व्यवहारका एकमात्र प्रभावकारी तर्क अहिसा ही हो सकती है और अहिसा द्वारा मानवीय संबधगत किसी भी समस्याका समाधान खोजा जा सकता है। अहिसा एक सकारात्मक अवधारणा है और शक्तिके रूपमे वह हिंसासे कही अधिक श्रेष्ठ है. अहिसामे जीवमात्रके प्रति प्रेम निहित है और यह सभीको समान दरजा देती है। गाधीजीने सभी स्थितियोमे सत्य और अहिसाका प्रयोग किया और इस तरहसे दूसरोकी घृणा और संदेह भावनापर विजय प्राप्त की। इसीलिए उनका जीवन राष्ट्रके प्रत्येक क्षेत्रके काम करनेवाले देशवासियोके लिए प्रेरणाका गभीर स्रोत बन गया।

जनताके लिए गाधीजीको समझ पाना बहुत आसान था, क्योकि वे उसीकी भाषामे बोलते थे। उनका जीवन ठीक जनताके जीवनके समान था—उतना ही सीधा और सब इसीलिए उन्हे स्वातन्त्र्य-संग्राममे जन-सहयोग प्राप्त कर लेनेमे अभूतपूर्व सफलता मिली। उन्होने कार्यकर्ता एकत्र किये, नेताओको पैदा किया और स्वय उनसे प्रभावित हुए। इस प्रकारके जनसपर्कसे उन्होने स्वातंत्र्य-सघर्षमे

एक ऐसे व्यापक मतैक्यकी सृष्टि कर दी जिसका पहले कहीं पता न था।

यह ठीक है कि स्वतन्त्रता प्राप्तिके लिए हमें देशके विभाजनका मूल्य चुकाना पड़ा। हमने उनकी इच्छाके खिलाफ देशका विभाजन इसलिए स्वीकार किया कि इसके सिवा कोई चारा नहीं था। हम जिस समय आजाद हुए वे दुःखी थे। पाकिस्तानमें हिन्दुओं और सिखोंपर जो अत्याचार हुए और उसकी भारतके कुछ भागोंमें जो प्रतिहिंसात्मक प्रतिक्रिया हुई वह गांधीजीके लिए असह्य थी और उससे उनका हृदय व्यथित हो उठा। वे चाहते थे कि हम इन अत्याचारोंका सामना अहिंसक ढंगसे करें किन्तु हममें इसके लिए पर्याप्त नैतिक साहस नहीं था।

भारतके लिए स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेना उनकी सफलताका केवल एक बाह्य रूपमात्र है उनकी वास्तविक सफलता हमारी आत्माको उद्दीप्त हमारे हृदयोंको प्रकाशित करने और हमें नैतिक साहस प्रदान करनेमें है। हम लोग भौतिक प्रगति प्राप्त कर सकते हैं किन्तु यदि हमारे अन्दरका नैतिक तेज बुझ गया तो इसका कोई अर्थ न होगा। आज संसारमें समृद्ध समाज तो मिल जायेंगे, किन्तु वे सुखी नहीं हैं। केवल भौतिक समृद्धि सुख नहीं प्रदान कर सकती। सुख आन्तरिक संतोषसे प्राप्त होता है जिसके लिए इच्छाओंके द्वन्द्वसे अतीत जीवन यापन करना अपेक्षित होता है। हमारा जीवन नैतिक मूल्योंपर प्रतिष्ठित होना चाहिए और उसमें आध्यात्मिक जिज्ञासा होनी चाहिए। हमें तभी वास्तविक सुख मिल सकता है।

गांधीजी प्रगतिका मापन मानवी सुखकी दृष्टिसे करते थे। अधिकतम लोगोंकी अधिकतम भलाईका उपयोगितावादी दृष्टिकोण भी उन्हें मान्य नहीं और समृद्ध समाजका वह आधुनिक दृष्टिकोण भी उन्हें स्वीकार न था जिसमें प्रगतिका एकमात्र प्रतिमान भौतिक विकास होता है। वे ऐसी समाज-व्यवस्था चाहते थे, जिसमें सबका अधिकतम कल्याण अर्थात् सर्वोदय हो सके। वे ऐसे समाजकी रचना करना चाहते थे जिसमें सबकी पद प्रतिष्ठा समान हो और सबको विकास करनेकी स्वतन्त्रता और अवसर सुलभ हो। वे एक ऐसे समग्र समाजके हिमायती थे, जिसमें आर्थिक प्रगति और सामाजिक न्याय साथ-साथ चल सकें। वे चाहते थे कि हम ऐन्द्रियिक सुखपर नियन्त्रण प्राप्त करें क्योंकि इस सुखकी कोई सीमा नहीं है।

गांधीजीने भौतिक शक्ति या सैनिक शक्तिके मुकाबले मनुष्यकी अपराजेय आत्माका, भौतिक मूल्योंके मुकाबले नैतिक मूल्योंका, स्वार्थ और परिग्रहके मुकाबले सेवा और बलिदानका महत्त्व विश्वके सामने प्रदर्शित किया। उन्होंने हमें

सत्यके सौन्दर्य और मानवीय आत्माकी गरिमाको पहचाननेकी शिक्षा दी।

गाधीजी भौतिक समृद्धिके विरोधी नही थे और न तो उनका कोई ऐसा आग्रह ही था कि किसी भी स्थितिमे यन्त्रोका प्रयोग न किया जाय। उनका कहना था कि व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए, जिसमे यन्त्र कुछ थोडेसे लोगोकी ही नही, वल्कि सवके समय और श्रमकी वचत करनेमे समर्थ हो सके। वे चाहते थे कि मनुष्य यन्त्रोका दास वनकर अपनी स्वतन्त्र सत्ताको न खो बैठे, उनके अनुसार यन्त्र मनुष्यके लिए है, न कि मनुष्य यन्त्रोके लिए।

उनकी दृष्टिमे सामाजिक न्यायका तात्पर्य यह था कि सम्पत्ति और शक्तिका केन्द्रीकरण न हो। इसके साथ ही वे यह भी जानते थे कि सम्पत्ति और शक्तिका समान वितरण कभी सभव नही है। अतएव उन्होने न्यायोचित वितरणका समर्थन किया, जिससे आर्थिक विपमताएँ और राजनीतिक अक्षमताएँ कम की जा सके। उन्होने "ट्रस्टीशिप" के सिद्धान्तका विकास किया, जिससे पूंजीवादी समाजको समाजवादी समाजमे वदला जा सके। ट्रस्टीशिपका उनका सिद्धान्त पूँजोवादका समर्थक नही है। यह सिद्धान्त पूंजीपतियोको कुचल देनेके वजाय उन्हें अपने दृष्टि-कोणमे सुधार करनेका अवसर देता है। गाधीजी चाहते थे कि पूंजीपति लोग सम्पत्तिका उपयोग उसे जनताका न्यास समझकर करे अर्थात् उसे केवल अपने निजी सुखोपभोगमे न लगाकर सामाजिक कल्याणमे लगाये।

एक ओर यह माना जाता है कि समृद्धिके साथ दरिद्रता भी समाप्त हो जायगी, किन्तु दूसरी ओर देखनेसे यह लगता है कि मनुष्य जीवनको सफल वनानेके लिए ही धनार्जनकी ओर अधिकाधिक प्रवृत्त हो रहा है, क्योकि आज किसी भी व्यक्तिको सफलता या विफलताका मापन उसके पास कितना धन है, इसीसे किया जाता है। इस प्रतिमानसे अधिकाश उन्नत राष्ट्रोको निश्चय ही प्रगतिशील कहा जायगा। किन्तु धनने क्या मनुष्यके सुखमे वृद्धि की है? आज मानव-जाति-के सामने उसके अस्तित्वके लिए पहलेकी अपेक्षा-कही वडा खतरा उपस्थित है। पारमाणविक शस्त्रास्त्रोके विकाससे आज मानव-जातिके सामने सम्पूर्ण विनाशका खतरा आ गया है। वडे पैमानेपर होनेवाले उद्योगीकरणसे कुछ लोगोके हाथमे आर्थिक सत्ताके खतरनाक ढगसे केन्द्रित हो जानेकी सभावना वढ गयी है, जिससे मनुष्यमात्र आर्थिक औजार वनकर रह जायगा। खतरा यह है कि या तो मनुष्य-का अस्तित्व ही समाप्त हो जायगा या फिर उसकी कोई स्वतन्त्र सत्ता न रह जायगी। यदि मानवीय सुख हमारा लक्ष्य है, तो इन खतरोको दूर करना होगा। हमे अधकारमे टटोलते नही रह सकते। हमे ऐसे प्रकाशका प्रयोग करना ही होगा,

एक ऐसे व्यापक मनक्षयका सृष्टि कर दा जिसका पहले कभी पता न था।

यह ठीक ह कि स्वतन्त्रता प्राप्तिके लिए हम देशके विभाजनका मूल्य चुकाना पडा। हमने उनकी इच्छाके खिलाफ देशका विभाजन इसलिए स्वीकार किया कि इसके सिवा कोई चारा नही था। हम जिस समय आजाद हुए वे दुःखी थे। पाकिस्तानम हिन्दुओ और सिखोपर जो अत्याचार हुए और उसकी भारतके कुछ भागोम जो प्रतिहिंसात्मक प्रतिक्रिया हुई वह गाधीजीके लिए असह्य थी और उससे उनका हृदय व्यथित हो उठा। व चाहते थे कि हम इन अत्याचारोका सामना अहिंसक ढगसे करें, किन्तु हमम इसके लिए पर्याप्त नतिक साहस नही था।

भारतके लिए स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेना उनकी सफलताका केवल एक बाह्य रूपमात्र ह उनकी वास्तविक सफलता हमारी आत्माको उद्दीप्त, हमार हृदयोको प्रकाशित करने और हम नतिक साहस प्रदान करनेमें ह। हम लोग भौतिक प्रगति प्राप्त कर सकते हैं, किन्तु यदि हमारे अन्दरका नतिक तेज बुझ गया तो इसका कोई अथ न होगा। आज ससारमें समृद्ध समाज तो मिल जायेंगे, किन्तु वे सुखी नही ह। केवल भौतिक समृद्धि सुख नही प्रदान कर सकती। सुख आन्तरिक सतोषसे प्राप्त होता ह जिसके लिए इच्छाओके द्वन्द्वसे अतीत जीवन यापन करना अपेक्षित होता ह। हमारा जीवन नतिक मूल्योपर प्रतिष्ठित होना चाहिए और उसम आध्यात्मिक जिज्ञासा होनी चाहिए। हम तभी वास्तविक सुख मिल सकता ह।

गाधीजी प्रगतिका मापन मानवी सुखकी दृष्टिसे करते थे। अधिकतम लोगोकी अधिकतम भलाईका उपयोगितावादी दृष्टिकोण भी उन्हें मान्य नही और समृद्ध समाजका वह आधुनिक दृष्टिकोण भी उन्हें स्वीकाय न था जिसम प्रगतिका एकमात्र प्रतिमान भौतिक विकास होता ह। वे ऐसी समाज-व्यवस्था चाहते थे, जिसमें सबका अधिकतम कल्याण अर्थात सर्वोदय हो सके। वे ऐसे समाजकी रचना करना चाहते थे जिसमें सबकी पद प्रतिष्ठा समान हो और सबको विकास करनेकी स्वतन्त्रता और अवसर सुलभ हो। वे एक ऐसे सरल समाजके हिमायती थे जिसमें आर्थिक प्रगति और सामाजिक न्याय साथ-साथ चल सके। वे चाहते थे कि हम ऐन्द्रियिक सुखपर नियन्त्रण प्राप्त करें क्योकि इस सुखकी कोई सीमा नही है।

गाधीजीने भौतिक शक्ति या सनिक शक्तिके मुकाबले मनुष्यकी अपराजय आत्माका भौतिक मूल्योके मुकाबले नतिक मूल्योका स्वाथ और परिग्रहके मुकाबले सेवा और बलिदानका महत्त्व विश्वके सामने प्रदर्शित किया। उन्होने हम

सत्यके सौन्दर्य और मानवीय आत्माकी गरिमाको पहचाननेकी शिक्षा दी।

गांधीजी भौतिक समृद्धिके विरोधी नहीं थे और न तो उनका कोई ऐसा आग्रह ही था कि किसी भी स्थितिमें यन्त्रोंका प्रयोग न किया जाय। उनका कहना था कि व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए, जिसमें यन्त्र कुछ थोड़ेमें लोगोंकी ही नहीं, वल्कि सवके समय और श्रमकी वचत करनेमें समर्थ हो सके। वे चाहते थे कि मनुष्य यन्त्रोंका दास वनकर अपनी स्वतन्त्र सत्ताको न खो वैठे, उनके अनुसार यन्त्र मनुष्यके लिए हैं, न कि मनुष्य यन्त्रोंके लिए।

उनकी दृष्टिमें सामाजिक न्यायका तात्पर्य यह था कि सम्पत्ति और शक्तिका केन्द्रीकरण न हो। इसके साथ ही वे यह भी जानते थे कि सम्पत्ति और शक्तिका समान वितरण कभी सभव नहीं है। अतएव उन्होंने न्यायोचित वितरणका समर्थन किया, जिससे आर्थिक विषमताएँ और राजनीतिक अक्षमताएं कम की जा सकें। उन्होंने "ट्रस्टीशिप" के सिद्धान्तका विकास किया, जिससे पूँजीवादी समाजको समाजवादी समाजमें वदला जा सके। ट्रस्टीशिपका उनका सिद्धान्त पूँजीवादका समर्थक नहीं है। यह सिद्धान्त पूँजीपतियोंको कुचल देनेके वजाय उन्हें अपने दृष्टि-कोणमें सुधार करनेका अवसर देता है। गांधीजी चाहते थे कि पूँजीपति लोग सम्पत्तिका उपयोग उसे जनताका न्यास समझकर करें अर्थात् उसे केवल अपने निजी सुखोपभोगमें न लगाकर सामाजिक कल्याणमें लगायें।

एक ओर यह माना जाता है कि समृद्धिके साथ दरिद्रता भी समाप्त हो जायगी, किन्तु दूसरी ओर देखनेसे यह लगता है कि मनुष्य जीवनको सफल वनानेके लिए ही धनार्जनकी ओर अधिकाधिक प्रवृत्त हो रहा है, क्योंकि आज किसी भी व्यक्तिकी सफलता या विफलताका मापन उसके पास कितना धन है, इसीसे किया जाता है। इस प्रतिमानसे अधिकांश उन्नत राष्ट्रोंको निश्चय ही प्रगतिशील कहा जायगा। किन्तु धनने क्या मनुष्यके सुखमें वृद्धि की है? आज मानव-जाति-के सामने उसके अस्तित्वके लिए पहलेकी अपेक्षा कहीं वड़ा खतरा उपस्थित है। पारमाणविक शस्त्रास्त्रोंके विकाससे आज मानव-जातिके सामने सम्पूर्ण विनाशका खतरा आ गया है। वड़े पैमानेपर होनेवाले उद्योगीकरणसे कुछ लोगोंके हाथमें आर्थिक सत्ताके खतरनाक ढंगसे केन्द्रित हो जानेकी सभावना वढ़ गयी है, जिससे मनुष्यमात्र आर्थिक औजार वनकर रह जायगा। खतरा यह है कि या तो मनुष्य-का अस्तित्व ही समाप्त हो जायगा या फिर उसकी कोई स्वतन्त्र सत्ता न रह जायगी। यदि मानवीय सुख हमारा लक्ष्य है, तो इन खतरोंको दूर करना होगा। हम अंधकारमें टटोलते नहीं रह सकते। हमें ऐसे प्रकारका प्रयोग करना ही होगा,

जिससे अंधकार दूर हो सके।

भौतिक समृद्धि परितोषकी एक ऐसा अवस्था आ जाती ह, जब सुखोपभोग म और अधिक वृद्धि होनेसे मनुष्यको किसी प्रकारका सुखोत्तेजना नहीं प्राप्त होता। अब पश्चिमम यह जानकर लोगोको सुखकी कोई खास उत्तेजना नहा होता कि उनकी घरेलू सुविधाओंके विकासके लिए अमुक प्रकारके और नय यन्त्र बाजारम आ रहे ह। इस तरह जीवन नीरस होने लगा ह उसम एकरसता पैदा हो रही ह और जीवनका वास्तविक आनन्द घटता जा रहा ह। अतएव हम सबके लिए सतर्क हो जाना चाहिए कि हम केवल भौतिक सुखोंके ही पीछे न दौडें और इस दौडम कही अपना मानवता न खो बैठें। हम जटिल औद्योगिक जीवनम निहित तनावोंसे बचना ह। मानवीय सुखके लिए यह आवश्यक ह कि अन्दर और बाहर शान्तिकी प्रतिष्ठा न केवल एक प्रतीकके रूपम बल्कि एक जीवन प्रणालीके रूपमें की जाय। आधुनिक समाजके लिए आधुनिक जीवनकी जटिल समस्याओंमें एकसूत्रता अथवा समाधान खोज पाना कठिन हो सकता ह कि जो राष्ट्र अभी उन्नतिकी ओर अग्रसर हो रह ह, उन्हें वसी ही गलती नहीं करना चाहिए। हमें भविष्यके लिए योजना बनाते समय सुख-सम्बन्धी गांधीवादी अवधारणाको बराबर अपने सामने रखना चाहिए।

गांधीजी कहते थे कि आन्तरिक सन्तोषके लिए मनुष्यको जीवनम सत्य और अहिंसाका व्यवहार करना चाहिए। उसे ऐसे किसी भी कर्मसे विरत रहना होगा जो नैतिक दृष्टिसे अनुचित हो, फिर चाहे उससे कितना बडा भी तात्कालिक लाभ क्या न होता हो। उनके लिए लक्ष्यकी प्राप्ति सफलताका प्रतिमान नहीं था। साधनोंकी पवित्रता लक्ष्यकी स्पृहणीयतासे कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण ह। साध्यसे ही साधनका औचित्य सिद्ध होता ह। दुर्भाग्यवश समाजमें यह धारणा बद्धमूल हो गयी ह किन्तु सम्भवत गांधीजी ही वह अकेले व्यक्ति थे जिन्होंने लक्ष्य प्राप्तिकी अपेक्षा साधनोंकी पवित्रतापर कहीं अधिक जोर दिया। उन्होंने अपने जीवनके प्रारम्भमें दक्षिण अफ्रीकाम सघर्ष करते समय ही साधनोंकी पवित्रताकी आवश्यकता समझ ली थी और आगे वे इसपर अधिकाधिक बल देते गये। उन्होंने बार-बार इस बातपर जोर दिया कि हमारे स्वातन्त्र्य-संग्रामम अप्रतिभ साधनों का कभी प्रयोग न किया जाय। हो सकता ह कि साधनोंकी पवित्रतामें हमें कोई तात्कालिक लाभ होता हुआ न दिखायी दे किन्तु अन्तत इसीसे हमें वास्तविक सुख मिल सकता ह। अनैतिक साधनोंसे कभी कोई नैतिक लक्ष्य नहीं प्राप्त किया जा सकता। गांधीजी ऐसा अनुभव करते थे कि यदि हम अपने लक्ष्य

यू० एन० ढेबर

स्वस्थ सामाजिक व्यवस्थाके लिए स्वस्थ आधार

गाधीजी भारतके मुक्तिदाता थ । यह उनक जीवनका एक प १ था जिसकी सभीने सराहना की ह । इसी प्रकार उनक जावनक एक दूसरे पक्षका भी पर्याप्त मान्यता मिल चुकी है वह यह कि उन्होने सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक न्यायकी प्राप्तिके लिए मानव-जातिको एक नया शस्त्र प्रदानकर मानव-समाजके शान्तिपण विकासमें एक महत्वपण भूमिका अदा की किन्तु उनके पति श्रद्धा रखनेवालोम भी ऐस कुछ लोग हैं, जो अय दो क्षत्राम किये गय उनक कार्योंक महत्वको अक्सर नजर-अदाज कर जात ह । य दो क्षेत्र ह—मानवका आर्थिक क्षेत्र और समाजक सामाजिक एव आध्यात्मिक युग निर्माणका क्षत्र जिसम गाधी जीके अवदानका विशेष रूपसे मूल्याङ्कन होना चाहिए ।

इस लेखमें मैं समाजके पुनर्निमाणम किय गय महात्माजीके नवीन योगदान की चर्चातक ही अपनको सीमित रखूगा । गाधीजीन जो कुछ भी किया ह मरा दृष्टिमें उनका यह योगदान उन सभी कार्योंके मूलमें ह क्योकि इसक द्वारा उन्होने मानव-समाजको उस व्याधिके निराकरणका उपाय सुझाया ह जिससे वह चिरकालस ग्रस्त और सत्रस्त रहा ह ।

> १९३१ में यग इण्डिया म उन्होन लिखा ह
>
> मैंन अनुभव किया ह कि जीवन विनाशक मध्य भी वतमान रहता ह इसीलिए विनाशक नियमको अपेक्षा कोई दूसरा उच्चतर नियम भी होना चाहिए । कवल कानूनके अन्तगत ही सघटित किसी सुव्यवस्थित समाजका कोई अथ हो सकता ह और जावन जाने योग्य हो सकता ह । और यदि यही जीवनका नियम ह तो हमें रोजक जीवनमें इस नियमको कार्यान्वित करना ह । जहाँ कही भी कोई बखेड़ा खडे हो जहाँ कही भी आपका किसी विरोधीका सामना करना हो तो उस प्रेमसे जीतिय ।

मोटे तौरपर इसी ढंगसे मैंने जीवनके इस नियमको अपने जीवनमे कार्यान्वित किया है। इसका यह अर्थ नही है कि मेरी सभी कठिनाइयाँ हल हो गयी हैं। मैंने केवल यही देखा है कि प्रेमका यह नियम विनाशके नियमसे कही अधिक प्रभावकारी रहा है" .... '

दुनियाके सभी महापुरुषो और उपदेष्टाओने इस नियमका न्यूनाधिक ओजस्विताके साथ उपदेश किया है। यदि प्रेम जीवनका नियम न होता तो जीवन विनाशमे कायम न रह पाता। जीवन मृत्युपर शाश्वत विजय है। यदि मनुष्य और पशुमे कोई मौलिक अन्तर है तो वह इसी बातमे है कि मनुष्य इस नियमको अधिकाधिक मान्यता प्रदान करते हुए अपने व्यक्तिगत जीवनमे इसका प्रयोग करता आया है। संसारके सभी प्राचीन और आधुनिक संत अपने विचार और सामर्थ्यके अनुरूप हमारी आत्माके इस सर्वोत्कृष्ट नियमके ही सजीव उदाहरण हैं। यह ठीक है कि हमारे अन्दरका पशु प्राय. आसानीसे विजयी होता दिखायी देता है, किन्तु इससे प्रेमका नियम अप्रमाणित हो जाता हो, ऐसी बात नही है। इससे केवल अभ्यासकी कठिनाईका ही पता चलता है। किसी ऐसे नियमके साथ, जो सत्यके समान ही श्रेष्ठ है, दूसरी बात कैसे हो सकती है? जब इस नियमका व्यवहार सार्वभौमिक हो जायगा तो परमात्मा उसी स्वर्गके समान ही इस ससारमे भी शासन करने लगेगा। मुझे किसीको यह याद दिलानेकी आवश्यकता नही है कि यह लोक और परलोक (स्वर्ग) हमारे अन्दर ही हैं। हम अपने भीतरके इस लोकसे तो परिचित है, किन्तु स्वर्गसे अपरिचित हैं। यदि यह कहा जाय कि प्रेमका आचरण कुछ लोगोके लिए ही सभव है तो भी दूसरोके लिए इस आचरणकी सम्भावनातकका निषेध कर देना औद्धत्य ही कहा जायगा। अनतिदूर अतीतमे ही हमारे पूर्वज नरभक्षण और ऐसे ही अन्य कृत्योके अभ्यासी थे, जो आज हमारे लिए जघन्य है। इसमे सदेह नही कि उन दिनोमे भी डिक शेपार्ड रहे होगे, जिनका अपने ही भाई-बंधुओके भक्षणसे इनकार करनेके विचित्र सिद्धान्तका उपदेश देनेके कारण मजाक उडाया जाता रहा होगा या संभवत. इसी कारण जिन्हे मार भी डाला गया होगा।

जीवन विनाशके मध्यमे भी कायम रहता है, इसे समझानेके लिए प्रमाण देना शायद ही आवश्यक हो। हम ज्यो ही ससारमे पदार्पण करते है, माँका पौष्टिक दूध

यू० एन० ढेबर

स्वस्थ सामाजिक व्यवस्थाके लिए स्वस्थ आधार

गांधीजी भारतके मुक्तिदाता थे। यह उनके जीवनका एक पक्ष था जिसकी सभीने सराहना की है। इसी प्रकार उनके जीवनके एक दूसरे पक्षको भी पर्याप्त मान्यता मिल चुकी है वह यह कि उन्होंने सामाजिक राजनीतिक और आर्थिक न्यायकी प्राप्तिके लिए मानव-जातिको एक नया शस्त्र प्रदानकर मानव-समाजके शान्तिपूर्ण विकासमें एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की किन्तु उनके प्रति श्रद्धा रखनेवालोंमें भी ऐसे कुछ लोग हैं जो अन्य दो क्षेत्रोंमें किये गये उनके कार्योंके महत्त्वको अक्सर नजर-अन्दाज कर जाते हैं। ये दो क्षेत्र हैं—मानवका आर्थिक क्षेत्र और समाजके सामाजिक एवं आध्यात्मिक युग निर्माणका क्षेत्र जिसमें गांधीजीके अवदानका विशेष रूपसे मूल्याङ्कन होना चाहिए।

इस लेखमें मैं समाजके पुनर्निर्माणमें किये गये महात्माजीके नवीन योगदानकी चर्चा तक ही अपनेको सीमित रखूँगा। गांधीजीने जो कुछ भी किया है मेरी दृष्टिमें उनका यह योगदान उन सभी कार्योंके मूलमें है क्योंकि इसके द्वारा उन्होंने मानव-समाजकी उस व्याधिके निराकरणका उपाय सुझाया है जिससे वह चिरकालसे ग्रस्त और सन्त्रस्त रहा है।

१९३१ में यंग इण्डिया में उन्होंने लिखा है

> मैंने अनुभव किया है कि जीवन विनाशके मध्य भी वर्तमान रहता है इसीलिए विनाशके नियमकी अपेक्षा कोई दूसरा उच्चतर नियम भी होना चाहिए। केवल कानूनके अन्तर्गत ही संघटित किसी सुव्यवस्थित समाजका कोई अर्थ हो सकता है और जीवन जीने योग्य हो सकता है। और यदि यही जीवनका नियम है तो हमें रोजके जीवनमें इस नियमको कार्यान्वित करना है। जहाँ कहीं भी कोई बेमेल बातें हों जहाँ कहीं भी आपको किसी विरोधीका सामना करना हो तो उसे प्रेमसे जीतिये।

मोटे तौरपर इसी ढंगसे मैने जीवनके इस नियमको अपने जीवनमे कार्यान्वित किया है। इसका यह अर्थ नही है कि मेरी सभी कठिनाइयाँ हल हो गयी है। मैने केवल यही देखा है कि प्रेमका यह नियम विनाशके नियमसे कही अधिक प्रभावकारी रहा है...... ..

दुनियाके सभी महापुरुषो और उपदेष्टाओने इस नियमका न्यूनाधिक ओजस्विताके साथ उपदेश किया है। यदि प्रेम जीवनका नियम न होता तो जीवन विनाशमे कायम न रह पाता। जीवन मृत्युपर शाश्वत विजय है। यदि मनुष्य और पशुमे कोई मौलिक अन्तर है तो वह इसी वातमे है कि मनुष्य इस नियमको अधिकाधिक मान्यता प्रदान करते हुए अपने व्यक्तिगत जीवनमे इसका प्रयोग करता आया है। ससारके सभी प्राचीन और आधुनिक संत अपने विचार और सामर्थ्यके अनुरूप हमारी आत्माके इस सर्वोत्कृष्ट नियमके ही सजीव उदाहरण है। यह ठीक है कि हमारे अन्दरका पशु प्राय. आसानीसे विजयी होता दिखायी देता है, किन्तु इससे प्रेमका नियम अप्रमाणित हो जाता हो, ऐसी वात नही है। इससे केवल अभ्यासकी कठिनाईका ही पता चलता है। किसी ऐसे नियमके साथ, जो सत्यके समान ही श्रेष्ठ है, दूसरी वात कैसे हो सकती है? जव इस नियमका व्यवहार सार्वभौमिक हो जायगा तो परमात्मा उसी स्वर्गके समान ही इस संसारमे भी शासन करने लगेगा। मुझे किसीको यह याद दिलानेकी आवश्यकता नही है कि यह लोक और परलोक (स्वर्ग) हमारे अन्दर ही हैं। हम अपने भीतरके इस लोकसे तो परिचित हैं, किन्तु स्वर्गसे अपरिचित है। यदि यह कहा जाय कि पेमका आचरण कुछ लोगोके लिए ही संभव है तो भी दूसरोके लिए इस आचरणकी सम्भावनातकका निपेध कर देना औद्धत्य ही कहा जायगा। अनतिदूर अतीतमे ही हमारे पूर्वज नरभक्षण और ऐसे ही अन्य कृत्योके अभ्यासी थे, जो आज हमारे लिए जघन्य है। इसमे सदेह नही कि उन दिनोमे भी डिक शेपार्ड रहे होगे, जिनका अपने ही भाई-वंधुओके भक्षणसे इनकार करनेके विचित्र सिद्धान्तका उपदेश देनेके कारण मजाक उडाया जाता रहा होगा या संभवत इसी कारण जिन्हे मार भी डाला गया होगा।

जीवन विनाशके मध्यमे भी कायम रहता है, इसे समझानेके लिए प्रमाण देना शायद ही आवश्यक हो। हम ज्यो ही संसारमे पदार्पण करते है, माँका पौष्टिक दूध

यू० एन० ढेबर

स्वस्थ सामाजिक व्यवस्थाके लिए स्वस्थ आधार

गांधाजी भारतके मुक्तिदाता थ। यह उनक जावनका एक पक्ष था जिसकी सभीने सराहना की ह। इसी प्रकार उनके जीवनके एक दूसर पक्षको भी पर्याप्त मान्यता मिल चुकी ह वह यह कि उन्होंने सामाजिक राजनीतिक और आर्थिक न्यायकी प्राप्तिके लिए मानव-जातिको एक नया शस्त्र प्रदानकर मानव-समाजके शान्तिपूर्ण विकासमें एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की किन्तु उनके प्रति श्रद्धा रखनेवालोंमें भी ऐसे कुछ लोग हैं जो अन्य दो क्षेत्राम किये गये उनके कार्योंके महत्त्वको अक्सर नजर-अन्दाज कर जाते ह। ये दो क्षेत्र ह—मानवके आर्थिक क्षेत्र और समाजके सामाजिक एवं आध्यात्मिक युग निर्माणका क्षेत्र जिसमे गांधी जीके अवदानका विशेष रूपसे मूल्याङ्कन होना चाहिए।

इस लेखमे मैं समाजके पुनर्निर्माणमे किये गये महात्माजीके नवीन योगदान की चर्चातक ही अपनेको सीमित रखूंगा। गांधीजीने जो कुछ भी किया ह मेरा दृष्टिमें उनका यह योगदान उन सभी कार्योंके मूलमे ह क्योंकि इसके द्वारा उन्होंने मानव-समाजकी उस व्याधिके निराकरणका उपाय सुझाया ह जिससे वह चिरकालसे ग्रस्त और संत्रस्त रहा ह।

१९३१ म 'यंग इण्डिया' म उन्होंने लिखा ह

मैंने अनुभव किया ह कि जीवन विनाशके मध्य भी वर्तमान रहता ह इसीलिए विनाशके नियमकी अपेक्षा कोई दूसरा उच्चतर नियम भी होना चाहिए। केवल कानूनके अन्तर्गत ही संघटित किया सुव्यवस्थित समाजका कोई अर्थ हो सकता ह और जीवन जीने योग्य हो सकता ह। और यदि यही जीवनका नियम ह तो हमें रोजके जीवनम इस नियमको कार्यान्वित करना ह। जहाँ कहा भी कोई वमन्स बातें हों जहाँ कहा भी आपको किसी विरोधीका सामना करना हो तो उसे प्रेमसे जीतिये।

मोटे तौरपर इसी ढगसे मैंने जीवनके इस नियमको अपने जीवनमे कार्यान्वित किया है। इसका यह अर्थ नही है कि मेरी सभी कठिनाइयाँ हल हो गयी हैं। मैने केवल यही देखा है कि प्रेमका यह नियम विनाशके नियमसे कही अधिक प्रभावकारी रहा है····

दुनियाके सभी महापुरुषो और उपदेष्टाओने इस नियमका न्यूनाधिक ओजस्विताके साथ उपदेश किया है। यदि प्रेम जीवनका नियम न होता तो जीवन विनाशमे कायम न रह पाता। जीवन मृत्युपर शाश्वत विजय है। यदि मनुष्य और पशुमे कोई मौलिक अन्तर है तो वह इसी बातमे है कि मनुष्य इस नियमको अधिकाधिक मान्यता प्रदान करते हुए अपने व्यक्तिगत जीवनमे इसका प्रयोग करता आया है। ससारके सभी प्राचीन और आधुनिक सत अपने विचार और सामर्थ्यके अनुरूप हमारी आत्माके इस सर्वोत्कृष्ट नियमके ही सजीव उदाहरण है। यह ठीक है कि हमारे अन्दरका पशु प्राय. आसानीसे विजयी होता दिखायी देता है, किन्तु इससे प्रेमका नियम अप्रमाणित हो जाता हो, ऐसी बात नही है। इससे केवल अभ्यासकी कठिनाईका ही पता चलता है। किसी ऐसे नियमके साथ, जो सत्यके समान ही श्रेष्ठ है, दूसरी बात कैसे हो सकती है? जब इस नियमका व्यवहार सार्वभौमिक हो जायगा तो परमात्मा उसी स्वर्गके समान ही इस ससारमे भी शासन करने लगेगा। मुझे किसीको यह याद दिलानेकी आवश्यकता नही है कि यह लोक और परलोक (स्वर्ग) हमारे अन्दर ही है। हम अपने भीतरके इस लोकसे तो परिचित है, किन्तु स्वर्गसे अपरिचित है। यदि यह कहा जाय कि प्रेमका आचरण कुछ लोगोके लिए ही संभव है तो भी दूसरोके लिए इस आचरणकी सम्भावनातकका निषेध कर देना औद्धत्य ही कहा जायगा। अनतिदूर अतीतमे ही हमारे पूर्वज नरभक्षण और ऐसे ही अन्य कृत्योके अभ्यासी थे, जो आज हमारे लिए जघन्य है। इसमे सदेह नही कि उन दिनोमे भी डिक शेपार्ड रहे होगे, जिनका अपने ही भाई-बधुओके भक्षणसे इनकार करनेके विचित्र सिद्धान्तका उपदेश देनेके कारण मजाक उड़ाया जाता रहा होगा या संभवत. इसी कारण जिन्हे मार भी डाला गया होगा।

जीवन विनाशके मध्यमे भी कायम रहता है, इसे समझानेके लिए प्रमाण देना शायद ही आवश्यक हो। हम ज्यो ही संसारमे पदार्पण करते है, माँका पौष्टिक दूध

हमारे लिए तैयार रहता ह । हमार माता पिता हमारी रक्षा करनेक लिए मौजूद रहते ह । हमारी अतिरिक्त सबाके लिए सुय जल, वायु आकाश और सबक उपर पृथ्वी माता जसी सृष्टिकी महान निधियाँ ता प्रस्तुत रहती हा है । हर समयपर हमार लिए विकास करनेके अवसर भी सुलभ रहत ह । उस अन्तस्य स्रष्टाका ओरस किय गये ये सार प्रयत्न व्यथ होत, यदि उसका यह उद्द्य न हाता कि मृत्युक बीच भी जीवन कायम रह । इसमें सन्दह नही कि प्रकृतिम निमाण भी दिखायी देता ह । शायद किसी दिन यह सत्य भा सतोपजनक रीतिम सिद्ध और प्रतिष्ठित हो जायगा कि प्रकृतिक सकेतपर जा विनाश होता ह, उसका एक गभीरतर अथ ह और वह भी रचनात्मक हा ह ।

हमार चमडका रग चाहे जा भा हा, हम चाह ससारक किसा भा क्षत्रम पैदा हुए हा, हमारी जा भा जाति हा अथवा हम जिस किसी धमक अनुयायी हा प्रेम सतकता, ध्यान और परिशीलन जसे गुण जिनका चरम विकास कौटुम्बिक जीवनकी इच्छास दिखायी देता ह विकास, वृद्धि और ज्ञानकी इच्छा, जिसकी चरम परिणति आत्मसाक्षात्कारकी इच्छामें दिखायी दती ह, स्वतत्रताकी प्ररणा और गरिमाके रक्षणकी चिन्ता मानव-जातिम समान रूपसे पायी जाती ह । य सार गुण मानव-स्वभावक मौलिक अग ह । कम-स-कम इनस कुछ प्ररणाए तो मानवतर प्राणियोमें नही पायी जाती ।

फिर भी हम कहाँ ह ? इस तथ्यका अविसवादित साक्ष्य प्रस्तुत किया जा सकता ह कि हम घणाक इतन अभ्यस्त हो चुक ह कि व्यक्तिक और सामूहिक घृणा तथा सहकारक अभावक प्रति हमारी सवदनशीलता हा समाप्त हो चुका ह । हम एक एसी सामाजिक पद्धतिक निमाणम सलग्न ह जिसका प्रतिदिन स्वातत्र्य और गरिमाकी हमारी आन्तरिक अभिलाषास सघष हुआ करता ह । हम एक ऐसी आर्थिक प्रणालीमे आवद्ध हा चुक ह जा सजाव-मानवाके स्थानपर कवल कराडाकी सख्याका स्थापित करता जा रहा ह और उन्हे यन्त्राम बदलता जा रहा ह । इस सारा व्यवस्थाम जिसका निमाण मनुष्यकी शान्ति स्वतत्रता गरिमा और सौख्यक लिए हुआ था स्वय अपन हा कल्याणकारी उद्देश्यका नष्ट करनकी प्रवृत्ति दिखायी देने लगी ह ।

"ओरवलक उन्नीस सौ चौरासी क उपसहारम यदि एरिक फामन निम्न लिखित विचार व्यक्त किय ह तो इसम काई आश्चयकी बात नहीं ह

> यह सवाल एक साथ ही दाशनिक नृतात्त्विक मनोवैज्ञानिक और शायद धार्मिक भी ह कि क्या मानवीय स्वभावको इस प्रकार बदला जा सकता

है कि आदमी स्वतन्त्रता, गरिमा, चारित्रिक दृढता और प्रेमके प्रति अपनी नैसर्गिक अभिलाषाको भूल जाय ? अथवा क्या मानवीय स्वभावमे एक ऐसी गतिशीलता है, जिसकी इन आधारभूत मानवीय अपेक्षाओके उल्लङ्घनके विरुद्ध प्रतिक्रिया होगी ही, जो समानवोचित समाजको मानवीय समाजमे वदल डालनेके प्रयासके रूपमे प्रकट होगी ?

गाधीजी अपने यावज्जीवन इसी प्रश्नका उत्तर देने और समाजकी जडमे पहुँचकर प्रत्यक्ष प्रयोग द्वारा इसके व्यावहारिक प्रभावको प्रदर्शित करनेमे लगे रहे। उनकी प्रात कालीन प्रार्थनाएँ ईशोपनिपद्के इस श्लोकसे शुरू होती थी .

ईशावास्यमिदं सर्व यत्किञ्च जगत्यां जगत्

और रन्तिदेवके इस जीवनोद्देश्यसे समाप्त होती थी

कामये दु.खतप्ताना प्राणिनामार्तिनाशनम्

प्रथम श्लोक स्रष्टा और उसकी सृष्टिके पारस्परिक सवंध सूत्रके, जिसमे मानव-जाति भी शामिल है, अवाधित नैरन्तर्यके सिद्धान्तको अभिव्यक्त करता था और रन्तिदेवका श्लोक समस्त मानवीय सत्ताका उद्देश्य प्रकट करता है। यह सवंध गाधीजीके दो शब्दोमे सर्वोत्तम रीतिसे अभिव्यक्त हुआ है

> जवतक हम 'परमात्मा' से जीवनके विधानका ही अर्थ ग्रहण करते है, इससे कोई अन्तर नही पडता कि हम उसे किस नामसे पुकारते है— दूसरे शब्दोमे विधान और विधानका स्रष्टा एक-दूसरेसे अभिन्न है।

यदि हम जीवनको समग्र रूपमे देखें तो हम अपनी सीमित समझसे भी अबाधित नैरन्तर्यके इस सिद्धातको वरावर क्रियान्वित होते देख सकते है। यह नैरन्तर्य सूर्य और हमारी आँखो तथा उन रूपोके वीच, जिन्हे हम देखते हैं, आकाश और कम्पन, शब्द तथा हमारे कानोके वीच, वायु, स्पर्श और त्वचा तथा जल, स्वाद और रसना एवं पृथ्वी, सोरभ और घ्राणेन्द्रियके वीच वरावर कार्य करता हुआ दिखायी देता है। हम अपने अज्ञान या उदासीनतासे इन वस्तुओको एक-दूसरेसे पृथक् मान लेते है और ऐसा समझने लगते है कि वे स्वतन्त्र है और उनमे कोई सवध नही है। फिर भी यह सवंध तो रूप, रस, शब्द, स्पर्श और गधग्रहण करनेकी प्रत्येक क्रियाके माध्यमसे प्रतिफलित होता रहता है। यही स्थिति सचेतन मन, अवचेतन मन, अन्त.प्रज्ञा और सार्वभौमिक चेतनाके पारस्परिक संवंधमे भी है। विलियम जेम्स जैसे महान् दार्शनिक ने भी इस सवंधमे यही कहा है :

> वह (विकसित व्यक्ति) यह अनुभव करने लगता है कि उसकी उच्चतर चेतनामें वही गुण मौजूद है, जो किसी और श्रेष्ठतर चेतनामे पाया

> जाता है, वह उसी श्रेष्ठतर चेतनाका अंग है, जो उसके बाहर व्याप्त सृष्टिमें कार्यरत है और उसके साथ वह क्रियात्मक रूपसे सम्पर्क बनाये रख सकता है तथा एक प्रकारसे उसके स्तरतक उठकर उस समय भी अपनी रक्षा कर सकता है, जब कि उसकी निम्नस्तरीय सत्ताका सब कुछ छिन्न भिन्न होकर विनष्ट हो चुका हो।

उस महान तन्तुवाय (विधाता) अपनी सृष्टिमें छोटी-से छोटी प्रत्येक वस्तु ऐसी ही दक्षतासे बुन रखी है। हम केवल अपने गलत तरहके प्रशिक्षण और गलत प्रकारके पर्यावरणके कारण ही हम उस ऐक्य भावनाको नहीं समझ पाते, जो सृष्टिके प्रत्येक कणमें निरन्तर विद्यमान है। वैयक्तिक अहंकार और स्वार्थ, समूहगत, जाति या वर्गगत तथा राष्ट्रगत अहंकार और स्वार्थ उस मूलभूत ऐक्यसे हमें दूर ले जाते हैं। ये सारी भ्रान्तियाँ हमारी अपनी सृष्टि हैं। इतना ही नहीं समाजका हृदय परिवर्तन और अनुनय विनयके आधारपर अपने साथ ले चलनेके बजाय हमने राष्ट्रभक्ति धर्म तथा अन्य हर प्रकारके वादोंके नामपर दूसरोंको अपना गुलाम बनाने और उनका शोषण करनेके तरह तरहके तरीके निकाल रखे हैं। इस तरह हमने ऐसी कुत्सित प्रणालीका निर्माण कर लिया है जो एक ओर हमारे नैसर्गिक मानवीय प्रकृति और चरित्र तथा दूसरी ओर हमारे अस्तित्वके लिए निरूपित ऐसे उद्देश्योंके बीच उग्र विरोधपर आधारित है जिनकी हमने अत्यन्त विकृत एवं विदूषित अवधारणा बना ली है।

गांधीजीकी महानता इस बातमें है कि वे इन सीमित दृष्टिकोणोंसे विचलित नहीं हुए और उन्होंने हमारी वर्तमान सामाजिक व्यवस्थाके सामने टेककर घुटने टेकनेसे इनकार कर दिया। स्रष्टा और सृष्टिके उद्देश्यकी अविच्छेद्य एकताका साक्षात्कार कर लेनेके बाद वे सीधे समस्याके मूलतक पहुँचनेके लिए तैयार हो गये। उन्हें वर्तमान सारी समस्याओंका मौलिक समाधान एक ऐसी जीवन प्रणालीके विकासमें दिखायी दिया जो निखिल सृष्टिके उस उद्देश्यके अनुरूप हो जिसका साम्य हमें बराबर मनुष्यकी मौलिक प्रेरणाओंमें मिलता रहता है। उन्होंने ईश्वरको सत्यका नाम देकर आस्तिक और नास्तिकके बीचके सारे विवादकी जड़ ही काट दी :

> मैं उस महान शक्तिको अल्लाह, खुदा, गॉड या ईश्वरके नामसे नहीं पुकारता। मैं उसे सत्यके नामसे पुकारता हूँ। क्योंकि ईश्वर सत्य है और सत्य उसके सभी अन्य नामोंका अतिक्रमण कर जाता है।

सत्यकी गहराइयोंतक पहुँचकर उन्होंने यह समझ लिया कि सारा मानव

जाति एक परिवार है और वह वहींतक उन्नति कर सकती है, जहाँतक सत्य-की अपेक्षाओके अनुरूप चलती हो। उन्हे मानव-जातिकी समृद्धिकी चिन्ता थी, किन्तु एक व्यावहारिक आदर्शवादी होनेके नाते उन्होंने यह भी अनुभव किया कि ईश्वरके स्थानपर सत्यकी प्रतिष्ठा कर देना ही पर्याप्त नही है। वे जानते थे कि मनुष्य जिस तरह ईश्वरके नामपर लडता आ रहा है, उसी तरह वह सत्य-के नामपर भी लड़ने लगेगा। अतएव उन्होने उन झगड़ोंको दूर करनेका एक नया तरीका भी सामने रखा। यदि असत्यने अध.पतित होकर एक बुराईका रूप ग्रहण कर लिया हो तो वे उसके खिलाफ हथियार नही उठायेंगे; किन्तु वे किसी भी हालतमे उससे सहयोग नही करेंगे, उसके साथ उनका कोई सहकार नही होगा। यदि ऐसी हालतमे दूसरी ओर उनपर जबर्दस्ती बुराई और असत्यको लादनेका प्रयत्न किया गया तो वे निष्क्रिय प्रतिरोधका रास्ता अपनायेंगे। यदि बुराई किसी शासन-सत्ताके रूपमे है तो वे सविनय अवज्ञाका मार्ग चुनेगे। वार्ता और विचार-विमर्शसे अपने विपक्षीका हृदय-परिवर्तन करनेमे विफल हो जानेपर वे सत्याग्रह शुरू करेंगे, जिसका तात्पर्य होता है सविनय और गौरवपूर्ण प्रति-रोधके साथ-साथ स्वयं हर तरहका कष्ट सहनेके लिए भी तैयार हो जाना। उन्होने हमारे चिन्तनके तरीको, मनुष्यके पारस्परिक सबंधो, आजकी शिक्षा-व्यवस्था तथा विश्वकी अर्थप्रणालीमे क्रान्तिकारी परिवर्तन लानेका प्रयोग किया। क्योकि इन सब चीजोमे उन्होने यही देखा कि आजके मानव-समाजने एक अभाग-वत और असत्य जीवन-प्रणाली स्वीकार कर लिये, जो इसी कारणसे अप्राकृतिक भी है। उन्होने इसके स्थानपर एक दूसरे प्रकारकी जीवन-प्रणालीका विकल्प प्रस्तुत किया, जिसके लिए अनुकूल वातावरण तैयार करनेका प्रमुख साधन सत्याग्रह था। उन्होंने एक ऐसे वातावरणका निर्माण करना चाहा था, जिसकी जडे मनुष्य-के उदात्त नैसर्गिक स्वभावमे पायी जाती है और इसके लिए उन्होने कार्य करनेके ऐसे साधन बताये, जिनमे साध्यके साथ किसी प्रकारका समझौता नही किया जाता और साध्य बराबर दृढ होता जाता है। हम उसके पास पहुँचते जाते है। सत्या-ग्रह एक ऐसी जीवन-प्रणाली है, जो मात्र सत्यपर—मनुष्यकी स्वाभाविक सद्वृत्ति-की नीवपर आधारित है। वे बार-बार अपनी श्रद्धाकी बुनियाद तक पहुँचे है। उन्होने कहा है

> अहिंसा हमारी मानव-जातिका कानून है, जब कि हिंसा पशुका कानून है। पशुमे आत्मा सुप्त पडी रहती है और उसे भौतिक शक्ति (पशु-बल) से भिन्न और किसी कानूनका ज्ञान नही होता। मनुष्यकी गरिमा उससे

किसी उन्नततर विधाता—आत्मानिका पालन करनेकी अपेक्षा रखती है।

कोई भी प्रतिरोध जो इस प्रकारकी जीवन प्रणाली और मूल्योंमें निष्ठा न रखता हो सत्याग्रह नहीं हो सकता। फिर चाहे हम उसे जो भी नाम दें और उसके पीछे चाहे जो भी औचित्य हो। इसके विपरीत ऐसी जीवन प्रणालीके मूल्योंके प्रति निष्ठावान प्रतिरोध मानवीय जीवन और उसके उद्देश्योंका सारतत्त्व है। उस विरोधोंसे भरी हुई आजकी व्यवस्थाको बदलनेका अथक प्रयत्न स्वतः ऐसा होना चाहिए जिससे सच्ची और ईमानदार जिन्दगीका मार्ग प्रशस्त हो। यहाँ जीवन और उसका उद्देश्य एकाकार हो जाता है।

गांधीजीकी योजनामें कोई अन्तर्विरोध नहीं था। उसमें किसी काम चलाऊ सत्य या 'दुरंगी नीति' के लिए कोई गुंजाइश नहीं था। यहाँ मनुष्यका उद्देश्य सेवा करना था शासन करना नहीं। उनकी योजनामें राजनीतिके लिए स्थान था किन्तु उसका भी उद्देश्य सेवा ही था, प्रभुत्व जमाना नहीं। उसमें अर्थनीतिके लिए भी स्थान था, किन्तु उसका उद्देश्य भी समानताके आधारपर काम रोजगार जीविकाके लिए अवसर प्रदान कर समाजका विकास करना था न कि परस्वापहरण करना या शोषण करना। उनकी योजनाके अनुसार किसी भी ऐसी शासनसत्ता का, जो प्रभुत्व जमाती हो किसी भी ऐसी राजनीतिका जो मनुष्यको भेंड़ समझती हो, ऐसी अर्थनीतिका परस्वापहरण और शोषणपर आधारित हो और ऐसी सामाजिक व्यवस्थाका जो घृणा और हिंसापर प्रतिष्ठित हो मानव गरिमाके अनुरूप अर्थात अहिंसा द्वारा प्रतिरोध करना अपरिहार्य कर्तव्य हो जाता था। ये दोनों बातें स्रष्टाके उद्देश्यके अनुरूप जीवनके उद्देश्यकी सिद्धिके लिए अपनायी गयी अविभाज्य प्रक्रियाकी अभिन्न अंग थी।

उनके द्वारा संचालित विभिन्न संघर्षोंके समान ही उनका रचनात्मक कार्यक्रम भी मनुष्यकी सुप्त आत्माके जागरणके लिए ही प्रस्तुत किया गया था। इसमें सबसे पहले साहसकी ही आवश्यकता पड़ती थी। चम्पारनका सत्याग्रह जलियांवाला बाग खेड़ा सत्याग्रह, नमक सत्याग्रह व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा और भारत छोड़ो जैसे सारे संघर्षोंका उद्देश्य यही था कि भारतकी पददलित दीन हीन जनता अपनी हीनताकी ग्रंथिको तोड़ फेंके और स्वतन्त्र मनुष्योंके समान अपनी प्रतिष्ठा और आत्म गौरवकी रक्षाके लिए उठ खड़ी हो। इस संघर्षमें खादी स्वातन्त्र्यताका बाना बन गयी थी। इसके साथ ही खादी गांवोंकी शोषित मेहनतकश किसान जनताके साथ तादात्म्यका भी प्रतीक था। अस्पृश्यता विरोधी आन्दोलन यदि एक

सवर्ण हिन्दुओने हरिजनोके प्रति अवतक भेदभाव वरतकर जो घृणित अपराध किया था, उसके लिए प्रायश्चित्त करनेका साधन था तो दूसरी ओर हरिजनोके लिए मानव-परिवारमे सम्मान और गौरवका स्थान प्राप्त करनेका भी साधन था। गांधीजीकी योजनाका यह उद्देश्य था कि समाजमे स्त्रियोंको भी पुरुपके समान प्रतिष्ठा प्राप्त हो। ग्रामोद्योगों द्वारा गाँवोके बेरोजगार या कम रोजगार पानेवाले लोगोको जीविकाका साधन मिले और उनकी भी आर्थिक स्थिति सुदृढ हो। कृपि, भोजन, पशुधन-विकास, घरेलू उद्योग-धन्धे और बुनियादी शिक्षा—इन सारी चीजो द्वारा गांधीजी चाहते थे कि देशमे ऐसी अर्थ-प्रणालीका विकास हो, जो किसी भी रूपमे परतन्त्र न हो। उन्होने मजदूरो और किसानोमे काम करनेकी जो योजना बनायी थी, उसका लक्ष्य उनमे स्वार्थोकी टकराहट पैदा करना नही, वल्कि ऐसी स्थिति पैदा करना था, जिसमे सम्पन्न और दरिद्रवर्गोमे सामञ्जस्य स्थापित हो सके और जिन लोगोके पास दूर दृष्टि है, जो महत्त्वाकाक्षी और धनी है, उन्हे भी ट्रस्टियोके रूपमे मानव-जातिके सेवा करनेके अवसर सुलभ हो। उनकी योजनानुसार राजसत्ताका उद्देश्य सेवा करना था, शासन करना नही। वे यह भी चाहते थे कि अन्तरराष्ट्रीय विवादोको मध्यस्थता द्वारा हल किया जाय, जैसा कि एक परिवारमे होता है, किन्तु इसके लिए पहली शर्त यह है कि मध्यस्थता स्वतंत्र इच्छाके अनुसार हो, किसी भी पक्षपर उसे लादा न जाय।

अब मैं इस नयी जीवन-प्रणालीका चित्र पिटरिम सोकोरिनके एक उद्धरणसे सम्पूर्ण करना चाहता हूँ। वे अपनी महान् कृति 'रिकन्स्ट्रक्शन आफ ह्यूमैनिटी' के अन्तमे एक प्रश्न करते हुए उसका उत्तर अपनी अनुकरणीय शैलीमे इन शब्दोमे प्रस्तुत करते है .

> यहाँ आकर 'कटु यथार्थवादी' पाठकको भी अपनी बेसब्री जाहिर करने और यह सवाल पूछनेका मौका दिया जा सकता है कि . आखिर इसकी क्या गारण्टी है कि यह सारी योजना एक स्वप्नमात्र या एक ऐसा काल्पनिक मनोराज्य मात्र नही है, जो कभी साकार हो ही नही सकता? क्या यह इतनी व्यापक और कठिन नही है कि कोई इसके व्यावहारिक अथवा संभव होनेतककी बात भी नही सोच सकता? वर्तमान संकटसे मुक्ति पानेका क्या कोई और आसान एव व्यावहारिक तरीका नही हो सकता? क्या हम कुछ राजनीतिक अथवा आर्थिक परिस्थितियो, स्कूलोके पाठ्यक्रमो, तलाक-संबंधी कानूनो या श्रम और प्रबन्धके पारस्परिक संबंधोमे परिवर्तन करके मुक्तिकी दिशामे थोडा भी नही बढ सकते?

किसी उन्नत विचारा—आमवाक्तिरा पारन रतेवा अपेक्षा रखती ~।

कोई भी प्रतिरोध जो इस प्रकारा जीवन प्रणालीके मूल्योंमें निष्ठा न रखता हो सत्याग्रह नहीं हो सकता। फिर चाहे हम उसे जो भी नाम दें और उसके पीछे चाहे जो भी औचित्य हो। इसके विपरीत एसी जीवन प्रणालीके मूल्यों के प्रति निष्ठावान प्रतिरोध मानवीय जीवन और उसके उद्देश्योंका सारतत्त्व है। उस निराशा भरी हुई आजकी व्यवस्थाको बदलनेका अथक प्रयत्न स्वत ऐसा होना चाहिए जिसमें सच्ची और ईमानदार जिन्दगीका मार्ग प्रशस्त हो। यहाँ जीवन और उसका उद्देश्य एकाकार हो जाता है।

गांधीजीका योजनामें कोई अन्तर्विरोध नहीं था। उसमें किसी 'काम चलाऊ सत्य' या दुरंगी नीति के लिए कोई गुंजाइश नहीं थी। यहाँ मनुष्यका उद्देश्य सेवा करना था शासन करना नहीं। उनकी योजनामें राजनीतिके लिए स्थान था किन्तु उसका भी उद्देश्य सेवा ही था, प्रभुत्व जमाना नहीं। उसमें अर्थनीतिके लिए भी स्थान था किन्तु उसका उद्देश्य भी समानताके आधारपर काम, रोजगार, जीविकाके लिए अवसर प्रदान कर समाजका विकास करना था न कि परस्वापहरण करना या शोषण करना। उनकी योजनाके अनुसार किसी भी एसी शासनसत्ता का जो प्रभुत्व जमाती हो किसी भी एसी राजनीतिका जो मनुष्यको भेंड़ सम धती हो, एसी अर्थनीतिका परस्वापहरण और शोषणपर आधारित हो और ऐसी सामाजिक व्यवस्थाका जो घृणा और हिंसापर प्रतिष्ठित हो मानव गरिमाके अनुरूप अर्थात अहिंसा द्वारा प्रतिरोध करना अपरिहार्य कर्तव्य हो जाता था। ये दोनों बातें सृष्टाके उद्देश्यके अनुरूप जीवनके उद्देश्यकी सिद्धिके लिए अपनायी गयी अविभाज्य प्रक्रियाकी अभिन्न अंग थी।

उनके द्वारा सचालित विभिन्न संघर्षोंके समान ही उनका रचनात्मक कार्य क्रम भी मनुष्यकी सुप्त आत्माके जागरणके लिए ही प्रस्तुत किया गया था। इसमें सबसे पहले साहसकी ही आवश्यकता पड़ती थी। चम्पारनका सत्याग्रह जालियावाला बाग खेरा सत्याग्रह नमक सत्याग्रह व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा और 'भारत छोडो' जैसे सारे संघर्षोंका उद्देश्य यही था कि भारतकी पददलित दीन हीन जनता अपनी हीनताकी ग्रंथिको तोड फेंके और स्वतन्त्र मनुष्यके समान अपनी प्रतिष्ठा और आत्म गौरवकी रक्षाके लिए उठ खड़ी हो। इस संघर्षमें खादी स्वातन्त्र्यताका बाना बन गयी थी। इसके साथ ही खादी गाँवोंकी शोषित, मेहनतकश किसान जनताके साथ तादात्म्यका भी प्रतीक था। अस्पृश्यता विरोधी आन्दोलन यदि एक

सवर्ण हिन्दुओने हरिजनोके प्रति अवतक भेदभाव वरतकर जो घृणित अपराध किया था, उसके लिए प्रायश्चित्त करनेका सावन था तो दूसरी ओर हरिजनोके लिए मानव-परिवारमें सम्मान और गौरवका स्थान प्राप्त करनेका भी साधन था। गाधीजीकी योजनाका यह उद्देश्य था कि समाजमें स्त्रियोको भी पुरुपके समान प्रतिष्ठा प्राप्त हो। ग्रामोद्योगो द्वारा गाँवोंके वेरोजगार या कम रोजगार पानेवाले लोगोको जीविकाका सावन मिले और उनकी भी आर्थिक स्थिति सुदृढ हो। कृपि, भोजन, पशुधन-विकास, घरेलू उद्योग-धन्धे और वुनियादी शिक्षा—इन सारी चीजो द्वारा गाधीजी चाहते थे कि देशमे ऐसी अर्थ-प्रणालीका विकास हो, जो किसी भी रूपमें परतन्त्र न हो। उन्होने मजदूरो और किसानोमे काम करनेकी जो योजना वनायी थी, उसका लक्ष्य उनमे स्वार्थोकी टकराहट पैदा करना नही, वल्कि ऐसी स्थिति पैदा करना था, जिसमें सम्पन्न और दरिद्रवर्गोमे सामञ्जस्य स्थापित हो सके और जिन लोगोके पास दूर दृष्टि है, जो महत्त्वाकाक्षी और धनी है, उन्हे भी ट्रस्टियोके रूपमे मानव-जातिके सेवा करनेके अवसर सुलभ हो। उनकी योजनानुसार राजसत्ताका उद्देश्य सेवा करना था, शासन करना नही। वे यह भी चाहते थे कि अन्तरराष्ट्रीय विवादोको मध्यस्थता द्वारा हल किया जाय, जैसा कि एक परिवारमे होता है, किन्तु इसके लिए पहली शर्त यह है कि मध्यस्थता स्वतंत्र इच्छाके अनुसार हो, किसी भी पक्षपर उसे लादा न जाय।

अव मैं इस नयी जीवन-प्रणालीका चित्र पिटरिम सोकोरिनके एक उद्धरणसे सम्पूर्ण करना चाहता हूँ। वे अपनी महान् कृति 'रिकन्स्ट्रक्शन आफ ह्यूमैनिटी' के अन्तमे एक प्रश्न करते हुए उसका उत्तर अपनी अनुकरणीय शैलीमें इन शब्दोमे प्रस्तुत करते है :

> यहाँ आकर 'कटु यथार्थवादी' पाठकको भी अपनी वेसब्री जाहिर करने और यह सवाल पूछनेका मौका दिया जा सकता है कि . आखिर इसकी क्या गारण्टी है कि यह सारी योजना एक स्वप्नमात्र या एक ऐसा काल्पनिक मनोराज्य मात्र नही है, जो कभी साकार हो ही नही सकता ? क्या यह इतनी व्यापक और कठिन नही है कि कोई इसके व्यावहारिक अथवा सभव होनेतककी वात भी नही सोच सकता ? वर्तमान संकटसे मुक्ति पानेका क्या कोई और आसान एवं व्यावहारिक तरीका नही हो सकता ? क्या हम कुछ राजनीतिक अथवा आर्थिक परिस्थितियो, स्कूलोके पाठ्यक्रमो, तलाक-संवंधो कानूनो या श्रम और प्रवन्धके पारस्परिक संवंधोमे परिवर्तन करके मुक्तिकी दिशामे थोडा भी नही वढ सकते ?

हमारे कट्टु यथार्थवादी व्यावहारिक पाठकको उसी तरहका कट्टु यथार्थवादी व्यावहारिक उत्तर भी दे देना आवश्यक है और वह उत्तर यह है। नहीं इससे अधिक आसान और व्यावहारिक कोई दूसरा रास्ता नहीं है। अगर कोई ऐसा दूसरा रास्ता दिखायी देता हो तो वह कहीं अधिक अव्यावहारिक होगा।

कम-से-कम भारतके लिए तो और कोई रास्ता नहीं है। गांधीजी भारतको जितना समझते थे, उतना कोई समझ नहीं सकता। यदि भारत अपनी भारतीयता को पूरी तरह तिलांजलि नहीं दे देना चाहता, तो उसे उसी रास्तेकी ओर लौटना होगा जिसे गांधीजी ने दिखाया।

आर० आर० दिवाकर

सत्य और अहिंसा : नये आयाम

गाधीने कहा था कि 'सत्य और अहिंसा पर्वतोके समान प्राचीन है । मैने केवल यही किया है कि उन्हे जीवन और इसकी समस्याओंपर लागू किया है ।' उनके भाषणो और लेखोमे इन दो शब्दोका असंख्य वार प्रयोग हुआ है और इनपर न जाने कितनी वार उन्होने अपनी टिप्पणियाँ दी है । इन दो शब्दोके जिन अर्थोका उन्होने उद्‌घाटन किया है और इनकी जो व्याख्या उन्होने प्रस्तुत की है, उसने इन्हे नये आयाम प्रदान कर दिये है । ये दोनो शब्द उनके जीवन और दर्शनके मन्त्र थे ।

इसमे संदेह नही कि इन दो शब्दोमे भी सत्यको ही उन्होने प्रमुखता दी है । वे सत्यके मात्र अविश्रान्त अन्वेषक ही नही थे, वे उसके आराधक भी थे । उन्होने अपने जीवनको ही "सत्यके साथ किये गये प्रयोगो" का एक क्रम कहा है । इस कथनसे उन्होने सत्यके संवधमे अपने वैज्ञानिक दृष्टिकोणको ही व्यक्त किया है । उन्होने कभी यह दावा नही किया कि उन्होने सत्यको पा लिया है । उन्होने विनम्रतापूर्वक यही कहा है कि मै वरावर सत्यकी खोजमे लगा हुआ हूँ ।

उनके लिए सत्य वह आदर्श था, जिसके लिए सतत साधना अपेक्षित होती है, इसकी प्राप्तिके लिए मनुष्यको वरावर प्रयत्नशील रहना चाहिए, यद्यपि यह असीम होनेके कारण वरावर हमारी पहुँचसे वाहर होता जाता है । यही वात अहिंसाके संवंधमे भी है । उन्होंने कहा है कि सम्पूर्ण अहिंसा भी किसी भी जीवित प्राणीके लिए असंभव है, क्योकि किसी भी छोटे-से-छोटे प्राणीमे श्वास-प्रश्वासकी प्रक्रिया भी उसके विनाशका ही द्योतक है ।

अव इन दोनो शब्दो सत्य और अहिंसामे क्या पारस्परिक सवंध है, इसपर विचार करना चाहिए । गाधीके जीवन, चिन्तन और कर्मपर विचार करनेसे इनके अविच्छेद्य और महत्त्वपूर्ण संवंधसूत्रका पता चल जाता है । मै इस संवंध-

सूत्रको इस कथनसे प्रकट करना चाहता हूँ कि गांधीके लिए सत्यका मार्ग अहिंसाके माध्यमसे था। अतएव यही कहना सबसे सही होगा कि गांधीका लक्ष्य और प्रयत्न अहिंसा द्वारा सत्यकी प्राप्ति ही थी। और अध्ययन करनेसे पता चलता है कि सत्यकी ओर जानेवाला सर्वोत्तम और सरलतम मार्ग अहिंसा ही है। यही नहीं गांधीके लिए अहिंसा सत्यका सर्वोत्तम मार्ग ही नहीं, अपितु एकमात्र मार्ग है।

अतएव यह कहा जा सकता है कि गांधीके लिए सत्य और अहिंसाका संबंध सूत्र तथा उनके जीवन और अनुशासनको अनुप्रेरित करनेवाला उनका मौलिक दृष्टिकोण इस वाक्यमें निहित है कि 'अहिंसा ही सत्यकी उपलब्धिका एकमात्र माध्यम है। अपने इस एकान्तिक दृष्टिकोणके कारण ही गांधीका स्थान सत्यके अन्य साधकोंमें निराला है।

आरंभमें गांधी परमात्मामें अन्तिम वास्तविकता या सर्वोच्चशक्तिमें विश्वास करते थे। पहले उन्होंने कहा था कि 'परमात्मा ही सत्य है' किन्तु अन्ततः उन्होंने कहा कि 'सत्य ही परमात्मा है'। उन्होंने कहा है कि ईश्वरकी सत्तासे तो अनेक लोग इनकार भी कर सकते हैं किन्तु किसीको सत्यसे इनकार करनेका साहस नहीं हो सकता। कोई अपने प्रत्यक्षज्ञान और अनुभवकी सत्यतासे इनकार नहीं कर सकता। ऐसे इनकार करनेका अर्थ होगा स्वयं अपनेको अपनी सत्ताको और प्रत्यक्षज्ञानकी अपनी शक्तिको ही इनकार कर देना।

अब इसपर विचार करना चाहिए कि आखिर सत्य क्या है? आखिर वह कौन-सी वस्तु है जिसे खोजनेका प्रयत्न गांधी अपने जीवनके प्रत्येक क्षणमें करते रहे और जिसकी अनुभव करनेके संबंधमें उन्होंने आत्मसाक्षात्कार, परमात्माका प्रत्यक्षदर्शन जैसी अनेक शब्दावलियोंका प्रयोग किया है? स्पष्टतः वे सत्यके प्रत्यक्ष ज्ञानमात्रसे सन्तुष्ट नहीं थे वे सत्यको पहचानने उसका साक्षात्कार करने उसे जीवनमें प्राप्त और प्रतिष्ठित करनेके लिए अत्यधिक व्यग्र थे। वे संसारमें सत्यका शासन सत्ता और उसकी संभावनाके विधानका शासन स्थापित करना चाहते थे।

गांधी सत्यकी समग्रतामें विश्वास करते थे वे उस सत्यमें विश्वास करते थे जो सर्वातिशायी होनेके साथ-ही-साथ उसकी युगपत् गतिशील अभिव्यक्ति भी है। चूँकि सत्यने ही अपने सृष्टिरूपमें अभिव्यक्त किया है, अतएव इसका प्रश्न ही नहीं उठता कि सर्वातिशायी सत्ता उच्चतर है और उसकी अभिव्यक्ति निम्नतर। वस्तुतः मनुष्य अपनी सीमित शक्तियोंसे ही केवल अमूर्त चिन्तन द्वारा ही नहीं, अपितु अभिव्यक्त सृष्टि और विशेषतः उसके सजीव प्राणियोंके प्रति प्रेम एवं निःस्वार्थ सेवाके माध्यमसे सत्य और उसके साथ ऐक्य या तादात्म्यकी उपलब्धि कर सकता

है। ऐसी निःस्वार्थ सेवाके मार्गमें उसे हर तरहके वलिदानके लिए प्रस्तुत होना पडेगा, यहाँतक कि उसे मृत्युका भी सहर्ष स्वागत करना पड सकता है। सत्यकी दिशामे यह उसका अन्तिम कार्य होगा। गाधीके लिए सत्यके साक्षात्कारका यही मार्ग है, कोई दूसरा मार्ग हो ही नही सकता।

उन्होंने अपनी सम्पूर्ण चेतना इस तथ्यकी आध्यात्मिक अनुभूति प्राप्त की थी और इसका साक्षात्कार किया था कि समग्र जीवन मूलत एक ही है और यह सत्यकी ही अभिव्यक्ति है और उनका मानववाद इसी अनुभूतिमे निहित था।

सत्यके साथ ऐक्य, व्यष्टि द्वारा समष्टिकी एकताका साक्षात्कार ही उनके जीवनका सारतत्त्व था और यही चरम उपलब्धि तथा सर्वोच्च आनन्द एवं आह्लादका भी स्रोत था।

अव प्रश्न यह उठता है कि गाधीके लिए प्रतिदिनके जीवनमे इन सारी वातोका ठोस रूपसे क्या अर्थ होता है? उनके विचारसे यद्यपि सर्वातिशायी सत्य-का अनुभव व्यक्ति अपनी अन्तरात्मामे करता है, किन्तु अभिव्यक्त सत्य और मुख्यत सजीव प्राणियों एवं मनुष्यमे अभिव्यक्त होनेवाले सत्यका अनुभव उस प्रेम द्वारा ही हो सकता है, जो सत्ता और स्वार्थोके ऐक्यानुभवका ही दूसरा नाम है। इस तादात्म्यको सजीव प्राणियो एवं मनुष्यके साथ प्रेमके आधारपर प्रतिष्ठित सम्बन्धमे ही व्यक्त किया जा सकता है। सत्यान्वेषणमे मनुष्यको कम-से-कम मनसा-वाचा-कर्मणा सजीव प्राणियो और मानवके प्रति हिंसाका त्याग करना चाहिए। किन्तु प्रेम अथवा अहिंसाका सर्वोच्च रूप नि.स्वार्थसेवा और आवश्यकता पडनेपर आत्मवलिदानमे ही दिखायी देता है। इसका अर्थ यह होता है कि प्रेममे, जो स्वार्थोका एकत्ववोध ही है, मनुष्य अपने लिए जो कुछ कर सकता है, उसे उससे कही अधिक दूसरोके लिए करना पडता है। मनुष्य जिसे प्रेम करता है, उसके लिए आवश्यक होनेपर प्राणत्याग भी कर सकता है, जो वह केवल अपने सम्मानकी रक्षाके लिए ही कर सकता, अन्यथा नही।

यह ठीक है कि गाधीके लिए सत्यका सर्वातिशायीरूप आन्तरिक अनुभूति-का विषय था, किन्तु उनके लिए अनुदिनके जीवनमें इसका साक्षात्कार करना सर्वाधिक तात्कालिक महत्त्वका विषय था। इसीलिए अपने प्रत्यक्षज्ञान, पर्यवेक्षण और चिन्तन द्वारा दैनिक जीवनमे सत्यका अनुभव उनकी सतत साधनाका लक्ष्य वन गया था। व्यक्ति सत्यकी समग्रता (सर्वातिशायी और व्यापक सत्य) का अनुभव सामाजिक जीवन और दूसरोंके साथ अपने सवंधके अतिरिक्त और किसी रूपमे कर ही नही सकता। इसीलिए दक्षिण भारतमे श्रमिकोके कष्टका सवाल

हो, बेचारे किसानोंके उत्पीड़नका सवाल हो अथवा किसी एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्रपर गुलामी लादनेकी अपमानजनक स्थितिका प्रश्न हो, गांधीजी हर मामलेमें उत्पीड़ित मानवताके सहायार्थ अधिक-से-अधिक प्रयत्न करनेके लिए अनुप्रेरित हो उठते थे।

संसारमें चारों ओर बुराई, अन्याय, निरंकुशता और दैन्य एवं दुःखका साम्राज्य दिखायी देता है। ऐसी स्थितिमें स्वातंत्र्य-संग्राम योद्धा परिवर्तन करके गांधीने यही घोषणा की होती कि मनुष्य पैदा होनेके समय सुखी रहता है किन्तु आगे चलकर उसे सर्वत्र दुःख ही दुःख दिखाई देता है। मनुष्यको केवल स्वतंत्र नहीं होना है, उसे सुखी भी होना है। मनुष्य केवल स्वतंत्र होकर ही आत्मप्रयत्न द्वारा अपनी चरम प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकता है।

गांधीने निखिल मानवताके साथ, उसके सुख-दुःख, आशा-आकांक्षा और आन्तरिक प्रेरणाओंके साथ तादात्म्य स्थापित कर लिया था। उन्होंने अनुभव कर लिया था कि प्रेम द्वारा ही वे उसकी सेवा कर सकते हैं।

किन्तु यदि रास्तेमें कठिनाइयां आ जायं तो क्या किया जाय? ऐसी हालतमें क्या किया जाय, जब स्थितिविशेषके सत्यको दूसरे लोग उस रूपमें न समझ पाते हैं जिस रूपमें उन्हें उसका अनुभव हो रहा है? ऐसी स्थितिमें गांधीका यही कहना था कि मैं समस्त विरोधोंके बावजूद जिस सत्यका अनुभव कर रहा हूँ उसे प्रतिष्ठित करके दिखाऊँगा। सत्यका उन्होंने जिस रूपमें प्रत्यक्षज्ञान और अनुभव प्राप्त किया था, उसके लिए हर प्रकारकी कठिनाइयोंके विरुद्ध संघर्ष करनेकी उनकी यह सकारात्मक अभिवृत्ति ही उन्हें एक महान नैतिक प्रतिभासम्पन्न व्यावहारिक महापुरुषके रूपमें दूसरोंसे अलग करती है। जब कि दूसरे लोग सत्य की जानकारी प्राप्त कर लेने और उत्पीड़ितोंके प्रति सहानुभूति दिखा देनेसे ही संतोष कर लेते थे, गांधीजी संघर्षमें कूद पड़ते थे और विरोधी शक्तियोंके बीच उस मसलेको सक्रियरूपसे सुलझानेमें संलग्न हो जाते थे। इस मामलेमें वे सच्चे क्षत्रिय थे, जिनके लिए 'खतरा' ही सबसे बड़ा प्रलोभन था।

अच्छे उद्देश्योंके लिए संघर्ष करनेवाले दूसरे लोगोंसे गांधीजीको अलग करनेवाला दूसरा प्रमुख तत्त्व अहिंसा थी। वे इसपर सबसे अधिक जोर देते थे कि अन्याय, शोषण और निरंकुशताके विरुद्ध जमकर लड़ाई लड़नी चाहिए, किन्तु हर हालतमें हमारे शस्त्र विशुद्ध, नैतिक और अहिंसक हों। उनका कहना था कि स्थितिविशेषसे हमें जो प्रत्यक्षज्ञान और अनुभव हो रहा है, वह हमारे लिए पूर्णतः सत्य हो सकता है, किन्तु हर हालतमें दूसरोंके लिए भी वह वैसा ही होगा, इसका

साक्ष्य नही दिया जा सकता, अतएव यदि विरोधियोको अपने सत्यानुभव मनवा लेनेका सवाल है तो हमेशा अहिंसक साधनोका ही अवलंबन करना चाहिए। किसी भी मनुष्यको किसी भी ऐसी चीजको, जिसमे उसका अपना विश्वास हो, फिर चाहे वह उसके द्वारा साक्षात्कृत और मान्य सत्य ही क्यो न हो, दूसरोपर वलात्–हिंसा अथवा पशु-वलसे लादनेका कोई अधिकार नही है। इसीलिए उन्होने उच्चस्वरसे घोपित किया कि हिंसा जंगल-कानून है और अहिंसा हमारी अपनी मानव-जातिका कानून है। जीवनकी सभी समस्याओपर वे विचारोके आदान-प्रदानका मार्ग प्रशस्त करते थे, जिससे सत्यतक पहुँचा जा सके और यह मालूम किया जा सके कि मानव-मात्रका समान लक्ष्य क्या हो सकता है।

इस प्रकार उनकी अहिंसा या प्रेमके दो प्रमुख आधार थे समग्र जीवनके साथ तादात्म्यवोध और सत्यको भी हिंसा द्वारा दूसरोपर लादनेकी दृढ अस्वीकृति। यह दूसरा आधार ही उनके स्वेच्छापूर्वक कष्ट-सहनके सिद्धान्तके मूलमे था। जीवनकी एकता और विभिन्न स्वार्थोकी एकताके आन्तरिक अनुभवका एकमात्र अर्थ यही हो सकता है और यही होना भी चाहिए कि विभिन्न व्यक्तियो, समूहो और राष्ट्रोमे परस्पर प्रेमका संवंध स्थापित हो। प्रेम पारस्परिक समादरकी भावना, मैत्री और सहकारका ही रूप ग्रहण कर सकता है। प्रेम ही मानवोका एक-मात्र विधान हो सकता है, क्योकि इसीके द्वारा उनमें परस्पर तर्कसम्मत, न्यायपूर्ण नैतिक सवधोकी स्थापना हो सकती है। जहाँ स्वार्थोका संघर्प दिखाई दे, वह अहिंसा द्वारा ही दूर किया जा सकता है और अहिंसा द्वारा ही उसे दूर होना भी चाहिए, क्योकि अहिंसाका मार्ग पारस्परिक प्रेम और समानहितके सधानके अनु-रूप है।

उपर्युक्त परिप्रेक्ष्यमे देखनेपर दैनिक अनुभव और सासारिक जीवनका महत्त्व भी अमूर्त्त अथवा सर्वातिशायी सत्यके समान ही हो जाता है। आध्यात्मिक जीवन और हमारे दैनिक जीवनके वीचकी विभाजक रेखा मिट जाती है और मनुष्यको तर्कसंगत नैतिक जीवनके माध्यमसे समग्र जीवनके आध्यात्मिकीकरणकी ओर उसे उच्चतर स्तरपर प्रतिष्ठित करनेकी प्रेरणा प्राप्त होती है। इसमे व्यक्ति-गत मोक्ष, परलोक अथवा ऐसी ही किसी अमूर्त्त सूक्ष्म धारणाकी ओर पलायन करनेकी गुजाइश ही नही रह जाती। गाधीने चाहे जो भी हो जाय, किसी भी हालतमे वुराई और अन्यायके सामने आत्मसमर्पण न करनेका भी आह्वान दिया है। क्योकि वुराईके सामने किसी भी कारणसे किया गया आत्मसमर्पण नैतिक और आध्यात्मिक मृत्यु है। वे हमे यह तर्क करनेकी भी अनुमति नही देते कि हमारी

सख्या कम है या हममें शक्तिका अभाव है, इसलिए हम बुराई या अन्यायके विरुद्ध कसी सघष कर सकते हैं। गांधीजी इसे नही मानते, क्योकि उनके अनुसार किसी भी व्यक्तिको बुराईके खिलाफ बुराई या हिंसासे नही लडना है उसे अपनी आन्तरिक शक्ति और कष्टसहिष्णुताका विकास करके ही यह लडनी है।

ऐसा प्रतीत होता है कि गाधीने अपने प्रयोगोंका अहिंसाके एकमात्र माध्यमसे सत्यकी प्रतिष्ठा के उदाहरणरूपमें प्रस्तुत करते हुए इन्ही दिशाओंमे सत्य और अहिंसाको नये आयाम दिये हैं।

लुई फिशर

गांधीजी कहाँ हैं ?

डॉक्टर मार्टिन लूथर किंग जूनियरकी हत्या अमेरिकी राष्ट्रकी स्मृतिको क्षुब्ध कर रही है और अमेरिकाकी नियतिको नया स्वरूप दिये जा रही है। अमेरिकामे वे महात्मा गाधीके सर्वाधिक प्रभावशाली, प्रिय और कृतसङ्कल्प शिष्य थे। जीवनके अन्तिम श्वासतक उनका अहिंसामे अटल विश्वास बना रहा और उन्होने इससे जरा भी विचलित होनेसे इनकार कर दिया। अपनी मृत्युसे दस दिनो पूर्व उन्होने न्यूयार्कके हारलेममे हब्शियोको संबोधित करते हुए कहा था कि "अहिंसा हमारा सबसे शक्तिशाली अस्त्र है"। तीस वर्षके अल्पवयमे ही उनकी मृत्यु भी गाधीजीके समान ही हिंसाके हाथो हुई। उनके साथ ही अमेरिकी राष्ट्रके एक सर्वोत्तम अंगकी हत्या कर दी गयी। राष्ट्र अपने महानतम पुत्रोको मार डालते है।

मार्टिन लूथर किंग सविनय अवज्ञा आन्दोलनमे सफलतापूर्वक सलग्न हुए थे। उन्होने गाधीवादी तरीका अख्तियार किया था। अमेरिकामे रगभेदके खिलाफ हब्शियो और अनेक गोरोने तथा वियतनाममे अमेरिकी नीतिके विरुद्ध बहुत बड़ी सख्यामे अमेरिकनोने सविनय अवज्ञा आन्दोलनका प्रयोग किया है। येल विश्वविद्यालयके पादरी रेवरेण्ड डॉक्टर विलियम स्लोन काफिनने डॉक्टर किंगकी हत्याके ठीक छ. दिनो पूर्व ही न्यूयार्कमे भाषण करते हुए "अन्त करणके अनुसार कार्य करनेकी मौलिक स्वतन्त्रता" का समर्थन किया था और कहा था कि मानवनिर्मित विधानोका स्थान इससे कही नीचा है। इस प्रसगमे यह भी उल्लेख्य है कि डॉक्टर काफिन और अमेरिकाके सुप्रसिद्ध बाल-प्रशिक्षण विशेषज्ञ डॉक्टर बेजामिन स्पाकपर सशस्त्र सेना सेवामे अनिवार्य भरतीका विरोध करनेके लिए अमेरिकी नौजवानोको प्रेरित करनेके कारण अभियोग चलाया जा रहा है।

१९४२ और १९४६ मे गाधीजीकी 'झोपड़ी' का मेहमान बननेके बाद अमे-

रिका वापस जानेपर मने अमेरिकियोंको यह समझानेकी कोशिश की थी कि गाधी जी अनशन क्या करते हैं। उस समय अमेरिकी श्रोताओंका इसपर एकमात्र प्रतिक्रिया यही हुई थी कि अमेरिकामें किसी भी उद्देश्य लिए अनशन करना नितात हास्यास्पद होगा। किन्तु आज शान्तिके लिए अनशन करना अमरिकामें साधारण बात हो गयी ह। माच १९६८ में वियतनाम युद्धके विरोधमें मसाच्युसेटस स्थित स्मिथ कॉलेजकी १ २७७ छात्राओंने अनशन किया। शान्तिके लिए ही फरवरी १९६८ में प्रिंसटन विश्वविद्यालयके २५० छात्रोंने, जिसमे फुटबाल टीम का शानदार कप्तान भी शामिल था अनशन किया। इसी तरह हारवड विश्व विद्यालय तथा अन्यत्र भी वियतनाममें अमेरिकी हस्तक्षपके विरुद्ध अनेक छात्रों और प्राध्यापकोंने अनशन किये ह। यह सब गाधीजी द्वारा प्रस्तुत उदाहरणके ही अनुकरण हैं।

वियतनाम-युद्धमें लडनेसे इनकार करनेके फलस्वरूप हजारों युवक जल जा रहे ह। अनेक विश्वविद्यालयोंने यह घोषणा कर दी ह कि अपनी सजा काटनेके बाद वापस आनेपर हम अपने ऐसे छात्रोंको फिरसे प्रवेश दे देंगे। अमरिकी वायुसेनाके एक कप्तानने वायुयान चालकोंको वियतनामके लिए प्रशिक्षित करने के आदेशका उल्लघन कर दिया ह, जिसे एक सालके कारावासकी सजा मिली ह।

इससे यही पता चलता ह कि गाधीजी अमेरिकाम बहुत कुछ जीवित ह। कुछ दिनो पहले पोलण्ड और सोवियत रूसमें भी सविनय अवज्ञा आन्दोलन चलाया जा चुका ह। किन्तु भारतकी क्या हालत ह? गाधीजीकी हत्याकी वार्षिकीके अवसरपर ३० जनवरी १९६८ को जयप्रकाश नारायणने कहा था कि काग्रेस पार्टी "प्रचारके उद्देश्य" से अपनेको गाधी पार्टी कहती ह किन्तु उसने "गाधीजीके उपदेशोंकी पूरी तरह अवहेलना कर दी ह। भारतमें हम यही करते हैं। हम अपने महापुरुषोंकी अवहेलना कर देते हैं। उन्हें किसी आधारपर अथवा किसी भवनमें ताकपर मूर्ति बनाकर रख देते ह फिर उन्हें पीठ दिखा देते ह। जब जयप्रकाश जीसे पूछा गया कि भारतीय नौकरशाहीपर गाधीजीके दर्शनका अधिक प्रभाव पड़ा ह या ब्रिटिश औपनिवेशिक परम्पराका तो उन्होंने अत्यन्त दु खसे उत्तर दिया, 'औपनिवेशिक परम्पराका'। गाधीजीको इसी बातकी आशका थी और व चाहते थे कि ऐसा न हो।

जयप्रकाश नारायणका विश्वास ह कि भारतके किसानों और सामान्य जनता के हृदयमें अभी भी गाधीजी प्रतिष्ठित ह। सभवत इसस चुन हुए शासकों और

जनताके बीच खाईका अन्दाज लग जाता है। जहाँतक भारतीय युवकोका सवाल है, मै ऐसे अनेक युवकोसे यूरोप, अमेरिका और इसके पूर्व भारतमे भी मिल चुका हूँ। गाधीजीके जीवन और कृतित्वके संवधमे उन्हे वहुत कम जानकारी है। वे केवल यह जानते है कि उनके कारण भारत आजाद हुआ है, किन्तु गाधीजी उनके राष्ट्रपिता मात्र न थे। वे इससे कही वडे थे। उनका एक जीवन-दर्शन था, जो भारतका कायाकल्प कर सकता है और समस्त मानव-जातिके लिए भी जिसका विशेष महत्त्व है।

हम हिंसाके युगमे रह रहे है। सारा संसार मृत्युकी उग्र पीडासे छटपटा रहा है, जिसमे इस समय अमेरिका प्रमुख रूपसे दोषी है। सत्य उत्पीडित है, घृणा विजयिनी हो रही है, प्रेम लावारिस है।

ऐसे भारतीय भी, जो भारतीय राष्ट्रीय स्वतंत्रतामे गाधीजीकी सेवाओकी सराहना करते है और उनके दर्शनको समझते है, उनकी अर्थनीतिका मजाक उडानेमे आनन्द लेते हैं। फिर भी कोई इससे इनकार नही कर सकता कि गाधीजी भारतको जानते थे। वे भारतको अपनी आँख और कानसे, अपने पैर और अपनी त्वचासे, अपने हृदय और अपनी सहज प्रवृत्तियोसे जानते थे। उनके लिए भारत उसके हजारो गाँव थे। उसके वे करमे ग्रामवासी थे, जो कुल जनसंख्याके ८० प्रतिशत है। उन्हे आशा थी कि स्वतन्त्र भारतमे सवसे पहले इनपर ध्यान दिया जायगा। किन्तु आज सामान्यत इस तथ्यको मान लिया गया है कि प्रथम और द्वितीय पचवर्षीय योजनाओमे औद्योगिक विकासको ही प्रमुखता मिली और कृषि-विकासका स्थान गौण हो गया। यही लाल चीन और सोवियत रूसमे भी हुआ है। वडी-वडी छतें और शानदार इमारतोकी चकाचौधने अफसरोके दिमाग विगाड दिये। वे उस नीवसे गाँवको ही भूल गये, जहाँसे खानेके लिए और पहननेके लिए सूत मिलता है। इसीलिए चीन और रूसके समान ही भारतका आर्थिक विकास भी अवरुद्ध हो गया। जनताको कष्ट उठाना पडा। कुछ भूखो मरने लगे। दामो का या उपहारके रूपमे गल्लेका आयात करना पडा।

खेत, कल-कारखाना और वाँध राष्ट्रीय विकासके लिए ये सभी चीजे जरूरी है, किन्तु गाधीजीने निर्माणका काम मिट्टीसे शुरू किया होता। नियोजनकी किसी भी प्रणालीमे सर्वप्रथम वरीयताओपर विचार होना चाहिए। भारतके गाँवोको वरीयता नही मिली। इस उपेक्षाकी कीमत भारतीय जनताको चुकानी पड़ी है।

किसानोंके कल्याण और अहिसा जैसी ठोस चीजोके अलावा गाधीजी किसी-न-किसी प्रकारकी सार्वजनिक शुद्धताके समर्थक थे और अव भी है। उनके लिए

साधनोंका ही सर्वाधिक महत्त्व था। साध्य तो कभी आते ही नही, क्योंकि सभी साध्य आगे आनेवाले किसी-न किसी साध्यके साधनमात्र हैं और फिर ये साध्य भी साधन ही हो जाते है। ऐसा प्रतीत होता है कि सावजनिक शुद्धता भारतीय राजनीतिकी विशेषता नही बन पायी है। किसी भी शासनको सत्ताम हटाकर उसकी जगहपर स्वय बठ जानेके लिए कम्युनिस्ट विरोधी कम्युनिस्टोंके साथ सयुक्त मोर्चा बना लेते हैं तो सोशलिस्ट और कम्युनिस्ट धार्मिक राष्ट्रवादियों और चरमपथी रूढिवादियोंसे जा मिलते है। सत्ता आदर्शोंसे ऊपर हो जाती है। वदेशिक मामलोंमें तटस्थताकी नीति नतिकताविहीन है, क्योंकि इसका अथ सिद्धान्तके प्रति निष्ठा और बाहरी दबावोंका प्रतिरोध होना चाहिए। कामचलाऊ नीतिका ही बोलबाला है। क्या भारत-सरकार सदव बाहरी दबावोंका प्रतिरोध कर पाती है? क्या सिद्धान्त काल्पनिक लाभोंके लिए बेच दिये जाते है? क्या भारतराष्ट्र किसी भी अन्य राष्ट्रकी अपेक्षा इसीलिए कुछ भी भिन या अच्छा हो सका है कि गाधीजीने इसे स्वतन्त्रताके पालनेपर झुलाया था?

भारतने हमेशासे अपनी बहुमूल्य निधियोंका निर्यात कर अपनेको दरिद्र बना लिया है। भारतने ही बुद्धको जन्म दिया था। आज भारतके बाहर करोडो लोग उनके अनुयायी है, किन्तु भारतम उनकी सख्या मुट्ठीभर ही है। भारतकी ही जलवायुने गाधीजीका पोषण किया था किन्तु आज उन्हींके अपने देशम कितने गाधीवादी रह गये है? और उन गाधीवादियोंका भी क्या प्रभाव है? क्या गाधीजी भी महात्मा बनकर देशसे चले जायगे? क्या इस महान धर्मोपदेष्टाको अपने ही देशमें कोई सम्मान न मिलेगा?

इन्दिरा गांधी

गांधी की विरासतें

किसी व्यक्तिने गांधीजीको कहाँतक समझा है, इसका पता इसीसे चल सकता है कि उसमें कहाँतक परिवर्तन या विकास हुआ है। जिस समय गाधीजी जीवित थे, मेरी उम्रके अनेक लोगोको उन्हे समझ पाना मुश्किल था। हममेसे कुछ लोग उनकी बहुत-सी बातोको उनका खब्त समझकर खीझ उठते थे और उनकी बहुत-सी बातें हमे अस्पष्ट और उलझी हुई लगती थी। हमलोग उनके महात्मापनको तो मान लेते थे, किन्तु हमारा उनसे झगड़ा यह था कि वे राजनीतिमे रहस्य-वादको क्यो लाया करते है।

यह बात केवल मेरी पीढीपर ही लागू नही होती। मेरे पिताने भी अपनी आत्मकथामे इसका उल्लेख किया है कि उन्हे और उनकी पीढ़ीके अन्य लोगोको भी गाधीजीके विचारोसे अपनी चिन्तन-पद्धतिका सामञ्जस्य बैठा पानेमे कैसी कठिनाई होती थी। किन्तु धीरे-धीरे हमारे राष्ट्रीय आन्दोलनके ज्वारभाटोके साथ-साथ गाधीजीके प्रति मेरी पिताकी समझ बढने लगी और उन्होने अपने विचारोमे गाधीजीके चिन्तनके आवश्यक तत्त्वोका समावेश कर लिया। वे उनको "जादूगर" कहते थे। उन्होने बड़ी निष्ठासे गांधीवादी विचारधाराको समानार्थक शब्दोमे अनूदित कर उसे सुबोध बनाने और उसके प्रभावको युवको और बुद्धि-जीवियोतक पहुँचानेका प्रयत्न किया।

स्वयं गांधीजी भी यह नही चाहते थे कि लोग बिना किसी ननुनचके उनकी बातें मान ले और उनके अनुसार आचरण करने लगें। वे यह नही चाहते थे कि उनके साध्यो और साधनोको बिना पूर्ण परीक्षा किये स्वीकार कर लिया जाय। वे विचार-विमर्शको प्रोत्साहन देते थे। जिस समय मै एक मामूली लडकी थी, उस समय मैंने उनसे न जाने कितनी बार बहस की है। वे किसी भी ईमानदार सम्मतिको तुच्छ नही मानते थे। जिनसे भी उनका मतभेद होता था, उनसे विचार-विमर्श करनेके

समय व सदा इसी आधारपर आगे बढ़ते थे कि मेरे लिए एक ही कदम पर्याप्त है।'

पिछले दो दशकोंमें हमने नियोजित औद्योगिक विकासकी जो नीति अपनायी है, उसकी कभी-कभी यह कहकर आलोचना की जाती है कि हमने जान-बूझकर गांधीवादका रास्ता छोड़ दिया है। जो लोग यह आरोप करते हैं और घरेलू उद्योगके समर्थक हैं वे स्वयं निकास मोटर और टेलीफोन जैसी उन वस्तुओंके प्रयोगसे परहेज नहीं करते जो बड़े उद्योगों द्वारा तैयार की गयी हैं। गांधीजीने रेलोंका बहिष्कार नहीं किया था और वे घड़ियोंके बड़े भक्त थे। और यदि हम घड़ियों और रेलोंका प्रयोग करते हैं तो इसका क्या मतलब है कि हम उन्हें स्वयं न बनायें? अतएव गांधीजीने घरेलू उद्योगोंका जो समर्थन किया था, उसे सही संदर्भमें समझनेकी आवश्यकता है। वे देशकी व्यापक दरिद्रतासे अत्यन्त चिंतित थे। उन्हें किसी प्रकारकी बरबादी सह्य न थी। वे चाहते थे कि देहातोंके असंख्य बेरोजगार लोगोंकी बेकार बरबाद होती शक्तिका इस ढंगसे उपयोग हो सके जिससे वे राष्ट्रके लिए अधिक सामान तैयार कर सकें और स्वयं अपने लिए कुछ धन भी एकत्र कर लें। इसके अतिरिक्त अपने पूर्ववर्ती अनेक संवेदनशील व्यक्तियोंकी तरह उनके मनमें भी उद्योगीकरणके प्रथम चरणमें होनेवाले उसके बर्बर प्रभावोंके विरुद्ध प्रतिक्रिया भी हो रही थी। एक चिन्तक होनेके नाते मनुष्यकी अंतिम अवस्थापर विचार करना उनके लिए स्वाभाविक था इसी लिए उन्होंने हमें इस संभावनाके विरुद्ध सतर्क किया कि कहीं हम स्वयं अपने ही यन्त्रोंके कैदी न बन जायें। समाजमें यन्त्रोंका क्या स्थान होना चाहिए, इस संबंधमें गांधीजीने बहुत लिखा है। उसके अनेक अंशोंको पढ़नेसे स्पष्ट हो जाता है कि इस संबंधमें गांधीजीका दृष्टिकोण शास्त्रीयताके कुछ शाब्दिक व्याख्याताओंकी अपेक्षा कहीं अधिक उदार व्यापक और मानवीय दृष्टिसे व्यावहारिक था।

मेरे लिए गांधीजी शुष्क विचारों और आँकड़ोंके संग्रह नहीं हैं वे एक जीवंत मानव हैं, जिन्हें देखनेसे यह अनुभव किया जा सकता है कि मानव कितने ऊँचे स्तरतक विकास कर सकता है। अतीतके सर्वोत्तमको ग्रहण करते हुए वे बेहतर मानव भविष्यके लिए जीवित थे। इसीलिए उनमें उच्चतम विचारोंकी शाश्वतता दिखायी देती है। उन्होंने जो कुछ कहा या लिखा है उसका अधिकांश तात्कालिक समस्याओंके समाधानके लिए है उसका कुछ अंश व्यक्तिके आन्तरिक मार्गदर्शनके लिए भी है। वे अपनी बुद्धिका पोषण दूसरोंसे निष्क्रियरूपसे प्राप्त जानकारीसे नहीं किया करते थे। वे स्वयं अपने जीवनकी प्रयोगशालामें किये गये अपने

प्रयोगोंके दौरान अपने विचारोंको साधक उपकरणोंके रूपमे ढालते जाते थे।

दक्षिण अफ्रीकामे किये गये गांधीजीके कार्योंके सबधमे गोपाल कृष्ण गोखलेने कहा था कि उन्होने मामूली मिट्टीसे बहादुरोकी रचना कर डाली। कभी-कभी मुझे आशंका होती है कि कही हमलोग फिरसे मिट्टी तो नही हो गये है। एक महान् नेता और शिक्षक अपने समयमे जिस उत्कर्षकी सृष्टि कर डालता है, वह बहुत दिनोतक कायम नही रह सकता, किन्तु ऐसे महान् लोगोकी शिक्षा और विचारधारा स्वयं उनके समय और देशसे कही आगे बढ जाती है। हमलोगोपर, जो गाधीजीके ही समयमे और उन्हीके देशमे पैदा हुए थे, उनकी मूर्तिको कायम रखनेकी विशेष जिम्मेदारी है। उनका जीवन उनके शब्दोसे भी बड़ा संदेश-वाहक है।

वास्तविक सार्वभौमिकताकी उपलब्धि अपने देश और कालके माध्यमसे ही की जा सकती है, उससे अलग हटकर नही। गाधीजीने अपनेको भारतकी सामान्य जनतासे पूरी तरह एकाकार कर दिया था। इसके लिए उन्होने अपनी वेशभूषा भी बदल दी। फिर भी वे ससारके दूसरे भागोंमे नि.सृत सर्वोत्तम विचारोके संग्राहक थे। गाधीजी स्वच्छतापर जो इतना जोर देते थे और सुनी हुई बातोका साक्ष्यके आधारपर जाँच-पडताल द्वारा जिस तरीकेसे कठोर परीक्षण किया करते थे, उसपर इंग्लैण्ड और दक्षिण अफ्रीकामे उनके निवासके उन दिनोकी छाप नजर आती है, जब वे वहाँ कानूनके छात्रके रूपमे अध्ययन और बादमे स्वयं वकालत कर रहे थे। किन्तु उन्होने जिस चीजको भी स्वीकार किया, उसे पूरी तरह आत्मसात् कर लिया और भारतीय समस्याओके लिए भारतीय समाधानोका विकास किया।

धर्मनिरपेक्षता उनकी दूसरी शानदार विरासत है, जिसके लिए उन्होने अपना जीवन निछावर कर दिया। धर्मनिरपेक्षताका अर्थ न तो अधार्मिकता है, न धर्मके प्रति उदासीनता है—वह सभी धर्मोंके प्रति समान आदारकी भावनापर आधृत है। आदरकी यह भावना केवल सहिष्णुता नही है, अपितु एक साकारात्मक भावना है। धर्मनिरपेक्षतामे सतत आत्मपरीक्षण और अथक प्रयासकी अपेक्षा होती है। वह महान् सत्य अशोकके शिलालेखोंमें इन शब्दोमे उत्कीर्ण है कि कोई व्यक्ति तबतक अपने धर्मका आदर नही कर सकता, जबतक दूसरोके धर्मका भी आदर न करे। जिन युगोमे भारतके शासक सत्यको मान्यता प्रदान करते थे और इसका आचरण करते थे, भारत महान् रहा है और ऊँचा उठा है। हमारे समयमें गाधीजी तथा जवाहरलाल नेहरूने इसे हमारे लिए एक जीवन्त वास्त-

विनाश बना दिया। इसके बिना हमारे राष्ट्रका कोई भविष्य नहीं है।

मुझे गांधीजीकी दूसरी महान् शिक्षा अहिंसाके संबंधमें कुछ कहनेमें संकोच हो रहा है। मुझे इसलिए संकोच नहीं हो रहा है कि मैं हिंसामें कोई औचित्य पाती हूँ। मानव जातिने विनाशके अस्त्रोंका ऐसा भयंकर संग्रह कर लिया है कि मुझे कभी कभी इसमें संदेह होने लगता है कि क्या इनके रहते हम किसी प्रकार की आशा भी कर सकते हैं। आये दिन कहीं-न-कहीं युद्धकी ज्वाला भड़कती ही रहती है किन्तु इससे भी कहीं अधिक निराशाजनक और खतरनाक बात तो यह है कि संसारके सभी भागोंमें विचार और व्यवहारमें घृणाकी भावना और विवेक हीन आंदोलनकारी प्रवृत्ति दिनपर दिन बढ़ती ही जा रही है। गांधीजीने कहा था कि 'अन्धकारके गहनमें भी प्रकाश कायम रहता है।' अतः हमें भी आस्था रखनी ही चाहिए। गांधीजीके कार्योंका चरम औचित्य इसमें है कि उन्होंने हमारे सामने यह प्रमाणित कर दिया है कि सशस्त्र शक्तिकी बराबरी निःशस्त्र होकर भी की जा सकती है। यदि एक बार ऐसा हो सकता है तो क्या फिर ऐसा होना संभव नहीं है?

जाँवनका जय संघर्ष होता है। आपका लक्ष्य जितना ही ऊँचा होता है आपकी उपलब्धिकी आशा भी उतनी ही बढ़ती जाती है। इसीके अनुपातमें आपका कार्य भी महान होता जाता है और आपसे और भी ऊँचे बलिदानकी अपेक्षा की जाने लगती है। सभी धर्मोंके महापुरुषोंने शाश्वत सत्योंकी प्रेरणा दी है। भारतका यह महान शुभसूचक सौभाग्य रहा है कि उसने हमेशासे ऐसे महान पुत्रोंको जन्म दिया है, जिन्होंने उसके पुराने विचारोंको समय-समयपर बराबर नया जीवन प्रदान किया है और उसे भारतीय जनताके जीवनका अंग बना दिया है। हमारे अपने जीवनकालमें महात्मा गांधी और जवाहरलाल नेहरूने खतरनाक घड़ियोंमें हमारा मार्गदर्शन किया है। उन्होंने सामान्य जन-कल्याणकी भावनामें अपने अस्तित्वका विलय कर डाला और एकने दूसरेकी पूर्ति की। उनमेंसे प्रत्येक ने हमें यही शिक्षा दी है कि हमारे प्रत्येक निर्णयकी परीक्षा इसी कसौटीपर होनी चाहिए कि उससे सामान्य जनताका कल्याण कहाँतक साधित होता है। किसी भी वाद का अपेक्षा यह मार्गनिर्देशक सिद्धान्त ही हमें गलतियोंसे बचायेगा। जैसा कि जवाहरलाल नेहरूने कहा था

> हम सबसे बड़ी प्रार्थना यही कर सकते हैं कि हम अपनेको उस सत्य और उस उद्देश्यके प्रति समर्पित करनेका संकल्प लें जिसके लिए हमारा यह महान देशवासी जिया और मरा है।

वी० वी० गिरि

प्रबुद्ध पथ-निर्देशक

हमारे प्रिय बापूकी जन्मशती एक ऐसी निर्णायक घडीमें पड रही है, जब कि मानव-जातिका भाग्य इतिहासके चौराहेपर खडा प्रतीत हो रहा है। गांधीजीने सार्वजनिक जीवनमे नि स्वार्थ सेवा और साधु आचरणकी जो ज्योति जलायी थी, वह शाश्वत शान्ति और विश्वबन्धुत्वके शिखरपर आरोहणके लिए मानव-जातिकी ऊर्ध्व यात्राका मार्ग प्रकाशित कर रही है।

गाधीजीने युगोंकी धूलसे पटे हुए एक शुष्क और जलते हुए देशको अमृत-जलसे अभिसिञ्चित कर दिया। उन्होने भारतको सदियोकी मोहनिद्रासे झकझोर-कर जगा दिया। उनकी जडे अपनी जनताकी जिंदगीमे प्रविष्ट थी। वे उसके अविच्छेद्य अंग और तत्त्व बन गये थे। गाधीजीमे अपनी जनताके निम्नतम वर्ग-की चिन्तन-प्रक्रियाओके प्रति जैसी चेतनता थी, उनमे सामूहिक प्रयासको उत्प्रेरित कर देनेकी जो शक्ति थी और उनमे जैसी एकाग्रसाधना और अक्षोभ्य स्थिरचित्तता थी, उससे कोई भी प्रभावित हुए बिना नही रह सकता।

सभ्य मानवताके इतिहासमे कभी भी किसी एक व्यक्तिने अतीतकी इतनी जटिल विरासतोसे भाराक्रान्त विशाल जनसमूहके ऐसे दीर्घकालव्यापी संघर्षका नेतृत्व और स्वरूप प्रदान करनेमे इतना बडा योगदान नही किया था। गाधीजी-को भारतकी जैसी प्रामाणिक जानकारी थी और उनके पास जैसी निर्भ्रान्त और स्वच्छ दूरदृष्टि थी, वह और किसीमे नही दिखायी देती। उनमे भारतकी आत्मा ही मूर्त्तिमान् हो उठी थी। भारतीय इतिहासमे ऐसे महापुरुष कम ही हुए हैं। जैसा कि मैक्सम्यूलरने एक बार कहा था, भारतमे हम अपनेको एक ओर अति विशाल अतीत और दूसरी ओर अत्यन्त दूरव्यापी भविष्यके बीचमे पाते हैं। हमारे युगमे इस पार्थक्यकी विशाल खाईको महात्मा गाधीके अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति पाट नही सकता था।

बापूने आधी शताब्दीसे भी अधिक समयतक हमारे जीवनको प्रभावित किया और भविष्यमें भी वे हमारे राष्ट्रकी नियतिका मागदशन करते रहेंगे। मुझे पूण विश्वास है कि एक दिन गाधीजी द्वारा विकसित मौलिक सिद्धान्त सारे ससारका शासन करने लगेंगे। एक ऐसे व्यक्तिके रूपमें, जो जुलाई १९१४ में ही ब्रिटेनमें पहली बार उनसे मिलनेपर ही (उस समय वे महात्मा नही कहे जाते थे) उनका शिष्य बन गया था। म इस अवसरपर महात्मा गाधीके अनुपम गुणो और महान उपलब्धियोकी चर्चा करते हुए विशेष गौरवका अनुभव कर रहा हूँ।

गाधीजीकी शिक्षाओका सार ग्रहण कर लेनेकी आज जसी आवश्यकता ह, वैसी हमारे देशके इतिहासमें कभी नही हुई थी। मुझे अनुभव होता ह कि आज वह समय आ गया ह। हमारी शिक्षा-सस्थाओके युवको और जीवनके विभिन्न क्षेत्रोंमें काय करनेवाले लोगोको बापूके सदेशोंके निहित अर्थोंको समझनेकी अन्तर्दृष्टि प्राप्त कर लेनी चाहिए और इस प्रकार देशकी प्रगतिमे रचनात्मक भूमिका अदा करना और अपने जीवनको एक विशिष्ट उद्देश्य और अथ प्रदान करना सीखना चाहिए।

सारे ससारमें यह विश्वास फला हुआ ह कि जब पाप सचित हो जाता ह जब राष्ट्रके लोग एक-दूसरेके प्रति अन्याय करने लगते हैं और जब हिंसा एव रक्तपात युगधम बन जाता ह तो सदियोसे एक महापुरुष जन्म लेकर मानवताका उद्धार करता ह। वह एक ऐसा महान् आध्यात्मिक नेता और उद्धारक होता ह जो ससार में शान्ति और व्यवस्था ले आता ह, पथ प्रदशन करता ह और उत्पीडित मानवताको आश्वस्त करता ह। गाधीजी ऐसे ही उद्धारक थे।

गाधीजीने जिस किसी वस्तुको छू दिया, वह पारस बन गया। उनके लिए सामाजिक जीवन समन्वयपूण समग्र जीवनका और उसका प्रत्येक अग उनके गति शील जीवनसे प्रभावित हुआ। जैसा कि एक लेखकने कहा ह "सावजनिक प्रयासके जिस भी क्षेत्रमे उन्होने काय किया, उनके प्रयत्नोका सारतत्त्व एक प्रकार के मानवतावादमें निहित था। उनकी मानवतामें दिव्यतत्त्वका भी विलक्षण सम्मिश्रण हुआ था।' इसमें सक्षेपमे गाधीवादका निष्कष ही प्रस्तुत कर दिया गया ह। उनका दृष्टिकोण बडा ही व्यापक' था, जिसमे 'परमात्माकी सृष्टिके छोटे-से-छोटे प्राणी' के लिए भी स्थान सुरक्षित था। उन्होंने कभी भी मानव-जीवन को खण्ड-खण्ड करके नही देखा था।

गाधीजी क्या नही थे। उनके व्यक्तित्वमें राजनेता, राजनीतिज्ञ समाजसुधारक, वक्ता, लेखक, शिक्षक मानवतावादी विश्ववादी और सत्यान्वेषक सभीका अन्त र्भाव हो गया था। उनमें अपने विश्वासोंके अनुसार चलनेका अद्भुत साहस था।

वे हमेशा अपने अन्त:करणके आदेशानुसार ही कार्य करते थे। सत्यका यह महान् निर्भीक साधक प्राय. नि.शङ्क और निर्भय होकर सारे संसारको चुनौती देता हुआ अकेला ही खड़ा हो जाता था। महात्माजीके ऐसे नेतृत्वने हमारे राष्ट्रमे अजस्र प्रेरणा भर दी और वे पचीस वर्षोंके अहिंसक संघर्षसे ही देशकी राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करनेमे समर्थ हो गये। उनकी सफलताका एकमात्र कारण यही था कि उन्होने कभी भी राष्ट्रके सामने ऐसा आदर्श या उपदेश नही रखा, जिसके अनुसार वे स्वयं आचरण न करते हो या न कर पावें।

बापूमें मानव-समाजके समक्ष उपस्थित होनेवाली महान् समस्याओको पहलेसे ही देख लेनेकी अद्भुत शक्ति थी। उनमें इन समस्याओका सामना करनेके लिए आवश्यक साधनो और तरीकोको खोज निकालनेकी भी एक अत्यन्त रहस्यमय अन्तश्चेतना थी। उनके सामान्य ज्ञानका परिमाण असामान्य था। इसीके सहारे उन्होने व्यापक सत्यो और मौलिक सिद्धान्तोमे जिसे भी सर्वोत्तम पाया, उसे राजनीतिक दृष्टिसे व्यवहार्य बना देनेके लिए वीरतापूर्वक संघर्ष किया। दक्षिण अफ्रीकामे गाधीजीके सारे क्रियाकलाप इन्ही सत्यो और सिद्धान्तोकी आधारशिलापर प्रतिष्ठित थे। दक्षिण अफ्रीकामें ही उन्होने पहली बार सत्याग्रहका पौधा लगाया। इसीसे वे भारतके भावी नेतृत्वके लिए प्रशिक्षित हो गये और अन्तत: उन्होने इसीसे देशको राजनीतिक दासतासे मुक्त कर दिया। इस प्रक्रियामें उन्होने हमे बहुत-सी बातें सिखायी, जिनका बड़ा महत्त्व है। उन्होने अपने अनुयायियोको घृणामुक्त होनेका प्रशिक्षण दिया और जनतामे समानता तथा भ्रातृत्वकी भावनाका संचार कर दिया। उन्होने समाजके निर्दलित अंग हरिजनोका उत्थान किया, जिन्हें आज कानून और वास्तविकता दोनो दृष्टियोसे भारतके शेष सभी समुदायोके समान समाजमे पद-प्रतिष्ठा और स्थान प्राप्त हो चुका है।

राष्ट्रपितासे १९१४ मे ब्रिटेनमे हुई अपनी पहली मुलाकातके समयसे ही मै उनकी निश्छल निष्ठा, प्रखर स्पष्टता, व्यापक दृष्टि, सामाजिक कल्याणके प्रति अटूट उत्साह और ओजस्वितासे अत्यधिक प्रभावित रहा हूँ। रेडक्रास आन्दोलनके द्वारा हम एक-दूसरेके निकट आये। मुझे गाधीजी रेडक्रासके समस्त आदर्शोके मूर्तरूप प्रतीत हुए। उनमे शान्ति, सद्भाव और सहानुभूति प्राप्त करनेकी अदम्य प्रेरणा थी। विपत्तिग्रस्त लोगोको सहायता पहुँचानेके लिए वे सदा व्यग्र रहा करते थे।

गाधीजीने किसी व्यवस्थित जीवन-दर्शनकी रचना नही की थी। उनकी जिंदगी सत्यके साथ किये गये प्रयोगोकी एक शृंखला थी। जैसा कि उन्होने एक बार स्वयं कहा था, उनका जीवन ही उनका संदेश था। गाधीजीका समस्त दर्शन

सत्य, अहिंसा और लोकतन्त्रके मौलिक सिद्धान्तोपर आधारित था। उनके दर्शनको मानव-प्रयासके सभी क्षेत्रो तथा व्यष्टि और समष्टि दोनोके लाभ और कल्याणके लिए कार्यान्वित किया जा सकता है।

गाधीजी केवल राजनीतिक कार्योंके ही आचार्य न थे, वे एक महान् चिन्तक और पर्यवेक्षक भी थे। उनमें अपने विचारोको सरल, सुस्पष्ट और सार्थक रीतिसे लिख डालनेकी भी अद्भुत प्रतिभा थी। लेखनीपर उनका असाधारण अधिकार था। गाधीजी अपनी अनेकानेक रचनाओ, पत्रो और भाषणोके रूपमें ससारके लिए अपने विचारो, कार्यकलापो और स्वप्नोका बहुत अभिलेख छोड़ गये हैं।

बापूकी मानवीयता अत्यन्त उच्चकोटिकी थी वे स्वप्नामें विचरण करनेवाले व्यक्ति नहीं थे। मानवताके प्रति उनमें अगाध प्रेम था। अपने मौलिक सिद्धान्तो की कल्पना करनेके साथ ही साथ उनके प्रयोगके साधनोका भी वे आविष्कार करते चलते थे। इतना ही नहीं अपनी धारणाओकी प्रामाणिकता और उपयोगिताके परीक्षणके लिए भी वे बराबर नये-नये तरीके निकालते चलते थे। इस प्रक्रियामें उन्होने स्वयको और अपने सहकर्मियोको एक गतिशील मानवीय प्रयोगशाला का रूप दे दिया था। उदाहरणके लिए वे देशमें जिस नयी तालीमको चलाना चाहते थे, वह आत्मनिर्भरताके सिद्धान्तपर आधारित था। इसका उद्देश्य यह था कि देशके प्रत्येक व्यक्तिको न केवल कलाओकी ही शिक्षा दी जाय उसे किसी-न-किसी हस्तशिल्पमें भी पूर्णत प्रशिक्षित कर दिया जाय जिससे वह अपनी जीविका श्रमके पसीनेसे 'अर्जित कर सके।' रोटी रोजीका श्रम गाधी-दर्शन का एक प्रमुख तत्त्व है।

आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक शैक्षिक, धार्मिक या सास्कृतिक मानवीय क्रियाकलाप अथवा सवर्षोका ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं है जो गांधीजीके चुम्बकीय व्यक्तित्वसे प्रभावित और लाभान्वित न हुआ हो। इस तरह य व्यक्तिकी सामाजिक-आर्थिक मुक्ति नैतिक विकास और आध्यात्मिक उत्थान ही गांधीजीके मिशन का मूलतत्त्व है। बापू हमें नतिकताके इन मूलतत्त्वोका स्मरण दिलाते हैं जिनके अनुसार प्रेम घृणाकी अपेक्षा श्रेष्ठ है, शान्ति युद्धकी अपेक्षा श्रेष्ठ है सहकार सघर्षकी अपेक्षा श्रेष्ठ है और अनुनय-विनय जबरदस्ती अपेक्षा श्रेष्ठ है।

वलेरियन कार्डिनल ग्रेसियस

शान्तिपुरुष

वर्षो पूर्व स्वतन्त्रताके तत्काल वाद ही मुझे जिन्नाहालमे महात्मा गाधीकी वर्षगाँठपर आयोजित एक समारोहमे वोलनेका गौरव प्राप्त हुआ था। उस अवसर-पर महात्मा गाधीके प्रति अनेक श्रद्धाञ्जलियाँ अर्पित की गयी थी। एक व्यक्तिने अपनी श्रद्धा व्यक्त करते हुए कहा था .

> महात्मा गाधी उन थोडेसे व्यक्तियोमे है, जिनके दिल और दिमागने सारे ससारकी चिन्तनधाराके मूलप्रवाहको प्रभावित किया है। उनकी उप-लब्धि और अविचल चारित्रिक दृढताका समादर हमारी सभ्यताके आत्म-सम्मानका आवश्यक अंग है।

इन तमाम वर्षोमे हमारी इस शताब्दीके इतिहासमे उनकी अद्वितीय भूमिका-के प्रति समादर और सराहनाकी यह भावना वरावर बढती ही गयी है। अधिक-से-अधिक लोग यह अनुभव करने लगे है कि इस महापुरुषके पास—जिसके व्यक्तित्वमे दार्शनिक, राजनेता और तपस्वीके गुण एक साथ अद्भुत सामञ्जस्यके साथ मिले हुए है—हमारे आजके मानव-समाजके लिए एक ऐसा महत्त्वपूर्ण सन्देश है, जिसकी उपेक्षा हम अपनी सभ्यताके सम्पूर्ण संगठनको कुछ-न-कुछ क्षति पहुँचाये विना नही कर सकते।

ऐसे व्यक्तियोकी सख्या उँगलियोपर गिनी जा सकती है, जिन्होने अपने जीवन-कालमे मानव-हृदयके तारोको इस गहराईसे झङ्कृत किया हो या मानवीय भाव-नाओको ऐसा आन्दोलित किया हो, जैसा कि महात्मा गाधीने किया है। ऐसे व्यक्तियोकी संख्या तो और भी कम है, जिन्होने अपनी मृत्युके वाद मानव-जातिपर महात्मा गाधीके समान गंभीर प्रभाव डाला हो। हिंसासे भरे संसारमे उन्होने अहिंसाके सिद्धान्तका उपदेश देनेका साहस किया था, प्रविधि और भौतिक सफ-लताके पीछे होनेवाली पागलोकी-सी भाग-दौडके युगमे उन्होने अध्यात्मकी प्रधा-

सत्य, अहिंसा और लोकतन्त्रके मौलिक सिद्धान्तोंपर आधारित था। उनके दर्शनको मानव प्रयासके सभी क्षेत्रों तथा व्यष्टि और समष्टि दोनोंके लाभ और कल्याणके लिए कार्यान्वित किया जा सकता है।

गांधीजी केवल राजनीतिक कार्योंके ही आचार्य न थे, वे एक महान् चिन्तक और पर्यवेक्षक भी थे। उनमें अपने विचारोंको सरल सुस्पष्ट और सार्थक रीतिसे लिख डालनेकी भी अद्भुत प्रतिभा थी। लेखनीपर उनका असाधारण अधिकार था। गांधीजी अपनी अनेकानेक रचनाओं पत्रों और भाषणोंके रूपमें संसारके लिए अपने विचारों, कार्यकलापों और स्वप्नोंका वृहत् अभिलेख छोड गये हैं।

बापूकी मानवीयता अत्यन्त उच्चकोटिकी थी व स्वप्नोंमें विचरण करनेवाले व्यक्ति नहीं थे। मानवताके प्रति उनमें अगाध प्रेम था। अपने मौलिक सिद्धान्तों की कल्पना करनेके साथ ही साथ उनके प्रयोगके साधनोंका भी व आविष्कार करते चलते थे। इतना ही नहीं अपनी धारणाओंकी प्रामाणिकता और उप योगिताके परीक्षणके लिए भी वे बराबर नये-नये तरीके निकालते चलते थे। इस प्रक्रियाम उन्होंने स्वयंको और अपने सहकर्मियोंको एक गतिशील "मानवीय प्रयोग शाला" का रूप दे दिया था। उदाहरणके लिए वे देशमें जिस नयी तालीमको चलाना चाहते थे, वह आत्मनिर्भरताके सिद्धान्तपर आधारित थी। इसका उद्देश्य यह था कि देशके प्रत्येक व्यक्तिको न केवल कलाओंकी ही शिक्षा दी जाय उसे किसी-न किसी हस्तशिल्पमें भी पूर्णत प्रशिक्षित कर दिया जाय, जिससे वह अपनी जीविका 'श्रमके पसीनेसे' अर्जित कर सके। "रोटी रोजीका श्रम" गांधी-दर्शन का एक प्रमुख तत्त्व है।

आर्थिक राजनीतिक, सामाजिक, शैक्षिक, धार्मिक या सांस्कृतिक मानवीय क्रियाकलाप अथवा संघर्षोंका ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं है जो गांधीजीके चुम्बकीय व्यक्तित्वसे प्रभावित और लाभान्वित न हुआ हो। इस तरह ये व्यक्तिकी सामा जिक-आर्थिक मुक्ति नैतिक विकास और आध्यात्मिक उत्थान ही गांधीजीके मिशन का मूलतत्त्व हैं। बापू हमें नैतिकताके इन मूलतत्वोंका स्मरण दिलाते हैं जिनके अनुसार प्रेम घृणाकी अपेक्षा श्रेष्ठ है, शान्ति युद्धकी अपेक्षा श्रेष्ठ है सहकार संघर्षकी अपेक्षा श्रेष्ठ है और अनुनय विनय शक्तिकी अपेक्षा श्रेष्ठ है।

वलेरियन कार्डिनल ग्रेसियस

शान्तिपुरुष

वर्षों पूर्व स्वतन्त्रताके तत्काल बाद ही मुझे जिन्नाहालमे महात्मा गाधीकी वर्षगाँठपर आयोजित एक समारोहमे बोलनेका गौरव प्राप्त हुआ था। उस अवसर-पर महात्मा गाधीके प्रति अनेक श्रद्धाञ्जलियाँ अर्पित की गयी थी। एक व्यक्तिने अपनी श्रद्धा व्यक्त करते हुए कहा था .

> महात्मा गांधी उन थोडेसे व्यक्तियोमे है, जिनके दिल और दिमागने सारे संसारकी चिन्तनधाराके मूलप्रवाहको प्रभावित किया है। उनकी उप-लब्धि और अविचल चारित्रिक दृढताका समादर हमारी सभ्यताके आत्म-सम्मानका आवश्यक अंग है।

इन तमाम वर्षोमे हमारी इस शताब्दीके इतिहासमे उनकी अद्वितीय भूमिका-के प्रति समादर और सराहनाकी यह भावना बराबर बढती ही गयी है। अधिक-से-अधिक लोग यह अनुभव करने लगे है कि इस महापुरुषके पास—जिसके व्यक्तित्वमे दार्शनिक, राजनेता और तपस्वीके गुण एक साथ अद्भुत सामञ्जस्यके साथ मिले हुए है—हमारे आजके मानव-समाजके लिए एक ऐसा महत्त्वपूर्ण सन्देश है, जिसकी उपेक्षा हम अपनी सभ्यताके सम्पूर्ण सगठनको कुछ-न-कुछ क्षति पहुँचाये बिना नही कर सकते।

ऐसे व्यक्तियोकी संख्या उँगलियोपर गिनी जा सकती है, जिन्होने अपने जीवन-कालमे मानव-हृदयके तारोको इस गहराईसे झङ्कृत किया हो या मानवीय भाव-नाओको ऐसा आन्दोलित किया हो, जैसा कि महात्मा गाधीने किया है। ऐसे व्यक्तियोकी संख्या तो और भी कम है, जिन्होने अपनी मृत्युके बाद मानव-जातिपर महात्मा गाधीके समान गंभीर प्रभाव डाला हो। हिंसासे भरे संसारमे उन्होने अहिंसाके सिद्धान्तका उपदेश देनेका साहस किया था, प्रविधि और भौतिक सफ-लताके पीछे होनेवाली पागलोकी-सी भाग-दौडके युगमे उन्होने अध्यात्मकी प्रधा-

नता प्रतिष्ठित करनेके लिए अदम्य साहसके उदाहरण प्रस्तुत किये, राजनीतिक कुचक्रों और सासारिक विलक्षणताके घेरामें इस दुबले-पतले आदमीने जीवनकी सादगी, ईमानदारी और चरित्रबलके मूल्योंको ऐसी निर्भीकतासे उजागर किया कि उनके मुकाबले चालाकसे चालाक राजनीतिज्ञोंके प्रबलसे प्रबल शस्त्र बेकार हो गये।

बम्बईकी ऐतिहासिक यात्राके दौरान महात्मा गांधीके प्रति अपनी श्रद्धा निवेदित करते हुए पोप पालने कहा था कि 'उनका उच्च चरित्र और शान्तिप्रेम सुप्रसिद्ध है। और 'पोप पाल षष्ठके साथ सवाद" (डायलाग्स विद पोप पाल सिक्स्थ) शीर्षक कृतिमें फ्रेंच अकादमिशियन जीन गिटनके एक प्रश्नके उत्तरमें पूज्य धर्मगुरु (होली फादर) ने कहा है

> सच बात तो यह है कि भारत-यात्राके दौरान मुझे जैसे एक अज्ञात विश्व का ही साक्षात्कार हुआ। जैसा कि एथोक लिप्से कहता है मुझे भी वहा अपार जन-समुदायके दर्शन हुए और इसमें भी प्रत्येक व्यक्तिमें मुझे अपने प्रति स्वागतकी भावना मिली। इन करोड़ो लोगोकी आखोमें मुझे कुछ अजीब ढगकी सहानुभूतिके दर्शन मिले। उनमें मात्र कुतूहलकी भावना नहीं थी। भारत एक आध्यात्मिक देश है। उसमें स्वभावत ईसाई गुणोंकी चेतनता है। मैने अपनेसे कहा कि यदि ससारमें ऐसा कोई देश है जहाँ पर्वतीय उपदेश (सरमन आन द माउण्ट) के दिव्य आनन्दके अनुभवके स्तरपर न केवल थोड़ेसे चुने हुए लोग बल्कि समूची जनता अपनी जीवन साधना कर सकती है तो यह वही देश है। आत्माकी निरीहतासे बढकर और दूसरी कौन-सी वस्तु है जो भारतीयोंके हृदयके इतने निकट हो सकती है? उस नम्रता और विनयसे बढकर हिन्दुओंकी और दूसरी वस्तु कौन है जो उनकी आँखोंमें चालढालमें और शब्दोंमें निरन्तर प्रकट होती रहती है? शान्ति करुणा और हृदयकी पवित्रतासे बढकर और कौन-सी वस्तु भारतीय आत्माके निकट है न्यायके लिए कष्ट-सहनकी आग्रहपूर्ण प्रवृत्तिसे बढकर इस आत्माके निकट और क्या होगा? हम कह नहीं सकते कि यदि इस महान जनताकी ये सारी सभावनाएँ उनके हृदयमें जो कुछ है उसकी जो भी अभिलाषाएँ है यदि वे सारी चीजें महमा प्रकाशमें आ जायें तो इसका क्या प्रभाव होगा। मै यह भी बता चुका हूँ कि इस जनताके नेता कमे विवेकशील है। पश्चिममें पेशेवर राजनीतिज्ञ ही सर्वोच्च स्थानापर प्रतिष्ठित हैं। यहाँ तो सर्वोच्च प्रतिष्ठा सतों और साधुओंकी है। यहाँ जीवन निदिध्यासनमें व्यक्त होता है।

> वे मृदुतासे धीरस्वरमे बोलते है। उनकी अंग-भंगिमामे धार्मिक गाभीर्य होता है। ये देश तो आत्माके लिए ही पैदा हुए है।

निस्सन्देह ऐसा कहते समय उनके मस्तिष्कमे महात्मा गाधी जैसे भारतीयका ही चित्र था!

आज उनकी वर्षगाँठ मनाते हुए हमे याद करना चाहिए कि वे "राष्ट्रपिता" है। और ऐसे अवसरोपर प्रत्येक सच्चे भारतीयके मस्तिष्कमे जो विचार सबसे पहले आता है, वह यही है कि "महात्मन्! तेरे देशको तेरी अपेक्षा है।" आज फूट और लड़ाई-झगडे चारो ओरसे उस आजादीके लिए खतरा पैदा कर रहे है, जिसके लिए उन्होने इतना कठोर श्रम किया था। आज अनुशासनहीनता और हिसाकी अंधाधुंध प्रवृत्ति उस नीवको ही हिलाने लगी है, जिसपर उन्होने नये भारतके निर्माणकी कल्पना की थी। आज असहिष्णुता, प्रादेशिकता आदिकी संकीर्ण प्रवृत्तियाँ राष्ट्रके शरीरमे खतरनाक नासूर बनती जा रही है, जिससे धर्म-निरपेक्ष राष्ट्रकी उनकी वह कल्पना ही ध्वस्त होती जा रही है, जिसके लिए उन्होने अपने प्राण दे दिये।

महात्मा गाधी शान्ति-पुरुष थे, वे केवल शान्तिको प्रेम ही नही करते थे, अपितु वे उसके स्रष्टा भी थे। उन्होने चतुर्दिक् विरोधके बावजूद यावज्जीवन इसी भूमिकाका निर्वाह किया।

> शान्ति-निर्माता धन्य है, वे परमात्माके सन्तान माने जायँगे। धैर्यवान् धन्य है, उन्हीको प्रभुका साम्राज्य मिलेगा। दयावान् धन्य है, उन्हीको क्षमा प्राप्त होगी।

ये वे शब्द है, जिन्हे पर्वतपर दिये गये ईसामसीहके उपदेशोसे लिया गया है। महात्मा गाधी प्राय इनका उल्लेख अपने सार्वजनिक भाषणो और लेखोमे किया करते थे।

शान्ति-निर्माताका कार्य बडा ही कठिन होता है। सबसे पहले स्वयं शान्ति-निर्माताके हृदय और मस्तिष्कमे ही शान्तिके बीज होने चाहिए। देशमे सामंजस्य के फूल तबतक नही खिलेगे, जबतक बोनेवाला शान्तिके विचारोको नही बोता। शान्तिके विचार, सजीव स्मृतियाँ, शान्तिकी अभिलाषाएँ, मानव-हृदयके शान्तिपूर्ण उद्‌गार—निश्चित रूपसे ये सारी चीजें शान्तिके हितमे है। जबतक मनुष्य परमात्माको परमपिता और दूसरे मनुष्यको अपना भाई नही समझ लेता, ऐसे दृष्टि-कोणका विकास असंभव है'

मेरे लिए परमात्मा सत्य और प्रेम है, परमात्मा ही नैतिकता है; पर-

> *मात्मा ही निर्भयता ह, परमात्मा ही प्रकाश और जीवनका स्रोत ह*
> फिर भी वह इन सबसे ऊपर और परे ह ।

परमात्मा-सबधी ये अवधारणाएँ महात्मा गाधीकी ह, जिन्हें उन्होंने स समयपर व्यक्त किया ह । ‘

/ मनुष्य मूलत शान्तिका भी होता ह । सम्मेलनो, शान्ति-वार्ताओ और र नयिक अभिक्रमोकी अनन्त शृखला इस बातकी साक्षी ह कि मनुष्य शान्तिकी लब्धिके लिए प्रयत्नशील रहता ह । किन्तु शान्ति निर्माताका महान काय मा हृदयकी सहानुभूतिके तारोको छूकर झङ्कृत कर देना ह । महात्माने अपन जीवनम यही काय किया था । अपने भाषणा, अपनी प्राथना-सभाओ और अ व्यक्तिगत जीवनके उदाहरणोसे व बराबर यही काय करते रहे । उनके समयम भार में शान्तिकी उपलब्धि करीब करीब अतिमानवीय प्रयास-सा लगती थी । कि हम जानते ह कि हमें जीवनमें इस ढगसे काय करना चाहिए, मानो सब कुछ हम लोगोपर ही निभर ह और प्राथना इस ढगसे करनी चाहिए कि सब कु भगवानपर निभर ह । महात्मा गाधी मनुष्योम सत्यके साक्षात्कारके लिए इ ढगसे काय करते थे और इसी तरहसे प्राथना करत थे । //

ससारमें भिन्नताएँ बराबर रहेंगी । केवल *अयथार्थवादी ही* एस समाज स्वप्न देख सकता ह, जिसमें किसी प्रकारकी भिन्नता न हो । हमारे अपने पाल पोषण, शिक्षा धम इत्यादिमें भिन्नता होती ह । एक शब्दम कहें तो हमारी जीव प्रणालियाँ परस्पर भिन्न प्रकारकी होती ह । हमारे लिए किसी-न किसी तरहक जीवन प्रणाली आवश्यक ह । इस सबधमें बहुत कुछ लिखा और कहा गया कि धम विभाजन और सघर्षकी जड ह । कुछ लोग धमको फालतू चीज मान ह । कुछ लोग धमको विलासकी वस्तु मानते हैं, किन्तु व यह नही समझते ि धम मनुष्यकी बुनियादी आवश्यकता ह । मानव-जाति असाध्य रूपसे धार्मिक ह स्टुअट चेमनने कहा था

> परमात्मामे मनुष्यके विश्वासको नष्ट कर दो तो वह मानवताकी पूजा कर लगेगा मानवतामें उसके विश्वासको नष्ट कर दो तो वह विज्ञानकी पूज करने लगेगा विज्ञानमें उसके विश्वासको नष्ट कर दो तो वह अपन पूजा करने लगेगा उसका अपनेमें विश्वास नष्ट कर दो तो वह सैमुअल बटलर या इसी तरहके अन्य किसी सावजनिक वक्ता या सावजनि बुराईको दूर करनेके लिए प्रचारित कोई भी रामबाण इलाजकी पूज करने लगेगा ।

महात्मा गांधीने इसे स्पष्ट रूपसे समझ लिया था कि धार्मिक विश्वासके दृढ आधारके बिना मनुष्योंमे शान्तिकी कोई सम्भावना नही है।

आज देशकी अनेकानेक समस्याओके अनेक तरहके समाधान सुझाये जाते है। इस तरहके अवसरोपर हमे बच्चोकी तरह अपने पिता—राष्ट्रपिताके उपदेशोका स्मरण करना चाहिए। हम महात्मा गाधीसे सहिष्णुता सीख सकते है। उन्होने टैगोरसे कहा था

> मै यह नही चाहता कि मेरा मकान चारो ओरसे दीवालोसे घेर दिया जाय और मेरी खिडकियाँ वन्द कर दी जायँ। मै चाहता हूँ कि सब देशोकी संस्कृतियाँ मेरे मकानके चारो ओर वायुकी तरह उन्मुक्त बहती रहे। किन्तु मै इनमेंसे किसीके भी झोके खाकर उखड़ जानेको तैयार नही हूँ। मेरा धर्म कैदखानेका धर्म नही है। परमात्माकी सृष्टिकी छोटी-से-छोटी वस्तुके लिए भी इसमे स्थान है, किन्तु यह जाति, धर्म और सस्कृतिपर आधारित किसी भी तरहके उद्धत गर्वके विरुद्ध कवचके समान है।

इन सब बातोसे वढकर हम इनसे यह सीख सकते है कि वर्तमान नैतिक अध-पतनको रोकने तथा अपनी सभ्यतामे आध्यात्मिकताका पुन संचार करनेके लिए एक ही रास्ता है और वह है नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्योकी ओर प्रत्यावर्तन। उन्होने इसीके लिए कार्य किया था और इसीके लिए अन्तमे उन्होने अपनी जान भी दे दी। उनकी स्मृतिके प्रति इससे वढकर और कोई श्रद्धाञ्जलि नही हो सकती कि हम वरावर उनके जीवनसे प्रेरणा लेते रहे। उनसे प्रेरणा ग्रहण करनेका तरीका मात्र शाब्दिक नही होना चाहिए, अपितु हमे उनकी शिक्षाओको व्यवहारमें लानेका प्रयत्न करना चाहिए। मुण्डकोपनिषद्मे कहा गया है .

> सत्यमेव जयते नानृतम्। मुक्तिका दिव्य पथ सत्य द्वारा निर्मित है। इसपर वे मनीषी ही चल सकते है, जिन्होने अपनी इच्छाओको जीत लिया है। सत्य ही वह सर्वोच्च सम्पदा है, जो हमारा परम प्राप्तव्य है।

> आत्मा ही निर्भयता है, परमात्मा ही प्रकाश और जीवनका स्रोत है और फिर भी वह इन सबसे ऊपर और परे है।

परमात्मा-संबंधी ये अवधारणाएँ महात्मा गांधीकी हैं, जिन्हें उन्होंने समय-समयपर व्यक्त किया है।

मनुष्य मूलतः शान्तिकामी होता है। सम्मेलनों, शान्ति-वार्ताओं और राजनयिक अभिक्रमोंकी अनन्त शृंखला इस बातकी साक्षी है कि मनुष्य शान्तिकी उपलब्धिके लिए प्रयत्नशील रहता है। किन्तु शान्ति निर्माताका महान् कार्य मानव हृदयकी सहानुभूतिके तारोंको छूकर झंकृत कर देना है। महात्माने अपने पूरे जीवनमें यही कार्य किया था। अपने भाषणों, अपनी प्रार्थना-सभाओं और अपने व्यक्तिगत जीवनके उदाहरणोंसे वे बराबर यही कार्य करते रहे। उनके समयमें भारतमें शान्तिकी उपलब्धि करीब करीब अतिमानवीय प्रयास-सा लगती थी। किन्तु हम जानते हैं कि हमें जीवनमें इस ढंगसे कार्य करना चाहिए, मानो सब कुछ स्वयं हम लोगोंपर ही निर्भर है और प्रार्थना इस ढंगसे करनी चाहिए कि सब कुछ भगवानपर निर्भर है। महात्मा गांधी मनुष्योंमें सत्यके साक्षात्कारके लिए इसी ढंगसे कार्य करते थे और इसी तरहसे प्रार्थना करते थे।

संसारमें भिन्नताएँ बराबर रहेंगी। केवल अयथार्थवादी ही एक समाजका स्वप्न देख सकता है, जिसमें किसी प्रकारकी भिन्नता न हो। हमारे अपने पालन-पोषण, शिक्षा, धर्म इत्यादिमें भिन्नता होती है। एक शब्दमें कहें तो हमारी जीवन प्रणालियाँ परस्पर भिन्न प्रकारकी होती हैं। हमारे लिए किसी-न-किसी तरहकी जीवन प्रणाली आवश्यक है। इस संबंधमें बहुत कुछ लिखा और कहा गया है कि धर्म विभाजन और संघर्षकी जड़ है। कुछ लोग धर्मको फालतू चीज मानते हैं। कुछ लोग धर्मको विलासकी वस्तु मानते हैं, किन्तु वे यह नहीं समझते कि धर्म मनुष्यकी बुनियादी आवश्यकता है। मानव-जाति असाध्य रूपसे धार्मिक है। स्टुअर्ट चेसने कहा था

> परमात्मामें मनुष्यके विश्वासको नष्ट कर दो तो वह मानवताकी पूजा करने लगेगा, मानवतामें उसके विश्वासको नष्ट कर दो तो वह विज्ञानकी पूजा करने लगेगा विज्ञानमें उसके विश्वासको नष्ट कर दो तो वह अपनी पूजा करने लगेगा उसका अपनेमें विश्वास नष्ट कर दो तो वह गैमुअल बटलर या इसी तरहके अन्य किसी सार्वजनिक वक्ता या सार्वजनिक बुराईको दूर करनेके लिए प्रचारित किसी रामबाण दवाकी पूजा करने लगेगा।

महात्मा गांधीने इसे स्पष्ट रूपसे समझ लिया था कि धार्मिक विश्वासके दृढ आधारके विना मनुष्योमे शान्तिकी कोई सम्भावना नही है।

आज देशकी अनेकानेक समस्याओके अनेक तरहके समाधान सुझाये जाते है। इस तरहके अवसरोपर हमे वच्चोकी तरह अपने पिता—राष्ट्रपिताके उपदेशोका स्मरण करना चाहिए। हम महात्मा गाधीसे सहिष्णुता सीख सकते है। उन्होंने टैगोरसे कहा था

> मै यह नही चाहता कि मेरा मकान चारो ओरसे दीवालोसे घेर दिया जाय और मेरी खिडकियाँ वन्द कर दी जायँ। मै चाहता हूँ कि सव देशोकी संस्कृतियाँ मेरे मकानके चारो ओर वायुकी तरह उन्मुक्त वहती रहे। किन्तु मै इनमेंसे किसीके भी झोके खाकर उखड़ जानेको तैयार नही हूँ। मेरा धर्म कैदखानेका धर्म नही है। परमात्माकी सृष्टिकी छोटी-से-छोटी वस्तुके लिए भी इसमें स्थान है, किन्तु यह जाति, धर्म और संस्कृतिपर आधारित किसी भी तरहके उद्धत गर्वके विरुद्ध कवचके समान है।

इन सव वातोसे वढकर हम इनसे यह सीख सकते है कि वर्तमान नैतिक अधःपतनको रोकने तथा अपनी सभ्यतामे आध्यात्मिकताका पुनः संचार करनेके लिए एक ही रास्ता है और वह है नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्योकी ओर प्रत्यावर्तन। उन्होने इसीके लिए कार्य किया था और इसीके लिए अन्तमे उन्होने अपनी जान भी दे दी। उनकी स्मृतिके प्रति इससे बढ़कर और कोई श्रद्धाञ्जलि नही हो सकती कि हम वरावर उनके जीवनसे प्रेरणा लेते रहे। उनसे प्रेरणा ग्रहण करनेका तरीका मात्र शाब्दिक नही होना चाहिए, अपितु हमे उनकी शिक्षाओको व्यवहारमें लानेका प्रयत्न करना चाहिए। मुण्डकोपनिषद्मे कहा गया है :

> सत्यमेव जयते नानृतम्। मुक्तिका दिव्य पथ सत्य द्वारा निर्मित है। इसपर वे मनीषी ही चल सकते है, जिन्होने अपनी इच्छाओंको जीत लिया है। सत्य ही वह सर्वोच्च सम्पदा है, जो हमारा परम प्राप्तव्य है।

रिचार्ड बी० ग्रेग

सत्याग्रहियोकी सम्भाव्य सहायता

यह एक सुप्रसिद्ध तथ्य ह कि परमात्माकी सतत वतमानता और मागदर्शनका शक्तिमें गाधीजीका अटूट विश्वास था और उन्हें दवी पथ प्रदशनका भरोसा रहता था। इसके साथ ही वे प्राय यह भी कहा करते थे कि सफलताके लिए सत्याग्रहीको परमात्मामें विश्वास और आस्था रखनी चाहिए।

हममेसे जिन्होने सत्याग्रहकी शक्ति और मूल्यको देखा ह और उसमें विश्वास करते हैं, उनके लिए यह प्रश्न उपस्थित होता ह कि वे परमात्म निष्ठाकी शक्ति कैसे प्राप्त करें और बस उसे अपने दनिक व्यवहारमें लायें? इसे समझनेके लिए हम इस उदाहरणका सहारा ले सकते ह। आवश्यक निष्ठाका अजन जलमें तरना सीखनेके समान ह।

तरना सीखनेके पहले किसी व्यक्तिने मुझे यह नही बताया था कि जलपर तरनेवाली वस्तु अपने नीचेसे जिस जलको हटाती ह वह उसे ऊपर फेंक देता ह— उसकी उत्क्षेपण शक्तिकी उस उतराती हुई वस्तुपर प्रतिक्रिया होती ह। गुरुत्वाकषणकी शक्तिसे प्रेरित जल निरन्तर अपना एक स्थायी और समान स्तर कायम रखना चाहता ह। जब कोई उतराने योग्य वस्तु जलमें रखी जाती ह तो वह उस स्थानसे जलको हटाकर उसी स्थानपर ऊपरकी ओर उसका निक्षेप कर देती ह और इस प्रकार उसका स्तर ऊँचा कर देती ह। आरम्भिक स्तरको पुन प्राप्त कर लेनेके अपने प्रयासमें जल तरती हुई वस्तुपर ऊपरका ओर धक्का मारता ह।

मुझे अपने शरीरके भारका तो पूरा ज्ञान था किन्तु मन कभी उसका तुलना उसीके समान आयतनवाले जलके भारसे नहीं की था। ऐसा तुलना करनेका विचार भी कभी मेरे दिमागमे नहीं आया था। मुझे इस बातका भी कोई ज्ञान कारी न थी कि जब मैं अपने फेफडोंमें इतना हवा भर लेता हूँ कि वह हमारे

शरीरमे अधिक-से-अधिक आकाश घेर लेती है, उस समय मेरे शरीरका भार समान आयतनवाले उस जलके भारसे, जिसे मै अपने समूचे शरीरको जलमे रख-कर अपसारित करता हूँ, ठीक उतना ही कम होता है, जितना उसके उत्क्षेपणके लिए पर्याप्त होना चाहिए—जिससे मै जलकी सतहपर उतारनेमे समर्थ हो जाता हूँ और यदि इस हालतमे मै अपनी पीठके वल जलपर लेट जाऊँ तो वह मुझे साँस लेनेमे भी समर्थ वना देता है ।

मैने लकड़ीके टुकडो, कार्को, लट्ठो और नावोको भी पानीकी सतहपर सुर-क्षित रूपसे उतराते हुए अवश्य देखा था और इस प्रकार जलमे उतराती हुई नावो-पर बैठ भी चुका था । मै जीवनभर साँस भी लेता रहा हूँ और दूसरोको मैने तैरते हुए भी देखा था, किन्तु मैने पहले सुपरिचित श्वसन-क्रियाका संबंध अपरि-चित शारीरिक आसनो, गतियो और किसी एक शक्तिके साथ जोडकर उसे अपने ही शरीरपर लागू करनेका प्रयत्न कभी नही किया था। इस प्रयत्नका महत्त्व हमारे लिए अज्ञात था—वस्तुत. मेरे लिए यह एक आश्चर्यजनक अनुभूति थी ! मेरे अपने शरीर और जीवनको इस तरल और उतरानेवाली नयी शक्तिके भरोसे, जिसका मुझे केवल धुँधला-सा ही ज्ञान था, छोड देना, पानीकी सतहपर पीठके वल लेटकर फिर अपनेको पानीमे डुवा देना और पानीका कानो, आँखो और नाक तथा मुँहके रास्ते आते हुए अनुभव करना, जिसके कारण पहले मेरा श्वासावरोध होने लगा—ये सारी अनुभूतियाँ कितनी त्रासजनक थी ! इन शक्तियोपर भरोसा करना, इन नयी गतियो और स्थितियोका परीक्षण करना मेरी समस्त सहज वृत्तियोके विपरीत था ।

किन्तु दूसरे लोग, जो मेरी ही उम्रके थे और मुझसे कोई खास योग्य भी न थे, इसे कर रहे थे और मेरी सहायता करनेको तैयार थे । अतएव मैने फिरसे प्रयत्न करनेके लिए पर्याप्त निष्ठा और आत्मविश्वास प्राप्त कर लिया । अनुकरण-की शक्ति वहुत वडी होती है । इसीके द्वारा हम सवने चलना, वात करना और उन सारे हुनरोको सीखा है, जिनसे हम अपनेको सहारा देते है । यदि दूसरोने जलमे उतरानेकी कला मुझे समझा दी होती और यह वता दिया होता कि इस कलाका कैसे और क्यो प्रयोग किया जाता है तो अनुकरणकी इस प्रवृत्तिने अवश्य ही मेरी सहायता की होती । मैने उस शक्ति और हुनरको प्राप्त करना चाहा और इसके साथ ही एक अजीव वात हुई । वस्तुत. इसके साथ हो जैसे मै यह भी चाहने लगा कि मै जो कुछ हूँ, उससे अधिक शक्तिसम्पन्न व्यक्ति वन जाऊँ । जलमे कई वार मेरा दम घुटने लगा और कई वार मेरे फेफड़ोमे पानी चला गया,

अधिकाधिक नान होता गया
किन्तु हर बार मुझे जलकी ऊपर उछालनेकी शक्तिका
और म धीरे धीरे उन नये आसनो और हरकतोंको सीख गया, जिन्होने मुझे जल
की इस शक्तिका प्रयोग करनेमें समर्थ बना दिया। अन्तमें म दूसरोके समान,
अपनी नाक और आँखोको पानीके ऊपर रखना भी सीख गया। इसके बाद
अभ्याससे मने दक्षता और आत्मविश्वासका भी विकास कर लिया। अब मैं एक
मील गहरे पानीकी सतहपर भी सुरक्षापूर्वक तैर सकता हूँ। सुरक्षाकी सीमा
बहुत ही सकीर्ण प्रतीत होती है, किन्तु वही पर्याप्त होती ह। सारा जीवन अत्यन्त
सूक्ष्म, नाजुक और जटिल समायोजनो, सतुलनो और सीमाओके सहारे ही चलता
रहता ह। फिर भी सारे खतरोके बावजूद तरना जलमें सुरक्षा प्राप्त करनेका
अत्यन्त कारगर साधन ह। जिस व्यक्तिको तैरना नही आता, जलमें उसके सहज
सघर्षोंकी अपेक्षा तरना कही अधिक प्रभावी साधन ह। हर प्रकारका जीवन
युगोसे इसी तरहके संकरे सीमाओ, नाजुक सतुलना और समायोजनोके सहारे चला
आ रहा ह।

यह ध्यान देनेकी बात ह कि जो व्यक्ति अभी तरना सीखनेवाला ह वह
जबतक अपने शरीरको पानीके भरोसे नही छोडेगा, उसे अपनी निजी अनुभूतियोंमें
जलकी उत्क्षेपण-शक्तिका कोई बोध नही हो सकेगा। उत्क्षेपण शक्तिका प्रत्यक्ष नान
रूप, रस, गध, शब्द स्पर्श अथवा अन्य किसी भी ऐन्द्रियिक अनुभूतिके रूपम
नही हो सकता। जबतक शरीरको जलमें पूरी तरह डुबा नही दिया जाता और
उसे जलके भरोसे नही छाड दिया जाता उत्क्षेपण शक्तिका नान उसे हो ही नही
सकता। इतना होनेपर भी अच्छे-से-अच्छा पर्यवेक्षक भी इसका नान प्रथम बारम
ही प्राप्त नही कर सकता।

यही बात सत्याग्रहीके सबधम भी लागू होती ह। जबतक सारे खतरोंके
बावजूद सत्याग्रही अपने उग्र विरोधीके आन्तरिक गुणोको अपील नही करगा
उसमें छिपा हुआ सौजन्य और भद्रता अस्फुलिंग, मानवीय ऐक्यकी चेतनता तथा
उसकी आध्यात्मिक आन्तरिक प्रकृति व्यवहारम प्रकट ही नही हो सकती।
मानवमात्रके ऐक्यकी भावना जलमें छिपी उस उत्क्षेपण-शक्तिके समान ह जिसका
साक्षात्कार तैरनेवालेको तब होता ह जब वह अपनेको जलके भरोसे छोड
देता है।

तरनेवालेके इस उदाहरणका और सावधानीसे अध्ययन करनेपर सत्या
ग्रहके एक और दूसरे पक्षपर भी प्रकाश पडता ह।

किसी बडी नदी, झील या समुद्रके समान जलका कोई बडा स्रोत तरना

सीखनेवाले व्यक्तिके लिए खतरनाक माना जा सकता है। इसमे उसके डूब जाने-का भय और खतरा है। इस दृष्टिसे इसे अशुभ कह सकते हैं। खतरा और सुरक्षा, अच्छा और बुरा, शुभ और अशुभ दो विरोधी वस्तुओके युग्म है। भगवद्-गीतामे ऐसे द्वन्द्वात्मक युग्मोका बहुधा उल्लेख हुआ है। इन द्वन्द्वोका अतिक्रमण कर जाना ही ज्ञानीका परम पुरुषार्थ होता है। जिस व्यक्तिने अभी तैरना सीखना शुरू ही किया है, उसके लिए वायु, जिसे वह श्वास द्वारा ग्रहण करता है, जीवनका साधन है और जल मृत्युका खतरा है। वह ऐसे द्वन्द्वका अतिक्रमण कैसे कर सकता है?

किसी भी द्वन्द्वका अतिक्रमण करनेके लिए उनमेसे किसी एक को भी न तो नष्ट किया जा सकता है, न फेका ही जा सकता है। दोनो ही इस ससारकी वास्त-विकताके अंग है। उन दोनोको एक उच्च स्तरपर ले जाकर उनमे समन्वय स्थापित करना आवश्यक है।

तैराक उस जलमें, जो उसके जीवनके लिए खतरनाक है, अपनेको पूर्णत निमज्जित करके ही इन द्वन्द्वोका अतिक्रमण कर पाता है। उसे इस बातका भरोसा होता है। इस अशुभ दिखायी देनेवाली वस्तुके खतरेमे ही अन्तिम शुभ-की संभावना है, क्योकि यह अशुभ वस्तु भी सत्यका ही अभिन्न अंग है। अपने शरीरको निमज्जित करके वह जलकी उत्क्षेपण-शक्तिको क्रियान्वित कर देता है और यह शक्ति उसे इतना ऊपर फेंक देती है कि वह श्वास लेनेमे समर्थ हो जाता है। वह अपने शरीरको जलकी सतहसे ऊँचा उठाकर अपनेको उस अशुभ वस्तुसे श्रेष्ठ सिद्ध करनेका प्रयत्न नही करता। इसी तरहसे सत्याग्रही भी उग्र हिंसक विरोधीकी दयापर अपनेको छोडकर उसके प्रति अपना सम्मान ही नही, प्रेम भी प्रकट करता है। हिंसक विरोधीके भीतर छिपी मानव-ऐक्यकी भावनाके स्फुलिङ्गमे निहित सत्याग्रहीका सत्य इस स्थितिमें एक रचनात्मक शक्ति बन जाता है। वह विरोधीकी अन्तरात्माको क्रियान्वित कर देता है। समादर और विश्वास प्रेमके अनिवार्य तत्त्व होते हैं।

इस प्रकारसे विरोधीके प्रति सम्मान और प्रेमसे समन्वित सत्याग्रहीका अहिंसक प्रतिरोध द्वन्द्वोके वास्तविक अतिक्रमणमे परिणत हो जाता है। शुभा-शुभके अतिक्रमणसे हमें विवेक प्राप्त होता है।

महात्मा गाधी और मानवीय स्वतन्त्रता

जबतक स्वतन्त्र और स्वतन्त्रता तथा न्यायके प्रेमी लोग रहेंगे महात्मा
गाधीकी याद हमेशा बनी रहेगी। वस्तुत मानव-जातिने महात्मा गाधी जसे महान
व्यक्तियोंको कम ही पैदा किया है। इन महापुरुषोंका यही एकमात्र पुरस्कार ह कि
लोग आनेवाले समयमें उनके प्रति कृतज्ञ रहें। किसी सासारिक मनुष्यमानवसे हम
जितनी आशा कर सकते ह महात्मा गाधीने भारत ही नही समस्त ससारके
लिए उससे कही ज्यादा काय किया ह।

महात्मा गाधीका नाम सत्य और न्यायका पर्याय बन गया ह। यह नाम
ससारके करोडों उत्पीडित लोगोके लिए सत्य और न्यायका प्रेरणा-स्रोत बन गया
ह। इसने ससारमें स्वातन्त्र्यकी ज्योति जगा दी है। उनकी जन्मशतीपर उनके
सत्कार्योंका स्मरण करते हुए ससारके लोग उनके उन महान प्रयासोके आभारी
ह जिनके द्वारा यह ससार रहने योग्य बन सका ह।

आज जब कि विश्व-शान्तिको मानव-जातिके विनाशमें समथ पारमाणविक
शस्त्रास्त्रोंसे भीषण खतरा उत्पन्न हो गया ह, प्रेम, सत्य और दूसरोके अधिकारोके
प्रति सम्मानकी जिस भावनाका महात्मा गाधीने उपदेश किया था उसका पूर्वापेक्षा
कही अधिक महत्त्व हो गया ह। कोई भी इस तथ्यसे इनकार नही कर सकता
कि जबतक ससारके लोग रग, धम, राजनीतिक विचारधारा आदिका कोई
ख्याल किये बिना शान्तिपूण सह-अस्तित्वका सिद्धान्त नही स्वीकार कर लेते
शान्ति और प्रगतिकी कोई सभावना नही ह।

इसी सिद्धान्तको लक्ष्यकर महात्मा गाधीने एक बार कहा था
स्थायी शान्तिकी सभावनामें विश्वास न करना मानव-स्वभावकी अच्छाईमें
अविश्वास करना ह। आजतकके सारे प्रयत्न इसलिए विफल हुए ह कि
उन्हें स्वीकारकर सघष करनेवाले लोगोंमें चट्टान जसी अविचल निष्ठाका

अभाव था। ऐसी बात नही है कि अभी भी उन्होने इस अभावका अनुभव कर लिया है। केवल आधा काम करनेसे उसी तरह शान्ति स्थापित नही हो सकती, जैसे, सभी शर्तोको पूरा किये विना कोई रासायनिक मिश्रण नही तैयार किया जा सकता। यदि मानव-जातिके वे मान्य नेता, जिनका विनाशके साधनोपर नियन्त्रण है, इन साधनोकी संहारकारी संभावनाओका पूर्ण परिज्ञान प्राप्त कर इनके प्रयोगका पूर्णत· वहिष्कार कर दें तो स्थायी शान्ति प्राप्त की जा सकती है। यह स्पष्ट है कि जवतक संसारकी महान् शक्तियाँ साम्राज्यवादी अभिप्रायोका त्याग नही कर देती, शान्ति कायम होना असंभव है। जवतक वडे राष्ट्र आत्मनाशी प्रतिस्पर्धामे विश्वास करना और आवश्यकताओको वढाते जाना तथा उनके लिए भौतिक वस्तुओकी वृद्धि करना छोड नही देते, शान्तिकी संभावना नही हो सकती ···· "

हमारा विश्वास है कि यदि संसार विनाशसे वचना और मानव-जातिकी प्रगति चाहता है तो उसे महात्मा गांधी जैसे महान् नेताओके परामर्श और चेतावनियोंपर ध्यान देना ही होगा।

महात्मा गाधीने ठीक ही कहा था कि "जो लोग भलाई करना चाहते है, वे स्वार्थी नही हो सकते।" स्वर्गीय महात्मा गाधीसे वढकर इसका कोई उदाहरण नही मिल सकता।

भारत और अफ्रीका दोनो जगह स्वतन्त्रता और न्यायके लिए गांधीजी द्वारा चलाया गया संघर्ष सफल हुआ। उनके दर्शनको सारे संसारमें मान्यता मिली है और वह मानवीय स्वतन्त्रताका सुदृढ और गंभीर आधार वन गया है।

भारतको इसका गर्व होना चाहिए कि उसने एक ऐसे महापुरुषको जन्म दिया है, जिसने अपने जीवनकालमें मानव-जातिको इतना प्रेम किया और उसकी इतनी सेवा की। उनका इस सिद्धान्तमे दृढ विश्वास था कि "मनुष्य तभी पूर्ण प्रेमका व्यवहार कर सकता है और तभी पूर्णत: नि स्वार्थ वन सकता है, जब वह मानव-जातिकी सेवामे अपने शरीरतकका त्याग करने और मृत्युका वरण करनेको भी प्रस्तुत हो।"

महापुरुप कभी नही मरते, उनके कार्य अमर होते है। इसीलिए यद्यपि आज महात्मा गाधी हमारे वीच नही है, मानव-जातिके कल्याणके लिए किया गया उनका कार्य और उसके प्रति उनके एकान्त समर्पणकी भावनाकी सजीव स्मृति छोटे-वड़े, युवक और वृद्ध हम सव लोगोके प्रतिदिनके जीवनमें वरावर वनी रहेगी।

डब्ल्यू० के० हैनकाक

विलक्षण मैत्री

म यहाँ दक्षिण अफ्रीकामें हुए स्मटस-गाधी सघर्षकी बहुचर्चित कथा नही दुहराऊँगा, बल्कि म इन दोना व्यक्तियोंमें आगे चलकर जिस घनिष्ठ सबधका विकास हुआ, उसके कुछ पक्षोपर सक्षेपमें विचार करूँगा। उनके बीच जून १९१४ को जो समझौता हुआ था, वह उन दोनोकी दृष्टिमें एक ऐसा समझौता था जिससे दक्षिण अफ्रीकामें प्रगतिशील सुधारकी सभावना बढती थी और दोना के दो देशोंके बीच इसके फलस्वरूप समझौतेका माग प्रशस्त हुआ था। किन्तु समझौतेकी सम्भावना शीघ्र ही समाप्त हो गयी। गाधीने इसके लिए स्मटसको दोषी ठहराया और उनकी तीव्र भर्त्सना की, किन्तु अपने पत्रोंके अन्तमें वे 'आपका मित्र' लिखकर ही अपना हस्ताक्षर किया करते थे। यह कसे सभव हुआ था?

उनके पारस्परिक *व्यक्तिगत व्यवहारोंमें जातीय भेद भावके लिए कोई स्थान* न था। १९२० के आरभिक दिनोंमें जब भारत और दक्षिण-अफ्रीकामें कटु सघर्ष चल रहा था स्मट्सने गाधीको लिखा था

> जिस समय आप इंग्लण्डम अध्ययन कर रहे थ और म भी वहीं था, आपकी जनताके प्रति मुझमें किसी प्रकारका जातीय भेदभाव या रग भेदका भाव नही था। वास्तविकता तो यह ह कि यदि हम एक-दूसरेसे परिचित होते तो हम परस्पर मित्र बन गये होते। आखिर अब हम एक दूसरके प्रतिद्वन्द्वी बस बन गये ह और हमारे स्वार्थोंमें इतनी टकराहट क्या पैदा हो गयी ह? इसके मूलमें किसी प्रकारका जातीय भेदभाव या रगभेद नही ह, जसा कि आपके कुछ लोग अज्ञानवश कहा करते हैं, किन्तु एक बात अवश्य है, जिसे मैं चाहता हूँ, आप भी समझनेकी कोशिश करें। वह यह ह। यह ठीक है कि म जातीय भेदभावपर आधृत कोई कानून न बनाऊँ किन्तु हमारी सस्कृतियोंमें जो मौलिक अन्तर ह,

उसकी कठिनाई आप कैसे हल करेंगे ?[3]

गांधीजीके अनुसार भेदभावमूलक कानून इसका कोई समाधान नही हो सकता था, किन्तु वे पहलेसे ही यह भी जानते थे कि दक्षिण अफ्रीकाके राजनीतिज्ञके रूपमे स्मट्सको किस तरहकी जटिल आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और मनोवैज्ञानिक परिस्थितियोसे निपटना पडता था। लॉर्ड हैलिफाक्सने १९३० मे गांधीसे हुए उनके एक विचार-विमर्शको अंकित कर रखा है। गांधी पुलिसकी कारगुजारियोंपर कडा नियन्त्रण लगानेकी माँग कर रहे थे, किन्तु वाइसरायको सार्वजनिक सुरक्षाके अत्यावश्यक कारणोंसे इस माँगको ठुकरा देना पडा, जिससे उन्हें संकट बढनेकी आशंका हो रही थी। किन्तु गांधीने उन्हे यह लिखकर आश्चर्यमे डाल दिया.

> "वाह! आप महानुभाव भी मेरे प्रति वही व्यवहार कर रहे हैं, जो व्यवहार दक्षिण अफ्रीकामे जनरल स्मट्स मेरे प्रति करते थे। आप इस बातसे इनकार नही करते कि मेरी माँग न्यायोचित है, किन्तु आप सरकारकी दृष्टिसे ऐसे कारण प्रस्तुत करते हैं, जिनका जवाब नही दिया जा सकता और जिनकी वजहसे आप मेरी वह माँग माननेमे असमर्थ हैं। मैं अपनी माँग वापस ले लेता हूँ।"[४]

गाधीने निश्चय ही "इण्डियन रीव्यू" मे स्मट्स द्वारा लिखे गये उस लेखको पढ रखा था, जिसमे उन्होने प्रथम विश्वयुद्धके दौरान लंदनमे कहा था कि मैं किसी भी भारतीय अधिकारीके अधीन सेवा करनेमें गर्वका अनुभव करूँगा बशर्ते वह अपने पदके लिए पूर्णत. कुशल हो।[५] गाधीको इसके लिए किसी लिखित प्रमाणकी आवश्यकता न थी। किसी भी ऐसे व्यक्तिके समान, जिसे कभी भी स्मट्सके निकट-संपर्कमे आनेका अवसर मिला हो, उनकी भी स्मट्सके सबधमे यही मान्यता बन गयी थी कि जातीय भेदभावसे ग्रस्त देशमे वे ही एक ऐसे विलक्षण व्यक्ति एवं राजनीतिज्ञ हैं, जो इससे सर्वथा मुक्त हैं।

इसके अतिरिक्त गाधीको यह भी मालूम था कि अपने देशमें भारतीयोकी आजादीके भी वे बडे समर्थक हैं। १९३१ मे गोलमेज सम्मेलनके अवसरपर गाधी और वाइसराय दोनोने स्मट्सकी सहायता ली थी, यद्यपि उस समय वे किसी पदपर नही थे और किसी शैक्षिक आयोजनके सिलसिलेमें ही उस समय इंग्लैण्ड आये हुए थे। नवबर १९३१ मे वाइसरायने उनसे अपील की थी कि वे किसी प्रकार ब्रिटिश राजनीतिज्ञोके "दिमागमे यह बात डाल दें" कि कोई समझौता न हो सकनेकी सूरतमे ब्रिटेन और भारत दोनोको क्षति पहुँचे बिना

न रहेगी। इसके एक या दो दिनो बाद गाधीने उन्हें लिखा था

> मुझे आपका प्यारभरा पत्र विधिवत प्राप्त हुआ। अपनी आखिरी मुलाकातके बाद मुझे यह विश्वास हो चला ह कि गत सप्ताह आपने प्रसन्नता पूर्वक हमारी वार्तामें जो मैत्रीपूर्ण हस्तक्षेप किया ह, उसे आप आगे भी जारी रखेंगे। यदि आवश्यक हो तो आप उस समस्याके समाधानमें, जिसे आप उचित रूपसे विश्वके लिए महत्त्वपूर्ण मानते ह, सहायता पहुँचानेके लिए फिलहाल दक्षिण अफ्रीका जाना स्थगित कर दें।

किन्तु कर्तव्यवश स्मटसको अपने सकटग्रस्त देशको वापस लौट जाना पडा। शीघ्र ही उन्हें यह समाचार मिला कि भारतके नये वाइसराय लार्ड विलिंगडनने गाधी तथा अन्य भारतीय नेताओंको जेलमें डाल दिया ह। इसपर स्मटसने अगस्त १९३२ में लिखा

> यह तो मुझे कोरी मूर्खता और अजीब-सी बात लगती ह कि एक ओर तो काग्रेसको जेलमें डालकर उदार विचारवालोको अपना विरोधी बना लिया जाय और दूसरी ओर नया सविधान प्रदान करनेका काम आगे बढाया जाय। आखिर इस सूरतमें इस सविधानको लागू कौन करेगा और इसकी सफलताकी कोई जिम्मेदारी कौन लेगा? म स्पष्ट प्रतिक्रिया अथवा सख्त व्यवहारकी बात समझ सकता हूँ। म कम्पबेल, बनरमन जमे लोगोकी भरोसा करनकी न्यूनाधिक उदारनीतिकी भी सराहना कर सकता हूँ। किन्तु यह शतानी क्या ह ? गाधी हमारे सर्वोत्तम मित्र रहे हैं और आज भी हैं। उनके साथ वैसा ही व्यवहार होना चाहिए ऐसे समयमें ऐसे शक्तिशाली और प्रभावशाली व्यक्तिको जेलमें रखना शक्तिकी कितनी बडी बरबादी ह। और गाधीजीके सहकारके बिना नये सविधानका सुचारुरूपसे चलना आरभतक नही हो सकता।[६]

स्मटस भारत-सरकारकी कठिनाइयोंको भी कम करके नही देखते थे। वे यह समझते थे कि भारत-सरकारकी यही समस्या ह कि किस तरह भारतको आजादी देनेमें तेजी लायी जाय और इससे भारतकी एकताको किसी प्रकारका खतरा न पहुँचे। उन्हें कभी-कभी इसपर भी आश्चर्य होता था कि आखिर इन दो विरोधी उद्देश्योम समझौता कैसे हो सकता ह और खुदसे यह सवाल करते थे कि भारतकी एकताकी चिन्ता करनके पहले स्वय यूरोपकी एकताकी चिन्ता क्यों नही की जाती और भारतकी आजादीके लिए यह शर्त क्यों रखी जाती ह।

हर हालतमे वे चाहते थे कि ब्रिटिश राजनीतिज्ञ आजादीको प्राथमिकता दें और इसे शीघ्रतासे प्रदान करनेका खतरा उठानेको तैयार हो जायँ। उन्होने अगस्त १९४१ मे लॉर्ड लिनलिथगोको लिखा था :

> अपने सम्पूर्ण निहित अर्थोके साथ भारतको डोमिनियन स्टेट्स प्रदान करनेसे इनकार नही करना चाहिए, बल्कि इसे तत्काल मुक्त और उदार-रूपसे प्रदान कर देना चाहिए, क्योकि हर हालतमे यह अनिवार्य हो गया है।

कुछ महीनोंके बाद उन्होने अपने एक अंग्रेज मित्रको लिखा, "आखिर ब्रिटिश राजनीतिज्ञ कैम्पबेल-बैनरमैनके साहसके साथ शीघ्रतासे काम क्यो नही कर पा रहे हैं ?" भारतीय मामलोंमें युद्धके दौरान भारतके राजसचिव और उनके मित्र एल० एस० एमरीसे हुए पत्राचारमे भी उनकी यही भावना दिखाई देती है।

फिर भी उन्हे भारतमे भारतीयोकी स्वतन्त्रताके समर्थन करने और दक्षिण अफ्रीकामें उन्ही भारतीयोकी स्वतन्त्रतापर प्रतिबंध लगानेकी नीतिका पालन करनेमे जो विरोधाभास था, उसका सामना करना ही पडता था। अप्रैल १९४३ मे पारित कुख्यात "पेगिंग ऐक्ट" में यही विरोधाभास प्रकट हुआ था। मै यहाँ फिरसे उन जटिल आर्थिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक परिस्थितियोका विश्लेपण नही करूँगा, जिनके फलस्वरूप यह कानून अस्तित्वमे आया था ?[७] यदि हिटलरका खतरा न पैदा हो गया होता तो स्मट्स शायद इससे निपटनेका कोई रास्ता निकालते। वे बडी मुश्किलोसे दक्षिण अफ्रीकाको हिटलरके विरुद्ध लड़नेके लिए तैयार कर सके थे। इसपर वहाँके विरोध-पक्षने उन्हे अपने ही देशका शत्रु करार दे दिया था। उसने हिटलरके साथ पृथक् शान्तिसंधि और राष्ट्रमण्डलसे संबंध भंग करनेकी माँग की थी। १९४३ के मध्यमें हुए आम चुनावके समय स्मट्सने उसकी यह चुनौती स्वीकार की और वे विजयी भी हुए। किन्तु इस विजयका मूल्य उन्हे पेगिंग ऐक्टके रूपमे चुकाना पड़ा। उन्हें इस ऐक्टसे नफरत थी और वे इसका मूल्य चुकानेको तैयार नही थे, किन्तु उन्होने इसी विचारसे अपनेको सान्त्वना दे रखी थी कि इस ऐक्टकी अवधि केवल दो वर्षकी है। उन्हे आशा थी कि इस बीच वे भारतीयोके साथ स्थायी समझौता कर लेंगे और इस प्रकार दक्षिण अफ्रीकाकी गृहनीतिको उसकी वैदेशिक नीतिके अनुरूप बनानेमें सफल हो जायँगे। अप्रैल १९४४ में नेटालकी भारतीय जनताके नेता ए० आइ० काजी द्वारा समझौतेके लिए प्रस्तुत सभी प्रस्तावोको उन्होने पूर्णत. स्वीकार कर लिया। ये सारे प्रस्ताव प्रीटोरिया समझौनेके अत्यन्त स्पष्ट शब्दोमें लिखित अभिलेखमें पूर्णत

लिखा है, किन्तु दुर्भाग्यसे यह समझौता कभी कार्यान्वित न हो सका। स्मटसके लिखित समझौतेके विरोधियोंने तो इसे रद्द कर ही डाला, काफ़ीर वर्गके विरो-धियोंने भी उसीका अनुसरण किया।

मैंने अपनी पुस्तकमें इन घटनाओंके दुःखद परिणामोंपर कुछ विस्तारसे विचार किया। किन्तु अभी इस विषयमें कहीं अधिक खोज और विस्तारकी आवश्यकता है। उदाहरणके लिए मुझे इस बातका कोई आभास नहीं है कि प्रीटोरिया समझौता रद्द हो जानेके बाद नवम्बर १९४६ में संयुक्त राष्ट्रसंघमें भारतीयों और दक्षिण अफ्रीकाकी सरकारोंमें हुए मतभेदका जो पटाक्षेप चलता रहा है उसमें गांधीजीकी भूमिका क्या रही है। मैं केवल यही जानता हूँ कि स्मटसके साथ उनकी मैत्रीका संबंध कभी नष्ट न हो सका। भारत और दक्षिण अफ्रीकाके बीच गहरी होती हुई खाईके बावजूद उन्होंने स्मटसके पास अपना अभिवादन भेजा था। राष्ट्रसंघमें दक्षिण अफ्रीकाके विरुद्ध अभियोग लगानेके लिए नियुक्त भारतीय प्रतिनिधि श्रीमती पण्डित ही गांधीजीके इस संदेशकी वाहिका थीं। उन्होंने स्मटससे जाकर कहा कि गांधीजीने मुझे आपसे 'हाथ मिलाने और इस उद्देश्यमें आपका आशीर्वाद प्राप्त करनेका आदेश दिया है।'[1]

इससे पूर्व राष्ट्रसंघकी साधारणसभामें श्रीमती पण्डितने दक्षिण अफ्रीकापर भीषण प्रहार करते हुए कई भाषण किये थे। स्मटस इन भाषणोंको सुन चुके थे। ऐसी हालतमें यदि वे मनुष्य न होकर देवता होते, तभी उनको आशीर्वाद दे सकते थे। श्रीमती पण्डितके एक-एक प्रहारसे वे तिलमिला उठे थे। फिर भी उस समय उन्होंने अपने मित्रोंको जो पत्र लिखे हैं, उन्हें देखनेसे पता चल जाता है कि उनमें पक्षपातकी भावना नहीं थी। राजनीतिज्ञ होनेके नाते उन्हें जिन दुःखद विरोधोंमें उलझना पड़ा था, उन्हें वे अच्छी तरह समझते थे। इतना ही नहीं 'श्वेत और अश्वेत जातियोंके दो ध्रुवोंमें बँटी और छटपटाती हुई इस दुनियाकी दुःखद स्थिति से भी वे पूर्णतः परिचित थे। आगे आनेवाले महीनोंमें वे दक्षिण अफ्रीकाकी असमाधेय कठिनाइयोंसे जूझते रहे। श्वेत और अश्वेतकी यह दारुण समस्या बराबर बनी ही रही, जो अन्ततः उन्हें ले डूबी। उन्हें इस बातसे आश्चर्य होता रहता था कि गांधीजी भारतकी भूमिपर एक समसामयिक संघर्षमें किस तरह सफलता प्राप्त करते जा रहे हैं। जब गांधीजीकी दुःखद मृत्युका समाचार उन्हें मिला तो उनके मुँहसे स्वतः ये उद्‌गार निकल पड़े :

> मानव-जातिका सिरमौर उठ गया है और हम भारतके इस अपूरणीय क्षतिके साथ स्वयं शोकग्रस्त हैं।'[2]

डब्ल्यू० के० हैनकाक

मै उस दिनकी बाट जोह रहा हूँ, जब गाधीजीकी समस्त लिखित सामग्रीका भव्य संस्करण प्रस्तुत हो जायगा और उनकी इस विलक्षण एवं महान् मैत्रीकी कथा स्वयं गांधीजीके पक्षसे उपस्थितकी जा सकेगी ।

---

१. देखिये डब्ल्यू० के हैनकाक · स्मट्स, भाग २, द फील्ड्स आव फोर्स (कैम्ब्रिज १९६८), अध्याय, ७, २६ ।

२. वस्तुतः कैम्ब्रिजमें स्मट्सने दो भारतीय मुसलमानों आफताब अहमद खाँ और उनके भाई सुल्तान मुहम्मदसे दोस्ती की थी ।

३ तेन्दुलकर · महात्मा, भाग ३, पृ० ११७ ।

४. द अर्ल आव हैलिफैक्स · फुलनेस आव डेज (लदन १९५७), पृ० १४८ ।

५. इण्डियन रीव्यू , अक्तूबर १९१९, पृ० ७१४ ।

६. ये और आगेके उद्धरण 'स्मट्स : द फील्ड्स आव फोर्स' पुस्तकके उस २६ वें अध्यायसे लिये गये हैं जिनमें सटीक सदर्भ दिये गये हैं ।

७ वही पृ० ४५७ ।

८. नयनतारा सहगल : प्रिजन ऐण्ड चाकलेट केक (लदन १९५४), पृ० १९६ ।

९. स्मट्स लेटर्स, भाग ८८, न० २१७, हेनरी कूपरसे सी० शुलकतक, ११ दिसम्बर १९४८ ।

डब्ल्यू० हीसेनबर्ग

राजनीतिमें अहिंसा

भारतके इतिहासमें गांधीके महान कार्यको देखते हुए स्वभावतः यह प्रश्न पूछनेका प्रलोभन हो जाता है कि गांधीके राजनीतिक विचारोंका हमारे संसारकी भावी व्यवस्थामें कहाँतक योगदान हो सकता है अथवा इनका कोई योगदान हो भी सकता है या नहीं। गांधीने अपने देशकी आजादीके लिए जो महान प्रयास किया, संभवतः उसके प्रति इस प्रश्न द्वारा पूर्ण न्याय नहीं किया जा सकता क्योंकि भावी संसारमें स्वतन्त्रता सीमित हो जायगी और सामान्यतः उसके स्थानपर सभी राष्ट्रोंके बीच किसी-न किसी प्रकारके अन्योन्याश्रय संबंधकी प्रतिष्ठा हो जायगी किन्तु इस प्रश्नका हम जो भी उत्तर देंगे, उसमें भारतीय चिन्तन धारा और भारतीय दर्शनका विश्वकी भावी व्यवस्थापर पड़नेवाले प्रभावका प्रमुख स्थान होगा। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि इस दृष्टिसे गांधीजीके अहिंसा-संबंधी विचार अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

यद्यपि यह ठीक है कि आजतक राष्ट्रोंके झगड़े प्रायः हमेशा ही शक्ति द्वारा निबटाये गये हैं अर्थात् जिन्हें अपने रास्तेमें रोड़ा समझा गया है उनके प्रति हिंसाका प्रयोग किया गया है किन्तु आधुनिक प्राविधिक शस्त्रास्त्रोंका अस्तित्व इस अपमानजनक स्थितिको बहुत दिनोंतक चलने नहीं दे सकता। अतएव भावी संसारमें एक समूहके स्वार्थोंको दूसरे समूहके स्वार्थोंके विरुद्ध आगे बढ़ानेमें निश्चय ही दूसरे प्रकारके साधनोंका प्रयोग करना होगा। इस स्थितिमें अहिंसाके विचारसे दो दिशाओंमें निर्णायक सहायता मिल सकती है। यह विचार पहले इस प्राचीन और विवादग्रस्त धारणाको ही उलट देता है कि 'साध्य ही साधनोंके औचित्यका आधार होता है।' अहिंसाके विचारके अनुसार साधनोंका गुण ही अर्थात् अच्छे उद्देश्योंके लिए स्वयं कष्ट उठा लेने और दूसरोंको किसी प्रकारका कष्ट न देनेकी प्रवृत्ति ही साध्योंको औचित्य प्रदान करती है। इसीसे दूसरा निष्कर्ष यह भी

निकलता है कि दूसरोकी, वहुसंख्यक लोगोकी सहमति प्राप्त करके ही हम विवेक-संगत रीतिसे अपने स्वार्थोंको रक्षा कर सकते है ।

हमारे वर्तमान युगमे राष्ट्रोंके वीच उपस्थित कठिन समस्याओके समाधानके लिए अन्तरराष्ट्रीय संस्थाओ एवं अदालतोके निर्माणकी सामान्य प्रवृत्ति दिखाई देती है । निश्चय ही यह एक सही दिशामे बढाया गया अच्छा कदम है । किन्तु आगे चलकर और खासकर अभी कुछ दिनोतक ऐसी संस्थाओकी प्रामाणिकतामे दो पक्षोमेंसे कोई एक पक्ष संदेह प्रकट करने लगेगा अथवा संघर्षकी किसी समस्यामे अन्य राष्ट्रोंकी सामान्यत. कोई रुचि न होनेके कारण किसी भी ऐसी अन्तरराष्ट्रीय संस्थाका निर्णय व्यर्थ हो जायगा । ऐसी हालतोमे गाधीके निष्क्रिय प्रतिरोध या अहिंसाका विचार विवादग्रस्त समस्याकी ओर अधिकसे अधिक लोगोका ध्यान आकृष्ट करनेमे सहायक हो सकता है और इससे उस समस्याके तात्कालिक समाधानकी अनिवार्यताको वल प्रदान किया जा सकता है, क्योकि गांधीकी अहिसाके विचारका आधार अत्यन्त तीव्र निजी संघर्ष है जवकि किसी अन्तरराष्ट्रीय अदालतके निर्वैयक्तिक विचारमे वैसी कोई तीव्रता नही है । अतएव ऐसा प्रतीत होता है कि गाधीकी चिन्तन-पद्धतिसे भावी विश्वकी एक ऐसी राजनीतिक व्यवस्थाके निर्माणमे प्रत्यक्ष सहायता मिल सकती है जिसमे कोई भी राष्ट्र परमाणु शक्ति सम्पन्न होनेकी अपेक्षा उनसे विहीन होकर अधिक सुरक्षित रह सकेगा और कोई भी राष्ट्र दूसरोके स्वार्थोंकी उपेक्षा करनेके वजाय उनमे रुचि लेकर और सक्रिय सहयोग देकर अपने स्वार्थोंकी रक्षा अधिक प्रभावी ढंगसे कर सकेगा। गाधीने एक ऐसा अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत कर दिया है, जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि अहिंसाके पूर्ण वहिष्कारके साथ अत्यन्त निष्ठापूर्वक चलाये गये निजी संघर्पसे महान् राजनीतिक सफलता प्राप्त की जा सकती है । हम सभी इस उदाहरणके लिए उनके ऋणी है ।

डोरोथी क्रोफूट हाजकिन

महात्मा गाधी

चूँकि मुझे महात्मा गाधीजीकी स्मृतिमें प्रकाशित होनेवाली इस पुस्तकके लिए कुछ लिखनेको कहा गया था अतएव स्वभावत म भारत और ससारके लिए गाधीजी द्वारा किये गये कार्यों, जीवनके प्रति उनके विशिष्ट दृष्टिकोण और उनके द्वारा स्वीकृत विशिष्ट जीवन प्रणाली एव उनके अभिलषित आदर्श विश्वके सबधमे बहुत कुछ सोचने लगी। ऐसा करते समय मेरा ध्यान स्वत ससारकी आदर्श कल्पनाओ और मनोराज्योंके लक्षणोपर चला गया। म सोचने लगी कि म इस मानेमें बडी भाग्यवान् हूँ कि कम-से-कम मेरा एक आदर्श विश्व आज अस्तित्वमें आ गया ह और आजकी दुनियामें म जिस किसी भी देशमे जाती हूँ मुझे इसी आदर्श विश्वसे होकर गुजरना पडता ह। यह आदर्श विश्व वैज्ञानिकों का विश्व ह, जिसमें वे लोग छोटे-बडे अणुओ एव परमाणुओकी सरचनासे सम्बद्ध अत्यत आकर्षक समस्याओ और सजीव पिण्डोम होनेवाले उनके व्यवहारका बडी तत्परतासे अध्ययन कर रह ह। इस कार्यमें सभी देशोंके भौतिक शास्त्रवेत्ता, रासायनिक, रवोका अध्ययन करनेवाले वैज्ञानिक जीवरसायनविद और जीव विज्ञान-शास्त्री आवश्यक रूपसे मत्री भावसे परस्पर आबद्ध होकर जिन विषयोंमें उनकी तीव्र रुचि ह उनका अनुशीलन कर रहे ह।

मेरा ख्याल ह कि जब म आक्सफोर्डमें प्राक्स्नातक छात्रा थी और अतिथि प्राध्यापकोंको जिनमसे आज भी मुझे विशेष रूपसे बाहर और डेबीकी याद आती ह, भाषण सुनने जाती थी, उसी समय मुझे पहली बार अन्तरराष्ट्रीय वैज्ञानिकोंके ससारके अस्तित्वका पता चला और २१ वर्षकी उम्रम गर्मीकी छुट्टियोंमें हीडेलबर्ग जानेपर मैंने पहली बार इस ससारमें प्रवेश किया। मुझे आजतक उस उत्तेजनाकी स्मृति बनी हुई ह, जिसका अनुभव मुझे पहली बार विदेशोंमें जाकर एक सुन्दर शहर और राकफेलर फाउण्डेशन द्वारा स्थापित महान् विश्वविद्यालयकी

उन शानदार इमारतोको देखनेपर हुआ था, जिनपर "जू लेवेंडिजे जीस्टे" का अभिलेख उत्कीर्ण था। मै प्रोफेसर विक्टर गोल्डस्मिट और उनकी पत्नीके विशिष्ट मित्र डॉक्टर मेरी पोर्टरकी सलाहपर हीडेलबर्ग गयी थी। वहाँ मेरा लक्ष्य रवा-विज्ञानका अध्ययन करना था। प्रोफेसर गोल्डस्मिट वृद्ध हो चुके थे। वे बडे ही सम्पन्न और विद्वान् व्यक्ति थे। वे अपनी सम्पत्तिका कुछ भाग विश्वविद्यालयमे एक नये रवा विज्ञानशालाके भवन-निर्माणमे लगा रहे थे। उन्होने कहा कि इसके बन जानेपर मै उसके मुख्य द्वारपर यह वाक्य लिखवाऊँगा "डाई क्रिस्टलोग्राफी इस्ट डाई कोनिगिन डर विसेन शँफ्टेन।" उन्होने अपने जीवनका अधिकाश भाग रवोके विभिन्न पार्श्वोके मापनमे ही व्यतीत किया था, किन्तु वे इसके अतिरिक्त प्राचीन इतिहासमे भी बडी रुचि रखते थे। अतएव मेरे पूर्व आये छात्रोको वे रवा-विज्ञानके साथ ही यूनानी भाषाकी शिक्षा भी देते थे। वे अपनी विनम्र स्वभाव-वाली वयस्का पत्नीके साथ शान्त जीवन-यापन कर रहे थे।

इस ससारमे दूसरी बार मै १९३६ मे उस समय आयी, जब मै डच बायोकेमिकल सोसाइटीकी एक सभामे शामिल हुई थी। इस सभामे जे० डी० बर्नालने रवा-विज्ञान और स्टेरोलोकी सरचनापर भाषण किया था। यह मेरे लिए वैज्ञानिक दृष्टिसे अत्यन्त स्फूर्तिप्रद अवसर था, क्योकि इसी सभामे मैने यह जानकारी प्राप्त की कि एक्स-किरणोके विश्लेषणात्मक मापनोसे ज्ञात हुए पहले सूरागोसे ही कोलेस्टेरोलकी संरचनाके साक्ष्यका त्वरित पुनर्मूल्याङ्कन होने लगा और उन विभिन्न यौन हार्मोनोकी संरचनाका भी अध्ययन हो सका, जिन्हें उसी समय पृथक् किया जा सका था। इसी अवसरपर मुझे उन बहुतसे लोगोसे मिलनेका पहला मौका मिला, जिनके साथ मेरी मैत्री तभीसे चली आ रही है। इनमे यदि प्रोफेसर रुजिका और प्रोफेसर वीजोवेट जैसे वयोवृद्ध और विख्यात लोग थे, तो कैरोलाइन मैकगिलाव्री जैसे मेरी ही वयके स्नातक भी थे।

१९३९ मे पेनिसिलिन-संबंधी खोजके सिलसिलेमे अनुसन्धान-क्षेत्रमे मै पूरी तरह उतर पडी। इसमे विभिन्न देशोंके वैज्ञानिकोने महत्त्वपूर्ण भूमिकाएँ अदा की थी। आक्सफोर्डमें फ्लेमिंगके प्रथम पर्यवेक्षणोके बाद आस्ट्रेलियासे आये हुए फ्लोरे और जर्मनीसे आये रूसीमूलके वैज्ञानिक चेनने सक्रिय अणुके पृथक्करण और चूहो तथा मनुष्योपर उसका परीक्षण प्रारंभ कर दिया था। युद्धके बीचमें यह समाचार मिला कि अमेरिकामे एक पेनिसिलिनको रवेका रूप दिया जा चुका है। वहाँसे उसका एक नमूना विमानसे हमारे पास भेजा गया, जिससे हमने ऐसे रवोका विकास कर लिया, जो उसकी संरचनाकी जानकारीके लिए पर्याप्त थे। जिस समय

यह शोध चल रहा था, हम लोग इस परियोजनापर काम करनेवाले शोधकर्ताओ के विभिन्न समूहोके बीच सूचनाओके आदान प्रदानमें होनेवाले विलम्ब अथवा भ्रान्तियास बडे निराशसे नजर आते थे, फिर भी जब म आगे चलकर शोध कर्ताओके इन समूहोंसे अमेरिकामें तथा अन्यत्र मिली तो मने देखा कि प्रत्येक व्यक्ति जिसने इस शोधमें भाग लिया था, विशेष प्रसन्नताके साथ उस सहकारी प्रयासके अनुभवकी याद कर रहा था।

बहुत आगे चलकर मुझे आक्सफोडमें विटामिन बा१२ पर हुए कायका विव रण लिखना पडा। हमारी अपनी प्रयोगशालामें ही दूर-दूरके अनेक वैज्ञानिक शोधकर्ता एकत्र थे। हमने बी१२ और उसके उत्पादोंके सबधमें अनेक शोधलख प्रकाशित किये। ये लेख १५ विभिन्न नामासे प्रकाशित हुए थे। इससे कुछ लाग समझते थे कि हमारे यहाँ विभिन प्रकारके महत्त्वपूण वज्ञानिक शोधोके लिए कई शोधकर्ताओकी एक स्थायी टीम काय कर रही ह, किन्तु वास्तविकता इसस बिल कुल भिन्न थी। कुछ नाम तो दूसरे विश्वविद्यालयोंके अत्यन्त स्वागतव्य सहकारस प्राप्त हा गये थे, किन्तु अधिकाश नाम तो उन घुमन्तू युवक शोधकर्ताओके थ, जो अभी छात्र ही थे और यूरोप, आस्ट्रेलिया अमेरिका, भारत, अफ्रीका और इगलड के दूसरे हिस्सोसे आये थे। उन्होने एक गभीर परियोजनाम दप दो वषतक बडी गभीरतासे काय किया था और उन्हें इसके लिए प्राय अत्यत अपर्याप्त अनुदान ही प्राप्त हुए थे। इनमसे केवल उन शोधकर्ताओको ही आविष्कारका आनन्द प्राप्त हा सका था जो अततक वहाँ रह गये थे। उन्हे ही उन विलक्षण अणुओंके दशनका सौभाग्य प्राप्त हुआ, जिनके लिए वे इतने दिनासे परिश्रम कर रहे थ।

इस अन्तरराष्ट्रीय वैनानिक समाजके और भा अनेक पक्षोका वणन किया जा सकता ह। इस समय मरा मस्तिष्क इन्सुलिन रवोकी सरचनाका विस्तत विवरण प्राप्त करनेमें विशेष रूपसे लगा हुआ है। यदि म क्षणभर रुककर इस विषयपर विचार करूँ तो मुझे उन अनेक लोगाकी स्मृतियाँ होने लगेंगी, जिनसे मने इन रवोके सबधम बातचात की ह। म टोरण्टो स्थित स्काटकी याद करने लगूगी जिन्होने यह पता लगाया था कि इन रवोके विकासके लिए जस्ता आवश्यक ह। मुझे डेनमार्कके रिलष्टन्लकी याद आयेगी, जिन्होने रवाको तयार करनेकी वह प्रविधि निकाली थी जिसका आजकल हम सामान्यत प्रयोग करत ह। म इस सिलसिलेमें कम्ब्रिजसे प्राप्त फ्रेड सगरकी उन चिट्ठियाको भी नही भूल सकती जिनम ऐमिनो ऐसिड अनुक्रमको क्रमश स्पष्ट किया गया था। इसके आगे मुझे पोकिंगके उन युवक रासायनिकोकी भी याद आ जायगी, जिन्होने कहा था कि 'क्या आप

सोचती है कि हम लोग वडे दु.साहसकी वात कह रहे है ? हम लोग इन्सुलिनके सश्लेपणकी योजना कार्यान्वित कर रहे हैं ।'' छ. वर्प वाद घानामे मुझे समाचार मिला कि कात्सोयानिसने अमेरिकामे इन्सुलिनका सश्लेपण कर लिया है । यह जानकर मै चीन जानेका लोभ संवरण न कर सकी । वहाँ मैने देखा कि पीकिंग और शघाईके शोधकर्ताओने सचमुच ही अपना सश्लेपण प्रस्तुत कर लिया है और अपनी इस उत्पादित सामग्रीसे उन्होने अपनी विशिष्ट प्रक्रियासे रवे भी वना लिये है । इसके सवधमे प्रोफेसर वागने कहा कि ''यहाँ जो रवे तैयार हुए है, वे वूट्स इन्सुलिनके समान ही कोई वहुत अच्छे किस्मके रवे नही है और इन्हे करीव-करीव उसी प्रक्रियासे तैयार किया गया है ।'' हम लोगोने उनके अनुभवोपर वातचीत की और उनकी तुलना आचेनमे जाहन और पिट्सवर्गमे कात्सोयानिस द्वारा किये गये कार्योसे की ।

इसके वादके वर्षोमे हमारे वैज्ञानिक समाजके लिए अनेक सकटकी घड़ियाँ आयी । हालैण्डकी उसी वायोकेमिकल सोसाइटीमे, जिसकी चर्चा मै ऊपर कर चुकी हूँ, वैज्ञानिक वार्ताओके दौरान हमने मैड्रिडका यह समाचार सुना कि कई दिनोके हमलोके वावजूद अभी भी उसका पतन नही हुआ है । वादमे हमने सुना कि हिटलरके सत्तारूढ होनेपर वयोवृद्ध प्रोफेसर गोल्डस्मिटको हीडेलबर्ग छोड देना पडा और निर्वासनकी स्थितिमे ही उनका देहान्त हो गया और नाजियोका चेकोस्लोवाकियापर कब्जा हो जानेके वाद उनकी पत्नीने आत्महत्या कर ली । युद्ध चलता रहा, जिससे हमारे अनेक सवंध कट गये । जव कुछ समयके लिए शान्ति स्थापित हुई तो ऐसा प्रतीत हुआ कि अन्तरराष्ट्रीय मैत्री पुन लौट आयी । किन्तु फिर जल्दी ही विभिन्न क्षेत्रोमे पुन. युद्ध शुरू हो गया और पहलेसे भी अधिक भयानक घटनाओके खतरे पैदा हो गये । अमेरिका और रूसके वीच गभीर सदेहका वातावरण पैदा हो गया । कुछ लोग तो खुलेआम यहाँतक कहने लगे कि अमेरिकाको युद्ध रोकनेके लिए पारमाणविक प्रहार कर देना चाहिए ।

१९४० मे कुछ और भयानक घटनाओका खतरा पैदा हो गया था, किन्तु सयोगसे वे नही घटी । इसका कारण यह था कि युद्धकालमे रूस और पश्चिमी दुनियाके वीच सम्पर्क और मैत्रीका जो संवंध स्थापित हो चुका था, कुछ लोगोने युद्धके वाद भी उस संवध-सूत्रको कायम रखनेका प्रयत्न किया । इन लोगोमें डॉक्टर राधाकृष्णन्‌का स्थान प्रमुख था, क्योकि वे एक ही वर्पमे पहले छ. महीनो-तक आक्सफोर्डमे प्रोफेसर रह चुके थे और दूसरे छ महीनोमे अपने देशके मास्को-स्थित राजदूतके रूपमे भी कार्य कर चुके थे । मै उनसे पहले वेलियोलमें क्रिस्टोफर

हिल्के कमरोंमें मिली था। उस समय हम लोग वहाँ कुछ रूसी इतिहासकारोंके आगमनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। मैंने हालमें ही रूससे प्राप्त निमंत्रण अस्वीकार कर दिया था। मैं इसी संबंधमें चर्चा करते हुए कह रही थी कि मैं काम करना चाहती हूँ, राजनीतिमें नहीं फँसना चाहती। राधाकृष्णनने इसे सुन लिया और मुझसे कहा "तुम्हें वहाँ जाना चाहिए। वे अच्छे लोग हैं और कोई उनकी खास सहायता नहीं कर रहा है।" इसपर मैंने कहा कि दूसरी बार निमंत्रण मिलनेपर मैं अवश्य जाऊँगी।

यह एक विचित्र बात है कि अपने विवेक और निर्णयके विरुद्ध व्यक्ति प्रचारका कैसा शिकार बन जाता है। रूस जानेमें मुझे इसलिए हिचक होने लगी कि कहीं वह जगह मुझे आतंक राज्य होनेके कारण अप्रिय न लगने लगे। 'लौह आवरण' के पीछे छिपे प्रागकी पहली झलक मिलते ही मेरी यह धारणा बिल्कुल बदल गयी। जिस समय हम वहाँ विमानसे उतरे, हमारे तीन मित्रोंने, जो सभी जीव रसायनवेत्ता थे, नंगे सिर हवाई अड्डेकी चारदीवारीपर झुके हुए हाथ हिलाकर हमारा स्वागत किया। इसके बाद हर तरहकी विनोदपूर्ण घटनाएं घटीं जिनकी मैंने कभी कल्पना भी न की थी और फिर कभी भी रूस मुझे कोई बंद या शत्रु-देश न लगा।

फिर कई वर्ष बाद मैं डॉक्टर राधाकृष्णनसे दिल्लीमें मिली। इस समयतक हमारे लिए रूसके साथ मैत्री मानी हुई बात हो चुकी थी अब हमारा ध्यान अनिवार्यतः चीनकी ओर जाता था। चीनसे क्षोभकारक समाचार मिल रहे थे। इस स्थितिमें चीनके लोगोंकी अच्छाईके हमारे पुराने अनुभव ही बार-बार हमारे सामने आते थे और हम उनके शुभ उद्देश्योंपर विचार करने लगते थे। जहाँतक हमारी जानकारी थी, हमें वियतनाममें अमेरिका जिस तरहका "निवारक युद्ध" चला रहा है, उस तरहकी कोई युद्धात्मक काररवाई चीनके खिलाफ भी शुरूकर देनेका कोई औचित्य नजर नहीं आता था। १९६७ के उन दिनोंमें संसारकी स्थितिका जैसा हम अनुभव हो रहा था, वह अत्यन्त दुःखजनक था। उस समय भारतमें दुर्भिक्ष पड़ा हुआ था। ऐसी हालतमें वियतनाममें होनेवाली मानवकृत विनाशलीला और भी भीषण लग रही थी। आगे चलकर मद्रासमें यह समाचार मिला कि अमेरिकी सेनाओंने दक्षिणी वियतनामके एक बहुत बड़े क्षेत्रको बिलकुल बरबाद कर दिया है। मैं कल्पना करने लगी जैसे वियतनामके समान हरे दक्षिण भारतके भी हरे भरे चावलके खेत नष्ट कर दिये गये हों। एक क्षणके लिए इन्सुलिनकी सरंचनापर विचार करना असंभव लगने लगा।

भारतमे और खासकर दक्षिण भारतमे हमे बार-बार गाधीजीकी याद आती थी। अब तो कोई भी कही भी गाधीजीके जीवन और कार्योपर विचार किये विना युद्ध और शान्ति, हिंसा और अहिंसाकी समस्याओंपर विचार ही नही कर सकता था। यहाँ देहातोके इस शान्त वातावरणमे तो लोगोके जीवनपर उनका प्रभाव सबसे गम्भीर रूपमे परिलक्षित होता था। खासकर गाधीग्रामके उस सामुदायिक जीवनमें, जो अनेक दृष्टियोमे एक आदर्श समुदाय है, गाधीजीके प्रभावको स्पष्टतम रूपमे देखा जा सकता है। गाधीग्रामको आजकल सामान्यत "ग्रामीण विश्वविद्यालय" कहते है, किन्तु यह कहना मुश्किल है कि इससे उसके सही स्वरूपका पता चल जाता है। सभवत. इसे "देहातोके शिक्षण, कृषि, चिकित्सा-व्यवस्था और स्वास्थ्यसे सम्बद्ध विभिन्न संस्थाओका संघ" कहना अधिक उपयुक्त होगा। नीली सिमुलाई और कोदाई पहाड़ियोके चरण देशमे स्थित छोटेसे क्षेत्रमे छोटी-छोटी इमारतोसे सजा हुआ गाधीग्राम बहुत ही सुन्दर स्थान है। इमारतें बहुत ही मामूली किस्मकी सीधी-सादी है। उनमे बहुतोपर तो अभी भी बाँसो और ताडके पत्तोकी छाजन पडी हुई है। यहाँके सभी छात्र और अध्यापक ग्राम-जीवनमे भाग लेनेकी शिक्षा प्राप्त करते है और कृषि तथा ग्रामीण शिल्पोके विकासका प्रयत्न करते है। धीरे-धीरे प्रयोगशालाओके निर्माण और विकासके साथ-साथ ये लोग गंभीर वैज्ञानिक कार्यका भी विकास करते जा रहे है। इस संस्थाके संस्थापकोने गाधीजीके प्रभावके अनुरूप "अपने देशकी सामाजिक व्यवस्थाके पुनर्निर्माण तथा एक वर्गहीन और जातिहीन समाजकी रचनाका कार्य" शुरू किया है। इसके उद्घाटनके अवसरपर गांधीजीने यह सदेश भेजा था "जहाँ सत्यकी प्रतिष्ठा होती है, वहाँ सफलता अपने-आप आती है।" उन लोगोने कहा कि यह संदेशमात्र आशीर्वाद नही है। इसमे चुनौती भी दी गयी है।

मैंने गाधीग्रामके छात्रोंको संबोधित करते हुए पहले तो वैज्ञानिक कार्योंकी चर्चा की फिर कहा कि मुझे भी छात्रावस्थामें गाधीजीका दर्शन प्राप्त करनेका सौभाग्य मिला है। १९३१ मे जिस समय गाधीजी लंदन-चर्चमे उपदेश देने गये थे, मै भी उनका भाषण सुननेके लिए वहाँ उपस्थित थी। मै अभी भी उन्हे वहाँ भाषण करते हुए देख रही हूँ, किन्तु मुझे यह कहते हुए लज्जाका अनुभव हो रहा है कि गाधीजी द्वारा कही गयी उस समयकी बाते मुझे आज याद नही रह गयी है। मैंने अपने जीवनकी एक बहुत बादकी घटनाका भी जिक्र किया। १९५३ मे मेरे पति उत्तरी नाइजेरियाकी यात्रा कर रहे थे और इबादान विश्वविद्यालयमे उनके भाषणोका क्रम चल रहा था। उस समय मै भी उनके साथ थी। भाषणके

बाद दोगिर फिल्में दिखायी जाती थी। इनमेंसे "मार्च आव टाइम (समयकी प्रगति)" शीर्षक एक फिल्मके अन्तर्गत भारतीय स्वतन्त्रताकी कथा प्रस्तुत की गयी थी। एक गाँवमें इसे देखनेके लिए खुले मैदानमें स्त्रियो, बच्चों और पुरुषोंकी भारी भीड एकत्र थी। फिल्ममे ज्यो ही कथाका वह चरमोत्कर्ष आया, जिसमें गाधीजी गोली खाकर जमीनपर गिर गये थे, सभी दर्शक यह दृश्य देखकर विचलित हो उठे। उनमें शोककी लहर दौड गयी। ऐसा लगा जैसे उस समयतक उन्हें यह पता ही न था कि गाधीजी आज दुनियामें नही हैं, और आज ही उन्होने अपने एक मित्र और नेताको खो दिया है।

यही हमारे सामने एक बडा समस्या आती है। गाधीजी मर चुके हैं और उनकी शिक्षाएँ भूलती जा रही है। यदि आज हमें दुनियाकी समस्याओंका समाधान करना है तो हमें उनके शब्दो, कार्यों और उनके द्वारा प्रस्तुत उदाहरणोंपर फिरसे विचार करना आवश्यक है। वे जीवनभर राष्ट्रवादी रहे। उन्होंने भारतकी आजादीके लिए कार्य किया। आज यदि वे जीवित होते तो अपनी आजादीके लिए लडनेवाले छोटे छोटे राष्ट्रोंकी भावनाओंको उन्हान निश्चय ही अच्छी तरह समझा होता। उनका अहिंसामें विश्वास था और उन्होने किसी-न किसी तरीकेसे करोडो लोगोंको अहिंसाके रास्तेपर चलानेमें सफलता प्राप्त की थी। आज सर्वाधिक शक्तिसम्पन्न राष्ट्रो द्वारा भीषणतम हिंसक साधनोंका प्रयोग किया जा रहा है। उनको किसीसे कोई भय नही रह गया है। किसी-न किसी तरह आज हमें उन करोडो लोगोके लिए जो अपने उन लक्ष्योंकी पूर्तिके लिए जिनकी पूर्ति स्वय गाधीजीका भी उद्देश्य रहा है, युद्धको समाप्त करनेका तरीका खोज निकालना है। फिर वह तरीका चाहे गाधीवादी हो या अन्य कोई। यह रास्ता निश्चय ही हिंसाका रास्ता नही हो सकता। गाधीजीका विश्वास सरलतम जीवनसे प्राप्त होनेवाले सौख्यमें भी था। हम कम-से कम इतना तो कर ही डालना है कि ससारके प्रत्येक व्यक्तिको सीधे-सादे सरल जीवनका यह सुख तो उपलब्ध हो जाय। इसके लिए अथक वैज्ञानिक प्रयास अपेक्षित है। केवल प्रोटीनकी समस्या जसी समस्याओंको हल कर लेनेसे ही यह सभव न हो सकेगा। इस महान् कार्यके लिए सारे ससारके युवक वैज्ञानिकोंकी शारीरिक और दिमागी सहायता हमें सुलभ है, बशर्ते उन्हें एक साथ मिलकर कार्य करनेका अवसर प्राप्त हो जाय। यही कोई कठिन लक्ष्य नही है। अपनी-अपनी रुचिके अनुकूल परियोजनाओंपर काम करनेवाले वैज्ञानिकोमें तो पारस्परिक मैत्रीका विकास बडी आसानीसे हो जाता है।

जाकिर हुसेन

नैतिक जागरूकता

१९२६ में जूनके महीनेमे एक दिन प्रात काल मै जामिया मिल्लिया इस्ला-मियाके अपने तीन साथियोके साथ गांधीजीसे मिलने सावरमती आश्रम गया था। हम लोग इसके एक दिन पूर्व रातमे काफी देरसे वहाँ पहुँचे थे और हम लोगोंके वहाँ ठहरनेकी व्यवस्था जल्दीमे की गयी थी। हमसे कहा गया कि हम लोगोका सुवहका भोजन गांधीजीकी झोपड़ीमे ही होगा। हम लोग वहाँ जाकर चारकी कतारमे वैठ गये। सामने रसोई-घर था और वा हम लोगोको भोजन परोस रही थी। इतनेमे हमने पीछेसे एक आवाज सुनी :

"वाह कितना अच्छा !"

हमने जो पीछे मुडकर देखा तो गांधीजी हमारी ओर चले आ रहे थे। वे आये और अपनी खाटपर वैठ गये। उनके होठोपर मुस्कान थी और वे वडे ही भव्य लग रहे थे। वे हमसे हँस-हँसकर इस तरह बातें करने लगे, जैसे वे हमे वरसोंसे जानते है।

जर्मनीमें गाधीजीकी वड़ी चर्चा थी और उनके संवंधमें रोम्याँ रोलाँने जो पुस्तक लिखी थी, उसकी वड़ी विक्री होती थी। मैने वहाँ रहते समय स्वयं उनपर एक किताव लिखकर प्रकाशित की थी और उनके अहिंसाके संवंधमे भाषण भी किये थे। किन्तु उनसे मेरी यह पहली मुलाकात थी। मै आश्रममें दो-तीन दिन रहा। इस वीच मेरी उनसे काफी लंवी वार्ता हुई। मै जामिया मिल्लियामे काम करने-के लिए वचनवद्ध हो चुका था। इस कारण मुझे हकीम अजमल खाँ, डॉक्टर अन्सारी, मौलाना मुहम्मद अली, मौलाना अवुल कलाम आजाद जैसे अनेक विख्यात व्यक्तियोके घनिष्ठ सपर्कमे आनेका मौका मिला। स्वभावत: मै यह जानने-के लिए वडा उत्सुक था कि मुझे इन व्यक्तियोंसे कितनी सहायता और कैसा मार्ग-दर्शन प्राप्त हो सकेगा और किस तरीकेसे काम करनेसे अच्छा-से-अच्छा परिणाम

जिन विशिष्ट वाय-कलापोंके माध्यमसे कोई व्यक्ति अपने बधुजनोंकी सेवा करता ह, वे स्वभावत देश और काल द्वारा प्रभावित होते रहते ह। जिन साधनोंको वह अपनाता ह उनका मूल्याङ्कन केवल उन्हींके आधारपर नही होना चाहिए। साधनोंको उन परिस्थितियोंसे अलग करके देखना गलत ह जिनमें व अपनाये जाते ह। महापुरुषोंके सबधमें तो इसका ध्यान रखना और भी आवश्यक ह। उदाहरणके लिए, गाधीजीके अनशन उनके इस विश्वासका अग थे कि साध्यकी पवित्रता हृदयकी पवित्रतापर निभर होती ह। अत यदि उन्हें अपने किसी महत्त्वपूर्ण उद्देश्यमें सफलता नही मिली तो इसका कारण यही ह कि वे स्वय उतने पवित्र नही थे। एक साधनके रूपमें अनशन करनेकी राय व केवल उन व्यक्तियोंको दे सकते थे, जो अपनेपर पूण नियत्रण प्राप्त करनेके इच्छुक हो। किसी लक्ष्यकी प्राप्तिके साधनके रूपमें अनशनको उन्होंने केवल अपने लिए रख छोडा था, क्योंकि उन्हें दूसरों द्वारा इसके दुरुपयोगका खतरा स्पष्ट था। आज जो लोग गाधीजीकी स्मृतिको सजीव बनाये रखना चाहते ह उन्हें गाधीजीके अनशनोंके कारणों और अवसरोंको याद रखनेकी उतनी जरूरत नही ह, जितनी इस बातको याद रखनेकी है कि शक्ति और सत्ता उन लोगोंको भ्रष्ट कर देगी जिनमें इसे न्यायोचित ढगसे और उन उद्देश्योंके लिए जिनके लिए इनका प्रयोग होना चाहिए नियोजित करनेकी पर्याप्त पवित्रता नहीं ह। जो लोग सत्तारूढ होनेकी महत्वाकाक्षा रखते हैं उन्हें, उद्देश्योंकी वह पवित्रता प्राप्त करनेकी कोशिश करनी चाहिए जिसका इतना ऊँचा उदाहरण गाधीजीने प्रस्तुत किया था। उनसे इस पवित्रता की माँग उन लोगोंको भी करनी चाहिए जो उन्हें सत्तारूढ बनाते ह।

जिस अहिंसाका गाधीजीने इतने आग्रहसे उपदेश और इतनी दृढतासे पालन किया उसके प्रति हम केवल शाब्दिक श्रद्धा व्यक्त करके रह जाते हैं और इस तरहके सवाल उठाते ह जिससे अहिंसा अव्यवहार्य लगने लगे। अगर हम यह भी मान लें कि अहिंसा ऐसे शत्रुके विरुद्ध प्रभावहीन हो जाती ह जो घातक शस्त्रोंसे सज्ज होकर हमपर प्रहार करनेको तयार ह, तो क्या इसे हम अपने पारस्परिक सबधोंमें भी व्यवहारमें नही ला सकते? क्या हम यह भी भूल जायेंगे कि अहिंसा उदारता, विशालहृदयता, साहस और नतिकताका ही बाह्य स्वरूप है? जबतक नैतिक विधानकी सर्वश्रेष्ठता स्वीकार की जा रही ह, इन सद्गुणोंका विकास हर समय और हर जगह होना ही चाहिए। हमारे जसे देशमें, जहाँ शान्ति और सहकार प्राय धर्म, भाषा और सस्कृतिकी अनेकताओंके प्रति सहिष्णुतापर ही पूणत निभर है इन सद्गुणोंका विकास न केवल जीवनकी

गरिमाकी रक्षाके लिए ही, अपितु अपने अस्तित्वके लिए भी आवश्यक है ।

हम जानते है कि गांधीजी नैतिक विधानमें विश्वास करते थे और सत्याग्रह इस विश्वासको प्रकट करनेका उनका साधन था । दक्षिण अफ्रीकाके जातिभेद और भारतमे ब्रिटिश शासनने उनके सत्याग्रहको एक ऐतिहासिक स्वरूप प्रदान कर दिया, किन्तु यदि हमे यह समझना है कि इसका प्रयोग विभिन्न परिस्थितियोंमे कैसे किया जा सकता है तो हमें इसकी विशिष्ट राजनीतिक अभिव्यक्तियोसे आगे बढकर सोचना होगा । आधारभूत सिद्धान्त यह है कि सत्य और न्यायकी प्रतिष्ठा नैतिक जागरूकताको सतत तीव्र बनाये रखनेसे ही संभव है । नैतिक जागरूकता शक्तिके प्रयोग अथवा शासन द्वारा नही पैदा की जा सकती । मनुष्योमे इसकी प्रेरणा तभी हो सकती है, जब उन्हे अपनेको स्वतन्त्र माननेकी शिक्षा दी जाय और यह बताया जाय कि वे स्वतन्त्र रूपमे नैतिक विधानकी अधीनता स्वीकार करें और स्वय तदनुसार आचरण करें । सिद्धान्तत. यह बात सरल और सामान्य मालूम होती है, किन्तु हम ज्योही इसके व्यावहारिक पक्षोपर विचार करने लगते है, हमारा मस्तिष्क इसकी विशालतासे आक्रान्त हो उठता है । उस स्वतन्त्र नैतिक व्यक्तिको, जो दूसरोमे भी नैतिक विधानकी अपेक्षाओके प्रति अपने ही समान सवेदनशीलता जागरित करना चाहता है, स्वयं अपने लक्ष्योकी प्राप्तिके लिए शक्ति-प्रयोग करनेकी अपनी आन्तरिक इच्छाका पूर्णत. मूलोच्छेद करना होगा । अपने प्रति अधैर्यवान् होते हुए भी उसे दूसरोके प्रति असीम धैर्यका परिचय देना होगा । उसे बराबर यह विचार करना होगा कि सच्ची नैतिक जागरूकता पैदा करनी होगी और जहाँ वह मौजूद हो, वहाँ उसे दृढ करनेके लिए कौनसे साधन सर्वोत्तम होगे और इसे आत्माभिव्यक्तिके अवसर देकर किस प्रकार अधिकसे अधिक सचेत एवं प्रभावी ढंगसे कारगर बनाया जाय । एक प्रकारके त्यागसे ही यह संभव हो सकता है । इसके लिए नेतामे उन लोगो द्वारा मार्ग-दर्शन प्राप्त करनेकी इच्छा पैदा हो जाती है, जिनका उसे नेतृत्व करना होता है । इसमें आत्म-परीक्षणका एक ऐसा सिलसिला शुरू हो जाता है, जिसमें पद-प्रतिष्ठाका कोई विचार ही नही रह जाता और पंक्तिमें जो प्रथम होता है, वही अपनेको सबसे अन्तमें रखना पसंद करता है ।

हम शायद बडी सरलतासे यह भी मान लेते है कि व्यवहारको सिद्धान्तके अनुरूप होना चाहिए। किन्तु अपने संपूर्ण जीवनको व्यवहार और सिद्धान्तके तादात्म्यका उदाहरण बना देनेके लिए अपेक्षित निष्ठा कितने लोगोमें पायी जाती है ? गाधीजीने इस तादात्म्यको पूरी तरह स्थापित करनेका प्रयत्न किया था ।

उनके जीवन, उनकी वेश भूषा, उनके खान-पान और उनके दनिक जीवनक्रमको ब्योरेवार देखनेसे हा यह स्पष्ट हो जायगा। किन्तु इससे भी ज्यादा महत्त्वकी चीज अपने सहकर्मियाके प्रति उनकी अभिवृत्ति ह। क्योकि इसकी उपेक्षा कर देनेकी सभावना बराबर बनी रहती ह। इसके लिए अधिकाधिक वचनबद्धता और उद्देश्य निष्ठता अपेक्षित होती है। निष्ठावान लाग केवल शब्दासे सन्तुष्ट नही होते व काम करना चाहते हैं—ऐसा काम, जिसे गाधीजी रचनात्मक ' कहते थे। 'रचनात्मक काय" का एक पक्ष तो स्वय काय ही होता ह और दूसरा पक्ष वह काय करनेवाला व्यक्ति होता है, जिसपर उस कार्यके निष्पादनकी विशिष्टता निभर करती ह। गाधीजीके वयस्क जीवनका प्रत्येक क्षण और छोटासे छोटा काम अपने विश्वासको व्यवहारम लानेके लिए किये गये प्रयासका ज्वलन्त प्रमाण ह। वे जानते थे कि दूसराम निष्ठा पैदा करनेका एकमात्र तरीका स्वय निष्ठावान होना ह। गाधीजी जिस निष्ठासे अपना काय करते थे उसीको देखकर मुझ भी अपने कायम निष्ठा पदा हुई और म समझता हू कि दूसरे बहुतसे लोगाको भी अपने कार्यके प्रति गाधीजीसे एसी ही प्रेरणा मिली होगी। निश्चय ही उन्हान अपने सामर्थ्यभर कुछ उठा न रखा होगा, क्याकि गाधीजी उनके सामने केवल अपना महान् उदाहरण ही नही प्रस्तुत करते थे, बल्कि उन्हें एक नतिक व्यक्तिके रूपमें नतिक विधानकी अधीनता स्वीकार करते हुए स्वतत्र रूपसे काय करनेकी चुनौती भी दे देते थे। गाधीजीका कोइ विशिष्ट "रचनात्मक काय आगे चलकर चाहे इतिहासकी वस्तु भले ही बन जाय, किन्तु मनुष्योका जिस रूपमें उन्होने निर्माण किया था, उसका समसामयिक महत्त्व बराबर बना रहेगा।

इस समय हमार लिए इसी तथ्यको याद रखना सर्वाधिक आवश्यक ह। एक स्वतत्र राष्ट्रके रूपमें, जिसकी अपनी स्वतन्त्र सरकार ह हमें एक ऐसे नेतृत्वका निर्माण करना चाहिए, जो सत्तापर निभर न होकर रचनात्मक काय और एसे मनुष्याके निर्माणके प्रति अपनी निष्ठा द्वारा अर्जित प्रतिष्ठापर निभर हो, जा इस महान कायको पीढी-दर-पीढ़ी बढाते जायें।

होमर ए० जैक

मोहनदास करमचंद गांधी और मार्टिन लूथर किंग जूनियर

संसार मोहनदास करमचद गांधीकी जन्मशती उन मूल्योको प्रोत्साहित करके सर्वोत्तम विधिसे मना सकता है, जिनके लिए वे जिये और मरे। गाधीकी सबसे बडी विरासत सत्याग्रह है, जिससे उन्होने भारतकी राजनीतिक स्वतन्त्रताके सफल अभियानका नेतृत्व किया था। सत्याग्रह (आत्मशक्ति या अहिंसक प्रत्यक्ष काररवाई) वह विरासत है, जिसका गांधीके बाद आनेवाले युगमे अनेक क्षेत्रोमे उपयोग और विकास किया जा रहा है। इस विरासतका सबसे ज्वलन्त उदाहरण और साकाररूप डॉक्टर मार्टिन लूथर किंग जूनियरके व्यक्तित्व और कर्तृत्वमे मिलता है। गाधीकी जन्मशतीके अवसरपर ही डॉक्टर किंगकी हुई हत्यासे इन दो महान् विश्वनेताओके पारस्परिक सादृश्य और संबधपर विचार-विमर्श करनेकी बडी प्रेरणा मिलती है।

मोहनदास करमचंद गाधी और मार्टिन लूथर किंग जूनियर दोनोके जीवनमे कई समानान्तर विशेषताएँ स्पष्ट रूपसे दिखाई देती है। दोनो अश्वेत थे। दोनोका आविर्भाव अपनी जनताके मध्यवर्गमे हुआ था। दोनो पूर्णत सुशिक्षित थे। दोनोने शादी की थी। दोनोकी चार सन्ताने थी (गाधीकी सभी सन्ताने पुत्र थी जब कि किगकी दो सन्ताने पुत्र थी)। दोनोने ही सत्याग्रह द्वारा विशाल राजनीतिक आन्दोलनोका नेतृत्व किया था। दोनोने कोई सरकारी पद नही स्वीकार किया था, किन्तु अपने समयके किसी भी निर्वाचित राजनेताकी अपेक्षा उनकी शक्ति और महिमा कही अधिक थी और दोनोको उनसे कही अधिक श्रद्धा और लोकप्रियता प्राप्त हुई थी। दोनोमे करिश्मा कर दिखानेकी अद्भुत प्रतिभा थी। यह एक बड़ी विडम्बना रही कि अहिंसाके इन दोनो पुजारियोको गोली खाकर मरना पडा। दोनोको अपने जीवनके समान ही अपनी मृत्युने भी अपने युगका सर्वश्रेष्ठ मानवतावादी होनेकी मान्यता प्राप्त हुई। उनके निधनपर सारा ससार समान रूपसे विच-

लित एव क्षुग्ध हो उठा। दोनोका निधन मघर्षके मध्य हुआ और मृत्युने पूर दोना को विजयकी अपेक्षा निराशाकी ही अनुभूति हुई था।

फिर भी गांधी और किंगके जीवनमें पूर्ण साम्य नही था। गाधी एशियाई थे, यद्यपि उनके जीवनके कई दशक अफ्रीकामें काम करते हुए बीते थे। व कभी अमेरिका नही आये थे। किंग अफ्रीकी मूलके होते हुए भी अमेरिकन थे। उन्होने अफ्रीका और भारतकी भी यात्रा की थी। गाधी भविष्यकी ओर देखनवाले व्यक्ति थे, फिर भी व स्पष्टत उन्नीसवी शताब्दीके मनुष्य थे किंग बीसवी शताब्दी के व्यक्ति थे। उनके जीवन-कालकी युगपत स्थिति २० वर्षोंकी थी किंगका जन्म १९२९ में और निधन १९६८ में हुआ। उनका एक-दूसरेसे कभी मुलाकात नही हुई और न उनमें कभी कोई पत्राचार ही हुआ। दोनोके अपने कई मित्र थ। किंग को स्टुअट नेल्सन और अमिय चक्रवर्ती जसे मित्रोकी पूरी जानकारी थी किन्तु गाधीको अपनी मृत्युतक शायद यह जानकारी नही हो सकी था कि उनका एक बीस वर्षकी उम्रवाला बडा मित्र किंगके रूपमें अमेरिकामें वर्तमान ह। गाधी हिन्दू थे और किंग ईसाई। गाधी वकील थे, किंग पादरी। गाधी ७८ वर्षतक जीवित रहे, जब कि किंगका जीवन ३९ वर्षकी अल्पवयमें ही समाप्त हो गया। गाधी अपने राष्ट्रमें बहुसख्यक जनताके नेता थे किंग अल्पसंख्यक समुदायके नेता थे। गाधीका आदर सारे ससारमें होता था किन्तु नोबेल शान्ति-पुरस्कार किंगको ही मिला। यह ठीक ह कि इनमेंसे किसीका भी कोई उत्तराधिकारी होना मुश्किल था, फिर भी किंगने सदर्न क्रिश्चियन लीडरशिप कान्फ्रेन्सके अध्यक्षपदके लिए अपने उत्तराधिकारीका चुनाव किया था और उनकी मृत्युके तत्काल बाद डाक्टर राल्फ डेविड ऐबरनाथीने इस पदको सँभाल भी लिया किन्तु, गाधीने अपने उत्तराधिकारी के रूपमें किसीको तयार नही किया। उनकी मृत्युके दस साल बाद विनोबा भावे सामने आये जिन्हें एक प्रकारसे गाधीका उत्तराधिकारी कहा जा सकता ह।

"हब्शियोंके माध्यमसे"

गाधीके जीवनकालमें समय-समयपर अनेक अमेरिकी हब्शियोने भारत आकर उनसे मुलाकात की थी। १९३७ में केल्प्स-स्टोक्स फण्डके सचालक डाक्टर चनिंग टोबियास और मारहाउस कॉलेजके तत्कालीन अध्यक्ष डाक्टर बेंजामिन मेज (जिन्होने किंगके लिए अन्त्येष्टि पाठ पढा था) गाधीसे मिले थे। उनके साक्षात्कार और लबी बातचीतका विवरण गाधीके पत्र हरिजनमें शब्दश छपा था। उन्होंने गाधीसे पूछा था कि "आप अमेरिकी हब्शियोके भविष्यके सबधमें क्या सदेश देंगे ?" गाधीने इसका उत्तर इन शब्दोमें दिया था

> उस सत्यके साथ, जो हमेशा उनके पक्षमे है, यदि उन्होने एकमात्र अहिंसा-को ही अपना शस्त्र वनाया और उसका कारगर ढंगसे उपयोग किया तो उज्ज्वल भविष्य सुनिश्चित है।

इससे एक वर्ष पूर्व डॉक्टर होवर्ड थर्मन और उनकी धर्मपत्नी भी गाधीसे मिल चुकी थी और उनके साक्षात्कारका विवरण भी प्रकाशित हुआ था। उन्होने गाधीजीसे आग्रहपूर्वक कहा था कि "आप अमेरिका आइये श्वेत अमेरिकाके लिए नही, वल्कि हब्शियोके लिए आइये, हमारे सामने अनेक समस्याएँ है, जिनका तत्काल समाधान आवश्यक है और इसके लिए हमे आपकी सख्त आवश्यकता है।" इसपर गाधीने कहा था .

> मेरी स्वय आपके पास आनेकी वडी इच्छा है, किन्तु जवतक मै यहाँ अपनी उन सारी वार्तोको, जिन्हे मै वरावर कहता रहा हूँ, ज्वलन्त रूपसे प्रमाणित न कर दूँ, आपको देनेके लिए मेरे पास कुछ नही हो सकता। मुझे अपने संदेशकी सत्यता पहले यहाँ सिद्ध करनी होगी, तभी मैं उसे आपके पास ला सकता हूँ।

गांधीने आगे कहा .

> फिर भी आप विश्वास रखें कि जिस समय भी मेरे मनमे आपके पास आनेकी प्रेरणा हो जायगी, मै आनेमे नही हिचकूँगा।

डॉक्टर थर्मनने कहा कि, "हमारे सभी हब्शी साथी आपके संदेशका स्वागत करनेको तैयार है क्योकि अमेरिकामे हमारे अपने जीवनकी पृष्ठभूमि ईसाई धर्म-की हमारी अपनी व्याख्याके अनुरूप ही है।" थर्मन दम्पतीको विदा करते हुए गाधीने कहा था :

> शायद भविष्यमे हब्शियोके माध्यमसे ही विशुद्ध अहिंसाका सदेश विश्वको प्राप्त हो सकेगा।

यह वार्ता १९३६ की है। उस समय मार्टिन लूथर किंग जूनियर केवल सात वर्षके थे। जातीय समानता प्राप्त करनेके उद्देश्यसे संघटित कांग्रेस (द कांग्रेस फॉर रेशल इक्वैलिटी-कोर) की स्थापना इसके छ. वर्ष वाद हुई। इस कांग्रेसका संघटन ही अमेरिकी जातीय संवधोकी समस्याओके समाधानके लिए साभिप्राय गाधीवादी तरीकेका प्रयोग करनेके उद्देश्यसे हुआ था। किंगने इसके भी आगे करीव वीस वर्षोतक गांधीवादी तरीकोका प्रयोग नही किया।

जिस समय कोर १९४० मे शिकागोमे अपने उद्देश्योकी प्राप्तिके लिए गाधी-वादी तरीकोका प्रयोग आरम्भ कर रही थी, किंग अभी हालमे ही ऐटलाना स्थित

मोरहाउसमें प्रविष्ट हुए थे और उन्होंने पहलीबार हेनरी डेविड थोरोका सविनय अवज्ञा सबधी लेख (एसे ऑन सिविल डिसआबिडियन्स) पढ़ा था। बादमें किंगने लिखा था कि 'इस समय किसी भी बुरी व्यवस्थासे सहकार करनेसे इनकार कर देनेकी विचारधाराके प्रति मन आकर्षणका अनुभव किया। इसके बाद तो उस लेखका उन्होंने कई बार पढ़ा और वे उससे अत्यन्त 'अत्यधिक प्रभावित और विचलित' हो उठे। १९४८ में—जिस वर्ष गांधीका निधन हुआ—किंगने क्रोजर थियालाजिकल सेमिनरीमें प्रवेश किया और "सामाजिक बुराईको दूर करनेके लिए किसी कारगर तरीकेके गम्भीर बौद्धिक अन्वेषणका कार्य शुरू कर दिया। उन्होंने वाल्टर राउशेन बुश, कार्ल मार्क्स और रेनहोल्ड नीबरका भी अध्ययन किया। उन्होंने अमेरिकी शान्तिवादी ए० जे० मस्टेका भाषण भी सुना, किन्तु किंग मुस्टेके विचारोंकी व्यावहारिकताके संबंधमें बिलकुल आश्वस्त न हो सके। क्रोजरमें रहने समय ही एक रविवारको तीसरे पहर निकटस्थ फिलाडेलफियामें फेलोशिप हाउसके लिए आयोजित हावर्ड विश्वविद्यालयके अध्यक्ष डाक्टर मोरडेकाइ जानसनका प्रवचन सुननेके लिए गये। डाक्टर जानसन हालमें ही भारत यात्रासे वापस आये थे। उन्होंने अपने प्रवचनमें गांधीके जीवन और सदेशकी भी चर्चा की। किंगने अपने इस अनुभवके संबंधमें आगे चलकर लिखा है कि "उनका संदेश मुझे इतना उदात्त, गम्भीर और विद्युत्प्रेरणाप्रदायक लगा कि उस सभासे वापस आते ही मैंने गांधीके जीवन और कृतित्वसे सम्बद्ध आधा दर्जन पुस्तकें तत्काल खरीद लीं।

किंगने उस समयतक "अधिकांश लोगोंकी तरह" केवल "गांधीके बारेमें सुन रखा था", उनका कोई गभीर अध्ययन नहीं किया था। इन पुस्तकोंके पढ़नेके बाद किंग "गांधी द्वारा सचालित अहिंसक प्रतिरोधके अभियानोंके प्रति गभीर रूपसे आकृष्ट हो गये।' वे जैसे-जैसे गांधी-दर्शनकी गहराइयोंमें प्रवेश करते गये, 'प्रेमकी शक्तिके संबंधमें उनके हृदयमें रहनेवाला संदेह भी धीरे धीरे कम होता गया। उन्हें पहली बार "सामाजिक सुधारके क्षेत्रमें इसके सामर्थ्य" का ज्ञान हुआ। वस्तुतः "गांधीने प्रेम और अहिंसाके प्रति जैसा जोरदार आग्रह प्रकट किया था' उसीके आधारपर किंगने सामाजिक सुधारके उस तरीकेका आविष्कार कर लिया जिसके लिए वे कई महीनोंसे परेशान थे। बेंथम, मिल, मार्क्स, लेनिन, हाब्स, रूसो और नीत्सेको पढ़कर उन्हें जो बौद्धिक और नैतिक संतुष्टि नहीं प्राप्त हो सकी थी, वह उन्हें "गांधीके अहिंसक प्रतिरोधके दर्शनमें मिल गया।" वे यह अनुभव करने लगे कि, "आजादीके लिए संघर्ष करनेवाली उत्पीड़ित जनताके लिए यही

एकमात्र नैतिक और व्यावहारिक तरीका है।" और अधिक अध्ययन करनेके वाद रेनहोल्ड नीवरके शान्तिवादविरोधी विचारो और लेखोपरसे उनकी श्रद्धा हट गयी और वे इन विचारोको "गंभीर विकृति" के रूपमे ग्रहण करने लगे, क्योकि गाधीके अध्ययनसे उनका यह विश्वास पक्का होने लगा था कि "वास्तविक शान्तिवाद बुराईके मुकावले अप्रतिरोधकी स्थिति अख्तियार करनेमे नही है, वल्कि अहिंसक प्रतिरोध प्रस्तुत करनेमे है।" किगने यह निष्कर्ष निकाल लिया कि

> गाधी बुराईका प्रतिरोध उतनी ही शक्ति और ओजस्वितासे करते थे, जितना कि कोई भी हिंसक प्रतिरोधकर्ता कर सकता है, किन्तु उनका प्रतिरोध घृणाके स्थानपर प्रेम द्वारा होता था।

वोस्टन युनिवर्सिटी स्कूल आव थियालाजीमे जानेके वाद डीन वाल्टर म्यू एल्डर और प्रोफेसर एल० हेरोल्ड डी वूल्फ (इन्होने भी उनके अन्त्येष्टिपर श्रद्धाञ्जलि अर्पित की थी) जैसे शिक्षकोके प्रभावमे किगने अपना औपचारिक प्रशिक्षण जारी रखा। वोस्टन विश्वविद्यालयमे अपना औपचारिक स्नातकोत्तर प्रशिक्षण समाप्त कर लेनेके वाद वे यह अनुभव करने लगे कि अव उन्हे एक ठोस सकारात्मक सामाजिक दर्शनकी उपलब्धि हो चुकी है, जिसका एक प्रमुख सिद्धान्त ही इस विश्वासमे निहित है कि "सामाजिक न्यायकी प्राप्तिके लिए उत्पीड़ित लोगोका सवसे शक्तिशाली अस्त्र अहिंसक प्रतिरोध ही है।" इसके साथ ही अपने पूर्व जीवनपर दृष्टिपात करते हुए किगने यह भी अनुभव किया कि अभी उन्हे "इस स्थितिका केवल वौद्धिक ज्ञान ही हुआ है और केवल बौद्धिक दृष्टिसे ही वे इसकी सराहना करते है। अभी उनमे उस दृढ संकल्पका उदय नही हुआ है, जिससे वे इसे सामाजिक दृष्टिसे प्रभावकारी स्थितिमे सघटित कर सकते है।"

१९५४ के वसन्तमे किगको अलवामा स्थित माण्टगोमरीके डेक्स्टर ऐवेन्यू वैप्टिस्ट चर्चका मन्त्रिपद स्वीकार करनेके लिए आमन्त्रित किया गया। दिसम्वर, १९५५ मे वे माण्टगोमरी इम्प्रूवमेण्ट असोसियेशन (माण्टगोमरी विकास संघ) के प्रधान वना दिये गये। इस संघमे ऐसे हब्शी लोग रहते थे, जो वसोमे गोरोके साथ सवारी करके रंगभेदका अपमान सहनेकी अपेक्षा सडकोपर शानसे चलना अधिक पसंद करते थे। इसे माण्टगोमरी-आन्दोलन कहा जाता था। आगे चलकर इसे सक्रिय प्रतिरोध, असहयोग और अहिंसक काररवाईकी संज्ञा दी जाने लगी। किगने इस संवंधमे लिखा कि "आरंभिक दिनोमे इस विरोवमूलक आन्दोलनको ऐसी कोई संज्ञा नही दी जाती थी। उस समय इसे प्राय 'ईसाई-प्रेम' कहा जाता था।" उन्होने आगे लिखा है कि "नजारथके जेससने ही हब्शियोको प्रेमके

रचनात्मक शस्त्रसे प्रतिवाद करनेक लिए हब्शियोंको प्रेरित किया था। 'जस-जसे आदोलन आगे बढने लगा, 'महात्मा गाधीकी प्रेरणा भी उस प्रभावित करने लगा।" किगको 'जल्दी ही यह ज्ञान हो गया कि अहिंसाके गाधीवादी तरीकेक माध्यमसे कार्यान्वित होनेवाला प्रेमका ईसाई सिद्धात ही हब्शीक स्वातन्त्र्य सघषम सर्वाधिक शक्तिशाली शस्त्र है।'

किगने बताया कि माण्टगोमरी-आन्दोलन आरभ होनेक एक सप्ताह बाद ही हब्शियोंके प्रयासको समझने और उसक साथ सहानुभूति रखनेवाली एक गोरी महिलाने दी माण्टगोमरी ऐडवर्टाइजर के सपादकके नाम एक पत्र लिखा था जिसम उसने बसके बहिष्कार-आदोलनकी तुलना भारतके गाधीवादी आदोलन स की थी।" उस महिलाका नाम जुलीटे मागन था। वह एक "दुबली-पतली सवदनशील महिला थी। वह गोरे समुदायकी भर्त्सना और बहिष्कारको न सह सकी। १९५७ की गर्मियोंमें उसका निधन हो गया किन्तु उसके निधनके बहुत पहले ही महात्मा गाधीका नाम माण्टगोमरीमें विख्यात हो चुका था।' किग ने लिखा है कि 'जिन लोगोंने भारतके इस छोटे कदके बादामी रगवाले सतका नाम भी कभी नही सुना था व अब इसका नाम इस ढगसे लेते थे मानो व उससे पूर्णत परिचित हों' और 'अहिंसक प्रतिरोध इस आन्दोलनका टक्नीक बन चुका था और प्रेम ही इसका नियामक आदर्श था।' किगने अपना निष्कर्ष इन शब्दोंमें निकाला है 'दूसरे शब्दोंमें कहा जा सकता है कि ईसामसीहने आन्दोलनको प्रेरणा दी और गाधीने उसे तरीका दिया।' एक दूसरी जगह किग लिखते हैं

> माण्टगोमरीके अनुभवने उन तमाम किताबोंकी अपेक्षा जिन्हें मैं अब तक पढ चुका था, अहिंसाके प्रश्नपर मेरे चिन्तनको कहीं अधिक स्पष्ट कर दिया।

उन्होंने यह भी बताया है कि जस-जसे आन्दोलन बढता गया, अहिंसाकी शक्तिमें मेरा विश्वास भी बढता गया। उनके लिए अहिंसाका महत्त्व साधनसे भी अधिक हो गया। उन्होंने उसे अपना बौद्धिक मान्यता प्रदान कर दी। अहिंसा 'एक विशिष्ट जीवन प्रणालीसे आबद्ध हो गया।

"दूसरे गाधी

अमेरिकी हब्शी नेता डब्ल्यू० ई० बी० डु बाय्सने जो गाधीके समकालीन थे गाधी-मार्गमें एक लेख लिखकर बताया था कि व किस प्रकार गाधीसे टूनर और किगके प्रति आकर्षित हुए थे। उन्हें गाधीका परिचय प्रथम महायुद्ध

वाद लाजपत राय, सरोजिनी नायडू और जोन हेनेस होम्सके माध्यमसे मिला था। डू बोइस अश्वेत जनताकी प्रगतिके लिए संघटित राष्ट्रीय संघ (नेशन ऐसोसियेशन फॉर द ऐडवान्समेण्ट आव कलर्ड पीपुल-नासीपी) के नेता थे। उन्होंने लिखा है कि "वस्तुत. आरंभमे हमारी संस्थाके नाममे प्रयुक्त 'अश्वेत जनता' का तात्पर्य केवल अमेरिकी अश्वेतोतक ही सीमित न था।" उन्होने आगे कहा है कि "एक वार जव हम लोगोने गाधीको अमेरिका आमन्त्रित करनेका विचार किया था तो इसपर वडा वाद-विवाद हुआ, जो मुझे आज भी याद है। इससे मैंने यही निष्कर्ष निकाला कि यह देश अभी इतना सभ्य नही हुआ है कि किसी अश्वेत व्यक्तिका सम्मानित अतिथिके रूपमे स्वागत कर सके।" वादमे डू वोइसने गाधीसे 'क्राइसिस' पत्रिकाके लिए अमेरिकी हब्शियोके नाम एक संदेश भेजनेका निवेदन किया था। उस समय डू वोइस उक्त संघके लिए इस पत्रिकाका संपादन कर रहे थे। गाधीने १९२८ मे भेजे गये अपने संदेशमे लिखा था .

> एक करोड़ वीस लाख हब्शियोको इस वातसे लज्जित न होना चाहिए कि वे गुलामो की सताने है। वेइज्जती तो गुलाम रखनेवालो की है। किन्तु हमे अतीत कालके सम्मान अथवा असम्मानकी वात आज नही सोचनी चाहिए। हम यह अनुभव करें कि भविष्य उनके साथ है, जो पवित्र, सत्यनिष्ठ और प्रेमी होगे, क्योकि प्राचीन कालके वुद्धिमान् लोगोने कहा है 'सत्य तो हमेशा ही कायम रहता है, असत्य कभी कायम नही रहा।' केवल प्रेममे लोगोको वाँधनेकी शक्ति है और सत्य तथा प्रेम उन्ही लोगोको प्राप्त होता है, जो वस्तुत विनम्र होते है।

द्वितीय महायुद्धके वाद डू वोइसको यह अनुभव होने लगा कि युद्धके गर्भसे किस प्रकार एक ऐसे "नये अश्वेत संसार" का आविर्भाव हो रहा है, जो यूरोप और अमेरिकाके नियन्त्रणसे सर्वथा मुक्त है। वे गांधीकी भूमिकाको भी समझने लगे और उन्होने अमेरिकाके काले लोगोके मार्ग-दर्शकके रूपमे गाधीके कार्योका मूल्याङ्कन भी शुरू कर दिया। १९५७ मे गाधी मार्गमे उन्होने लिखा कि "अभी पिछले सालसे ही अमेरिकी हब्शियोको यह समझमें आने लगा है कि अमेरिकामे हब्शियोकी समस्याके समाधानमे भी गांधीवादी तरीकेको अपनाना सभव है।" इस सिलसिलेमे उन्होने माण्टगोमरी-आन्दोलनका वर्णन करते हुए लिखा है कि "दक्षिणमे अवतक शासन करनेवाली हत्यारी भीड़के मुकावले अहिंसाने जो अटल मोर्चा कायम किया, वह असाधारण था।" उन्होने आगे लिखा है कि .

> यह आन्दोलन गाधी और उनके कामोके प्रत्यक्ष ज्ञानपर आधारित नही

था। यह ठीक ह कि मार्टिन लूथर किंग जसे नेताओको भारतके अहिसक प्रतिरोधकी जानकारी थी और अनेक पढे लिखे निग्रो, व्यापारी तथा दूसरे लोगोने गाधीके बारेम सुन रखा था, किन्तु इस आदोलनका आरभ और प्रसार इसके अन्तर्निहित सिद्धान्तोंके आधारपर ही हुआ था किसी प्रत्यक्ष उपदेश या प्रचारके आधारपर नही। इस दृष्टिसे विचार करनेपर यह आदोलन गाधीवादी दशनम निहित सत्यका एक अत्यन्त रोचक प्रमाण प्रस्तुत कर देता ह।

डू बोइसने भविष्यवाणी की थी कि

> यह पूर्णत सम्भव ह कि अमेरिकामें वास्तविक मानवीय समानता और भ्रातत्वकी स्थापना किसी दूसरे गाधीके नेतत्वम हो हो।

मार्टिन लूथर किंगने मुक्त हृदयसे उन सभी लोगोंके प्रति आभार प्रकट किया ह जिन्होने उ और उनके साथियोंको किसी भी रूपमें गाधी मार्गपर चलनेम सहायता प्रदान की ह। उनका एक प्रमुख सहायक शान्तिवादी सघटन (द फलोशिप आव रिकन्सिलियेशन-फोर) रहा ह। इसने बराबर उनके साथ कधासे कधा मिलाकर काम किया था। इसने एक सचित्र स्मरण ग्रन्थ स्मारिका हस्ता माण्टगामरीमें रहकर वहाँके कारखानोंका मार्गदशन गाधीवादी अहिंसाके रास्तेपर किया था। फलोशिपने बच्चोंके लिए किंगके सबधमें रगीन हास्यप्रधान चित्रो की एक पुस्तिका भी प्रकाशित की थी। इसके प्रथम चित्रमें किंगको मचपर यह भाषण करते हुए दिखाया गया ह स्वतन्त्रताकी ओर हमारा अभियान शुरू होनेके वर्षों पूव एक देशकी ३० करोड जनताने उन्हीं साधनोंसे आजादी हासिल की ह जिनका प्रयोग हमने किया था। बार के एक सस्थापक और फलोशिप के पुराने सदस्य बयार्ड रस्टिन भी आन्दोलनके समय किंगसे विचार विमश करते रहते थे।

आगे चलकर किंग भारत भी आये। उन्होने इसके सबधमें लिखा,

> मुझ भारत-यात्राका जो सौभाग्य प्राप्त हुआ उसका मेरे व्यक्तित्वपर बहुत प्रभाव पडा। स्वतन्त्रता प्राप्तिके लिए चले अहिंसक सघर्षके आश्चयजनक परिणामोंकी प्रत्यक्ष जानकारी प्राप्त करना मेरे लिए बहुत ही उत्साहवधक था।

उनके मुक्त उपयोगका आन्दोलन आरम्भ किया। यह आन्दोलन उत्तरी कैरोलिना स्थित ग्रीनशोरोमे अपने-आप आरंभ हो गया। छात्र नेता एजेल क्लेयर जूनियरने कहा कि आन्दोलनमे अहिंसक तरीकोके प्रयोगके सबंधमे हममे पूर्ण सहमति है। एक वर्ष पूर्व मैंने टेलीविजनपर एक वृत्तचित्र देखा था, जिसमे गाधीजीको जेलसे छूटकर वाहर आते दिखाया गया था। इससे हमे पता चल गया कि गाधीको भारतकी स्वतन्त्रताका क्या मूल्य चुकाना पडा था। इस अवसरपर छात्रोने किंग द्वारा माण्टगोमरीमे सफलतापूर्वक सचालित वस-वहिष्कार-आन्दोलनकी भी याद की। उस आन्दोलनमे अमेरिकाके दक्षिणी राज्योके सैंकडो छात्र जेल गये थे। एक छात्राने जेलसे लिखा था "हम लोग अपील द्वारा जेलोसे वाहर आ सकते थे, किन्तु हमारा मार्टिन लूथर किंगके इस आह्वानकी सत्यतामे दृढ विश्वास था कि 'हमे समान अधिकारोकी प्राप्तिके लिए जेलोको भर देना है।' " इस छात्र-आन्दोलनके एक नेता नाशविलेके धर्मविज्ञानके युवक छात्र रेवरेण्ड जेम्स एम० लासन थे। वे तीन वर्षोतक भारतमे मेथडिस्ट मिशनरीके रूपमे कार्य कर चुके थे। अपने इस अनुभवसे वे गाधीवादी परम्पराके परमभक्त वन गये थे। मेम्फिसमे पादरीके रूपमे कार्य करते हुए लासनने ही हब्शी सफाई-मजदूरोके हडताल का नेतृत्व किया था। इसी हडतालमे सहायता प्रदान करते समय किंगकी हत्या हुई थी।

१९६१ मे विश्व पारमाणविक संकटके मध्य गाधी मार्गने अनेक विश्वनेताओसे यह प्रश्न किया था कि संसारकी सरकारोको तुरन्त नि शस्त्रीकरणके लिए विवश करनेके उद्देश्यसे गाधीवादी तरीकोको कैसे प्रयोगमें लाया जा सकता है। किंगने इस प्रश्नका उत्तर इस प्रकार दिया था .

> सभ्य संसार पारमाणविक विनाशके कगारपर खडा है। अव कोई भी समझदार व्यक्ति लापरवाहीसे युद्धकी तैयारियोकी वात नही कर सकता। वर्तमान संकटमे गंभीर चिन्तन, विवेकपूर्ण वार्ता और नैतिक वचनवद्धता आवश्यक हो गयी है। आज अन्तरराष्ट्रीय मामलोमे अहिंसक प्रत्यक्ष काररवाईके गाधीवादी तरीकेको अपनाये जानेकी पूर्वापेक्षा कही अधिक आवश्यकता है। हमे इस तरीकेपर केवल इस दृष्टिसे विचार नही करना चाहिए कि इसका उपयोग राष्ट्रोके घरेलू मामलोमे ही किया जा सकता है। इसे हमे आजकी दुनियाके शक्ति-गुटोमे चलनेवाले सघर्षोके समाधानके लिए एक प्रभावकारी साधनके रूपमे ग्रहण करना चाहिए"......।

बैठकर या खडे होकर घरना देने जैसे अहिंसक प्रदर्शनो द्वारा हमे पश्चिमी

राष्ट्र और मानवो बरानर विनाशकी उस अँधेरी रातका स्मरण दिलाना चाहिए जो आज हम सब लोगोपर मँडरा रही ह

१९६४ में किंगको नोबेल शान्ति-पुरस्कार प्राप्त हुआ। इसे ग्रहण करते हुए अपने भाषणमें उन्होंने अहिंसक प्रतिरोध और गाधीपर अपने विचार व्यक्त किये थे

अहिंसा आत्मा और हमारे संघर्षके राष्ट्र व्यक्त स्वरूपका प्रतीक ह और इसमें सन्देह नही कि सघर्षमें अहिंसाके साथ सम्पृक्त होनेके कारण हा आज एक व्यक्तिको यह पुरस्कार देना उचित समझा जा रहा ह। इसके मूलम भी अहिंसाको ही मान्यता प्रदान करनेका लक्ष्य ह।

इसके बाद किंगने अहिंसक प्रतिरोधकर्ताओके मदेशको सक्षेपम इन शब्दोंमें प्रस्तुत किया

सरकारी और अन्य प्रकारके अधिकारप्राप्त अभिकरणोकी विफलताके बावजूद हम अन्यायके विरुद्ध प्रत्यक्ष काररवाईका रास्ता अपनायेंगे। हम लोग अन्याय्य विधानो और अनुचित व्यवहारोके सामने कभी नही झुकेंगे और न उनका पालन करेंगे। हम ऐसा शान्तिपूवक, प्रसन्नतापूवक, खुले आम करेंगे, क्योकि हमारा लक्ष्य अनुनय विनय द्वारा लोगाका हृदय-परिवतन करना ह। हम अहिंसाके साधनोका प्रयोग इसलिए करते ह कि हमारा लक्ष्य एक ऐसे समाजकी रचना करना ह, जिसमें कोई अन्तर्विरोध न हो और जिसमें आन्तरिक शान्ति वतमान हो। हम लोगोको पहले शब्दो द्वारा समझाने और राजी करनेका प्रयत्न करेंगे, किन्तु यदि हमारे शब्दोका असर नही होगा तो हम अपने कार्योंसे यह लक्ष्य पूरा करेंगे। हम लोग न्यायोचित समझौता करने और इसके लिए बातचीत करनको बराबर तयार रहेंगे, किन्तु इसके साथ हम इसके लिए भी तैयार ह कि हम सत्यको जिस रूपमें देखते हैं उसे प्रमाणित और प्रतिष्ठित करनके लिए हम हर तरहका कष्ट उठायें और यदि आवश्यक हो तो अपने प्राणोकी भी बलि चढा दें।

यह उस व्यक्तिकी भविष्यवाणी ही थी, जिसने आगे चलकर सत्यके लिए अपने प्राणोकी बलि चढा दी। नोबेल समितिके सामने यह भाषण करते हुए किंगने महात्मा गाधीके कार्योंकी चर्चा भी की थी

जातीय न्याय प्राप्तिकी समस्याके समाधानमें इस तरीकेकी प्रभावकारिता का एक बहुत ही सफल उदाहरण हमे मिल चुका ह। मोहनदास क०

गाधीने ब्रिटिश साम्राज्यको चुनौती देकर अपने देशकी जनताको शताब्दियोसे चली आरही राजनीतिक दासता और आर्थिक शोषणसे मुक्त करनेमे इस तरीकेका प्रयोग बडे ही शानदार ढंगसे किया था। उन्होंने केवल सत्य, आत्मशक्ति, अहिंसा और साहसके अस्त्रोसे ही संघर्ष किया था।

अपूर्ण कार्य

अपनी हत्याके समय गाधीके विचारसे उनका कार्य अपूर्ण था। जनवरी, १९४८ में, वे अभी भी देशके विभाजन और स्वतन्त्रताकी प्राप्तिके बाद होनेवाले साम्प्रदायिक उपद्रवोको रोकनेका प्रयत्न कर रहे थे। इस प्रयासमे अपने जीवनके अन्तिम दिनोकी अपेक्षा उन्हे अपनी मृत्युसे अधिक सफलता मिली, फिर चाहे वह तात्कालिक ही क्यो न रही हो। गाधी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसको भी पारम्परिक राजनीतिक दलसे बदलकर एक सर्जनात्मक, सामाजिक कल्याणके आन्दोलनका रूप देनेका प्रयत्न कर रहे थे। इस प्रयत्नमे भी वे विफल रहे।

किंग भी अपनी हत्याके समय यही समझ रहे थे कि उनका कार्य अपूर्ण है। १९६७-६८ मे उन्होने अपनी आरंभिक भावनाओके अनुरूप वियतनाममे युद्धसमाप्तिके लिए राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय प्रयासमे खुलेआम सक्रिय ढगसे भाग लेना शुरू किया। १९६५ के बाद उन्होने दक्षिणी क्रिश्चियन लीडरशिप कानफरेन्सके नागरिक अधिकार आन्दोलनका केन्द्रबिन्दु दक्षिणसे हटाकर उत्तरकी ओर स्थापित किया। यह एक अपरिचित क्षेत्र था और यहाँ उनका तरीका नये प्रयोग और भिन्न पर्यावरणके अनुरूप संशोधनके बिना लागू नही किया जा सकता था। शिकागोमे उन्हे पूर्ण सफलता नही मिली, किन्तु उन्हे ऐसा अनुभव हुआ कि १९६८ के वसंतमें वाशिंगटन, डी० सी० पर केन्द्रित दीन जन आन्दोलनमें उन्हे एक सफल सूत्रका सधान मिल गया हो। जिस समय इस आन्दोलनकी घोषणा की गयी थी, उसी समयसे इसके सबंधमे ऐसे कई सवाल उठ खडे हुए थे, जिनका उत्तर देनेका प्रयास किंग अपनी मृत्युके समय भी कर रहे थे। किंगको अपनी मृत्युसे भी तत्काल उस अहिंसात्मक साधनमे सफलता नही मिली, जिसका वे उस समय प्रचार कर रहे थे। जिस रात उनकी हत्या की गयी, उसी रातसे अमेरिकाके दो सौ नगरोमे उपद्रव शुरू हो गये। इन उपद्रवोमे ४६ आदमी मारे गये (जिनमें अधिकाश हब्शी थे), ५,११७ बार गोलियाँ चलायी गयी, २३,९८७ गिरफ्तारियाँ हुई, ३ करोड़ ९० लाख रुपयेकी सम्पत्ति क्षतिग्रस्त हुई और इन्हें दबानेके लिए ७४ हजार सैनिको और नेशनल गार्डोकी मदद ली गयी। किंगकी अन्त्येष्टिके एक

िग बाद अमरिकी साधारण सभाने नागरिक अधिकार-सबधी दूसरा विधयक पारित किया और उसे राष्ट्रपतिक पास भेजा किन्तु किंगकी मृत्युसे केवल यही हुआ कि यह प्रस्ताव कुछ जल्दी पास हो गया ।

किंग अपनी मृत्युके समय अमेरिकाम नागरिक अधिकारोके लिए लडनेवाले सबस महत्त्वपूण नेता थ । अमेरिकाके एक दजन राष्ट्रीय हब्शी नेताओकी वत मान शृङ्खलाम उनका स्थान केन्द्रवर्ती था यद्यपि उनका रुझान वामपक्षकी ओर था । अपने जीवनके अन्ततक किंगकी अहिंसामें अटूट निष्ठा बनी रही । वाटस न्यूयाक, डटायट और दूसर शहरोमें हब्शियोंम हिंसाकी बढ़ती हुई प्रवृत्तिके बाव जूद किंग अहिंसाके सिद्धान्तसे जरा भी विचलित नही हुए । किंग पर उन अश्वेत लोगोका बडा दबाव पड रहा था जो हिंसाके समथक और अश्वेत सत्ताकी स्थापनाके हिमायती थे । अपने जीवनके अन्तिम दिनोंमें किंग बराबर हिंसा और अश्वेत सत्ताके दबावोकी ओर ध्यान देते रहे । सभवत वे अश्वेत सत्ताके समथक हो जाते किन्तु हिंसाका समथन तो वे किसी हालतमें नही कर सकत थे । १९६७ ६८ के दौरान अश्वेत सत्ताके प्रभावम किंगने अपनी स्तुतिमें परिवतन कर ये शब्द रख दिये थे 'हम सभी सडी गली-पुरानी चीजोपर विजय प्राप्त कर लेंगे । इस स्तुति-गीतकी यह कडी ' अश्वेत और श्वेत एक साथ ' ने तो किंग की हत्या और अन्त्येष्टिके बाद अमरता प्राप्त कर ली ह । यह गीत अब किसी काल विशेषतक सीमित न रहकर आत्म-बलिदान करनेवाले एक महान नेतासे सम्बद्ध होकर शाश्वत बन गया ह ।

गांधीके जीवनकी अतिम घडिया—उनकी हत्या उनके लिए किया गया शोक उनकी अन्त्येष्टि सब कुछ—इतिहासके लिए अच्छी तरह अकित कर ली गयी ह, किन्तु किंगके जीवनकी अन्तिम घडियाँ—उनकी हत्या उनके प्रतिशोक और अन्त्येष्टि—उनका अकन अब धीरे धीरे हो रहा ह ।

गांधी शुक्रवार ३० जनवरी, १९४८ को पवित्र यमुनातटसे कई मील दूर सायकाल ५ बजे गोली लगनेके करीब-करीब तत्काल बाद ही नयी दिल्ली स्थित बिडला भवनमें मर गये । उस समय वे अपनी दनिक प्राथना सभाके लिए जा रह थे । किंगको, गुरुवार, ४ अप्रैल, १९६८ को सायकाल ६ बजेके तत्काल बाद मेम्फिस स्थित लोरेन मोटेलमें गोली मारी गयी । उन्हें सेण्ट जोसेफ अस्पताल ले जाया गया जहाँ सायकाल ७ बजे उनका देहान्त हो गया । यह स्थान मिसि सिपी नदीसे थोडी ही दूर पर ह । गांधीका पार्थिव शरीर बिडला भवनमें १८ घटेतक पडा रहा । उनकी शवयात्राका जुलूस दो मील लम्बा था जो चार घण्टेमें

५½ मील लम्बा रास्ता तय कर राजघाट पहुँचा था, जहाँ गाधीका शवदाह सम्पन्न हुआ था। यह विधिकी विडम्बना ही थी कि शान्तिवादी गांधीका शव सैनिक शस्त्रवाहक यानपर रखा गया और उसे भारतीय स्थल, जल और वायुसेनाके दो सौ जवान रस्सियोसे खीचकर श्मशानतक ले गये। गांधीकी अन्त्येष्टि राजकीय सम्मानयुक्त अन्त्येष्टि वन गयी। किंगका शव उनकी मृत्युके १२ घण्टोके अन्दर एक निजी विमान द्वारा उनकी जन्मभूमि अटलाण्टा ले जाया गया। वहाँ उनका शव दर्शनार्थ कई दिनोतक स्पेल मैन कॉलिजमें और वादमे उनके पिताके एवेनेजर वैप्टिस्ट चर्चमे रखा गया। उनकी शवयात्राका मीलो लम्बा जुलूस ९ अप्रैल को ४ मील लंबा चक्कर लगाते हुए तीन घंटोमें मोरहाउस कॉलिजके क्षेत्रमे पहुँचा। शान्तिवादी किंगका शव साझेकी खेती करनेवालोके एक वैगनपर रखा गया था और उसे दो खच्चर खीच रहे थे। उनके साथियोने इस अवसरपर किसी प्रकारकी सैनिक साज-सज्जा करनेका निषेध कर दिया था। मोरहाउस-क्षेत्रमे उनकी अन्त्येष्टि-प्रार्थना सम्पन्न हुई। इसके वाद निजी प्रार्थना साउथ व्यूके समाधिस्थलपर की गयी।

गाधीकी शव-यात्रामे, नयी दिल्लीमे, १५ लाख आदमी शामिल थे और १० लाख आदमियोने सड़कोपर गुजरते हुए इस जुलूसको देखा। अल्टानामे किंगकी शव-यात्रामे करीव २ लाख जनता शामिल हुई और अमेरिकाकी अनुमानत. १२ करोड जनताने शव-यात्रा और अन्त्येष्टिके पाँच घण्टोका कार्यक्रम टेलिविजनपर देखा। उस दिन शोकमे अमेरिकाका सारा कारवार ठप हो गया था।

गाधीके मरनेपर भारत सरकारको केवल विदेशोसे ही समवेदना सूचक ३ हजार शोक-संदेश प्राप्त हुए थे। इनमे सम्राट् जार्ज षष्ठ, प्रेसिडेण्ट हैरी एस० ट्रूमन, प्रधानमन्त्री क्लीमेण्ट एटली, मुहम्मद अली जिना, श्रीमती एलियानोर रूजवेल्ट और अलवर्ट आइन्स्टीनके शोक-संदेश शामिल थे। भारतीय सूचना-विभागने घोषित किया था कि ·

महात्मा गाधीको मृत्युके वाद सारे संसारकी जैसी सहज सराहना, श्रद्धा और प्रेमसे संयुक्त श्रद्धाजलियाँ प्राप्त हुई, शायद लिखित इतिहासमे वैसा सौभाग्य और किसी व्यक्तिको नही मिला है।

अव इस वक्तव्यको दुहराना होगा, क्योकि किंगके निधनपर भी प्राय. समस्त विश्व-नेताओ तथा कम्युनिस्ट, तटस्थ राष्ट्रो और पश्चिमी राष्ट्रोके सभी विख्यात राजनेताओ, राष्ट्रसंघके महामन्त्री ऊ थाँ और पोप पाल षष्ठने उनके प्रति श्रद्धांजलियाँ अर्पित की। इन श्रद्धांजलियोंकी शब्दावली भी गाधीकी मृत्युपर दी जानी-

वाली श्रद्धाजलियाकी याद दिलाती थी। मार्टिन लूथर किंगकी मृत्युने एक तरहसे जान फिटजेराल्ड केनेडीकी मृत्युको भी मात दे दी। किंगकी हत्याके तत्काल बाद जो बहुतसे व्यग्य चित्र अमेरिकामें छपे थे उनमे एक बहुचर्चित चित्रमें किंग को स्वर्गारोहणके बाद गाधीसे मिलता हुआ दिखाया गया था। उसमें गाधी किंग से कह रहे थे 'डॉक्टर किंग हत्यारोके सबधमें अजीब बात तो यह है कि वे यह सोचते हैं कि उन्होने तुम्हें मार डाला है।' यह ठीक है कि मोहनदास करम चद गाधी और मार्टिन लूथर किंग जीवित अवस्थामें एक-दूसरसे नही मिल सके किन्तु मृत्युने उन्हें मिला दिया।

किंगकी हत्या

किंग १३०० हब्शी सफाई-मजदूरोकी हडतालमें सहायता देनेके लिए ३ अप्रल, बुधवारको मेम्फिस पहुँचे। व और अटलाण्टाके उनके कुछ साथी हब्शियो के लोरेन मोटेलमें ठहरे। यह मोटेल एक दोमजिली इमारत है। इसमें एक रात निवास और भोजन करनेका १३ डालर किराया होता है। यह उस केलेवोन टेम्पुल गिरजाघरके पास ही स्थित है जहाँसे हब्शियोके अभियान दल रवाना होते थे। उस दिन शामको किंग थके हुए थे अतएव उन्होने अपने निकटतम साथी डाक्टर राल्फ डी० एबरनाथीको ही सफाई मजदूरोकी रातकी सभामें भाषण करनेके लिए भेज दिया। सभामें पहुँचनेपर एबरनाथीको हब्शियामें इतना उत्साह दिखाई पडा कि उन्हें विवश होकर किरायेके फोनसे किंगको भी सूचितकर बुलाना पडा। किंगके सभास्थलपर पहुच जानेके बाद ऐबरनाथीने उनका बहुत ही लम्बा परिचय दिया। इसके बाद किंगने जो भाषण किया उसमें मानो उनके भविष्यका दर्शन ही समाहित था

> ज्योही मैं मेम्फिस पहुँचा कुछ लोगोने धमकियोकी बात शुरू कर दी वे कहने लगे कि मेरे कुछ अस्वस्थदृष्टिवाले श्वेत बन्धु मेरे लिए खतरा पदा कर सकते है। लेकिन अब मुझपर क्या बीतेगी मैं नही जानता। हमारे आगे कुछ कठिन समय आनवाले है किन्तु अब मुझे इसकी कोई परवाह नही रह गयी, क्योकि अब तो मैं पर्वतके शिखरपर पहुँच गया हूँ। अब चाहे जो हो कोई चिन्ता नही। दूसरोकी तरह मुझे भी दीर्घजीवन की कामना है। जीवनकी अपनी निराली छटा होती है। किन्तु अब मुझे उसकी भी कोई चिन्ता नही रह गयी है। इस समय मैं केवल परमात्माका सङ्कल्प पूरा करना चाहता हूँ। उसने मुझे पर्वतपर चढ जानेकी आज्ञा दे दी है। तबसे मैं बराबर ऊपरकी ओर ही देखता रहा

हूँ और मुझे वह स्वर्ग सामने दिखाई दे रहा है, जिसका आश्वासन हमें परमात्मासे मिल चुका है।

उस दिन रातमें किंग लोरेनके ३०६ नम्वरवाले कमरेमे सोये। वे ४ अप्रैल, गुरुवारको दिनभर मोटेलमे ही अपने साथियोके साथ मेम्फिस-अभियानकी योजना वनानेमे व्यस्त रहे। यह अभियान संघीय जिला अदालतके आदेशके विरुद्ध सोमवार ८ अप्रैलको शुरू किया जानेवाला था। वातचीतके दौरान किंगकी जीवन-रक्षाका प्रश्न भी फिर उठाया गया था, क्योकि मेम्फिसमे २८ मार्चको किंगने जिस अभियानका नेतृत्व किया था, उसके विरुद्ध काफी उग्र हिंसात्मक काररवाई हुई थी। किंगने कहा : "मुझे अधिकाश लोगोका लाभ मिला हुआ है। मै मृत्युके भय-पर विजय पा चुका हूँ।" इस सम्मेलनमे अहिंसाकी भूमिकापर भी विस्तारसे विचार-विमर्श हुआ था। होसिया विलियम्सने इस संबंधमे आगे वताया था कि

डॉक्टर किंगने वस्तुतः उस समय हम लोगोको धर्मोपदेश ही दे डाला था। इस राष्ट्रकी आत्माके उद्धारकी एकमात्र आशा अहिंसाकी शक्तिमे ही निहित है। उन्होने ईसामसीह और गाधीके जीवनकी चर्चा करते हुए कहा था कि "मै मृत्युका भय जीत चुका हूँ।"

साथियोके सम्मेलनके वाद किंगने हाथ-मुँह धोकर भोजनके लिए वस्त्र पहने। उन्हे और उनके कुछ साथियोको रेवरेण्ड सैमुएल वी० काइलेसने अपने निवास-पर भोजन ग्रहण करनेके लिए आमन्त्रित किया था। रेवरेण्ड सैमुएलकी ३१ वर्षीया पत्नी उन्हे "आध्यात्मिक प्रसाद" परसनेवाली थी। किंगने काला सूट और सफेद कमीज पहने हुए दूसरी मंजिल पर स्थित अपने दो कमरोके निवास कक्षसे वाहर आकर मोटेलके सकीर्ण मार्गमे प्रवेश किया। उस समय हरी रेलिंग पर झुके हुए वे नीचे एकत्र अनेक सहकर्मियोसे वार्ता करने लगे। एक अन्त्येष्टि सचालकने किंग और उनके साथियोंके प्रयोगके लिए कैडिलाक कार भेज रखा था। सोलोमन जोन्स जूनियर इसे चलानेवाला था। रेवेरेण्ड जेसी एल० जैकसनने, जो नीचे खडे थे, किंगका परिचय वेनब्राचसे कराया। यही ब्राच दो घटे वाद किंगकी सभामे प्रार्थना-गीत गानेवाला था। किंगने ऊपरसे ब्राचको संवोधित करते हुए कहा "आज मेरे लिए वही गीत गाना 'महान् प्रभु! मेरा हाथ पकड लो!' इसी गीतको खूव अच्छे ढगसे गाना।" ब्राचने कहा . "वहुत अच्छा, मै यही गाऊँगा।" जोन्सने कार स्टार्ट करते हुए सीढियोपरसे उतरते हुए किंगको तेज आवाज देते हुए कहा "वाहर वहुत ठंड है। आप अपना ऊपरवाला दूसरा ओवरकोट भी पहन लें तो अच्छा होगा।" किंगने जवाव दिया "अच्छा, पहन

लेता हूँ।" किंगके ये ही आखिरी शब्द थे। ठीक उसी समय ६ बजकर ५ मिनट पर एक गोली बाहरसे सनसनाती हुई आयी और उनके चेहरेके दाहिने जबड़ेकी हड्डीमें घुस गयी। उनके मुँहसे शायद 'आह!' की आवाज भी न निकल पायी थी कि निशानेके तीव्र आघातसे उनके पैर जमीनसे उखड़ गये और वे सीमेन्टके सँकरे मार्गपर पीछेकी ओर मुँहके बल गिर पड़े और उनके मुँहसे खूनकी धाराएँ बहने लगीं। जक्सन दौड़ते हुए ऊपर आये। उन्होंने किंगका सिर अपनी गोदमें ले लिया। ऐण्ड्रू यंग उनकी नाड़ी टटोलने लगे। राल्फ एबरनाथी बगलके कमरेसे दौड़ आये। उनके हाथमें एक तौलिया थी। वे 'मार्टिन, मार्टिन' कहकर सिसक पड़े। तुरन्त ही घटना-स्थलपर दमकल पहुँच गया। किंगका शरीर एक स्ट्रेचरपर रख दिया गया। उनका सिर तौलियेमें लिपटा हुआ था और चेहरेपर आक्सिजन मास्क लगा दिया गया था।

शामको ६.१६ पर किंगको सेण्ट जोसेफ अस्पतालके एमर्जेंसी कक्षमें भरती किया गया। उनकी आँखें बंद थीं और वहाँ केवल उसी यन्त्रकी आवाज सुनाई दे रही थी जिसके द्वारा उनके शरीरमें आक्सिजन पहुँचाया जा रहा था। उनकी चिकित्सामें कई नर्सें और डाक्टर लग गये। शामको साढ़े सात बजे अनेक डाक्टर एमर्जेन्सी कक्षसे बाहरके कमरेमें आ गये और उन्होंने किंगके साथियोंको अन्दर बुलाया। अस्पतालके सहायक प्रशासक पाल हेसने उनके सामने यह संक्षिप्त और स्पष्ट वक्तव्य पढ़ा

"शामको ७ बजे एमर्जेन्सी रूममें गलेमें लगे हुए एक गोलीके घावके कारण डॉक्टर मार्टिन लूथर किंगका निधन हो गया।"

उनका शव ९ बजेतक अस्पतालमें ही रहा। इसके बाद उसे शवपेटिकामें रखकर अन्त्येष्टि-आवास पहुँचाया गया। रातभर किंगके सभी साथी दूर-दूरसे आकर मोटेलमें एकत्र होते रहे। उन्होंने सबेरे शवका दर्शन किया और उसे शव यात्रा-यान द्वारा मेम्फिस म्युनिसिपल हवाई अड्डेपर पहुँचाया। वहाँ श्रीमती किंगको लेकर अटलाण्टासे एक विशेष विमान आया हुआ था। शवको इसी विमानमें रख दिया गया। विमान शवके साथ अटलाण्टा वापस आया। डाक्टर ऐबरनाथी, और उनकी पत्नी रेवरण्ड एण्ड्रू यंग और उनका पत्नी, जेम्स बवल और होसिया विलियम्स जैसे किंगके कई निकटस्थ साथी भी इसी विमानमें अटलाण्टा वापस आये।

प्रासंगिक ग्रन्थ सूची

१. स्ट्राइड टुवर्ड फ्रीडम, लेखक मार्टिन लूथर किंग जूनियर न्यूयार्क : हार्पर ऐण्ड रो, पृ० २३०, १९५८।

२. स्ट्रेंथ टू लव, लेखक मार्टिन लूथर किंग जूनियर, न्यूयार्क · पाकेट बुक्स, पृ० १७९, १९६३, १९६४।

३. ह्वाइ वी काण्ट वेट, लेखक मार्टिन लूथर किंग जूनियर, न्यूयार्क : न्यू अमेरिकन लाइब्रेरी, पृ० १५९, १९६४।

४. ह्वेयर डू वी गो फ्राम हियर केआस आर कम्युनिटी? लेखक मार्टिन लूथर किंग, न्यूयार्क : हार्पर ऐण्ड रो पृ० २०९, १९६७।

५. द विजडम ऑव मार्टिन लूथर किंग, विल ऐडलर द्वारा संपादित, न्यूयार्क : लासर बुक्स, पृ० १९०, १९६८।

६. ह्वाट मैनर ऑव मैन ए बायोग्राफी आव मार्टिन लूथर किंग जूनियर, लेखक लेरोने बेनेट जूनियर, शिकागो · जानसन पब्लिशिंग कम्पनी, पृ० २२७, १९६४।

७. मार्टिन लूथर किंग : द पीसफुल वारियर, लेखक ई० टी० क्लेटन, न्यूयार्क : प्रेंटिस हाल, १९६४।

८ आइ हैव अ ड्रीम : द स्टोरी आव मार्टिन लूथर किंग इन टेक्स्ट ऐण्ड पिक्चर्स न्यूयार्क · टाइम-लाइफ बुक्स, पृ० ९६, १९६८।

आक्रान्त और तटस्थ सभी तरहके लोग बुराईके एक ऐसे जालमे फँस जाते है, जिससे पूर्ण विनाशके अतिरिक्त निकल पानेका और कोई हिसात्मक रास्ता बच ही नही पाता ।

वर्तमान संकटकी स्थितिमे क्या हम इस सबकको बिलकुल भूल जायँगे ? क्या आजकी कठिनाइयोको हल करनेमे इस पाठका कोई उपयोग नही रह गया है ? ऐसी वात नही है । आज भी इसकी उपयोगिता पूर्णत समाप्त नही हो गयी है । दुनियाकी बडी ताकतें एक-दूसरीसे कटी-कटी और दूर-दूर रहते हुए भी अपने आपसी सघर्षोमे, कश्मीर अथवा मध्यपूर्वकी स्थानीय लडाइयोमे मौनभावसे तटस्थताका रुख अख्तियार करने और एक-दूसरेसे मिलकर काम करनेको विवश हो रही है । साइप्रसके संकट जैसी स्थितियोमे राष्ट्रसघके शाति-विधायक प्रयासो-को कुछ न कुछ समर्थन प्राप्त होता ही है और उसके अधिकारियोका 'उपयोग' किया जाता है, भले ही वह उतना प्रभावकारी न हो । यहाँ तक कि वियतनामके संघर्षमे भी अन्तिम उग्रतम हिंसाके परिणामोकी आशङ्कासे एक प्रकारका नियन्त्रण वना हुआ है, जिसमे स्पष्ट रूपसे उत्तरी वियतनाम इस विश्वाससे अपनी रणनीति निर्धारित कर रहा है कि किसी भी सूरतमे अमेरिका अपने अमोघ पारमाणविक शस्त्रोका प्रयोग न करेगा । इस तरह हम देखते है कि कम-से-कम भयका निवा-रक प्रतिरोध काम कर रहा है ।

किन्तु क्या इस भयको "विवेकके आरंभ" का रूप दिया जा सकता है ? यही आकर हमे महात्मा गाधीके चमत्कारी नेतृत्वका अभाव बुरी तरह खलने लगता है । कोई भी विश्व-नेता हमारे आजके सघर्षोके निवटारेके लिए गरिमापूर्ण दूरदृष्टिका परिचय नही दे पा रहा है । आजके नेताओकी दृष्टिसे अधिक-से-अधिक यही आशा की जा सकती है कि संघर्षोमे कोई गतिरोध पैदा हो जाय और इस प्रकार वे फिर कुछ दिनोके लिए टल जायँ अथवा इसके विपरीत उसका सबसे बुरा परिणाम यह हो सकता है कि संसार सर्वनाशके कगारपर पहुँच जाय । मनुष्यको इन दोनो दशाओसे ऊपर उठानेवाली उदार नैतिक अन्तर्दृष्टिका आज सर्वथा अभाव है । आज कोई भी व्यक्ति मनुष्य और उसकी अन्तर्निहित अच्छाईके संबंधमे बोलनेवाला नही है । यहाँतक कि हमारी आशाएँ भी नकारात्मक हो गयी है । इस तरह हम पथभ्रष्ट हो रहे है, हमारा उत्साह मरता जा रहा है। मानव-जातिके समक्ष मतिभ्रम एवं दिग्भ्रमकी यह स्थिति उस समयतक बनी रहेगी, जबतक समवेदना, सराधन और अहिंसाको नये स्वर देनेवाले लोग हमारे सामने नही आते, और हम गाधीवादी संदेशको फिरसे नही सुन पाते ।

महात्मा गांधी और सामाजिक परिवर्तन

हमें एक स्वतन्त्र राष्ट्रकी मर्यादा प्राप्त हुए २० वर्ष हो चुके हैं फिर भी हम अनुभव कर रहे हैं कि हममें अभीतक राष्ट्रीयताकी भावना अच्छी तरह पनप नहीं हुई है। हम एक ही राष्ट्रके सदस्य हैं और हमारा परस्पर घनिष्ठ संबंध होना चाहिए—इस तथ्यकी जागरूकताके अभी बहुत दृढ़ करनेकी आवश्यकता है। कुछ खास परंपराको तोड़नेवाले एक प्रकार काम कर रहे हैं जिनके कारण प्रचलित हिन्दू धर्मके विभिन्न तत्वोंको एकबद्ध रखनेवाले सूत्र कमजोर पड़ गये हैं। हिन्दुओंको समग्र समाजके प्रति कर्तव्यकी भावना शिथिल करती है और समानता के सिद्धान्तके प्रति वचनबद्ध होना है। संविधानके अन्तर्गत मौलिक अधिकारोंके प्रावधान विवाह एवं उत्तराधिकार-संबंधी कानूनोंमें हुए सुधार विवाहके शास्त्रीय स्वरूपमें हुए परिवर्तन पददलित समुदायोंके राजनीतिक एवं आर्थिक विकासने हिन्दू-समाजको एक नया धक्का दिया है। वस्तुतः जाति प्रथा जो प्रचलित हिन्दू-धर्मका मूलाधार रही है अब समाजके लिए निषेध बन गयी है। एक दूसरेसे बिलकुल अलग, सामाजिक दृष्टिसे विजातीय एवं अपरिचित अन्तर्विवाह एवं अन्तर्भोजसे दूर, एक-दूसरेपर अपनी श्रेष्ठताका दम भरनेवाले तीन हजार जातियों एवं उपजातियोंका समूह कभी समन्वयपूर्ण राष्ट्र नहीं बन सकता। सामाजिक कायाकल्प एवं संबंधोंके दायरोंको बढ़ानेसे ही प्रगति सम्भव है। सामाजिक प्रयासके उच्चतम रूपकी प्रेरणा सामाजिक जीवनकी समष्टिगत चेतनासे ही मिल सकती है। जाति प्रथाके असंख्य जालोंमें फँसकर हमारी समष्टिगत चेतना लुप्तप्राय हो गयी है। अतएव जबतक जाति प्रथाजन्य इस अराजकता एवं अव्यवस्थाको दूर नहीं किया जाता, समाजमें समन्वयपूर्ण, रचनात्मक एवं सहकारमूलक बंधु भावना के विकासकी नयी दिशाएँ खोजी ही नहीं जा सकतीं। यह एक आश्चर्यजनक तथ्य है कि यद्यपि आज जाति प्रथाका उन्मूलन एक ऐतिहासिक आवश्यकता बन गया

है, तथापि धर्म और परपराके कुछ बंधनकारी सूत्रोके दुर्वल पड जानेसे एक ऐसी मनोवैज्ञानिक अरक्षाकी भावना पैदा हो गयी है, जिससे लोग पुन. जातिप्रथासे आवद्ध होते जा रहे है। व्यवहारत. देशके सभी राजनीतिज्ञो एवं राजनीतिक दलोने चुनावके उद्देश्यसे जातिप्रथाका लाभ उठाया है।

क्या हिन्दू-धर्ममे कभी भी राष्ट्रीयताके सभी उपादान मौजूद रहे है ? क्या हमारी परम्पराएँ ऐसी रही है, जिनपर आधुनिक लोकतत्रका ढाँचा खड़ा किया जा सके ? भारतकी आध्यात्मिक प्रतिभा क्या है ?

जव हम अपने अतीतपर पडे परदेको उठाते है तो हमे अपने देशमे विभिन्न प्रकारके मानव-समुदायोका एक विशाल जमघट दिखाई देता है, जिसमे प्रत्येक समुदाय परस्पर समैक्य प्राप्त करनेके लिए संघर्परत है। हमें उस आरंभिक मुक्त, पशुचारणमूलक त्रिवार्णिक आर्य समाजका दर्शन होता है, जिसका धर्म एक सरल धर्म था जिसके प्रार्थना गीतो और स्तुतियोमे आत्माके पुनर्जन्म तथा पाप-पुण्य-संवंधी उन सिद्धान्तोका कोई सकेत नही मिलता, जो आजके हिन्दुत्वके अपरिहार्य अग वन गये है। उस समय हमे आर्योके मुकावले दूसरी ओर "दस्युओ"का अत्यन्त विकसित और श्रमविभाजन पर आधारित विशिष्ट नागरिक समाज भी मिलता है। इसके अतिरिक्त छोटे-छोटे अन्य कई कवीले और जन-जातियाँ भी मिलती है। प्राकृतिक वाधाओके अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक वाधाएँ भी मिलती है। आर्योकी वर्णचेतना और द्विज तथा अद्विजमे विभेदकी भावनासे समाजका स्तरीकरण आरम्भ होता है। एक दूसरा नया 'शूद्र' वर्ण या कारीगरोका समुदाय भी जुट जाता है जिससे त्रिवार्णिक समाज चातुर्वर्णिक वन जाता है।

समाजका चार क्षैतिज समूहोमे क्रमवद्ध एवं सैद्धान्तिक विभाजन एक सूक्ष्म प्रक्रियाका सूचक है। वर्गोकी अपेक्षा अन्तर्विवाही समूह ही व्यक्तिकी सामाजिक पद-प्रतिष्ठाके केन्द्र वन जाते है। जातिप्रथामूलक समाजकी व्यापकता इसीसे संभव होती है कि वह समाज विभिन्न स्थानीय जन-समुदायोको अपने घेरेमे लेता जाता है और उन्हे क्रमश. वर्ण-व्यवस्थाके सोपानमे नीचा-से-नीचा स्थान देता जाता है। समाजके विभिन्न जातीय तत्त्व इतने शक्तिशाली होते है कि वे एक-दूसरेमे आत्मसात् नही हो पाते। वे अपनी पृथक्ता कायम रखनेके लिए पर्याप्त-रूपसे संघटित होते है। वे अपनी पृथक् सत्ता वनाये हुए समान रूपसे अद्विज होने-की अपमानजनक स्थितिसे समझौता कर लेते है और ब्राह्मणकी श्रेष्ठता स्वीकार कर लेते है। दुर्वलतर जन-समुदायोको इस चातुर्वर्णिक व्यवस्थाके वाहर स्थान दे दिया जाता है। उन्हे गाँवके सीमान्तोपर रहनेके लिए विवश किया जाता है।

जगजीवनराम

महात्मा गाधी और सामाजिक परिवर्तन

हमें एक स्वतंत्र राष्ट्रकी मर्यादा प्राप्त हुए २० वर्ष हो चुके ह, फिर भी हम अनुभव कर रहे है कि हममें अभीतक समन्वयकी भावना अच्छी तरह पदा नही हुई ह। हम एक ही राष्ट्रके सदस्य ह और हमारा परस्पर घनिष्ठ सबध होना चाहिए—इस तरहकी जागरूकताको अभी बहुत दढ करनेकी आवश्यकता ह। कुछ कालसे परपराको तोडनेवाले एसे प्रभाव काय कर रहे हैं जिनके कारण प्रचलित हिन्दू धर्मके विभिन्न तत्वोको ऐक्यबद्ध रखनवाले सूत्र कमजोर पड गये ह। हिन्दुत्वको समग्र समाजके प्रति कतव्यकी भावना विकसित करनी ह और समानता के सिद्धान्तके प्रति वचनबद्ध होना ह। सविधानके अन्तगत मौलिक अधिकाराके प्राविधान, विवाह एव उत्तराधिकार-सबधी कानूनोंमें हुए सुधार विवाहके शास्त्रीय स्वरूपम हुए परिवतन, पददलित समुदायोके राजनीतिक एव आर्थिक विकासन हिन्दू-समाजको एक नया धक्का दिया ह। वस्तुत जाति प्रथा जो प्रचलित हिन्दू धमका मूलाधार रही ह, अब समाजके लिए निषेध बन गयी ह। एक दूसरेसे बिलकुल अलग, सामाजिक दष्टिसे विजातीय एव अपरिचित अन्तर्विवाह एव अन्तर्भोजसे दूर, एक-दूसरेपर अपनी श्रेष्ठताका दम भरनवाले तीन हजार जातिया एव उपजातियोका समूह कभी समन्वयपूण राष्ट्र नही बन सकता। सामाजिक कायकलाप एव सबधाके दायराको बढानसे ही प्रगति सम्भव ह। सामाजिक प्रयासके उच्चतम रूपकी प्रेरणा सामाजिक जीवनकी समष्टिगत चेतनासे ही मिल सकती ह। जाति प्रथाके असख्य जालोमें फसकर हमारा समष्टिगत चेतना लुप्तप्राय हो गयी ह। अतएव जबतक जाति प्रथाजन्य इस अराजकता एव अव्यवस्थाको दूर नही किया जाता, समाजमें समन्वयपूण, सजनात्मक एव सहकारमूलक बधु भावना के विकासकी नयी दिशाएँ खोजी ही नही जा सकती। यह एक आश्चयजनक तथ्य ह कि यद्यपि आज जाति प्रथाका उन्मूलन एक ऐतिहासिक आवश्यकता बन गया

है, तथापि धर्म और परंपराके कुछ बंधनकारी सूत्रोंके दुर्बल पड जानेसे एक ऐसी मनोवैज्ञानिक अरक्षाकी भावना पैदा हो गयी है, जिससे लोग पुन. जातिप्रथासे आवद्ध होते जा रहे है। व्यवहारत. देशके सभी राजनीतिज्ञो एव राजनीतिक दलोने चुनावके उद्देश्यसे जातिप्रथाका लाभ उठाया है।

क्या हिन्दू-धर्ममे कभी भी राष्ट्रीयताके सभी उपादान मौजूद रहे है? क्या हमारी परम्पराएँ ऐसी रही है, जिनपर आधुनिक लोकतत्रका ढाँचा खडा किया जा सके? भारतकी आध्यात्मिक प्रतिभा क्या है?

जव हम अपने अतीतपर पडे परदेको उठाते है तो हमे अपने देशमे विभिन्न प्रकारके मानव-समुदायोका एक विशाल जमघट दिखाई देता है, जिसमे प्रत्येक समुदाय परस्पर समैक्य प्राप्त करनेके लिए संघर्परत है। हमे उस आरंभिक मुक्त, पशुचारणमूलक त्रिवार्णिक आर्य समाजका दर्शन होता है, जिसका धर्म एक सरल धर्म था जिसके प्रार्थना गीतो और स्तुतियोमे आत्माके पुनर्जन्म तथा पाप-पुण्य-सवंधी उन सिद्धान्तोका कोई सकेत नही मिलता, जो आजके हिन्दुत्वके अपरिहार्य अग वन गये है। उस समय हमे आर्योके मुकावले दूसरी ओर "दस्युओ"का अत्यन्त विकसित और श्रमविभाजन पर आधारित विशिष्ट नागरिक समाज भी मिलता है। इसके अतिरिक्त छोटे-छोटे अन्य कई कवीले और जन-जातियाँ भी मिलती है। प्राकृतिक वाधाओके अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक वाधाएँ भी मिलती है। आर्योकी वर्णचेतना और द्विज तथा अद्विजमे विभेदकी भावनासे समाजका स्तरीकरण आरम्भ होता है। एक दूसरा नया 'शूद्र' वर्ण या कारीगरोका समुदाय भी जुट जाता है जिससे त्रिवार्णिक समाज चातुर्वर्णिक वन जाता है।

समाजका चार क्षैतिज समूहोमे क्रमवद्ध एवं सैद्धान्तिक विभाजन एक सूक्ष्म प्रक्रियाका सूचक है। वर्गोकी अपेक्षा अन्तर्विवाही समूह ही व्यक्तिकी सामाजिक पद-प्रतिष्ठाके केन्द्र वन जाते है। जातिप्रथामूलक समाजकी व्यापकता इसीसे संभव होती है कि वह समाज विभिन्न स्थानीय जन-समुदायोको अपने घेरेमे लेता जाता है और उन्हे क्रमश वर्ण-व्यवस्थाके सोपानमे नीचा-से-नीचा स्थान देता जाता है। समाजके विभिन्न जातीय तत्त्व इतने शक्तिशाली होते है कि वे एक-दूसरेमे आत्मसात् नही हो पाते। वे अपनी पृथक्ता कायम रखनेके लिए पर्याप्त-रूपसे संघटित होते हैं। वे अपनी पृथक् सत्ता वनाये हुए समान रूपसे अद्विज होने-की अपमानजनक स्थितिसे समझौता कर लेते है और व्राह्मणकी श्रेष्ठता स्वीकार कर लेते है। दुर्वलतर जन-समुदायोको इस चातुर्वर्णिक व्यवस्थाके वाहर स्थान दे दिया जाता है। उन्हे गाँवके सीमान्तोपर रहनेके लिए विवश किया जाता है।

उसकी स्थिति सामुदायिक दासताकी हो जाती है। इसमें वयक्तिकता या मानवता के सम्बन्धकी कोई गुजाइश ही नही रह जाती।

श्रमकी नीरस कठोरतासे मुक्त होकर ब्राह्मण मस्तिष्कमें ज्ञानकी पिपासा जगती है। ब्रह्म विज्ञान और तत्त्वदर्शनका विकास होता है। विभिन्न प्रमयाके आधारपर ससारकी व्याख्या करनके अनेक शानदार प्रयास होते है। हिन्दुओका तत्त्वचिन्तन सूक्ष्मातिसूक्ष्म होता जाता है। प्रत्यक्ष ज्ञानसे अनुभूत जगत सवथा मिथ्या और भ्रममात्र है—इस मान्यताके आधारपर आग चलकर माया और कम के सिद्धान्तोका विकास होता है। व्यक्तिके जीवनका ब्रह्मचय, गाहस्थ्य वानप्रस्थ और सन्यास—इन चार आश्रमोमे-विभाजन इस सिद्धान्तकी चरम परिणति है।

> जीवनका आरम्भ भी भिक्षाटनसे होता है और अन्त भी ससारके सम्पूण त्यागमे ही होता है। इसका लक्ष्य असासारिक जीवनके उस आनन्दको प्राप्त करना है, जो पूरी तरह अपने आत्मकेन्द्रमें स्थित हो जानेसे ही सभव है।

जीवनका लक्ष्य जीवन न होकर त्याग बन जाता है। इस चिन्तन प्रणालीपर ही जातिप्रथाका ढाचा खडा किया गया है और इसे कम सिद्धान्तसे इस तरहसे सम्बद्ध कर दिया गया है जिससे जातियोकी पदप्रतिष्ठामे होनवाले अन्तरोका औचित्य सिद्ध हो जाता है।

ब्राह्मणोके विभिन्न ज्ञान-केन्द्रोसे इसी तरहके विचार नि सृत होकर भारतके विभिन्न जन-समुदायो एव जन-जातियोके मस्तिष्क एव मनोजगतमे प्रवेश कर जाते है जिससे प्रत्येक जाति एव समुदाय अपनी विशिष्ट परपराओ, प्रथाओ एव विश्वासोके बावजूद एक ऐसे सूत्रमें आवद्ध हो जाता है जिसे कोई भी धमनिर पेक्ष सत्ता प्रदान नही कर सकती। इस सूत्रके अन्तगत विभिन्न विश्वासोमे साम ञ्जस्यका एक प्रतिरूप बन जाता है और पूरे समाजको एक आधारशिला मिल जाती है। इस सश्लेषण और ऐक्यमें द्राविड-जीवन प्रणालीका भी उतना ही योगदान रहा है जितना आय-जीवन प्रणालीका। वतमान हिन्दू धमम सिन्धु सभ्यतायुगीन धार्मिक विचारोके अवशेष पूणत प्राप्त होते है। इस आय द्राविड सगमसे ही हमारी आजकी भारतीय सभ्यता तथा हिन्दू धमकी अनेक धाराए निकली हैं। किसी समय उत्तर भारत 'ब्रह्मावत" कहा जाता था। इसी ब्रह्मा वतका प्रसार कामरूपसे कच्छ और हिमालयसे कन्याकुमारीतक हो गया जिसे आज हम भारत कहते है। और इस प्रकार यह महान सश्लिष्ट सभ्यता हम सबकी समान विरासत बन जाती है।

जैसे-जैसे समाज जटिलसे जटिलतर होता जाता है और समाजकी क्षैतिज गतिशीलता ऊर्ध्वाधर व्यवस्थामे वदलती जाती है, आन्तरिक और वाह्य दोनो प्रकारके शौचाशौचके व्यापक नियम वनते जाते है। विवाह, साम्पत्तिक सवध और सामाजिक व्यवहारके पारस्परिक संवधोका नियमन करनेके लिए व्यापक विधि-निषेधकी व्यवस्था होती है। अन्त्यज और छोटी जातियोमे उत्पन्न लोगोके लिए सार्वजनिक कुएँ, पाठशालाएँ और देवालय निषिद्ध कर दिये जाते है। उनके कर्म-क्षेत्र और कर्तव्योपर भीषण प्रतिवध लगा दिये जाते है। उनके वच्चोको शिक्षा प्राप्त करनेके अधिकारसे वचित कर दिया जाता है, जिससे उनका कभी कोई सामाजिक विकास हो ही न सके। ब्राह्मण ही मृत्युके वाद न्यायत मोक्ष प्राप्त करनेकी कामना कर सकता है। वर्णधर्मके सोपानकी निचली सीढियोपर स्थित लोग जन्मान्तरमे केवल अपनेसे ऊपरवाली सीढीपर चढ जानेकी ही कामना कर सकते है। वर्णधर्मके अन्तर्गत जिस वर्ण और जातिके लिए जो कर्तव्य निर्धारित कर दिये गये है, उनसे कोई इस जन्ममें जरा भी विचलित नही हो सकता। अपने-अपने कर्तव्यका पालन करते हुए ही कोई व्यक्ति दूसरे जन्ममे श्रेष्ठतर जाति-मे पैदा होनेकी आशा कर सकता है। इस जन्मके कर्तव्योके लिए वह इस रूपमे अगले जन्ममे पुरस्कृत होता है।

आज वहुत कम लोग यह अनुभव कर पाते है कि इस प्रकारकी सारी मान्य-ताएँ और विश्वास एक विशेष प्रकारकी सामाजिक-आर्थिक व्यवस्थाका परिणाम रही है—उनका एक विशिष्ट ऐतिहासिक सन्दर्भ है। ये कोई विशिष्ट मानवजातीय मानसिक लक्षण नही है। इनमेसे अनेक मान्यताओके पीछे सामाजिक अभिप्राय है। इनसे सामाजिक स्थिरता आती है। इनके पीछे विधाताका कोई आदेश नही है, यद्यपि इन्हे इसी रूपमे प्रस्तुत किया गया है। जो भी हो, ये आजके हिन्दू-जीवन-का अविभाज्य अग वन गयी है और जीवनकी भौतिक स्थितियोमे पूर्ण परिवर्तन हो जानेके वाद भी ये आजतक उसे तीव्रतासे प्रभावित करती जा रही है।

कर्मकाण्डीय ब्राह्मण-व्यवस्थाके विरुद्ध आत्माके विद्रोहके प्रतीकरूप किसी महावीर या गौतमका निरर्थक कर्मकाण्डकी अपेक्षा साधु आचरणकी श्रेष्ठताका प्रति-पादन करना व्यर्थ है। रामानन्द, कवीर, नानक, रैदास जैसे अनेकानेक सन्तोका मनुष्यके देवोपम प्रकृतिपर वल देते हुए किसी भी छोटी जातिके व्यक्तिको मानवो-चित सम्मान न देनेको पाप कहना भी व्यर्थ है। विवेकानन्द व्यर्थ ही इस वातपर जोर देते है कि, "जातिप्रथा, संयुक्त परिवार, उत्तराधिकारके नियम तथा उनसे उद्भूत सारे सामाजिक सवंध हिन्दू-समाजके ऐसे विशिष्ट लक्षण है, जिनका स्वरूप

केवल सामाजिक और वधानिक हैं और ये धार्मिक सस्थाएँ नहा ह।" राममोहन रायने यूरोपीय ज्ञान और औपनिषदिक चिन्तनके सदलेषणसे हिन्दू धर्मका पुनर्व्याख्या करनेका प्रयास किया। स्वामी दयानन्दने वदोसे वसुधव कुटुम्बकम" की प्रेरणा प्राप्त की और परमात्मा तथा समाजके प्रति लौकिक आस्थाका दष्टिकोण स्थापित करनेका प्रयन्न किया। किन्तु इन सारी बातास हिन्दू-समाजमे कोई परिवतन नही हुआ। गतानुगतिकता और अन्धश्रद्धाका गढ़ मजबूत बना रहा। हिन्दू समाजकी यह एक ऐसी आन्तरिक दुबलता थी, जिसने साम्राज्यवादका ध्यान आकृष्ट किया और उसे यहाँ पोषित किया।

जिस समय मोहनदास करमचद गाधीका भारतीय मचपर अवतरण हुआ, यहाँकी यही स्थिति थी। इसी स्थितिमें उनकी तपस्या विनम्रता और साधुताका आविर्भाव हुआ। वे एक ऐसे ऋषि थे जो मानो पुराणोके पृष्ठोंसे निकलकर हमारे बीच आ गये हों। उन्होंने यह अनुभव कर लिया था कि हम ब्रिटिश तापके कारण नही बल्कि अपनी अपूर्णताओ और त्रुटियोके कारण ही पराधीन हुए ह। वे जातिप्रथा प्रादेशिकता सामाजिक अन्याय और अज्ञानके स्वरीकरणसे उद्भूत दुबलताओंको अच्छी तरह जानते थ। व बहुत ही सच्चे और कट्टर हिन्दू थ। उनकी धार्मिक निष्ठा बहुत ही गहरी थी, किन्तु उनका हिन्दुत्व आकाशके समान व्यापक था। स्मृतिकारोंके विचारोंमें आबद्ध कौटिल्य जैसे विचारकों और मकियावेली जसे आधुनिक राजनीतिक चिन्तकों द्वारा समर्थित धार्मिक एव भौतिक क्षेत्रोंकी पृथक्ताके विरुद्ध गाधीजी द्वारा प्रतिपादित जीवनकी अविभाज्यताका सिद्धान्त शुद्ध वायुके समान ताजगी और जीवन प्रदान करनेवाला सिद्धान्त था। उनके लिए उपदेश और आचरणमें किसी प्रकारका पार्थक्य नही होना चाहिए। वे बराबर चिन्तनको व्यवहारसे जोडनेका प्रयत्न करते रहते थे इसीलिए उनसे निकट जाननेका अर्थ काम करना ही होता था। उनके अनुसार राजनीति का नतिकताके साथ न केवल अपरिहार्य सबध ह, बल्कि उन दोनोंकी अलग-अलग कल्पना ही नही की जा सकती। उनकी एक-दूसरेमें समान अवस्थिति ह। व ऐसी भाषामें बोलते थे, जिसे जनता समझ सके और चूँकि जनताका सामान्य स्तर नीचा होता ह अतएव उन्हें कभी-कभी अपने भी बहुत नीचे उतर आना पड़ता था किन्तु व हर हालतमें आत्मिक दृढता साहस निष्ठा और सुस्पष्टताके साथ ही बोलते थ। 'सत्य' और 'अहिंसा' ये दो ऐसे शब्द हैं जिनका गाधीजीके कारण ही अत्यधिक प्रचार हो गया ह। इन दो शब्दोंमें उनके समस्त विचारोंका सार तत्त्व निहित ह। उन्होंने कहा था

"कहा गया है कि परमात्मा सत्य है, शायद यह कहना अधिक ठीक होता कि सत्य ही परमात्मा है …

अहिंसा हमारी मानव-जातिका उसी प्रकार नियम है, जैसे हिंसा पशुका नियम है….

अच्छे साध्यो द्वारा भी संदिग्ध साधनोका औचित्य नही सिद्ध किया जा सकता …

हमारे वास्तविक शत्रु हमारी आशंकाएँ, प्रलोभन और अहंकार है ''

हमे दूसरोको बदलनेके पहले अपनेको बदलना चाहिए ·

कुटुम्ब, सत्य, प्रेम और दयाके नियमोको विभिन्न जनसमूहो, देशो और राष्ट्रोपर भी लागू किया जा सकता है।"

राजनीतिमे इन अवधारणाओको पूर्णत अव्यावहारिक माना जाता है। फिर भी महात्मा गाधीने अपने जीवनमे इन सभी अवधारणाओको साकार किया था।

उन्होने कभी भी एक सुग्रथित और सुसंगत चिन्तन-पद्धतिके विकासका प्रयत्न नही किया। उन्हे इसकी कोई चिन्ता न थी। वे बराबर विकासकी प्रक्रियाके अन्दरसे गुजरते रहे और नये अनुभवोके प्रकाशमे उन्होने निरन्तर अपने विचारोमे संशोधन एवं परिवर्धन करके उन्हे व्यापक बनाया है। कही व्यवहार और वाणीमे कोई असंगति न हो जाय, इसकी आशंकासे उनके हाथ-पैर कभी बँधते न थे। वे अपने कार्योमे अन्त करणकी प्रेरणा और मानवीय प्रेमकी भावना से प्रवृत्त होते थे। जब उन्होने एक समय यह कहा था कि हमे 'स्वराज' "ईश्वर भी नही प्रदान कर सकता, हमे इसे प्राप्त करना होगा" तो स्पष्टत. ऐसा प्रतीत होता है कि वे धर्मकी परम्परागत धारणामे विश्वास नही करते, किन्तु जब राजनीतिक निर्णयोके संदर्भमे उन्होने दूसरे समय अपनेको ईश्वरके हाथोमे समझा तो इससे उनकी धार्मिक भावना ही पुष्ट होती है। जब बिहारके भूकंपके समय गाधीजीने उसे अस्पृश्यताके पापका प्रायश्चित्त कहा था तो टैगोरने उनकी इस उक्तिकी आलोचना इन शब्दोमे की कि एक भौतिक तथ्यकी ऐसी अवैज्ञानिक व्याख्या करनेसे देशमे अविवेककी वृत्ति बढेगी। किन्तु टैगोरकी इस आलोचना से वे विचलित नही हुए और उन्होने कहा कि मनुष्य परमात्माके तरीकोको नही समझ सकता। जब लोग उनका पैर छूते थे तो इससे उन्हे बडी विरक्ति होती थी। एक बार उन्होने कहा था कि "महात्मा गाधीकी जयका नारा" उनके हृदयमे तीर जैसा बिध जाता है। जब उन्होने ८ मई, १९३३ को दलित जातियोंके लिए दूसरी बार अनशन करनेका निश्चय किया था तो उन्होने कहा

था कि ऐसा निश्चय मने अपने अन्तर की पुकारपर किया है।

> पिछली रातको जब मैं सोने गया था तो मुझे इसका कोई भी ख्याल न था कि मुझे दूसरे दिन सुबह ही अनशनकी घोषणा करनी होगी। आधी रातके करीब मुझे लगा कि किसीने मुझे एकाएक जगा दिया और तब किसी आवाजने—मं नही कह सकता कि यह भीतरसे आ रही थी या बाहरसे—मुझसे फुसफुसाकर कहा, 'तुझे अनशन करना ही ह। मने पूछा कितने दिनोंका?" इक्कीस दिनोंका।' 'कबसे शुरू करू? सबेरसे ही शुरू कर दो।"

अनशनका निर्णय करनेके बाद वे सोने चले गये। एक बार देहाती क्षेत्रका दौरा करते समय एक-गांवके लोगोंने उनसे कहा कि आपकी शुभकारक उपस्थितिके कारण हमारे यहाके कुएँमें आश्चर्यजनक ढगसे पानी भर गया ह। इसपर गाधीजीने उन्हें झिडकते हुए कहा

> तुम लोग मूर्ख हो, जो ऐसी बातें करते हो। इसमें कोई सन्देह नही कि सयोगसे ही ऐसा हुआ ह। मान लो कि कोई कौआ किसी तालके पेडपर बठ जाता है और उसके बठते ही वह पेड जमीनपर गिर पडता ह तो क्या इसपर तुम यह सोचने लगोगे कि वह पेड कौएके बोझसे गिर पडा?

जसा कि गाधीजीने अपनी आत्मकथामें लिखा ह, उनकी सबसे बडी इच्छा थी भगवानका दशन और मोक्ष प्राप्त करना। मानव प्रेम और जन-जनका आँसू पोछ डालनेकी आकाक्षामें ही उन्हें इसका माग मिला। यद्यपि वे इस माक्सवादी विश्लेषणसे सहमत प्रतीत होते हैं कि भौतिक द्रव्योके साथ मनुष्यका सबध, उसका आर्थिक जीवन आर्थिक वस्तुओंके उत्पादन और वितरणके उसके तरीके उसकी राजनीति और नैतिकता तथा सामान्यत समुदायके सामाजिक जीवनको भी प्रभावित करते ह किन्तु उन्होने यह स्वीकार करनेमे बिल्कुल इन्कार कर दिया कि नयी समाज-व्यवस्थाके निर्माण और पुरानीके विनाशमें कोई आवश्यक सबध ह अथवा जीवनमें मात्र 'आर्थिक' घटक ही सबसे महत्त्वपूण विषय ह। उन्होन नीतिके रूपमें अहिंसाको ग्रहण करनेसे इन्कार कर दिया। उन्होन अहिंसाको इस लिए ग्रहण किया कि वह हिंसाकी अपेक्षा अधिक प्रभावकारी ह। उनका विश्वास था कि जन सत्याग्रहके रूपमें नतिक और मनोवैज्ञानिक साधनाका सामूहिक व्यवहारके नियमनमें उपयोग किये जानेका सिद्धान्त आम हडतालके रूपमे मात्र हिंसा अथवा बाहरी दबावके प्रयोगकी अपेक्षा एक उच्चतर सिद्धान्त ह। वे प्रेम और सत्यके साधनासे इतिहासको नया रूप देनेके लिए कृतसङ्कल्प थे। उन्होने नतिकता

के प्रभावको पहचान लिया था।

बीस और तीसके दौरान वे हमारी जनतामे महत्तर समैक्य संपादनके लिए कोई रास्ता खोज निकालनेमे व्यस्त थे। उन्होने सबसे पहले यह अनुभव किया था कि भारतके विभिन्न भाषिक क्षेत्रोके इतिहास और परंपराएँ जर्मनी और रूस-की संघटक इकाइयोके समान और अमेरिकाकी इकाइयोके विपरीत काफी पुरानी है और उनका विशेष महत्व है। जब राष्ट्रीय हितोंको ही आग्रहपूर्वक मान्यता प्रदान करना हमारा लक्ष्य हो, समैक्यबद्ध, सुदृढ और तनावोसे मुक्त राष्ट्रीयताकी यह सबसे बडी माँग होगी कि इन अटूट परंपराओकी रक्षा की जाय और भारत-की सभी भाषाओके विकासका प्रबध हो। इतना ही नही, हमे इन भाषाओपर गर्व होना चाहिए। गाधीजी स्वयं भारतीय राष्ट्रीयताकी साकार प्रतिमा बन गये थे और उन्हे यह राष्ट्रीयता असन्दिग्ध रूपमे प्रतिभासित होती थी। उन्होने यह अनुभव किया कि भारतमे एक राष्ट्रभाषाके विकासके साथ-साथ विभिन्न भाषावार राज्योका निर्माण एक-दूसरेके पूरक है और दोनो ही आवश्यक है।

राष्ट्रके महत्तर ऐक्य-संपादनके लिए वे दूसरे सूत्रके रूपमे अस्पृश्यताका निवारण और चातुर्वर्णिक अवधारणाका पुनरुत्थान अपनी प्राचीनतम गरिमा एवं विशुद्धताके साथ सम्पन्न करना चाहते थे। सभी मनुष्य जन्मत समान है, किन्तु उनकी अभिवृत्तियाँ, मनोवृत्तियाँ, योग्यताएँ और मानसिक संरचनाएँ भिन्न-भिन्न होती है। उनके आध्यात्मिक विकासमे भी भिन्नता होती है। उनका कहना था कि इन अन्तरोका निर्धारण एवं वर्गीकरण संघर्ष और प्रतिस्पर्धा द्वारा न करके आनुवंशिकता और चातुर्वर्ण्यके आधारपर कर लेना क्या कही अच्छा न होगा? क्या यह समाजके लिए कही अधिक स्वाभाविक नियामक सिद्धान्त न होगा? अपने यग इण्डिया और हरिजनमे उन्होने महीनो और हफ्तोतक इसी विषयपर रह-रहकर विचार किया है। अस्पृश्योके संबंधमे उन्होने घोषित किया

> सामाजिक दृष्टिसे वे कोढी है, आर्थिक दृष्टिसे उनकी स्थिति सबसे खराब है, धार्मिक दृष्टिसे उनका उन स्थानोमे प्रवेश निषिद्ध है, जिन्हे हम गलती-से देवालय कहते है
>
> यदि हम अस्पृश्यताको नही मिटाते तो हम स्वय दुनियाके नक्शेसे मिट जायँगे ·
>
> चारो वर्ण मौलिक, स्वाभाविक और महत्त्वपूर्ण है, किन्तु ये असंख्य जातियाँ एवं उपजातियाँ अपचय मात्र है ·
>
> वर्णधर्म मानवीय शक्तिके संरक्षण और सच्ची अर्थप्रणालीके प्राकृतिक

नियमके अनुरूप है

यह आत्मसस्कृतिकी विभिन्न प्रणालियोका वर्गीकरण है। यह सामाजिक स्थिरता और प्रगतिका सर्वोत्तम सम्भाव्य सामञ्जस्य है। जीवनकी पवित्रताकी साधना परम्परागत विभिन्न परिवारोंको यह अपनेमें समाविष्ट कर लेता है। कोई विशिष्ट परिवार किस विशिष्ट प्रकारका है, यह इसका निर्णय कुछ व्यक्तियोंके स्वार्थोंपर आधारित फलका अथवा कुछ लोगोंके विशेष लक्षणोंपर ही नहीं छोड देता। यह आनुवंशिकताके सिद्धात पर निर्भर करता है और मात्र सास्कृतिक प्रणाली होनेके नाते इसकी यह मान्यता है कि कोई व्यक्ति या कुटुम्ब कोई अधिक उन्नत जीवन-पद्धति ग्रहण कर लेनेके बाद भी अपने पुराने समूहमें बना रह सकता है, इसमें अन्यायकी कोई बात नहीं है। सामाजिक जीवनमें परिवर्तन अत्यन्त मन्द गतिसे होता है और जातिप्रथाने नये परिवर्तनोंके अनुरूप नये समूहोंके निर्माणमें सहायता दी है। बादलोंके रूपमें होनेवाले परिवर्तनके समान ही ये परिवर्तन बड़े शान्त एवं सरल भावसे घटित होते हैं। इससे अधिक सामञ्जस्यपूर्ण व्यवस्थाकी कल्पना नहीं की जा सकती

जातिप्रथामें उच्चता या निम्नताकी कोई भावना नहीं है। इसमें केवल विभिन्न दृष्टिकोणों और जीवनकी तदनुरूप विधियोंको मान्यता प्रदान की जाती है

जातिप्रथा आत्मसस्कृतिकी विभिन्न प्रणालियोका वर्गीकरण है। यह परिवारके सिद्धान्तका व्यापक रूप है। दोनों ही रक्त और आनुवंशिकतामें अनुशासित होते हैं

आर्थिक दृष्टिसे इसका महत्त्व अत्यधिक है। इसने विभिन्न हस्त शिल्पोंमें वशानुगत परम्परागत नैपुण्यकी सृष्टि हुई है। इसने प्रतिस्पर्धाका क्षेत्र सीमित कर दिया है। इससे भिक्षा-वृत्तिका निरोध हुआ है। इसमें साथ व्यावसायिक सघोंके फायदे भी हैं। भारतीय समाजकी प्रयोगशालामें सामाजिक सामञ्जस्यके लिए मनुष्य द्वारा किया गया यह एक महान् प्रयोग है। यदि हम इसकी सफलता सिद्धकर सकें तो हम इसे विश्व समाजके हृदयहीन प्रतिस्पर्धाके मुकाबले सर्वोत्तम उपचारके रूपमें प्रस्तुत कर सकते हैं

वर्ण तो मानवीय प्रकृतिमें ही निहित है। हिन्दू धर्मने इसको विज्ञानका रूप दे दिया है

> जातिप्रथा आज हमे जिस रूपमे उपलब्ध है, वह तो एक विकृति है। किन्तु विकृतिके उन्मूलनकी अपनी उत्सुकतामें हमे मूलको ही नही नष्ट कर देना चाहिए '
>
> यह कोई मानवीय आविष्कार नही है। यह तो प्रकृतिका ही अपरिवर्तनीय नियम है, जो न्यूटनके गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्तके सदृश निरन्तर वर्तमान और क्रियान्वित है।

और वर्ण-व्यवस्थाके संबंधमे इसी तरह वे बराबर लिखते गये है। उनकी भावधारा सर्वत्र इसी ढंगकी रही है। महात्मा गाधीने 'वर्ण' और 'जातिप्रथा' शब्दोका प्रयोग परस्पर परिवर्तनीय शब्दोके रूपमे किया है और उनका यह विश्वास है कि हर तरहके लोगोको इन चार व्यापक व्यवसायोके अन्तर्गत रखा जा सकता है शिक्षण, प्रतिरक्षण, धनोत्पादन और शारीरिक श्रम। उन्होंने लिखा है कि

> हमारी वर्ण-व्यवस्था इसी ढंगकी है, जिसे हम पुनरुज्जीवित करनेका प्रयत्नकर रहे है। यह उस डेम पार्किंगटनकी तरह है, जो एक झाड़नसे समूचे अतलान्तक महासागरको पीछे ढकेल देना चाहती है।

जहाँ तक इस अभीप्सित पुनरुज्जीवनका प्रश्न है, गाधीजीके शब्दोमे भावी विकास ही बोल रहा है।

गाधीजी जातिप्रथा और वर्णसंबंधी अवधारणाको जो नया रूप दे रहे थे, वे चाहते थे कि हिन्दू उसे अन्त करणसे स्वीकार कर लें, किन्तु इसके साथ ही अस्पृश्यता-उन्मूलनको वे तात्कालिक महत्त्वकी सबसे गभीर समस्या मानते थे। रामसे मैकडोनल्डके साम्प्रदायिक निर्णयके विरुद्ध २० सितम्बर १९३२ को किया गया उनका अनशन एक ऐतिहासिक घटना है। शाहाबादके काग्रेसजनोने महात्माजीको तार भेजकर सूचित किया था कि मै पूनाकी बैठकोमे राष्ट्रवादी दलित वर्गोका प्रतिनिधित्व करनेको तैयार हूँ, किन्तु अपने बड़े भाईकी बीमारीके कारण मै वहाँ न जा सका। मैने महात्माजीको एक क्रोधभरा पत्र लिखा कि आपको गोलमेज-सम्मेलनमे सीटोके संरक्षणकी व्यवस्था स्वीकार कर लेनी चाहिए थी। इसके लिए अनशन करके प्राणोका सकट मोल लेना उचित नही है। उनके सचिवने इस पत्रके उत्तरमे मुझे लिखा था कि गांधीजी हिन्दू और अस्पृश्यो दोनोके लिए किसी प्रकारका पार्थक्य बुरा मानते हैं।

सीटोका संरक्षण स्वीकार करनेसे वे प्रसन्न न थे, किन्तु उन्होने साफ-साफ तौरसे यह बता दिया था कि उनका अनशन इसके विरोधमें नही किया गया था।

उन्हें पृथक निर्वाचन पूर्णत अमान्य था। पूना समझौता द्वारा जब इसे समाप्त कर दिया गया तो वे बडे प्रसन्न हुए। अनशनने एक प्रकारसे हिन्दू-समाजके मनको मथ डाला। इससे अस्पृश्यता बिलकुल मर तो न सकी। न यह सभव ही था। अस्पृश्योंका पृथक आवासन और उत्पीडन भी इससे समाप्त हो गया हो, ऐसी भी कोई बात नही थी किन्तु इतना अवश्य हुआ कि इससे अस्पृश्यताको मिलनेवाला सार्वजनिक समर्थन समाप्त हो गया।

> इसने उस लम्बी शृंखलाको तोड दिया जो सुदूर अतीतसे चली आ रही थी। यद्यपि इस शृंखलाकी कुछ कडियाँ बची रह गयी, किन्तु अब इसमें नयी कडियाँ जोडनेके लिए कोई तयार न होगा। इन टूटी हुई कडिया को फिरसे जोडनेकी कोशिश कोई नही करेगा।

३० सितम्बर १९३२ को इस मानसिक उथल-पुथलका एक ठोस परिणाम अस्पृश्यता विरोधी सघकी स्थापनाके रूपम सामने आया। आगे चलकर जब गाधीजीने अस्पृश्योंके लिए नये शब्द 'हरिजन' का आविष्कार किया तो यह सघ हरिजन-सेवक-सघ बन गया। इससे बहुतसे सवर्ण हिन्दू अप्रसन्न थे। पूना समझौताके विरुद्ध एक अखिल भारतीय अभियान चलाया गया। इसका उद्देश्य यह था कि किसी तरह समझौतेको भारत-सरकारके कानूनमें स्थान न मिल सके।

स्वभावत म अपनी छात्रावस्थासे ही अपने भाईबंधुओंकी दशाके प्रति अत्यन्त चिन्तित रहा करता था। मै बराबर यह प्रचार करता रहता था कि अस्पृश्यताके अन्तर्गत एक पूरे जन वर्गको विकासका किसी प्रकारका अवसर देनेसे इनकार कर दिया जाता ह और इसमें दासताके तत्त्व निहित ह। यह हिन्दू समाजके सामाजिक आर्थिक ढाँचेम ही समायी हुई ह। अस्पृश्यताको उसी समय समाप्त किया जा सकता ह, जब कि इस पूरे सामाजिक-आर्थिक ढाँचेको पूर्णत पुन सघटित कर दिया जाय। इसके लिए एक ऐसे बडे सामाजिक, आर्थिक एव राजनीतिक क्रान्तिकी आवश्यकता थी, जसी क्रान्तिका परिचय अभीतक समाजको कभी नही मिल सका ह। बिहार अस्पृश्यता विरोधी सघके आरम्भिक अधिवेशनके अवसरपर वक्ताओंने जो उपदेश देनेका रुख अख्तियार किया उससे म बिलकुल जल उठा। "मास खाना छोड दो शराब पीना छोड दो और सफाईसे रहो" आखिर इस तरहके उपदेशोंका क्या मतलब है। यह तो जलेपर नमक छिडकनेके ही समान ह। जो लोग कभी इन उपदेशकोंके समान स्तर पर रहे हो उनपर अवर्णनीय अत्याचार करके जिन्हें पशुओं जसा गुलाम जीवन व्यतीत करनेके लिए बाध्य कर दिया गया हो, उनको आज इस तरहके उपदेश देना और क्या कहा जायगा। मैंने

वडी रुक्षतासे भाषण किया। मेरी स्पष्टवादितासे वहाँ उपस्थित वहुतसे लोग चौंक पडे और स्तब्ध रह गये, किन्तु डॉक्टर राजेन्द्रप्रसादने मेरी वातोको वडी गम्भीरतासे सुना और वे चिन्तनशील मुद्रामे हो गये। दूसरोंके समान उन्होने मेरे भाषणपर किसी प्रकारकी टीका-टिप्पणी नही की। आगे चलकर उन्होने मुझसे कुछ समय विहारको देनेके लिए कहा। इस प्रकार मेरा कलकत्ता जाना स्थगित हो गया और मै उस अस्पृश्यता-विरोधी संघके सचिवके रूपमें काम करने लगा, जिसे आगे चलकर हरिजन-सेवक-संघ कहा जाने लगा। यहीसे विहारमे मेरे सार्वजनिक जीवनका आरंभ होता है।

जिस रूपमें इस संघको काम करना पड़ता था, उससे मै विलकुल प्रसन्न न था। यह एक कटु सत्य था कि अनशन आदिसे केवल एक तरहकी भावात्मक उथल-पुथल ही होकर रह जाती थी। इससे कोई मनोवैज्ञानिक या सामाजिक क्रान्ति नही होती थी। समाजमें जिस परम्परागत मूर्तिके प्रति अन्ध-श्रद्धा वनी हुई थी, उसे तोड डालनेका कोई आग्नेय उत्साह नही पैदा होता था। वेचारे गरीव अछूतोंके लिए करुणा पैदा करके कुछ कल्याणकारी कार्य करा देना मात्र ही इसका उद्देश्य था।

गाधीजीने अगस्त १९३३ मे जेलसे छूटनेके वाद पुन अस्पृश्यताके विरुद्ध अपना अभियान चलाया। मईमें हिन्दू-चेतनाको जगानेके लिए वे इक्कीस दिनोका अनशन कर चुके थे, किन्तु उससे अभीप्सित परिवर्तन पैदा नही हो सका। विशाल जनसमूह गाधीजीके जयके नारोसे आसमान गुँजा देता था, किन्तु सभास्थलसे वापस जाते ही सारी वाते भूल जाता था। उसमें किसी प्रकारका परिवर्तन नही आता था। सवर्णताके अभिमानी कट्टर लोगोने गांधीजीके खिलाफ काले झण्डेके प्रदर्शन किये। इसी समय गाधीजीने हरिजनोको "गाय" कह दिया। मैने उन्हे लिखा कि आपके इस शब्दमे हरिजनोके ऊपर 'दया' करनेकी भावनाका गध मिलता है। उन्होने मुझे जवाव दिया . गाय नम्रता और कष्ट-सहिष्णुताका प्रतीक है। इसके पीछे मेरी कोई वुरी भावना न थी।

जव मार्च १९३४ मे गाधीजीने अपना विहारका दौरा शुरु किया, उस समय मैं भी उनके साथ था। भूकम्पसे भीषण क्षति हुई थी। गांधीजी एक स्थानसे दूसरे स्थानको लोगोको सान्त्वना, उपदेश और शिक्षा देते हुए यात्रा कर रहे थे। वक्सरमें उनकी सभापर ढेले भी फेंके गये और उसे भंग करनेका प्रयत्न किया गया। लेकिन कोई खास घटना न हो सकी। वनारसके लाल शास्त्री नामक एक पण्डितको ममझौतेके विरोधियोने गाधीजीका विरोध करनेके लिए भेजा था। वे

गांधीजीकी कारके आगे लेट गये। गांधीजी कारसे उतर पड़े और पैदल ही यात्रा करने लगे। आरा और पटनामें भी विरोध हुआ था, किन्तु ढेलेबाजी नहीं हुई थी। जब हम लोग २ बजे रातको देवघर पहुंचे तो वहां स्थिति काफी तनावपूर्ण हो गयी थी। समझौतेके पक्ष और विपक्षमें प्रदर्शनकारियोंके दो गिरोह स्टेशनपर एकत्र हो गये थे। उनमें कुछ हाथापाई भी हो गयी और कुछ लाठियां भी चलीं। जिस कारसे गांधीजी ले जाये जानेवाले थे, उसके पीछेकी खिड़की टूट गयी, किन्तु गांधीजी इन सब बातोंसे अप्रभावित शान्त बने रहे। उन्होंने सोनेसे इनकार कर दिया। उन्होंने विनोदानन्द झासे, जो स्वयं देवघरके पण्डा (पुरोहित) हैं कहा कि मैं दूसरे दिन सभा-स्थलतक पैदल जाऊंगा। गांधीजीका निर्णय किसी तरह बदला न जा सका। पूराका पूरा रास्ता स्वयंसेवकों द्वारा घेरकर सुरक्षित किया गया था और गांधीजी ठक्कर बापा, विनोदानन्द झा, मेरे तथा अन्य लोगोंके साथ विरोधी लाठियोंके स्वागत-द्वारसे ही गुजरकर सभा-स्थलतक पहुंचे। सभाके ठीक आरंभ होनेके समय हलकी-सी लट्ठबाजी भी हुई, किन्तु गांधीजीकी उपस्थितिने अपना प्रभाव डाल ही दिया। यहांतक कि गुण्डे भी नरम पड़ गये और उन्होंने भी धैर्यपूर्वक गांधीजीकी बातें सुन लीं। जून १९३५ में पूना-समझौतेके भारत-सरकारके कानूनमें शामिल कर लिये जानेके बाद समझौता विरोधी उग्र आन्दोलन स्वयं मर गया। किन्तु गांधीजीने अपना अस्पृश्यता विरोधी अभियान जीवनके अन्तिम दिनोंतक जारी रखा।

गांधीजीके आन्दोलनसे दूसरा महत्त्वपूर्ण सामाजिक सुधार स्त्रियोंमें दिखाई दिया। उत्तर भारतकी स्त्रियां भी, जिनमें पर्दा प्रथाका व्यापक प्रचार है, भारी संख्यामें गांधीजीकी सभामें उपस्थित होती थीं। बहुत-सी स्त्रियां तो स्वयं आन्दोलनमें शामिल हुईं और उन्होंने जेलकी सजाएँ भी भुगतीं। यदि आज भारत इस बातका गर्व कर सकता है कि उसकी विधानसभाओंमें संसारकी अपेक्षा सर्वाधिक संख्यामें महिला सदस्याएँ हैं तो इसका बहुत कुछ श्रेय गांधीजी द्वारा प्रवर्तित क्रान्तिको ही मिलना चाहिए। गांधीजीने जाति प्रथापर सीधे सामनेसे आक्रमण नहीं किया। आरम्भमें उनका यह विश्वास था कि जाति प्रथा अपने सुधरे हुए रूपमें हिन्दू-धर्मको वे सूत्र प्रदान कर देगी, जिनसे उसे एक राष्ट्रका रूप दिया जा सकेगा, किन्तु धीरे-धीरे इस संबंधमें उनका भ्रम दूर हो गया और अन्तमें वे इस निष्कर्षपर पहुंच गये कि जाति प्रथाको समाप्त ही हो जाना चाहिए। उन्होंने लिखा था कि

जाति प्रथाके विध्वंसका सबसे प्रभावकारी, शीघ्रतम और कम-से-कम प्रति

रोधका रास्ता यह है कि सुधारक स्वयं अपने आचरणसे उसका
करना शुरू कर दे और आवश्यकता पडनेपर उसका कोई भी
भुगतनेको तैयार रहे ..... "वाञ्छनीय यह हे कि सवर्ण हिन्दू लड़कियाँ हरिजन पतियोसे शादी करे। हरिजन लडकियाँ सवर्ण पतियोसे व्याह करे, इसकी अपेक्षा यह अधिक अच्छा होगा। यदि मुझे अपनी इच्छाके अनुरूप कार्य करनेका अवसर मिला तो मैं अपने प्रभावमे आनेवाली सभी सवर्ण हिन्दू लडकियोको हरिजन पतियोसे विवाह करनेके लिए समझा-बुझाकर तैयार करूँगा।

एक दूसरे अवसरपर उन्होंने कहा था कि यदि अस्पृश्यताका समूल नाश करना है तो जाति-प्रथाका ही पहले मूलोच्छेद करना होगा। चूँकि गांधीजी अन्तत इस निष्कर्षपर पहुँच गये थे, अत: उनसे यह प्रश्न किया गया कि वे अस्पृश्यता-विरोधी अभियानको जातिप्रथाके विरुद्ध होनेवाले व्यापक धर्म-युद्धका अग क्यो नही वना देते, क्योकि मूलका उच्छेद कर देनेपर शाखाएँ तो अपने-आप ही मुरझा जायँगी। इसके उत्तरमे गाधीजीने कहा था कि

मेरे लिए अपनी कोई भी धारणाएँ वना लेना एक वात है, किन्तु वे धारणाएँ पूरे समाजको पूर्णत ग्राह्य हो जायँ, यह एक विलकुल दूसरी वात है। यदि मै १२५ वर्षोतक जीवित रह जाऊँ तो आशा करता हूँ कि मै पूरे हिन्दू-समाजका विचार अपने अनुरूप वना लूँगा।

गाधीजीका यह स्वप्न अभी साकार होना वाकी है। यदि एक ही वातपर वरावर अडा रहना दुर्गुण भी माना जाय तो भी मै इस मामलेमे वरावर एक ही वात कहता रहना चाहूँगा। १९३७ मे विहारमे गोपालगजमे आयोजित एक सभामे, जिसमे डॉक्टर राजेन्द्रप्रसाद तथा विहारके कई नेता उपस्थित थे, मैने जोरदार शब्दोमे अपने राष्ट्रीय आन्दोलनकी एक गभीर त्रुटिकी ओर लोगोका ध्यान आकृष्ट किया था। मैने कहा था कि हमारा राष्ट्रीय आन्दोलन मुख्यत राजनीतिसे प्रेरणा प्राप्त करता है, किन्तु जवतक यह आन्दोलन मूलत. सामाजिक पुनर्संघटनका आन्दोलन नही वन जाता, एक दिन असमयमे ही उसकी यह प्रेरणा समाप्त हो सकती है। मैने कहा था कि हमारी प्रेरणा उच्चतर एव पूर्णतर जीवनकी प्रेरणा होनी चाहिए। किन्तु स्वराजकी अवधारणाको शायद जान-बूझकर आश्चर्यजनक ढंगसे अस्पष्ट रखा गया है, ताकि राष्ट्रीय आन्दोलनका संयुक्त मोर्चेवाला रूप कायम रखा जा सके। मेरी समझमे नही आता कि हमारे सोचने-समझनेका वर्तमान तरीका और पीछे मुडकर देखनेकी प्रवृत्ति, हमारी गतानुगति-

कता एव प्राचीन अंधविश्वास कहांतक हमारे राजनीतिक आन्दोलनको पोषण और विकासकी शक्ति प्रदान कर सकते ह। ये सारी चीजें हमारे राजनीतिक आन्दोलनम निहित नये मूल्योंके समर्थन और स्वीकार करनेम बडी बाधक ह। अतएव हमारे चिन्तनकी दिशाम बिल्कुल नया परिवतन आना चाहिए। जनता की नैतिक एव बौद्धिक अभिवृत्तियोंमें भी व्यापक परिवतन अपेक्षित ह। युगा युगत बधनाको समाप्त करना होगा और सधानके नये क्षितिज एव नय आयामो को खोलना आरम करना होगा। इसी सदभमें मन सवण हिन्दुओंके हरिजन कल्याण-सबधी कार्योंकी कडी भत्सनाकी और हरिजनोंपर दया दिखानेवाले इन "मसीहा" का आड हाथो लिया। पत्राम मरा भाषण जिस रूपमें छपा, उसे पढ कर गाधीजीने डाक्टर राजेन्द्रप्रसादसे पूछा कि मन वस्तुत क्या कहा था। उन्होंने मुझे स्नेहभरे शब्दोंमें "आगमें तपे हुए शुद्ध सोनेके समान" कहा था। म उनके स्नेहके लिए बडा आभारी हुआ किन्तु मैंने यह अनुभव किया कि 'सुधार' परि वतन लानेका रास्ता नही था और न हो सकता था। मुझे यह देखकर बडी खुशी हुई कि इसके बाद गाधीजीके विचारोंमें भी मौलिक परिवतन हो गया।

अछूतोंकी समस्याको छोडकर भी सामान्यत यही माना जाता ह कि सामाजिक समस्या मुख्यत आर्थिक समस्या है। यदि आर्थिक समस्याको सही ढगस निपटा लिया जाय तो और किसी बातका चिन्ता करनेकी आवश्यकता नही है। मेरी रायमें यह बहुत हा सकुचित दृष्टिकोण ह। म बराबर यही मानता रहा हूँ और यही जीवनकी अविभाज्यताका गांधीजीका सिद्धान्त मेरा समथन करता है, कि हमारा सारा दृष्टिकोण समन्वयपूण होना चाहिए। हमें आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं की ओर अवेक्षित ध्यान अवश्य देना चाहिए किन्तु हम सामाजिक समस्याकी उपेक्षा नही कर सकत। इसस अन्य दोनो प्रकारकी समस्याओंको क्षति पहुँचेगी।

आज जातिवाद हमारे राजनीतिक जीवनमें इस तरह व्याप्त हो गया है कि इसस लोकतन्त्रके ढाँचेके लिए खतरा पैदा हो गया है। कोई भी व्यक्ति इस भामूरता और ध्यान देनेकी आवश्यकता नहीं समझता। खतरा बढता जा रहा ह किन्तु उसका उपेक्षाका वातावरण बना हुआ ह। जाति प्रथाके मूल आधारोंका प्रभाव राजनीतिक सत्ता प्राप्तिके लिए सघर्ष करनेवाले लोग धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र वादके विरुद्धमें नहीं किया जा रहा है बल्कि उसका उपयोग सत्ताके अपने स्वार्थोंकी सिद्धिके लिए हो रहा है जिससे राष्ट्रको ऐक्यबद्ध जीवन दुर्बल होता जा रहा है। आज सबस बडी आवश्यकता इस बातकी है कि राष्ट्र सब धर्मोंपर एव अल्पसंख्यक समाजोंके इस अत्यन्त हानिकारक प्रभावके विरुद्ध कदम उठाए

एक महान् सामाजिक एवं वौद्धिक धर्म-युद्धमे नियोजित किया जाय और इसके पहले कि वह लोकतन्त्रको ही खत्म कर दे, हम इस कुत्सित प्रथाको ही खत्म कर डालें। इसके लिए हमारी ऐक्यकी चेतनाको जाति और प्रदेशका अतिक्रमण करना होगा।

गाधीजी हिन्दू-समाज-व्यवस्थामे कोई मौलिक परिवर्तन लानेमे विफल रहे। इस समाज-व्यवस्थाने देशके मुसलिम और ईसाई-समाजको भी प्रभावित एवं दूपित कर दिया है। इसके परिवर्तनके संवधमे गाधीजीकी कोई महत्त्वाकाक्षा न थी और इसके लिए उन्होने कुछ किया भी नही, किन्तु उन्होने अछूतोको अवश्य ही मुक्तिमार्गपर लाकर खडा कर दिया। हिन्दू-मस्तिष्ककी मुक्तिसे ही किसी नयी समाज-व्यवस्थाका उदय हो सकता है, किन्तु इस मुक्तिकी प्रक्रिया अवश्य ही वडी लंवी और कष्टसाध्य होगी। वर्ग-समस्याको जाति-समस्यासे अलग नही किया जा सकता। जाति-समस्याके समाधानके लिए नैतिक और मानसिक क्रान्ति अपेक्षित है। वर्ग-समस्याके समाधानके लिए यह आवश्यक है कि जनताको विना किसी भेद-भावके जीवनकी न्यूनतम सुविधाओ, आवास, रोजगार और शिक्षाकी गारंटी दे दी जाय। लेकिन समय निकलता जा रहा है। जातिगत अविश्वासका गंभीर होता जाना अनिवार्य नहीं है। आवश्यकता इस वातकी है कि वडे सामूहिक पैमानेपर कार्य करनेका दृढ · सङ्कल्प लिया जाय, लोकतन्त्रको सवके लिए समान रूपसे हितावह वनाया जाय और समाजमे ध्रुवीकरणकी प्रवृत्तिको रोकनेके लिए जातीय रेखाओको काटनेवाली संचार-व्यवस्थाको अधिकाधिक व्यापक रूपमे संघटित कर दिया जाय। हम चाहे जो भी कार्य करे, उसे गाधीवादी तरीकेसे ही करे, अर्थात् हमेशा नैतिक शक्तिको ही काममे ले आये। आज वहुतसे गाधीवादी विचार पुराने पड गये हैं। स्वय गाधीजी ने भी उनमेसे अनेक विचारोको आज छोड दिया होता, किन्तु सामूहिक व्यवहारमे नैतिक शक्तिके प्रयोगका विचार आज भी महत्त्व रखता हैं और भविष्यमे तो, आजकी अपेक्षा भी, इसका महत्त्व वढता ही जायगा।

एफ० सिरिल जेम्स

भविष्यके बीज

मोहनदास करमचन्द गांधी काठियावाड़में सन् १८६९ में पैदा हुए थे। इसके दो वर्ष पूर्व सुदूरस्थ हम्बर्गमें कार्लमार्क्सने अपने "डास कपिटल" का प्रथम भाग (उनके द्वारा लिखी गयी यही एकमात्र पुस्तक है) प्रकाशित कर दिया था। और एक वर्ष बाद सन् १८७० में ब्लादिमिर इलिच उल्यानोव, जो इतिहासमें लेनिनके नामसे सुप्रसिद्ध है कजानमें पैदा हुए थे। क्या एक-दूसरेसे हजारों मील दूर घटित इन तीन घटनाओंमें ही, चार वर्षोंकी सन्क्षिप्त कालावधिमें हमारे आजके उस विश्व-समाजके विचारात्मक बीज निहित नहीं है हममेंसे प्रत्येक व्यक्ति जिसका अभिन्न अङ्ग है ?

परिपक्व मस्तिष्कवाले किसी भी बुद्धिमान व्यक्तिने सन् १८६० के अन्तिम दिनोंमें इन तीनों घटनाओंकी लाक्षणिक महत्ताके बारेमें कुछ भी न सोचा होता चाहे उसे इनकी जानकारी भी रही होती। उसके चारों ओरकी दुनियामें आपातत सर्वत्र स्थिरताका ही वातावरण था। ब्रिटिश साम्राज्य तेजीसे एक विश्व शक्ति बनता जा रहा था। यूरोपमें फ्रांसीसी साम्राज्य आस्ट्रोहंगेरियन साम्राज्य और जर्मन-साम्राज्य दृढतासे प्रतिष्ठित नजर आ रहे थे और जर्मन-साम्राज्य शक्तिशाली होता जा रहा था। यही पाँचों ताकतें शेष सारी दुनियाके मामलोंमें प्रभुत्वशाली थी। यहाँतक कि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका भी जो मध्यवर्ती शताब्दीके वर्षोंमें इतनी तेजीसे विकास कर गया है, ३ करोड ९० लाख लोगोंका एक ऐसा देशमात्र था जो हालमें हुए अपने गृहयुद्धके घावोंको भरनेका प्रयत्न कर रहा था। इसका कोयलेका उत्पादन ब्रिटेनका एक तिहाई मात्र था और लोहेका उत्पादन करीब एक-चौथाई।

यूरोपका प्रभाव सारे संसारपर बेजोड़ था। उसकी प्रभुत्वकी भावनाको एक उदार दृष्टिकोणपर प्रतिष्ठित करनेका प्रयत्न किया गया था कहा यह जाता था

कि अन्य लोगोकी अपेक्षा यूरोपके लोग ही मानव-जातिकी प्रगतिको संघटित करनेमें अधिक समर्थ एवं योग्य हैं। एशिया, अफ्रीका और दक्षिण अमेरिकाके प्रति प्रेम और कठोर अनुशासनकी वही भावना प्रदर्शित की जाती थी, जो विक्टो-रिया-युगके किसी पितामे अपने वच्चोके प्रति पायी जाती है। यदि वे ठीकसे व्यवहार करते थे तो उन्हे प्यार और हर प्रकारकी संभव सहायता दी जाती थी; यदि आज्ञाका उल्लंघन करते थे तो उन्हे सजा मिलती थी। १८६८ मे ब्रिटिश सेनाने इसलिए अवीसीनियापर आक्रमण कर दिया था कि उसके सम्राट्ने एक ब्रिटिश वाणिज्यदूतको कैद कर लिया था, रूसने समरकंद और सारे उज-वकिस्तानको अपने साम्राज्यमे मिला लिया था।

बीसवी सदीके तृतीय चरणमें वर्तमान हम लोगोंके लिए उस समयकी सामान्य मन स्थितिका अंदाज लगा पाना वहुत कठिन है, किन्तु सभवत गाधीको अपनी यौवनावस्थामे इन सारी चीजोको समझनेका मौका मिला होगा और इसमे उन्हे कोई अजीव वात नही मालूम हुई होगी। उनके लिए शायद यह सोचना तर्क-संगत ही रहा होगा कि काठियावाडके राजदरवार वरावर इसी रूपमे चलते रहेंगे; पहले स्कूलमे और आगे चलकर लंदनके इनर टेम्पुलमे शिक्षा प्राप्त करनेमे सफल हो जानेपर उन्होने सोचा होगा कि यथावसर वे भी अपने पिता और पितामहके पदचिह्नोपर चलने लगेंगे।

जब हम पीछे मुडकर उन वीते दिनोकी ओर ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्यकी दृष्टिसे देखते है तो यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राविधिक क्रान्तिने (जो काफी पहले शुरू हो गयी थी और अभी भी जारी है) मानव-समाजके समग्र प्रतिरूपको वेरहमीसे वदल डाला और नये विचारोके लिए उर्वर भूमि तैयार कर दी। उस प्राविधिक क्रान्तिके उन दो पक्षोका यहाँ अवश्य उल्लेख होना चाहिए, जिन्होने गांधी-दर्शन-को प्रभावित किया है।

पहला पक्ष तो यह है कि यातायात और संचारके साधनोसे होनेवाले अवि-रल सुधारोके कारण दुनिया छोटी होती जा रही थी और उसके विभिन्न भागोमे वसे लोगोके पारस्परिक सम्पर्ककी सुविधाएँ एवं अवसर वढते जा रहे थे। गाधीके पैदा होनेके छ. सप्ताह वाद ही स्वेज नहर खुल गयी और उसने नाटकीय ढगसे यूरोप और भारतके वीचके यात्रापथको अत्यन्त छोटा वना दिया। उसी वर्ष जार्ज वाशिंगटनने न्यूमेटिक ब्रेकका आविष्कार कर डाला, जिसने समूचे रेलवे याता-यात-व्यवस्थामे क्रान्ति पैदा कर दी। कनाडियन पैसिफिक और ट्रांस साइवेरियन रेलवेज जैसे अन्तरमहाद्वीपीय रेलपथोकी यात्रा इस आविष्कारके फलस्वरूप

सुरक्षित, नियमित और तीव्रगतिसम्पन्न हो गयी।

दूसरा पक्ष यह है कि समग्र औद्योगिक प्रतिरूपमें अलक्षित रूपसे क्रांतिकारी परिवर्तन होने लगा। छोटे छोटे कारखानोंका स्थान बड़े-बड़े विशालकाय औद्योगिक प्रतिष्ठान लेने लगे। इस प्रतिरूपको निर्धारित करनेके लिए यहाँ दो उदाहरण दे देना ही पर्याप्त होगा। गांधीके जन्मसे कुछ महीनों पूर्व ही शिकागोमें पा० डी० आर्मरने मांसको पैकिंग करनेवाला अपना पहला बड़ा कारखाना खोला और एक वर्ष बाद ही जॉन डी० राकफेलरने स्टैण्डर्ड आयल कम्पनीकी स्थापना की।

जिस समय सन १८९३ के वसन्त कालमें गांधी एक बुद्धिमान युवक बैरिस्टरके रूपमें दक्षिण अफ्रीका पहुँचे होंगे और उन्हें जातीय भेदभावकी उस मानवीय समस्याका सामना करना पड़ा होगा, जिसने विवेकपूर्ण मानवीय सम्पर्ककी सभी सम्भावनाओंको मनुष्यकी त्वचाके रंगके विरुद्ध एक कुत्सित दुराग्रहके कारण नष्ट कर दिया था, इन दोनों प्राविधिक प्रवृत्तियोंने उनकी चिन्तनधारापर अवश्य ही प्रभाव डाला होगा। वे इस समस्यासे मुँह मोड़कर भारत वापस आ सकते थे, किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। उन्होंने लिखा है कि 'मैंने वहीं रहने और कष्ट भोगनेका निश्चय कर लिया।' मेरी अहिंसा उसी तारीखसे शुरू हो गयी।

डेविड हेनरी थोरोने सन १८५४ में 'वाल्डेन' में लिखा था कि 'मेरे पड़ोसी जिन बहुत-सी चीजोंको अच्छा कहते हैं, उन्हें मैं अपनी अन्तरात्मासे बुरा मानता हूँ।' इसके पाँच वर्ष पूर्व उन्होंने अपने 'रजिस्टेंस टू सिविल गवर्नमेण्ट' शीर्षक निबंधमें अहिंसा-सम्बन्धी अवधारणा प्रस्तुत की थी। गांधीजीने इस अवधारणाको ऐसे शक्तिशाली शस्त्रका रूप दे दिया जिसकी थोरोने कभी कल्पना भी न की थी। कोई भी व्यक्ति यह विश्वासपूर्वक नहीं कह सकता कि किसी महती उपलब्धिमें कितना अंश किसी चुनौतीके गाम्भीर्यका होता है और कितना अंश उस व्यक्तिके गुणका होता है जो उस चुनौतीको स्वीकार करता है। क्रान्तद्रष्टा आर कानकार्ड समूहके एमर्सन तथा अन्य सदस्य थोरोके मित्र थे और थोरोने जिस सरकारके सदस्योंका विरोध किया था, वे भी आखिरकार चरित्र, शिक्षा और राजनीतिक ज्ञानकी दृष्टिसे बहुत कुछ उसीके समान थे। गांधीको दक्षिण अफ्रीका में जिस सरकारका विरोध करना पड़ा था, वह एक विजेता जातिकी सरकार थी (यद्यपि दक्षिण अफ्रीका युद्धके दौरान शाही सरकारको घायलोंकी सेवाके रूप में गांधीजीने जो सहयोग प्रदान किया था, उससे यही पता चलता है कि उस समयतक उन्हें इस तथ्यकी पूरी जानकारी नहीं हुई थी) और उन्हें यूरोपीय श्रेष्ठता एवं प्रभुताकी एक पूरी परम्पराके विरुद्ध लड़ना था।

जिस संसारमे वे पैदा हुए थे, उसकी एक आधारभूत मान्यता ही उनकी अन्तरात्माको बुरी लगी और उन्होने इसका विरोध अपनी उस गभीर चारित्रिक शक्तिसे करनेका निश्चय किया, जिसे गलत ढंगसे "निष्क्रिय प्रतिरोध" की सज्ञा दे दी जाती है।

सन् १८९४ मे उन्होने जिस नेटाल इण्डियन काग्रेसकी स्थापना की थी, उसके और आगे आनेवाले पन्द्रह वर्षोमे उसके पडनेवाले प्रभावके बारेमे दूसरे जानकार लोग मेरी अपेक्षा अधिक प्रामाणिक ढगसे लिख सकते है। मुझे तो यही कहना है कि उनके जीवनमे निर्णायक मोड उसी समय आ गया, जब उन्होने पुरानी दुनियाको सुधारनेके लिए उसमे भाग लेनेकी अपेक्षा अपनी हार्दिक इच्छाके अनुरूप उसके पुनर्निर्माणका दृढ सङ्कल्प किया और इसके लिए वकालत छोडकर स्वेच्छया गरीबीका जीवन चुन लिया। उनकी यही प्रवृत्ति आगे वढकर उनके इस निर्णयमे विकसित हो जाती है कि उन्हें अछूतोकी श्रेणीमे गिना जाय।

उस समय उन्होने हिन्द स्वराजके नामसे जो पुस्तक लिखी थी, उसमे उन्होने उस दुनियाकी दोनो आधारभूत मान्यताओको ठुकरा दिया हैं, जिसमे वे पैदा हुए थे। भारतके लिए स्वशासनकी माँग कर उन्होने यूरोपीय श्रेष्ठता एवं प्रभुताकी पैत्रिक परंपराको ठुकरा दिया और चरखाका दर्शन प्रस्तुत कर पश्चिमी संसारकी आधुनिक यान्त्रिक सभ्यताकी सम्पूर्ण हृदयसे भर्त्सना की।

सन् १९१५ मे जव गांधी भारत वापस आये तो इस देशके दूसरे महापुरुष रवीन्द्रनाथने उन्हे महात्माकी उपाधि प्रदान की, किन्तु उस समयतक पश्चिमी दुनियाको उनकी किसी महत्ता अथवा मानव-समाजके प्रतिरूपपर पडनेवाले उनके किसी शक्तिशाली प्रभावका कोई परिचय नही प्राप्त हुआ था। सन् १९३० से लेकर १९३५ तक "दी एनसाइक्लोपीडिया आव द सोशल साइंसेज" के पन्द्रह भागोका प्रकाशन हुआ था। इसमे कार्लमार्क्स और लेनिनके संबंधमे वडे-वडे लेख दिये गये हैं। लेनिन-संवधी लेखमे हेरल्ड लास्कीने लेनिनको "आधुनिक इतिहासका सवसे वडा व्यावहारिक क्रान्तिकारी" कहा है। इस विश्वकोशमे महात्मा गाधीके संवंधमे कोई लेख नही है, क्योकि इसके संपादकोने इसके प्रकाशनके समय जीवित्त किसी महापुरुपका मूल्याङ्कन न करनेकी नीति अपनायी थी, किन्तु फिर भी एच० एन० ब्रेल्सफोर्डने "भारतीय समस्या" और "निष्क्रिय प्रतिरोध" पर विचार करते हुए गाधीजीके संवंधमे भी कुछ विस्तारसे लिखा हैं और यह निष्कर्ष निकाला है कि "केवल असावधान सिद्धान्तवादी ही इन तथ्योके आधारपर निष्क्रिय प्रतिरोधकी प्रभावकारिताके संवधमे विश्वासपूर्वक कोई निष्कर्ष निकालनेका साहस कर

सकता है।"

ग्रैमफोर्ड और लास्की तीन दशकों पूर्व लिख रहे थे। परवर्ती घटनाओंने उनके निर्णयोंको गलत साबित कर दिया है और एक बार दुनियाके सामने पुनः प्रमाणित कर दिया है कि 'भवननिर्माताने जिस पत्थरको एक किनारे फेंक दिया था, वही पूरी इमारतकी आधारशिला बन गया है।' जिस गोलीके निशानेने ३० जनवरी, १९४८ को गांधीजीके प्राण ले लिये थे उसकी प्रतिध्वनि संसारके हर कोनेके असंख्य स्त्री-पुरुषोंके मस्तिष्कमें हुई। उनकी अनेक स्मृतियाँ लोगोंके सामने सजीव हो उठीं, उनमें नयी आशाएं पैदा हो गयीं और कुछमें तो जीवनके एक नये उद्देश्यके प्रति एक नयी भावना जागरित हो गयी।

मेरे लिए खास तौरसे इस पुस्तकमें, जिसमें महात्मा गांधीको व्यक्तिगत रूपसे जाननेवाले और उनके साथ काम करनेवाले अनेक लेखकोंके लेख जा रहे हैं भारतीय स्वतन्त्रताके लिए किये गये उनके कार्यों अथवा उसके आगामी विकासमें उनके सम्भावित योगदानका मूल्यांकन करना दुःसाहस मात्र होगा। बाहरी दुनियाके हम लोगोंको निरन्तर उस व्यक्तिकी आध्यात्मिक शक्तिका अधिकाधिक अनुभव होता जा रहा था, जिसने स्वेच्छया उन वस्तुओंका त्याग कर रखा था जिन्हें अधिकांश लोग चाहते हैं। हम उस दुर्बल क्षीणकाय व्यक्तिकी आत्मशक्तिसे प्रभावित थे जो वाइसरायोंको भी प्रभावित कर सकता था और अपने अनशन द्वारा भारतके हिन्दू और मुसलमानोंको प्रभावितकर परस्पर लड़नेसे रोक लेता था।

लेनिनने भीषण रक्तपातके बाद जारोंका साम्राज्य नष्ट कर डाला और उसके स्थानपर सोवियत समाजवादी गणतन्त्रकी स्थापना की। तबसे डास कैपिटल करोड़ों लोगोंके लिए बाइबिल बन गयी है, यद्यपि अन्य धर्मोंकी पुस्तकोंके समान लोग उसे समझते बहुत कम हैं किन्तु उसका उद्धरण बराबर दिया करते हैं। इस क्रान्तिसे संसारमें शान्ति नहीं, तलवारका शासन हो आया है। गांधीजीने संसार द्वारा मान्य शस्त्रों और भौतिक शक्तिकी उपेक्षा कर जिस प्रभावकी सृष्टि की है, उसकी व्यापकता भारतीय महाद्वीपकी सीमाएँ लांघकर दूर-दूरतक फैल चुकी है। गांधीके प्रभाव और भारतको सत्ता हस्तान्तरित करनेमें प्राप्त अंग्रेजोंके अनुभवोंके आधारपर परवर्ती बीस वर्षोंमें अफ्रीका और एशियाके उन देशोंको शांतिपूर्ण तरीकेसे स्वतन्त्रता मिल सकी है जो सन् १९४७ में ब्रिटिश उपनिवेश थे।

गांधीजीका यही संदेश है कि बुरी चीजोंका अपनी आत्मा और मस्तिष्ककी पूरी शक्तिसे प्रतिरोध करो किन्तु कभी हिंसाका प्रयोग न करो सत्यकी पूजा करो और अपने बंधुजनोंको प्रेम करो। लोग ये उपदेश अत्यन्त प्राचीन कालसे सुनते

आ रहे हैं, किन्तु इनकी प्राय उपेक्षा कर दी गयी है। गाधीजीने सिद्ध कर दिया है कि इस वीसवी शताब्दीमे भी इन उपदेशो द्वारा संसारका रूप वदल दिया जा सकता है, जैसा कि आर्नोल्ड टायनवी ने अपने व्यापक इतिहास-ग्रन्थ "स्टडी आव हिस्ट्री" के दसवें भागमें लिखा है .

मुक्तिका स्फूर्तिदायक आनन्द" 'और उपलब्धिका आह्लाद ऐसी सांसारिक घटनाएँ है, जिनमे ईसामसीह और वुद्ध तथा उन तमाम वोधिसत्त्वोके महान् कार्यो तथा जोन वेसलीसे लेकर महात्मा गांधीतकके उन समस्त संतो एवं धर्मोपदेष्टाओकी साधनाओंका काव्य भरा हुआ है, जो इस ससार-मे आकर चले गये हैं और जिनका अनुसरण आगेवाले युगोमे उन्हीके समुदायमे रहनेवाले उन्ही तरहके साधुपुरुष वरावर करते जायँगे ।

कार्ल जैस्पर्स

गाधी अपनी जन्मशतीपर

गाधीने हिन्दुस्तानको आजाद किया सिपाहियो द्वारा नही, अपितु सत्यपर प्रतिष्ठित अहिसा द्वारा। उन्होने राजनीतिका निर्माण किया वे हिंसासे सम्बद्ध थे, किन्तु ऐसे ढगसे जो अभूतपूर्व है। गाधीने उस दुनियाके चहरपरसे धोखाधडीके तमाम मुखौटोको फाडकर फेंक दिया, जो सत्ता और प्रथापर प्रतिष्ठित होनेका दम भरती थी। उन्होंने हिंसाके प्रभुत्वका पर्दाफाश कर दिया—केवल सद्धान्तिक रूपमें नही (जो बहुत पहले ही चुका था), बल्कि व्यावहारिक रूपमे उसे स्वय अपने गिरफ्तम लेकर और प्रत्यक्षत उसके अधीन हर प्रकारका कष्ट भोगकर। गाधीकी निणायक शक्ति इस बातमे निहित थी कि व सत्तारूढ अधिकारियो द्वारा प्राप्त अपने सभी कार्योंका फल भुगतनेके लिए बराबर तत्पर रहते थे और उन्होने इसी प्रकारकी तत्परता भारतीय जन-समुदायमे भी पदा कर दी थी। भारतीय जनताकी ओरसे जिस क्रमबद्ध तरीकेसे उन्होने यह लडाई लडी, उसस सारी दुनिया उनके मन्त्रमुग्धकारी नेतृत्वसे चकित हो गयी।

उस आदमीने असभवको सभव कर दिखानेका बीडा उठाया था राज नीतिको अहिसा द्वारा चलानेका उसका सङ्कल्प था। उसे इसमें पर्याप्त सफलता मिली। किन्तु क्या असभव सभव बन गया है ?

गाधीने 'भौतिक हिंसाका त्याग कर दिया था। उन्होंने इस हिंसाको असख्य बार जेल जाकर, जीवनके लिए अनेक खतरे उठाकर और अन्तमें हत्याका सामना करके भोगा था। क्या व किसी भी हालतमें हिंसा नही पसद करते थे ? समस्या की सबसे कठिन ग्रन्थि यही दिखाई देती है। यह ठीक है कि व बडी स्पष्टता और ईमानदारीसे कह सकते है कि उनका लक्ष्य दूसराको अपनी धारणाके प्रति विश्वस्त बनाना है, वे उनका हृदय-परिवतन करना चाहते है और अपन शत्रुओ से भी समझौता करना चाहते है किन्तु वास्तविकता यह है कि वे व्यवहारमें

"नैतिक बाध्यता" को क्रियान्वित करते थे और यही चाहते भी थे। कष्ट भोगने-की उनकी निजी क्षमता ही, जिसकी असीम प्रभावकारिता भारतीय जनताकी अपरिसीम कष्टसहिष्णुतामे प्रतिफलित होने लगी थी, एक प्रकारकी ऐसी "हिंसा" वन गयी, जिसने अंग्रेजोको भारतसे मार भगाया।

यहाँ हमे तपस्वीकी तप शक्तिके संबंधमें प्रचलित प्राचीन भारतीय सिद्धान्तकी याद वरवस आ जाती है। आत्मपीडनकी अभूतपूर्व शक्तिसे तपस्वियोमें ऐसी आभिचारिक शक्ति उत्पन्न हो जाती थी कि वे सभी वस्तुओंपर प्रभुत्व प्राप्त कर लेते थे। यहाँतक कि देवता भी इन तपस्वियोकी तप.शक्तिसे आतंकित हो उठते थे। गाधीका आत्मानुशासन आन्तरिक हिंसासे मुक्त नही है। किन्तु अपनी आत्मा-के विरुद्ध प्रयुक्त यह हिंसा अपनी आत्माके पास पहुँचनेका मुक्त मार्ग नही है। इसीलिए जो स्वय अपनेपर हिंसाका प्रयोग करता है, वह इसके द्वारा दूसरोको अपना वशवर्ती वना लेता है। दूसरोको नैतिक दवावसे अपने वशवर्ती वना लेना गाधीकी प्रभावकारिताका एक प्रमुख तत्त्व है।

यद्यपि गाधीके अहिंसात्मक तरीकेमे हिंसाका वास्तविक निषेध नही है और उसका दिशा-परिवर्तन मात्र है, फिर भी उन्होने राजनीतिक सफलता विना किसी भौतिक हिंसाके ही प्राप्त की है। यह ठीक है कि इसमे भी छिटफुट तरीकेसे व्यक्ति-गत रूपमे कुछ भारतीय न्यूनतम हिंसात्मक कार्योमे संलग्न हो गये थे। क्या गाधीने किसी ऐसे राजनीतिक तरीकेका आविष्कार नही कर लिया है, जिसमे अधिकार सत्ताका वहुत कुछ स्वयं स्वायत्त कर लेता है? यहाँ हमे समस्याकी दूसरी निर्णायक ग्रन्थि मिलती है। उनकी उपलब्धियोको पूरी तरह समझनेके लिए हमे यह अच्छी तरह जान लेना आवश्यक है कि किस अर्थमे उनकी ये उपलब्धियाँ इतनी महान् और अनुपम तथा ऐतिहासिक महत्त्वकी मानी जाती है। इतिहास हमें सिखाता है कि मनुष्यने आज्ञानुकारिताकी शिक्षा मनुष्यके सर्वनाशकी कीमत-पर प्राप्त की है। समोसके एथेनियन, पैलेस्टाइनके रोमन, प्रोवेसका मध्यकालीन चर्च और आयरलैण्डका क्रामवेल उसके उदाहरण है। सत्ता उसी समय पूर्ण और ऐकान्तिक वनती है जव वह असीम और मानवीय भावनाओसे सर्वथा असम्पृक्त हो जाती है, फिर चाहे वह व्यक्तिकी अपने प्रति सर्वथा निष्पक्ष नीतिका परिणाम हो अथवा परमात्माके किसी साकार रूपके सदर्भमें हो। यह त्रास गर्वोन्मत्तको भी विनयी वना देता है, जो लोग केवल अपनी ही ऐकान्तिक स्वतन्त्रताकी शपथ लेते है, वे नष्ट हो जाते है।

अंग्रेज लोग इस वड़ी समस्याके प्रति पूर्णत. कृतसङ्कल्प थे. यदि किसी

शासनसत्ताको चुनौती दी जाय तो वह अपने शासनाधिकारोंको कहाँतक छोड़ने को तैयार होगी ? मौलिक ग्रासकी अपेक्षा सत्ताका त्याग कहीं वरेण्य है। गांधी सार्वजनिक रूपसे भाषण कर सकते थे। यहाँतक कि कारावासमें रहते हुए भी उन्हें कार्य करनेकी अनुमति प्राप्त थी। अंग्रेजोंकी उदारता और वैधानिक अभिवृत्तिने *गांधीके क्रिया-कलापोंको अवसर प्रदान किया। उनकी गतिविधिमें अंग्रेजो* की राजनीतिक धारणाका भी उतना ही योगदान था, जितना गांधीके अपने विचारोंका।

फिर भी यह अद्वितीय तथ्य तो रह ही जाता है कि एक ऐसे व्यक्तिने, जिसके विचारोंमें स्पष्टता थी और जो अपने जीवनके उदाहरणसे लोगोंको उन विचारो *के प्रति निष्ठावान बना सकता था, एक ऐसी वस्तुसे राजनीतिका निर्माण कर* डाला, जो हर तरहकी राजनीतिसे परे है।

गांधीने अपने कार्योंके सिद्धान्तका स्वयं विकास किया। उनकी राजनीति, राजनीतिसे बाह्य धार्मिक आधारपर प्रतिष्ठित थी। यह आधार उन्हें अपने आन्तरिक क्रिया-कलापमें मिला था *यह मनुष्यकी सत्याग्रहकी ओर अर्थात् व्यक्तिकी अपनी ही सत्ता, सत्यपर दृढ़तासे आरूढ़ होनेकी ओर अग्रसर करती है। गांधी* अपनेसे ही शुरू करते हैं। जो प्रतिरोध बाह्यरूपसे प्रतिफलित होता है, वह प्रेम निष्ठा और बलिदानकी सक्रिय शक्तिका ही परिणाम होता है। "सत्याग्रहीको सत्य, चारित्रिक दृढ़ता, एकनिष्ठता और बलिदानके सङ्कल्पसे अनुप्राणित होना चाहिए।' उसे अपने ऊपर आनेवाले सभी उत्पीड़नको सहर्ष स्वीकार करना चाहिए। वह कोई *निष्क्रिय व्यक्ति नहीं होता। वह "सत्यका योद्धा" होता है। सत्याग्रही* मानसिक और आध्यात्मिक अनुशासनका ठीक उसी तरह अभ्यास करता है, जिस तरह किसी साधारण योद्धाका शरीर शस्त्रोंका अभ्यास करता है। उसका जीवन आत्मशुद्धिका जीवन होता है।

गांधी भारतके सहस्रों वर्ष प्राचीन तपस्वियोंकी याद दिला देते हैं किन्तु वे *उन सभी तपस्वियोंसे इस अर्थमें भिन्न हैं कि उन्होंने कभी संसारका त्याग नहीं* किया किन्तु संसारकी गंभीर जिम्मेदारियोंको अपने ऊपर ओढ़ लिया। प्राचीन तपस्वियोंसे उनका दूसरा अन्तर भी पूर्वोक्त अन्तरसे ही सम्बद्ध है गांधी यावज्जीवन सत्यके अन्वेषक बने रहे वे निरन्तर आत्मशुद्धिकी साधना करते रहे और अपने दोषोंको हमेशा समझते रहे। उन्होंने कभी यह स्वीकार नहीं किया कि *लोग उन्हें सन्त मान लें। उन्होंने इस बातको सर्वाधिक महत्त्व दिया कि कहीं लोग* उनके व्यक्तित्वमें देवत्वका आरोप न करने लगें। वे अपनेको इस आरोपसे बचाने

के लिए बराबर सतर्क रहा करते थे। उन्होंने भारतीय दार्शनिकोकी इस प्रवृत्ति-का बराबर प्रतिरोध किया। जब जनता इस गलत ढंगसे उन्हे चित्रित करने लगती थी तो उन्हे अपना सब कुछ नष्ट होता दिखाई देने लगता था।

गांधीकी यही महत्ता है कि उन्होने आत्म-बलिदानसे यह सिद्ध कर दिया कि हमारे वर्तमान युगमें भी किसी "राजनीतिबाह्य" वस्तुको भी राजनीतिक उद्देश्यों-में नियोजित किया जा सकता है। वे राजनीतिको नैतिकता और धर्मसे पृथक् नही करते; इसके विपरीत वे इसकी प्रतिष्ठा दृढतापूर्वक नैतिकतामें ही करते हैं; आत्माकी पवित्रताकी बलि चढा देनेकी अपेक्षा मर मिटना और "संसारके नक्शेसे एक पूरे राष्ट्रका खत्म हो जाना" कही श्रेयस्कर है।

गाधी हमारे युगमें आत्मसाक्षात्कार करनेवाले मानवकी धार्मिक राजनीतिके अद्वितीय उदाहरण बन गये है। उन्हें दक्षिण अफ्रीकामें अपनी जातिके कारण अपमान सहना पडा। भारतीय मूलसे प्रेरणा प्राप्त कर उन्होने अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त की। स्वतन्त्र भारतके प्रति अपने अनुरागके कारण वे एक ऐसे भारतके निर्माणमें लगे, जिसे संसारमें सम्मानजनक स्थान प्राप्त हो। उनमे कष्ट-सहन और असीम बलिदानकी तत्परता बराबर बनी रही, जिससे उन्होने दूसरोमे अपने दोषोंको देखते हुए नित्य नये सङ्कल्पोकी ओर बढनेकी अजस्र प्रेरणा भर दी।

आज हमारे सामने यही समस्या है. हम भौतिक शक्ति और युद्धसे कैसे उबर सकते है, जिससे परमाणु बमो द्वारा हम सबका विनाश न हो सके? गाधीने अपने कार्यों और शब्दोसे इस प्रश्नका उत्तर दे दिया है. केवल उच्चतर राज-नीतिसे ही वह शक्ति प्राप्त होती है, जो राजनीतिक संकटोंसे हमारा उद्धार कर सकती है। यह एक अत्यन्त प्रेरणादायक तथ्य है कि हमारे वर्तमान युगमें यह उत्तर हमे एक एशियाई व्यक्तिसे प्राप्त हुआ है।

ई० स्टैनली जोन्स

मैं अहिंसक असहयोगका समर्थक कैसे बना ?

जब महात्मा गांधीके इस स्मारक-ग्रथके लिए एक लेख भेजनेका अनुरोध मुझे डॉक्टर एस० राधाकृष्णनसे प्राप्त हुआ तो ऐसे अनेक अनुरोधोंके प्रति मेरी जो सामान्य प्रतिक्रिया होती ह, उसके विपरीत म कुछ लिखनेके लिए उत्सुक हो उठा, क्योकि महात्मा गांधीका मुझपर बडा ऋण ह। अत यह लेख किसी एक बहुत बडे व्यक्ति सभवत अपने युगके सबसे बड व्यक्तिके प्रति कोई शाब्दिक श्रद्धाञ्जलि न होकर एक एसे व्यक्तिके प्रति आभार प्रदर्शन करनेवाली श्रद्धाञ्जलि होगी, जिसने मेर जीवनके गभीरतम उत्साको स्पर्श कर उसे समृद्ध बना दिया ह।

महात्मा गाधी हिन्दू थे, एक गभीर दीक्षाप्राप्त हिन्दू थे। सभवत वे अनेक ईसाइयोसे भी बढकर दीक्षित हिंदू थे और म ईसाई था या कम-से-कम एक एसा ईसाई था, जिसका अभी ईसाईके रूपमें निर्माण हो रहा था। एसी स्थितिमें व मेरे जीवनके गम्भीरतम उत्साका स्पर्श कर उसे कसे समृद्ध बना सकते थे ? लेकिन उन्होंने यही किया। उस समृद्धिकी कथा ही इस लेखमें साररूपमें प्रस्तुत की जायगी। मैं इस कथाको आत्मोल्लेखके बिना भी निजी कथाका रूप द सकता हूँ क्योंकि उन्होंने जो कुछ मेरे लिए किया ह, वही दुनियाके अन्य लाखा-करोड़ों व्यक्तियोंके लिए भी किया ह। अतएव मैं न कवल अपना ओरसे अपितु उन असख्य लोगोंकी ओरसे भी यह कथा प्रस्तुत कर रहा हूँ।

१९२० की बात ह। उस समय मैं सेण्ट स्टीफेन कॉलेजके प्रिंसिपल रुद्रके घरपर था। वहाँ म व्याख्यान देनेके लिए गया हुआ था। प्रिंसिपल रुद्रने एक दिन मुझसे कहा गाधीजी (अभी व महात्मा नहीं हुए थे) ऊपरकी मजिलमें ठहरे हैं। क्या आप उनसे मिलना चाहेंगे ? मैं मिलना चाहूगा ? यह कसा प्रश्न है ? मैं तो पूर्णत उत्सुक हो उठा था। सोच रहा था कि उस छोटेसे महान्

व्यक्तिका मेरे विचारो और आत्मापर कैसा प्रभाव पडेगा। मैं मानो अपनी नियतिसे मिलने जा रहा था। वे एक विस्तरपर वैठे हुए थे। चारों ओर उनके कागज-पत्र विखरे हुए थे। हार्दिक अभिवादनोके अनन्तर कुछ ही क्षणोमें मैंने मोफत द्वारा अनूदित न्यू टेस्टामेण्टके तेरहवें परिच्छेदके प्रथम कोरिन्थियनोंको पढ-कर सुनाया। यह प्रेम-संवंधी एक गद्यकाव्य था। उस दिन प्रात काल अपनी उपासनाके शान्त क्षणोमे इसे पढकर मैं अत्यधिक प्रभावित हुआ था। मैंने देखा कि उनकी आँखोंमे आँसू छलछला आये है। उन्होने अत्यन्त सरलतासे कहा : "कितना सुन्दर! कितना सुन्दर!" मुझपर उनकी उन्मुक्त सरलताका पहला प्रभाव पडा। उन्होने यह नही पूछा कि यह अंश किस पुस्तकसे सुनाया जा रहा है—यह न्यू टेस्टामेण्टका है या और किसी पुस्तकका और जव उन्हे यह मालूम हुआ कि मैं ईसाई हूँ तो उसके वाद उन्होने अपनी वार्ता समाप्त कर दी हो—ऐसी वात भी नही थी। उस काव्यमे जो कुछ भी था, उसीको उन्होने ग्रहण किया, फिर चाहे उसका जो भी स्रोत रहा हो।

उनके इसी व्यवहारने मुझमे कुछ नयी चीज पैदा कर दी थी। मैंने समझ लिया कि मुझे उनके सामने मुक्त हृदय और सरलभावसे वैठना चाहिए और वे मुझे जो कुछ भी देंगे, उसके प्रति ग्रहणशील होना चाहिए। वे मुझे क्या कुछ किस मात्रामें देंगे, इसकी मुझे कोई खास जानकारी न थी क्योंकि अभी मैं उनके अहिंसक असहयोगका समर्थक नही वना था। उन्हे इतना मुक्त हृदय, सरल और ग्रहणशील पाकर मैं भी उनके और उनकी संभावित आलोचनाके प्रति मुक्तभावसे उन्मुख हो उठा। अतएव मैंने उनसे कहा "आप भारतके प्रमुख हिन्दू है। आप मेरे प्रति एक ईसाईके रूपमे क्या कहेंगे? आप भारतमे ईसाई-धर्मको अधिक स्वाभाविक रूपमे विकसित करनेके लिए हम ईसाइयोको क्या निर्देश देंगे, जिससे ईसाई-धर्म भारतमे कोई ऐसी विदेशी वस्तुमात्र वनकर न रह जाय, जिसका केवल विदेशी सरकार और विदेशी सभ्यतासे ही तादात्म्य हो, अपितु वह भारतके राष्ट्रीय जीवनका अभिन्न अङ्ग वनकर उसके उत्थान एवं नैतिक-आध्यात्मिक परिवर्तनमें अपनी शक्तिका उपयोग कर सके?" इतना कहकर मैं अपनेको आन्तरिक रूपमे भारतीय ईसाई-आन्दोलनके प्रति उनकी सच्ची और हार्दिक, किन्तु संभवत. कटु समीक्षाओको सुननेके लिए सन्नद्ध करने लगा। उन्होंने अपने सुझावोंसे मुझे विल-कुल निरस्त कर दिया, यद्यपि उनकी आलोचनाएँ मेरी अपेक्षाओसे कही अधिक गंभीर एवं मौलिक थी। उनके सुझाव इस प्रकार थे .

सर्वप्रथम आप सव ईसाइयोको, सारे मिशनरियोको जेसस क्राइस्टकी तरह

जीवन-यापन करना शुरू कर देना चाहिए।

(उन्हें इस सबधमें और अधिक कुछ नहीं कहना था—पहले वाक्यमें ही वे हमारी मुख्यतम अपघातक पहुँच गये थे।)

> दूसरी बात यह है कि आपको अपने धर्मका पालन उसके विशुद्ध रूपमें करना चाहिए। उसमें किसी तरहकी मिलावट नहीं होनी चाहिए, न उसे किसी प्रकार हल्का बनाना चाहिए। तीसरी बात यह है कि आपको प्रेमपर जोर देना चाहिए और उसीको अपनी कार्यकारी शक्ति बनाना चाहिए, क्योंकि प्रेम ही ईसाई धर्मका केन्द्रीय तत्त्व है। चौथी बात यह है कि आपको ईसाई धर्मेतर अन्य धर्मोंका भी अधिक सहानुभूतिसे अध्ययन करना चाहिए जिससे आपको उनकी अच्छी बातोंका ज्ञान हो सके और आप जनताके प्रति अधिक सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण अपना सकें।

इन चारों सुझावोंमें उन्होंने हमारी अधिकतम आलोचना भी कर दी थी और उसके साथ ही हमें सर्वाधिक रचनात्मक दृष्टि भी प्रदान कर दी थी। उन्होंने संकेतसे यह बता दिया था कि 'हमारे आन्दोलनमें जगह-जगह क्या खामियाँ हैं और उनमें किस प्रकारकी दुर्बलता है?' फिर भी उन्होंने अपनी बात कितनी नम्रतासे कही थी। मैं कह नहीं सकता था कि उसमें कहाँ आलोचना की गयी थी और कहाँ प्रशंसा की गयी थी—उसमें दोनों बातें एक साथ थीं। मैंने जब भारत स्थित एक उच्च न्यायालयके अंग्रेज न्यायाधीशके सामने उनके ये चारों सुझाव रखे तो उसने कहा कि 'वे एक महान् प्रतिभाशाली व्यक्ति हैं। उन्होंने चार अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बातोंकी ओर अंगुलिनिर्देश कर दिया है।' यहाँ एक हिन्दू मुझे स्वयं मेरे अपने धर्मके प्रति ही निष्ठावान बना रहा था!

किन्तु यह हृदय-परिवर्तन और गंभीरतर स्तरपर पहुँच गया था—उन्होंने मुझे अपने अहिंसक असहयोगका समर्थक बना दिया। मेरे जामाता पादरी जे० के० मैथ्यूजने कोलंबिया विश्वविद्यालयसे महात्मा गांधी संबंधी अपने शोध प्रबंधपर डॉक्टरेटकी उपाधि प्राप्त की थी। उन्होंने असहयोग आन्दोलनके अपने मौलिक अनुसंधानके सबंधमें मुझे इन शब्दोंमें अपनी जानकारी प्रदान की

> गांधीजी दक्षिण अफ्रीकामें वकालत करते समय एक बार ट्रेनसे प्रथम श्रेणीके डिब्बेमें यात्रा कर रहे थे। उनके पास प्रथम श्रेणीका टिकट था। उसी समय एक गोरा उस डिब्बेमें दाखिल हुआ। उसे एक अश्वेत व्यक्तिके साथ सफर करनेमें आपत्ति थी। उसने गार्डको बुलाया और गांधीजी डिब्बेसे निकाल दिये गये। वे दूसरी गाड़ीकी प्रतीक्षा करते हुए स्टेशनके

> प्लेटफार्मपर टहलने लगे। उसी समय उनके दिमागमें अहिंसक असहयोगका विचार आया। सरलतम शब्दोंमें उनके असहयोगका यह रूप है "मै तुमसे घृणा नही करूँगा, किन्तु मै तुम्हारे किसी गलत कामका समर्थन भी न करूँगा। तुम जो चाहो, करो। मै तुम्हारी जुल्म करनेकी ताकतके मुकाबले अपनी जुल्म सहनेकी क्षमता पेश करूँगा—मै अपनी आत्मशक्तिसे तुम्हारी भौतिक शक्तिका सामना करूँगा। मै सद्भावनासे अन्ततः तुम्हे परास्त कर दूँगा।"

जिस समय गाधीजी उस प्लेटफार्मपर टहल रहे थे, दो बातें हुईं। प्रथमतः उनका निष्कासन इतिहासमें सबसे कीमती निष्कासन था। रेलके डिब्बेसे गाधीके निष्कासनका यह अर्थ निकला कि श्वेत व्यक्तिकी प्रभुता एशिया और अफ्रीकासे निकाल बाहर हुई क्योंकि इसी घटनासे दुनियाकी गुलाम जनतामें आधुनिक विद्रोहकी लहर पैदा हो गयी—भारतने आजादी हासिल की। उसके बाद क्रमश. बर्मा, लंका, हिन्देशिया और हिन्दचीन भी आजाद हो गये। इसके बाद स्वतंत्रताकी यह लहर अफ्रीकामे भी जा पहुँची और वहाँके ३६ राष्ट्र अबतक बाह्य प्रभुत्वसे मुक्त हो चुके है। मालिकोंने जो बोया था, वही उन्हे अन्तमें काटना भी पड़ा—उन्होंने ही निष्कासनके बीज बोये थे और उन्हें स्वयं अपने ही निष्कासनकी फसल काटनी पड़ी।

किन्तु इसके अतिरिक्त एक और दूसरी महत्त्वपूर्ण बात हुई—युद्धके मुकाबले उसके समतुल्य एक नयी नैतिक शक्तिका प्रादुर्भाव हो गया। पूर्व और पश्चिमके सभी राष्ट्र अपने झगडोंको युद्धसे निबटानेके अभ्यस्त थे। ऐसा अनुभव किया जाता था कि युद्ध एक बद्धमूल अनिवार्यता है—इसका कोई विकल्प हो ही नही सकता। चाहे लडो, चाहे मैदान छोडकर भाग जाओ, चाहे गुलाम बनकर रहो—मनुष्यके सामने ये ही तीन रास्ते थे। गाधीने भारत और संसारको बताया कि तुम्हे इन तीन बातोंमे किसीको भी माननेकी आवश्यकता नही है। तुम भौतिक शक्तिका मुकाबला अपनी आत्मिक शक्तिसे कर सकते हो और इस तरह सद्भावना और सत्सङ्कल्प द्वारा अन्तत. विरोधपक्षको पूर्णत निरस्त कर सकते हो। यह इतना सरल प्रतीत होता था कि कुछ लोग इसे व्यर्थ समझने लगे किन्तु ससारके सभी आविष्कार किसी जटिल वस्तुके सरल रूप ही होते है। मिथ्या प्रमेय सर्वदा जटिल ही होते है, क्योंकि उनके मिथ्यात्वको ढँकनेके लिए बहुतसे शब्दोका प्रयोग करना पडता है। तमाम जटिलताओंके सरलीकृत रूपोमे अहिंसक असहयोगका यह सरलीकृत रूप सरलतम और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है।

मने प्रथम महायुद्धका समयन धमग्रन्थोंके दो गद्यांशोंके आधारपर किया था "हेरोड और उसके सिपाहियोंने जरासको नि स्व और निरर्थक बना दिया।'—सैनिकवाद भी जससको व्यथ बना दता ह—उनका तरीका सनिकवादके विपरीत ह। किन्तु दूसर गद्यांशमें कहा गया ह जब उन्हान सिपाहियोंको देखा तो उन्होंने पालको मारना बद कर दिया।"—सनिकवाद निरीह और दुबलोंकी रक्षा करता है। इसी दूसर गद्यांशके आधारपर मन प्रथम महायुद्धका समयन किया था। इसके बाद युद्धकी अच्छाईके सबधमें मरी सारी भ्रान्तियाँ दूर होती गयी। मने यह दखा कि युद्ध सही लक्ष्योंको प्राप्त करनेका एक गलत तरीका ह। तुम गलत तरीकोंसे सही और न्यायोचित लक्ष्यातक नहीं पहुँच सकते, क्योंकि साधन साध्योंमें पहलेसे ही वतमान रहत ह और उस निर्धारित कर दत ह। यदि तुम गलत साधनोंका प्रयोग करोगे तो गलत साध्यातक ही पहुँचोगे। इसीलिए एक युद्ध दूसरे युद्धको जन्म दता ह।

इस तरह म युद्धके नतिक विकल्पका समयन करनेके लिए अन्ततः परिपक्व हो चुका था। फिर भी मुझे अहिंसक असहयोगके सबधमें कुछ सदेह था। जिस समय गांधीजी अपना आन्दोलन शुरू करनेवाले थे मन पत्र लिखकर उनसे इस कार्यसे विरत रहनेका आग्रह किया। मुझे आशका थी कि यह आन्दोलन हिंसा और अराजकतामें अधःपतित हो जायगा। मै ऐसा अनुभव करता था कि सांविधानिक आन्दोलन और दबावसे ही धीरे धीरे दशम स्वशासन स्थापित हो जायगा। उन्होंने मरे पत्रके उत्तरम यह पत्र लिखा

> म आपको यह विश्वास दिला देना चाहता हूँ कि म उचित कारण, समुचित सतकताओं और प्रचुर प्राथनाओंके बिना कभी भी कोई सविनय अवज्ञा आन्दोलन नहीं छेड सकता। सभवत आपको इस सरकारके उस गलत कामका कोई एहसास नहीं हो रहा ह, जिसे इसने हमारे अस्तित्वके ही महत्त्वपूण तत्त्वके विरुद्ध किया ह और करती जा रही ह किन्तु मुझे यहाँ किसी बहसमें नहीं पडना चाहिए। म आपको अपने साथ और अपने लिए प्राथना करनेका निमन्त्रण दे रहा हूँ।

यह पत्र स्वय गांधीका ही प्रतिरूप था—इसके हाशिये रेशमी थे किन्तु केन्द्र में लौह-दृढ़ता विद्यमान था। यह पूरा-का-पूरा पत्र अत्यन्त विनम्रतापूण था किन्तु इसमें एक ऐसी शक्ति भरी हुई थी, जिसे कोई झुका नहीं सकता था।

इस आन्दोलनकी भावनाका परिचय इस विवरणसे मिल जाता ह उन दिनों, जिस समय नेताओंको उठाकर जल भज दिया जा रहा था, श्रीप्रकाशजी,

जिन्हे स्वतन्त्र भारतमे तीन राज्योका राज्यपाल होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ, हमारे साथ एक चाय-पार्टीमे शामिल थे। उन्होने मुक्त हँसी हँसते हुए कहा '

> मुझे जितना संभव हो, अधिक-से-अधिक सैण्डविचे खा लेनी चाहिए, क्योकि मुझे शीघ्र ही हिज मैजेस्टीके कारागारोत्सवमे जाना है। हमे अपनी किस्मतके सितारोको धन्यवाद देना चाहिए कि हम अग्रेज जैसे लोगोके खिलाफ लड रहे है, जिनमे कुछ ऐसी चीजे होती है, जिनके प्रति हम अपील कर सकते है। हम अपने प्रभुओके रूपमे अंग्रेजोको अवश्य वाहर निकाल देगे, किन्तु वदरगाहसे उनकी नाव रवाना होनेके तत्काल वाद ही हम उन्हे मित्रोके रूपमे पुन वापस वुला लेगे।

यह एक नये ढगकी लड़ाई थी—जिसमे अपने विपक्षीमे जो भी अच्छाई होती है, उसे अपील किया जाता है। उसके वाद जव अपनी कष्टसहिष्णुताकी क्षमता और अपने सत्सकल्पसे उसे जीत लिया जाता है तो मालिकके रूपमे उसे देशसे वाहर भेजकर मित्रके रूपमे पुन वापस वुला लिया जाता है। यह अक्षरश विलकुल नये ढगका युद्ध है—यह अपने प्रयोक्ता और जिसके विरुद्ध इसका प्रयोग किया जाता है, दोनोका समान रूपसे उन्नयन करता है, वशर्ते कि विपक्षी भी इसके प्रति उन्मुख हो, उसकी भी कुछ अनुकूल प्रतिक्रिया होती हो। जव मै कहता हूँ कि "विपक्षीमे भी इसकी अनुकूल प्रतिक्रिया होनी चाहिए" तो इसका यही अर्थ होता है कि इस तरीकेका प्रभाव हृदयहीन, वृद्धिहीन, मूर्खोपर नही पड सकता। यह विपक्षीको सख्त भी वना सकता है किन्तु संभावना इसी वातकी अधिक है कि उसपर भी इसकी प्रतिक्रिया अनुकूल ही होगी, क्योकि समान वस्तु-से समान वस्तुका ही प्रादुर्भाव होता है। सामान्य शस्त्रोसे लडा जानेवाला युद्ध दोनोका ही अध पतन करता है, क्योकि इससे दोनो पक्षोमे घृणा पैदा हो जाती है, घृणा तो युद्धका मूल तत्त्व ही है किन्तु सत्याग्रहका तरीका तो प्रयोक्ताका उन्नयन कर ही देता है, चाहे दूसरे पक्षपर इसकी प्रतिक्रिया जैसी भी हो। सत्याग्रहके तरीकेका वास्तविक प्रतिदान सत्याग्रहीको अपने अन्दर मिल जाता है, सत्याग्रहका प्रयोक्ता इस साधनका उपयोग करनेके कारण श्रेष्ठतर व्यक्ति वन जाता है।

अहिंसक असहयोगका तरीका उसके प्रयोक्ताके लिए दिखावटमात्र ही नही है—वह एक शक्ति भी है। आन्दोलनके उन दिनोमे पसीनेसे लथपथ एक आयरिश सर्जेण्टने मुझसे कहा था कि "यदि वे आन्दोलनकारी युद्धके सामान्य शस्त्रोसे लडते होते तो हमने भी उन्हे कुछ दिखा दिया होता, किन्तु वे तो...." इतना

सहते-सहते वह लाचारीसे अपना हाथ झटकने लगा। जिस समय डंडोंकी मार झेलती हुई कोई जनता बहादुरीसे डटी होती है और अपना सिर फोड़नेवाले जालिमके खिलाफ उसमें उस समय भी किसी प्रकारकी घृणा नहीं होती तो यह एक ऐसा दृश्य होता है जिससे किसीका भी कलेजा मुँहतक आ जायगा और उसकी अन्तरात्मा विचलित हो उठेगी। अथवा जब कोई अंग्रेज किसी सत्याग्रहीको जेल भेजता हो और वह बदलेमें यह प्रार्थना करता हो कि 'परमपिता, उन्हें माफ कर देना, क्योंकि उन्हें मालूम नहीं है कि वे क्या कर रहे हैं' तो ऐसे उदाहरणसे कोई भी अन्दर ही अन्दर कटकर रह जायगा। एक हिन्दूने मुझसे कहा था "अब हम लोग ब्रासका अर्थ समझने लगे हैं—हम उसे स्वयं उठा रहे हैं।'

आन्दोलनके फलस्वरूप जेल हास्यास्पद हो गये। जब देशके दो लाख प्रमुख नर-नारी जेलोंमें चले गये तो वे सचमुच हास्यास्पद हो गये। यदि उन दिनों आप जेल न गये हों तो फिर आप आदमी ही नहीं हैं। इतना ही नहीं, जेल तो ऐसे शिक्षालय बन गये जहाँ नवभारतके नेताओंको प्रशिक्षण प्राप्त होता था। जेलोंसे बाहर आनेपर उन्होंने स्वतन्त्र भारतकी बागडोर सँभाल ली। मेरे मनमें यह प्रश्न उठता है कि क्या पूर्व या पश्चिममें कहीं भी किसी देशकी बागडोर नैतिक दृष्टिसे इतने पवित्र और महान आदर्शनिष्ठ त्यागी देशभक्तों द्वारा सँभाला गया है, जैसे कि स्वतन्त्र भारतकी उन नेताओं द्वारा जिन्होंने गांधीजीकी भावनाको आत्मसात कर रखा था। उन्होंने एक असंभव कार्य कर डाला—विभिन्न प्रकारके तत्त्वोंसे घटित देशको उन्होंने एक राष्ट्र बना डाला और फिर दुनियाके सबसे बड़े लोकतान्त्रिक राष्ट्रका शासन सँभाला। इतना ही नहीं, विभाजनके समय भी उन्होंने इसे दृढ़तापूर्वक सँभाले रखा। उस समय इन नेताओंपर जैसा दबाव पड़ा था, उसके भारसे दूसरा कोई भी दुर्बल नेतृत्व या दुर्बल राष्ट्र टुकड़े-टुकड़े हो जाता।

यहाँ साधन और साध्य एकाकार हो गये थे—उन्होंने नैतिक साधनोंका ही प्रयोग किया था और वे नैतिक साध्योंपर ही पहुँचे।

संसारमें करीब-करीब एक साथ ही दो प्रकारकी शक्तियाँ प्रकट हुईं—एक ओर ऐटमशक्ति और दूसरी ओर आत्मशक्ति। एक भौतिक शक्ति थी, दूसरी आध्यात्मिक। ऐटमशक्तिका प्रयोग उसके आविर्भाव-कालमें ही भौतिक साध्यों—विनाशकारी भौतिक साध्योंके लिए हुआ था। कितना विनाशकारी था इसका यह पहला प्रयोग! मैं जापानस्थित हिरोशिमाके उस स्थानपर नौ बार खड़ा हो चुका हूँ, जहाँ पहला एटामिक बम गिराया गया था, मैं जापानी नेताओंके साथ वहाँ

अवसन्न भावसे सिर झुकाये हुए प्रार्थना करते हुए खडा हो चुका हूँ। हम सव वार-वार यही प्रार्थना कर रहे थे कि हिरोशिमाकी पुनरावृत्ति अव कही न हो, अव किसीको भी इसका पुन. अनुभव न करना पडे। हम अपनी प्रार्थनामें अपनेको शान्तिके प्रति समर्पित कर रहे थे। अव हमने दीवालकी ओर अपनी पीठ कर दी है और भगवान् हमसे कह रहा है "अवतक तुम लोगोने पूर्व और पश्चिममे सर्वत्र अपने झगडोके निवटारेके लिए भौतिक शक्तिका प्रयोग किया है। अव मै तुम्हे असली भौतिक शक्तिका दर्शन कराऊँगा।" और उसने ऐटमके हृदयको खोल दिया। अव वह कह रहा है, "अव तुम अपना चुनाव कर लो। याद रखो कि अगर तुमने युद्धमे अणुशक्तिका प्रयोग किया तो दोनो पक्षोका विनाश हो जायगा—सम्पूर्ण विनाश।" इस समय हम एक महान् चुनाव, एक विश्व-चुनाव-की घडीसे गुजर रहे है। हम स्पष्ट देख रहे है कि यदि आणविक युद्ध छिडा तो दोनो पक्षोका नाश हो जायगा। कुछ लोग कहते है कि इस पूर्ण विनाशमे चौवीस घटे लगेगे और कुछका कहना है कि इसके लिए चार घंटे ही काफी होगे। भौतिक साधनोके तरीकेका यह दीवालियापन है। इस तरीकेका दीवाला निकल चुका है—यह पुराना पड गया है।

किन्तु फिर भी मानवता सशंक है—उसे शंका है कि युद्धका शायद कोई विकल्प नही हो सकता। हमे भौतिक शक्तिका प्रयोग करना ही होगा—और अव भौतिक शक्तिका अर्थ होता है पारमाणविक शक्ति—अन्यथा हम गुलाम हो जायँगे। किन्तु उभय संकटके इसी कठिन क्षणमे एक नयी संभावना लँगोटी लगाये हुए एक छोटेसे आदमीमे पैदा होती है, जिसे महात्मा गांधी कहते है। वे अपनी आत्मशक्ति, अहिंसक असहयोगकी शक्तिके साथ हमारे सामने आ जाते है। अत. यह स्पष्ट है कि हमें इन्ही दो शक्तियोमे चुनाव करना है. ऐटम और आत्मा—एकका अर्थ होता है सृष्टिका विनाश और दूसरेका अर्थ होता है सृष्टिका उद्धार।

इसपर मानवता आह भर कह उठती है "क्या तुम हम सव लोगोको महात्मा गाधी वना देना चाहते हो? हम लँगोटी पहनकर हाथमे छड़ी लिये हुए विश्व-विजयके लिए नही निकल सकते। हम यन्त्रो और धर्मनिरपेक्ष भौतिक परिवर्तनोके वैज्ञानिक युगमे रह रहे है।" मै यह जानता हूँ, किन्तु फिर भी यही एक संभावना—यही एक वास्तविक संभावना है। आत्माकी प्रेरणा प्राप्त करो और उसके द्वारा ऐटमको रचनात्मक उद्देश्योमे लगा दो, सामूहिक कल्याणके निर्माण और दैन्यके विध्वंसमे उसका नियोजन कर दो। भारतने महात्मा गाधी और उनके अहिंसक असहयोगके तरीकेको जन्म दिया। आज महात्मा गाधीकी

ज मगातीये अवसरपर भारत सारे ससारम पारमाणविक शक्तिको रचनात्मक दिशाआमें परिवर्तित करनका महान आदोल्न क्या नही चला सकता ?

एक बार मैंन महात्मा गाधीसे कहा था कि ाप पश्चिमकी ओर चलिय और युद्धस बचनेमें हमारी मदद कीजिय। यह सुनकर उनकी आखाम आँसू आ गये। उन्होने कहा 'अभी भारतम ही म अहिंसाकी शक्तिका प्रदशन नही कर सका हूँ। किन्तु उन्होने इसका प्रदशन कर दिया और भारतकी चालीस करोड जनताकी आजादी प्राप्त कर ली। आज पश्चिमकी अधिकाधिक जनता युद्धसे बचन का उपाय खोज रही ह। वह इसके लिए कोई भी कारगर उपाय स्वीकार करन को तयार ह। एक बार डॉक्टर मार्टिन लूथर किंगन वार्ताक समय मुझसे कहा था आपकी महात्मा गाधी एन इण्टरप्रेटेशन नामक पस्तकने ही मुझे पहली बार अहिंसक असहयोगका सकत दिया था। उस समय मने सोचा था कि यहाँ मुझे अमेरिकी हब्शियोकी आजादी प्राप्त करनेका एक कारगर तरीका मिल गया है। हम इस आदोलनको हिंसासे हटाकर अहिंसाके रास्तपर ले जायेंग।' मन कहा कि 'तब गाधीके सबधम लिखी गयी मेरी पुस्तक व्यथ नही गयी। मुझ पहले ऐसी ही आशका थी। उन्होने कहा नही, हमार लिए तो उसन उद्धार का एकमात्र माग दिखा दिया।

हम सब लोगोके उद्धारका एकमात्र यही माग ह। हम यह देख रह ह कि हमें किसी भी हालतमें युद्धका सहारा नही लेना ह और किसी अन्याय या गलत कामके सामने झुकना भी नही ह। ऐसी सूरतम अहिंसक असहयोग अर्थात भौतिक शक्तिके मुकाबले आत्मशक्तिका प्रयोग ही एकमात्र रास्ता रह जाता ह किन्तु इस तरीकेमे कभी हिंसा और कभी अहिंसाका घालमेल नही किया जा सकता। इस तरीकेको पूणत विशुद्ध रूपसे अहिंसक ही बनाये रखना होगा—यहाँतक कि हमारी भावना भी पूणत अहिंसक होनी चाहिए। जब हम यह बात पूरी कर लेंगे तो, जसा महात्मा गाधीके उदाहरणसे स्पष्ट ह, हम देखेंग कि इसकी शक्ति अजेय ह।

जब बर्मामें करन विद्रोहका आरभ होनेवाला था तो मन सभा करन नताओ को एकत्र कर उनसे पूछा था कि झगडा कसे तय होगा और विद्रोह किस तरह टाला जा सकता ह। उनके सुझावपर हमन शान्तिके लिए बारह शर्तोकी एक योजना तयार की। यह योजना रेडियोपर प्रसारित हुई और पत्रोम भी इसे शीर्ष-स्थान प्राप्त हुआ। आगा बघी और शान्ति करीब मालूम होन लगी। करेन स्वयसेवकोंके प्रधानन रगूनके बरखाम स्थित एक हजार स्वयसेवकोको

वाहर ले जानेका प्रस्ताव किया। उन्हें वाहर निकाल दिया गया। इसके वाद कुछ गरम मिजाजवालोने खाली किये गये वैंरकोमे आग लगा दी। हिंसा वीचमे आ गयी और विद्रोह शुरू हो गया। यह विद्रोह पन्द्रह वर्पोतक चलता रहा। मैंने वरावर विद्रोही नेताओसे सम्पर्क वनाये रखा और उनसे विद्रोह वापस लेनेका आग्रह करता रहा। मुझे अप्रत्यक्ष रूपसे यह मालूम हुआ कि करेन विद्रोही नेता जंगलोमे जलती हुई आगके चारो ओर वैठकर महात्मा गांधी संवंधी मेरी पुस्तक वढा करते थे और उनमे हिंसा और अहिंसाके गुण-दोपोपर विचार-विमर्श होता रहता था। इसका उद्देश्य यह तय करना था कि उनके लिए कौन-सा मार्ग अपनाना श्रेयस्कर होगा।

विद्रोही करेन नेताओ द्वारा जगलमे आगके चारो ओर वैठकर महात्मा गाधी-की अहिंसक क्रान्तिके अध्ययन किये जानेका दृश्य संक्षेपमे निखिल मानव-जातिका ही प्रतीक वन जाता है—फिर चाहे उसके इस अध्ययनकी अभिव्यक्ति राष्ट्रसंघके घोपणा-पत्रमे होती हो, या संसारकी संसदोमे, छोटे-छोटे जन-समूहो अथवा किसी व्यक्तिके अपने हृदयमे ही क्यो न होती हो। आजका मनुष्य सर्वत्र युद्धके किसी नैतिक विकल्पके वारेमे सोच रहा है। महात्मा गांधी द्वारा प्रतिपादित अहिंसक असहयोग ही वह विकल्प हो सकता है। यह आजकी एक ज्वलन्त समस्या है—आजकी दुनियाकी सर्वाधिक ज्वलन्त समस्या!

हुमायुन् कबिर

गाधीका क्रान्तिकारी महत्त्व

मोहनदास करमचद गाधी उस समय पैदा हुए थे जब पश्चिमने सम्पूर्ण ससार पर साम्राज्यवाद एक विशालकाय दानवकी तरह छाया हुआ था। पश्चिमी शक्तिया केवल राजनीतिक दृष्टिसे ही प्रभुत्वशालिनी नही थी आर्थिक सास्कृतिक और बौद्धिक क्षेत्रोमें भी उनकी श्रेष्ठता सवमान्य थी। भारत और उसके साथ ही समग्र एशिया और अफ्रीका राजनीतिक स्वतन्त्रता आर्थिक सवहनशीलता तथा आध्यात्मिक शक्तिके दारुण अभावसे ग्रस्त थे। भारतमें १८५७ के विद्रोहके बाद अन्तिम मुगल सम्राट तथा उनके सहयोगियो द्वारा अपने प्राचीन गौरवकी प्राप्तिके लिए किया गया आखिरी प्रयत्न भी पूर्णत विफल हो चुका था। तुर्कीको यूरोपके एक रुग्ण राष्ट्रके रूपमें देखा जाता था और उसके साम्राज्यका तजीसे विघटन होता जा रहा था। अफीम-युद्धम पराजित हो जानके बाद चीनपर नये बोझ लाद दिये गय थे। उदायमान अमेरिकी राष्ट्रके आक्रमणासे जापान बुरी तरह झकझोर दिया गया था जिससे उसमें एक प्रकारकी अस्पष्ट जागतिके लक्षण प्रकट होन लग थ। रूस एशियाके हृदयस्थ देशोमें अपनी सीमाएँ बढाता चला आ रहा था और पूव तथा दक्षिण दोनो दिशाओमें बढकर अपन लिए समुद्री माग प्राप्त कर लेना चाहता था। पश्चिमी जगतका साम्राज्यवाद चारो ओर सक्रिय था और लिखित इतिहास में पहली बार अनक एशियाई तथा अफ्रीकी लोगोने यह अनुभव करना शुरू कर दिया था कि पश्चिमका श्रेष्ठता तो विधिका एक निश्चित विधान ही ह।

गाधीकी मृत्युके पूव निराशाकी यह मनोवृत्ति समाप्त हो चुकी थी। इसक स्थानपर नयी आशा और सभावनाका उदय हो चुका था। लोगोमें अपूव औत्सुक्य और आत्मविश्वासकी भावना जग गयी थी जो कही-कही उग्र अधयके रूपमें प्रकट होने लगी थी। एशिया और अफ्रीकाके सभी राष्ट्रोमें नय जीवनकी हलचल शुरू हो गयी थी। वे विश्वमें अपना न्यायोचित स्थान प्राप्त करनके लिए

कृतसङ्कल्प हो चुके थे। इस परिवर्तनका बहुत कुछ श्रेय गाधीको ही मिलना चाहिए। उन्होने भारतीय जनतामें आत्मसम्मानकी भावना जगा दी और साधारणसे साधारण व्यक्तिको भी गौरवकी नयी अनुभूति होने लगी। भारतीय जागरणसे एशिया और अफ्रीकाके सुदूरस्थ देशोमे भी नयी स्फूर्तिका संचार होने लगा। गाधीजीको अपने समयमे जो पद-प्रतिष्ठा प्राप्त हुई थी, इतिहासमें शायद ही कभी किसी पराधीन देशके किसी व्यक्तिको ऐसा सम्मान मिला होगा। उनकी मृत्युके दस वर्षोके अन्दर ही साम्राज्यवाद सब स्थानोसे पीछे हटने लगा।

संसारके लिए गाधीका क्रान्तिकारी महत्त्व इस तथ्यमे निहित है कि उन्होने भारतीय जनताके धैर्य और कष्टसहिष्णुतामे समाहित शक्तियोको सफलतापूर्वक उन्मुक्त कर दिया। भारतीय जनताने बहुत दिनोतक ऐसे अन्याय और कष्टोंको सहा था, जिनके खिलाफ कोई भी सजीव राष्ट्र कभीका विद्रोह कर बैठा होता। उसके मित्रो और शत्रुओ दोनोने समान रूपसे उसकी निष्क्रियता और जडताको उसकी दुर्बलताका प्रधान कारण माना था। यहाँतक कि भारतीय नेता भी यही मानते थे कि भारतीय जनताका स्वभाव ही कुछ ऐसा है कि देशमे मुक्त और सक्रिय क्रान्तिकी कोई आशा ही नही की जा सकती। गाधी भी भारतीय जनताकी भाग्यवादिता और निष्क्रियतासे अपरिचित न थे, किन्तु उन्होने उसे अन्तर्निहित शक्तिके सचित भण्डारका रूप देकर उसके लिए नये प्रकारकी राजनीतिक गतिविधिका आविष्कार कर डाला। आक्रामक और सैनिक संघर्षके स्थानपर उन्होने एक ऐसे असहयोग-आन्दोलनका निर्माण किया, जिसमे भारतीय जनताकी कष्टसहिष्णुता और निष्क्रियताकी स्वाभाविक प्रवृत्ति शक्ति और स्फूर्तिका स्रोत बन गयी और भारतीय जनता जैसे-जैसे राजनीतिक काररवाईकी ओर अग्रसर होने लगी, उसके स्वभावमे निहित स्थितिशील शक्तियाँ गतिशील होने लगी। जनताने पुन. आत्मसम्मानकी भावना प्राप्त कर ली। यह स्वयंमे आध्यात्मिक मूल्योकी पुन प्रतिष्ठा थी।

पश्चिमी प्रभुताको चुनौती देनेवाले नये नेतृवर्गमे गाधीका प्रमुख स्थान था, किन्तु उन्होने पश्चिमके उन मूल्योको अस्वीकार नही किया, जिन्हे उसने मानवीय विरासतको प्रदान किये थे। यूरोपकी वैज्ञानिक क्रान्तिने मनुष्यके सामने असीम संभावनाओकी एक नयी दुनियाका उद्घाटन कर दिया था। भौतिक स्तरपर उसने प्रविधिके क्षेत्रमे अभूतपूर्व विकास किया था, जिससे भूख और बीमारीसे मुक्ति पानेका नया आश्वासन मिला था। राजनीतिक स्तरपर उसकी सबसे सुन्दर अभिव्यक्ति राष्ट्रोके समक्ष उदार लोकतन्त्रका आदर्श रखनेमे दिखाई देती है। बौद्धिक

स्तरपर उसने तर्कसगत विचार-पद्धतिको जन्म दिया और यह आशा बधायी कि मनुष्यकी सारी बुराइयां शिक्षाके प्रसारसे दूर की जा सकती हैं। यूरोप प्रसार गतिशील उन्नयन और निष्ठाकी भावनासे ओतप्रोत था और उसने जिस दिशामें भी नेतृत्व किया, शेष सारा संसार उसी दिशामें उसका अनुगमन करने लगा।

गांधीने मानवकी सभी बुराइयों और कष्टोंके समाधानमें विज्ञानके महत्वपूर्ण अवदानको मान्यता दी किन्तु उन्होंने उससे उद्भूत भौतिकवादका विरोध किया। उन्होंने यह अनुभव किया कि यूरोपने राजनीतिक स्वतन्त्रताके लिए तो सघर्ष किया, किन्तु उसने सबसे खराब किस्मकी आर्थिक दासताकी ओरसे आँखें मूँद ली और एक प्रकारसे उसका समर्थन ही किया। यन्त्र अपने सरल रूपमें मानव कल्याणके लिए आवश्यक हो सकते हैं, किन्तु यूरोप जिस रूपमें मशीनोंका उपयोग कर रहा है, उसने मनुष्योंको उनका दास बना लिया है। गांधीने देखा कि पश्चिमी विचारधाराकी परम्परागत प्रणालियाँ अब एक ऐसी सीमापर पहुँच गयी हैं जहाँ उनकी प्रगति अवरुद्ध हो गयी है। अतएव उन्होंने वर्तमान राजनीतिक एवं सामाजिक गतिरोधको दूर करनेके लिए सत्यके साथ किये गये अपने प्रयोगोंसे एक नया रास्ता खोज निकालनेका प्रयत्न किया।

यन्त्रोंके दुरुपयोगके फलस्वरूप धनका केन्द्रीकरण और एक हृदयहीन आत्मशून्य औद्योगिक सभ्यताका विकास होने लगा था। गांधीने इन दोनों बुराइयोंसे बचनेके लिए आत्मनिर्भर स्वायत्तशासी गाँवको समाजकी इकाई बनानेपर बल दिया। ऐसी छोटी इकाइयोंमें व्यक्तियोंके पारस्परिक मानवीय सबधकी उपेक्षा नहीं की जा सकती, जब सामाजिक इकाई इतनी बड़ी हो जाती है कि उसके अंतर्गत व्यक्ति एक दूसरेको व्यक्तिरूपमें पहचान ही नहीं पाते तब मानवीय संपर्कोंके स्थानपर निर्वैयक्तिक सबधोंकी स्थापना होने लगती है। मानवीय संबंधपर बल देनेसे यदि एक ओर अवैध स्वच्छन्दता या अराजकतासे सतरग बचा जा सकता है तो दूसरी ओर इससे व्यक्तिगत स्वतन्त्रताके विकासके लिए अनुकूल वातावरणका भी निर्माण होता है। इस तरहसे छोटे प्रामाण समन्वय राजसत्ताकी तानाशाही और राजसत्ताविहीन अराजकताके खतरोंको दूर करता है।

गांधीजी व्यक्तिकी आर्थिक स्वतन्त्रताके महत्त्वके प्रति पूर्णत जागरूक थे। आर्थिक स्वतन्त्रताके अभावमें राजनीतिक स्वतन्त्रता एक मखौल बन जाती है और लोकतन्त्र एक स्वांग बनकर रह जाता है। धनका अनुचित केन्द्रीकरण मनुष्यकी आर्थिक स्वाधीनताका अपहरण कर लेता है और धन एवं सम्पत्तिका केन्द्रीकरण अनिवार्यत उसी स्थितिमें पैदा होता है, जिसमें बड़े पैमानेपर मालका उत्पादन

निजी स्वामित्वमे चले जाते है। यहाँतक गाधीका विश्लेपण वहुत कुछ समाज-वादियो द्वारा प्रस्तुत विश्लेषणके ही अनुरूप है। किन्तु उनका समाधान समाज-वादियोसे नितान्त भिन्न है। समाजवादी समाधान यह है कि वडे पैमानेकी औद्योगिक इकाइयाँ यथावत् कायम रहे, किन्तु व्यक्तिगत सम्पत्ति समाप्त कर दी जाय। गांधीका समाधान यह था कि उद्योगोंका विकेन्द्रीकरण कर दिया जाय, जिससे व्यक्तियोके हाथोमे अनुचित रूपसे धनका संचय स्वत नही हो पायेगा।

समाजवादी और गाधीवादी समाधानोका अन्तर समझ पाना कोई कठिन नही है। यह अन्तर व्यक्तिके प्रति उनके विभिन्न दृष्टिकोणका परिणाम है। समाजवादी के लिए व्यक्ति गौण है। समाजवादी आवश्यक होने पर हिंसा द्वारा भी राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक समानता लादनेको तैयार हो जाते है। इसके विपरीत गाधी व्यक्तिको सर्वोच्च महत्त्व प्रदान करते थे अतएव यथासंभव उसकी स्वतंत्रता-पर किसी भी प्रकारका प्रतिवध नही लगाया जाना चाहिए। समानता, जो आर्थिक स्वतन्त्रताका मूलाधार है, शान्तिपूर्ण एवं अहिंसक तरीकोंसे ही प्राप्त की जानी चाहिए। समाजवादियोकी मान्यता है कि राजनीतिक स्वतन्त्रता खूनी क्रान्तिसे भी प्राप्त की जा सकती है और कई वार यह इसी तरह प्राप्त की भी गयी है। गाधीकी रायमे ऐसे किसी तरीकेसे प्राप्त आजादी केवल देखनेमे और आकारमे ही आजादी होगी, उसमे किसी प्रकारका सारतत्त्व नही होगा। किसी भी हिंसक क्रान्तिकी उपलब्धियाँ सदा ही उससे भी वडी किसी दूसरी प्रतिक्रान्तिसे नष्ट हो जाती है। इसके अतिरिक्त जिन्होने तलवारका सहारा लिया है, वे प्राय. तलवार-से ही नष्ट भी हो गये है। इस खतरेके प्रति जागरूक होनेके कारण ही गांधी इस वातपर जोर देते थे कि आर्थिक और राजनीतिक स्वतन्त्रता विना हिंसाका सहारा लिये ही प्राप्त की जानी चाहिए। उनके अनुसार सभी प्रकारकी हिंसाका मूल घृणा होती है, अतएव मानवीय संघर्षोंके निवटारेका एकमात्र रास्ता घृणापर विजय प्राप्त करना ही हो सकता है।

हिंसाके प्रति गाधीका जो दृष्टिकोण था, वह उनके संदेशको आधुनिक युगमे विशेष महत्त्व प्रदान कर देता है। उन्होंने अपने दर्शनका विकास आधुनिक विचार-धाराओंकी उपेक्षा करके नही किया था। इसके विपरीत उनका दर्शन इन विचार-धाराओंके विभिन्न तत्त्वोके आधारपर एक नये सामञ्जस्यके रूपमे सामने आया था। इसीलिए हम उनके दर्शनके प्रति सम्मान प्रकट करने तथा उसकी ओर ध्यान देनेके लिए विवश हो जाते है। वे उदार परम्पराके उत्तराधिकारी थे और व्यक्तिगत स्वतन्त्रताको जीवनके सर्वश्रेष्ठ मूल्योंमें स्थान देते थे। दार्शनिक अराजकता-

स्तरपर उसने तर्कसगत विचार-पद्धतिको ज म दिया और यह आशा बँधायी कि मनुष्यकी सारी बुराइयाँ शिक्षाके प्रसारसे दूर की जा सकती ह । यूरोप प्रसार, गतिशील उन्नयन और निष्ठाकी भावनासे ओतप्रोत था और उसने जिस दिशाम भी नेतत्व किया, शेष सारा ससार उसी दिशाम उसका अनुगमन करने लगा ।

गाधीने मानवकी सभी बुराइया और कष्टोंके समाधानमें विज्ञानके महत्वपूण अवदानको मा यता दी, किन्तु उन्होने उससे उद्भूत भौतिकवादका विरोध किया । उ होने यह अनुभव किया कि यूरोपने राजनीतिक स्वत त्रताके लिए तो सघष किया किन्तु उसने सबसे खराब किस्मकी आर्थिक दासताकी ओरसे आँखें मूँद ली और एक प्रकारसे उसका समयन ही किया । य त्र अपने सरल रूपोमें मानव कल्याणके लिए आवश्यक हो सकते ह, किन्तु यूरोप जिस रूपम मशीनोका उपयोग कर रहा ह, उसने मनुष्योंको उनका दास बना दिया ह । गाधीने देखा कि पश्चिमी विचारधाराकी परम्परागत प्रणालियाँ अब एक ऐसी सीमापर पहुँच गयी ह, जहाँ उनकी प्रगति अवरुद्ध हो गयी ह । अतएव उन्होने वतमान राजनीतिक एव सामा जिक गतिरोधको दूर करनेके लिए सत्यके साथ किये गये अपने प्रयोगासे एक नया रास्ता खोज निकालनेका प्रयत्न किया ।

य त्राके दुरुपयोगके फलस्वरूप धनका के द्रीकरण और एक हृदयहीन आत्म शून्य औद्योगिक सभ्यताका विकास होने लगा था । गाधीने इन दोना बुराइयामे बचनेके लिए आत्मनिभर स्वायत्तशासी गाँवको समाजकी इकाई बनानेपर बल दिया । ऐसी छोटी इकाइयोंमें व्यक्तियोंके पारस्परिक मानवीय सबधकी उपेक्षा नही की जा सकती, जब सामाजिक इकाई इतनी बडी हो जाती ह कि उसके अ तगत व्यक्ति एक दूसरेको व्यक्तिरूपमें पहचान ही नही पाते तब मानवीय संपर्कों के स्थानपर निर्वैयक्तिक सबधाकी स्थापना होने लगती है । मानवीय सबधपर बल देनेसे यदि एक ओर अबध स्वच्छन्दता या अराजकताके खतरेसे बचा जा सकता ह तो दूसरी ओर इससे व्यक्तिगत स्वत त्रताके विकासके लिए अनुकूल वातावरणका भी निर्माण होता ह । इस तरहसे छोटा ग्रामीण समुदाय राजसत्ताकी तानाशाही और राजसत्ताविहीन अराजकताके खतरेको दूर करता ह ।

गाधीजी व्यक्तिकी आर्थिक स्वतत्रताके महत्वके प्रति पूणत जागरूक थे । आर्थिक स्वत त्रताके अभावमें राजनीतिक स्वतत्रता एक मखौल बन जाता ह और लोकतन्त्र एक स्वाग बनकर रह जाता ह । धनका अनुचित के द्रीकरण मनुष्यकी आर्थिक स्वाधीनताका अपहरण कर लेता ह और धन एव सम्पत्तिका के द्रीकरण अनिवायत उसी स्थितिमें पैदा होता ह जिसमें बड पमानेपर होनेवाले उत्पादन

निजी स्वामित्वमे चले जाते है। यहाँतक गाधीका विश्लेपण बहुत कुछ समाजवादियो द्वारा प्रस्तुत विश्लेषणके ही अनुरूप है। किन्तु उनका समाधान समाजवादियोसे नितान्त भिन्न है। समाजवादी समाधान यह है कि बडे पैमानेकी औद्योगिक इकाइयाँ यथावत् कायम रहे, किन्तु व्यक्तिगत सम्पत्ति समाप्त कर दी जाय। गाधीका समाधान यह था कि उद्योगोका विकेन्द्रीकरण कर दिया जाय, जिससे व्यक्तियोंके हाथोमे अनुचित रूपसे धनका संचय स्वतः नही हो पायेगा।

समाजवादी और गाधीवादी समाधानोका अन्तर समझ पाना कोई कठिन नही है। यह अन्तर व्यक्तिके प्रति उनके विभिन्न दृष्टिकोणका परिणाम है। समाजवादी के लिए व्यक्ति गौण है। समाजवादी आवश्यक होने पर हिंसा द्वारा भी राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक समानता लादनेको तैयार हो जाते है। इसके विपरीत गाधी व्यक्तिको सर्वोच्च महत्त्व प्रदान करते थे अतएव यथासंभव उसकी स्वतंत्रतापर किसी भी प्रकारका प्रतिबंध नही लगाया जाना चाहिए। समानता, जो आर्थिक स्वतन्त्रताका मूलाधार है, शान्तिपूर्ण एवं अहिंसक तरीकोसे ही प्राप्त की जानी चाहिए। समाजवादियोकी मान्यता है कि राजनीतिक स्वतन्त्रता खूनी क्रान्तिसे भी प्राप्त की जा सकती है और कई बार यह इसी तरह प्राप्त की भी गयी है। गाधीकी रायमें ऐसे किसी तरीकेसे प्राप्त आजादी केवल देखनेमे और आकारमे ही आजादी होगी, उसमे किसी प्रकारका सारतत्त्व नही होगा। किसी भी हिंसक क्रान्तिकी उपलब्धियाँ सदा ही उससे भी बडी किसी दूसरी प्रतिक्रान्तिसे नष्ट हो जाती है। इसके अतिरिक्त जिन्होने तलवारका सहारा लिया है, वे प्राय. तलवारसे ही नष्ट भी हो गये है। इस खतरेके प्रति जागरूक होनेके कारण ही गाधी इस बातपर जोर देते थे कि आर्थिक और राजनीतिक स्वतन्त्रता बिना हिंसाका सहारा लिये ही प्राप्त की जानी चाहिए। उनके अनुसार सभी प्रकारकी हिंसाका मूल घृणा होती है, अतएव मानवीय संघर्षोंके निबटारेका एकमात्र रास्ता घृणापर विजय प्राप्त करना ही हो सकता है।

हिंसाके प्रति गाधीका जो दृष्टिकोण था, वह उनके संदेशको आधुनिक युगमे विशेष महत्त्व प्रदान कर देता है। उन्होने अपने दर्शनका विकास आधुनिक विचारधाराओकी उपेक्षा करके नही किया था। इसके विपरीत उनका दर्शन इन विचारधाराओके विभिन्न तत्त्वोके आधारपर एक नये सामञ्जस्यके रूपमे सामने आया था। इसीलिए हम उनके दर्शनके प्रति सम्मान प्रकट करने तथा उसकी ओर ध्यान देनेके लिए विवश हो जाते है। वे उदार परम्पराके उत्तराधिकारी थे और व्यक्तिगत स्वतन्त्रताको जीवनके सर्वश्रेष्ठ मूल्योमे स्थान देते थे। दार्शनिक अराजकता-

स्तरपर उसने तर्कसगत विचार-पद्धतिको जन्म दिया और यह आशा बधायी कि मनुष्यकी सारी बुराइयाँ शिक्षाके प्रसारसे दूर की जा सकती है। यूरोप प्रसार गतिशील उन्नयन और निष्ठाकी भावनासे ओतप्रोत था और उसने जिस दिशामें भी नेतृत्व किया, शेष सारा ससार उसी दिशामें उसका अनुगमन करने लगा।

गाधीने मानवकी सभी बुराइयो और कष्टोंके समाधानमें विज्ञानके महत्त्वपूर्ण अवदानको मान्यता दी, किन्तु उन्होने उससे उद्भूत भौतिकवादका विरोध किया। उन्होने यह अनुभव किया कि यूरोपने राजनीतिक स्वतन्त्रताके लिए तो सघर्ष किया, किन्तु उसने सबसे खराब किस्मकी आर्थिक दासताकी ओरसे आँखें मूँद ली और एक प्रकारसे उसका समर्थन ही किया। यन्त्र अपने सरल रूपमें मानव कल्याणके लिए आवश्यक हो सकते है, किन्तु यूरोप जिस रूपमे मशीनोका उपयोग कर रहा है उसने मनुष्योंको उनका दास बना दिया है। गाधीने देखा कि पश्चिमी विचारधाराकी परम्परागत प्रणालियाँ अब एक ऐसी सीमापर पहुँच गयी है, जहाँ उनकी प्रगति अवरुद्ध हो गयी है। अतएव उन्होने वर्तमान राजनीतिक एव सामाजिक गतिरोधको दूर करनेके लिए सत्यके साथ किये गये अपने प्रयोगोसे एक नया रास्ता खोज निकालनेका प्रयत्न किया।

यन्त्रोके दुरुपयोगके फलस्वरूप धनका केन्द्रीकरण और एक हृदयहीन आत्मशून्य औद्योगिक सभ्यताका विकास होने लगा था। गाधीने इन दोनो बुराइयोसे बचनेके लिए आत्मनिर्भर स्वायत्तशासी गाँवको समाजकी इकाई बनानेपर बल दिया। ऐसी छोटी इकाइयोमें व्यक्तियोंके पारस्परिक मानवीय सबधकी उपेक्षा नही की जा सकती, जब सामाजिक इकाई इतनी बडी हो जाती है कि उसके अन्तर्गत व्यक्ति एक दूसरेको व्यक्तिरूपमें पहचान ही नही पाते, तब मानवीय संपर्कों के स्थानपर निर्वैयक्तिक सबधोकी स्थापना होने लगती है। मानवीय सबधपर बल देनेसे यदि एक ओर अवैध स्वच्छन्दता या अराजकताके खतरेसे बचा जा सकता है तो दूसरी ओर इससे व्यक्तिगत स्वतन्त्रताके विकासके लिए अनुकूल वातावरणका भी निर्माण होता है। इस तरहसे छोटा ग्रामीण समुदाय राजसत्ताकी तानाशाही और राजसत्ताविहीन अराजकताके खतरोका दूर करता है।

गाधीजी व्यक्तिकी आर्थिक स्वतन्त्रताके महत्त्वके प्रति पूर्णत जागरूक थे। आर्थिक स्वतन्त्रताके अभावमें राजनीतिक स्वतन्त्रता एक मखौल बन जाता है और लोकतन्त्र एक स्वाग बनकर रह जाता है। धनका अनुचित केन्द्रीकरण मनुष्यकी आर्थिक स्वाधीनताका अपहरण कर लेता है और धन एव सम्पत्तिका केन्द्रीकरण अनिवार्यत उसी स्थितिमें पैदा होता है जिसमें बडे पैमानेपर हानेवाले उत्पादन

निजी स्वामित्वमे चले जाते है। यहाँतक गांधीका विश्लेषण बहुत कुछ समाजवादियो द्वारा प्रस्तुत विश्लेषणके ही अनुरूप है। किन्तु उनका समाधान समाजवादियोसे नितान्त भिन्न है। समाजवादी समाधान यह है कि बडे पैमानेकी औद्योगिक इकाइयाँ यथावत् कायम रहे, किन्तु व्यक्तिगत सम्पत्ति समाप्त कर दी जाय। गांधीका समाधान यह था कि उद्योगोका विकेन्द्रीकरण कर दिया जाय, जिससे व्यक्तियोके हाथोमे अनुचित रूपमे धनका संचय स्वत नही हो पायेगा।

समाजवादी और गांधीवादी समाधानोका अन्तर समझ पाना कोई कठिन नहीं है। यह अन्तर व्यक्तिके प्रति उनके विभिन्न दृष्टिकोणका परिणाम है। समाजवादी के लिए व्यक्ति गौण है। समाजवादी आवश्यक होने पर हिंसा द्वारा भी राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक समानता लादनेको तैयार हो जाते है। इसके विपरीत गांधी व्यक्तिको सर्वोच्च महत्त्व प्रदान करते थे अतएव यथासंभव उसकी स्वतंत्रता-पर किसी भी प्रकारका प्रतिबंध नही लगाया जाना चाहिए। समानता, जो आर्थिक स्वतन्त्रताका मूलाधार है, शान्तिपूर्ण एवं अहिंसक तरीकोसे ही प्राप्त की जानी चाहिए। समाजवादियोकी मान्यता है कि राजनीतिक स्वतन्त्रता खूनी क्रान्तिसे भी प्राप्त की जा सकती है और कई बार यह इसी तरह प्राप्त की भी गयी है। गांधीकी रायमें ऐसे किसी तरीकेसे प्राप्त आजादी केवल देखनेमें और आकारमें ही आजादी होगी, उसमे किसी प्रकारका सारतत्त्व नही होगा। किसी भी हिंसक क्रान्तिकी उपलब्धियाँ सदा ही उससे भी बडी किसी दूसरी प्रतिक्रान्तिसे नष्ट हो जाती है। इसके अतिरिक्त जिन्होने तलवारका सहारा लिया है, वे प्रायः तलवार-से ही नष्ट भी हो गये है। इस खतरेके प्रति जागरूक होनेके कारण ही गांधी इस बातपर जोर देते थे कि आर्थिक और राजनीतिक स्वतन्त्रता बिना हिंसाका सहारा लिये ही प्राप्त की जानी चाहिए। उनके अनुसार सभी प्रकारकी हिंसाका मूल घृणा होती है, अतएव मानवीय संघर्षोंके निबटारेका एकमात्र रास्ता घृणापर विजय प्राप्त करना ही हो सकता है।

हिंसाके प्रति गांधीका जो दृष्टिकोण था, वह उनके संदेशको आधुनिक [illegible] विशेष महत्त्व प्रदान कर देता है। उन्होंने अपने दर्शनका विकास आधुनिक विचार-धाराओंकी उपेक्षा करके नही किया था। इसके विपरीत उनका दर्शन सब विचार-धाराओंके विभिन्न तत्त्वोंके आधारपर एक नये सामञ्जस्यके रूपमें सामने आया था। इसीलिए हम उनके दर्शनके प्रति सम्मान प्रकट करने तथा उसपर ध्यान देनेके लिए विवश हो जाते है। वे उदार परम्पराके उत्तराधिकारी थे, जो व्यक्तिगत स्वतन्त्रताको जीवनके सर्वश्रेष्ठ मूल्योंमें स्थान देते थे। [illegible]

वादीके अनुरूप उनका विश्वास था कि राजसत्ताको व्यक्तिके मामलेमें कम-से कम हस्तक्षेप करना चाहिए। वे, समाजवादी विचारधारामें निहित सामूहिकी करणकी परम्पराके भी विश्वासी थे। उन्होंने इन सारी शिक्षाओंको आत्मसात कर लिया था, किन्तु उन्होंने जो कुछ भी सीखा, उसे एक नयी दिशा दे दी। वे व्यक्तिगत स्वतन्त्रतामें विश्वास तो करते थे, किन्तु इसके साथ ही यह भी अनुभव करते थे कि कर्तव्योंके पालनसे ही अधिकार प्राप्त हो सकते हैं। वे विकेन्द्रीकरणके समर्थक थे, किन्तु राजसत्ताकी समाप्तिके पक्षमें नहीं थे। वे इस बातका जोरदार समर्थन करते थे कि जीवनकी सभी अच्छी चीजोंका उपयोग सामूहिक रूपसे बाँट कर होना चाहिए, किन्तु इस लक्ष्यकी पूर्तिके लिए वे किसी भी हालतमें हिंसाके प्रयोगका समर्थन नहीं कर सकते थे।

अत्यन्त प्राचीन कालसे ही धर्मोपदेशकोंने यह शिक्षा दी है कि मनुष्य घृणासे जीवित नहीं रह सकता, किन्तु अहिंसाका आचरण मुख्यतः व्यक्तितक ही सीमित रहा है। गांधीने पहली बार समूहों द्वारा अहिंसक कारवाईकी प्रभावकारिता प्रमाणित की। वे सफल राजनीतिज्ञ थे। एक स्वप्नद्रष्टा आदर्शवादीके रूपमें उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। इसीलिए राजनीतिक कारवाईके साधनके रूपमें जब उन्होंने अहिंसाका समर्थन किया तो सारे संसारमें उसके प्रति रुचि पैदा हो गयी और विभिन्न प्रकारके जनसमूह अपनी समस्याओंके समाधानमें इसका प्रयोग करनेके लिए प्रेरित हो उठे।

प्रविधिने आज देश और कालकी बाधाएँ दूर कर संसारको एक कर दिया है। प्राचीन कालमें कोई भी विचारधारा उसी गतिसे फल सकती थी, जिस गतिसे उसे फलानेवाला व्यक्ति कहीं आ-जा सकता था। गत शताब्दीके मध्यतक कोई भी व्यक्ति एक दिनमें किसी भी हालतमें दो सौ मीलसे अधिक नहीं चल सकता था। आज मनुष्य दो घंटोंमें ही सारे संसारका चक्कर लगा सकता है। कोई भी विचार बातकी बातमें एक साथ ही सारे संसारमें फैलाया जा सकता है। बीस वर्षों पूर्व तक भी ये सारी बातें मनुष्यकी बड़ीसे बड़ी कल्पनासे भी परे थीं। आज पर्वत और समुद्र मनुष्यको विभाजित नहीं कर सकते। वह दोनोंपर यात्रा करता है और अन्तरिक्षमें भी उसका प्रवेश हो चुका है। विश्वका प्राविधिक एकीकरण आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक एकताकी माँग कर रहा है। इस तरहकी एकता घटक इकाइयोंकी स्वायत्तशासिता और वैविध्यकी रक्षा करके ही संपादित हो सकती है।

आधुनिक प्रविधिने ऐसी परिस्थितियाँ पैदा कर दी हैं, जिनमें युद्धका रोका

व्यक्तियों और राष्ट्रोंमें व्याप्त अन्याय और विषमता ही हर तरहके तनावों और पारस्परिक घृणाके मूलाधार है। राजसत्ता कानूनकी दृष्टिसे सबकी समताका विधान कर आन्तरिक तनावके कारणोको कम करनेका प्रयास करती है। साम्पत्तिक विषमताओंको कम करनेके लिए कराधानकी प्रगतिशील योजना भी इसी उद्देश्यसे अनुप्रेरित हुई है। राष्ट्रोंके बढते हुए पारस्परिक सम्पर्कोंकी भी यही माँग है कि राष्ट्रोंमें वर्तमान खटकनेवाली बडी विषमताओंको कम करने तथा न्यायकी प्रतिष्ठाके लिए भी इसी तरहके तरीके अपनाये जायँ। आधुनिक युगकी सबसे बडी विडम्बना यह है कि जैसे-जैसे प्राविधिक प्रगतिके माध्यमसे संसारके सभी राष्ट्र एक-दूसरेके करीब आते जा रहे है, राष्ट्रीय सरकारें मनुष्योके मुक्त सम्पर्कमे नयी-नयी बाधाएँ खडी करती जा रही है।

आज दुनिया एक होनेके लिए बाध्य होती जा रही है, किन्तु जबतक दो शर्तें पूरी नही कर ली जाती, किसी प्रकारकी विश्व-व्यवस्था प्रतिष्ठित नही हो सकती। पहली शर्त यह है कि मानव-जातिकी छोटी-से-छोटी घटक इकाईको भी पूर्ण सांस्कृतिक स्वायत्तता और स्वतन्त्रताकी गारण्टी दे दी जाय। विगत पचास वर्षोंमे हुई प्रगतिमें सर्वाधिक आकर्षक तथ्य यह दिखाई देता है कि एक ओर तो बड़ी शक्तियोंका विकास हुआ है और दूसरी ओर मानव-जातिकी छोटी-छोटी घटक इकाइयोकी ओरसे स्वायत्तताकी माँग अधिकाधिक तीव्र होती गयी है। दूसरी शर्त यह है कि सारे संसारके प्रबुद्ध जनमतके प्रतिनिधियोका एक विशाल संघटन तैयार किया जाय। राष्ट्रीय सरकारोकी शक्ति इसीलिए बढती है कि उनकी निष्पक्षता-मे जनताका विश्वास बढने लगता है। विश्व-सरकार भी यदि सबके साथ न्याय करने लगे तो संसारको वह मान्य हो जायगी।

गाधी ऐसे क्रान्तिकारी थे, जो स्वयं मानव-स्वभावको ही बदल देना चाहते थे। वे इस मानेमे यथार्थवादी भी थे कि वे जानते थे कि जनता परिणामो-के आधारपर ही उनके नुस्खोको स्वीकार कर सकती है। इसीलिए उन्होने अपना कार्य व्यक्तिसे ही शुरू किया और सर्वप्रथम उसीको बदलनेका प्रयत्न किया। उनका विश्वास था कि अच्छी दिशामें किया गया अल्पारंभ भी अन्तत बडा ही श्रेयस्कर होता है और उसका व्यापक प्रभाव पडता है। इसीलिए गाधीकी टेक-नीक छोटे समूहोके लिए अत्यन्त व्यवहार्य एवं उपयुक्त है और उसका कार्या-न्वयन अत्यन्त छोटी किस्मकी विनम्र योजनाओसे आरंभ किया जा सकता है। उन्होने इस सिद्धान्तको गलत बताया कि साध्यो द्वारा ही हमारे साधनोका औचित्य सिद्ध होता है। उनके लिए साधन भी उतने ही महत्त्वपूर्ण थे, जितने

से वह शीघ्र ही द्वितीय विश्व युद्धका पूर्वाभ्यास बन गया। वियतनाम इस तथ्य का क्रूर स्मारक है कि बडे राष्ट्र कम शक्तिशाली राष्ट्रोंके मामलेमें हस्तक्षेप किये बिना नही रह सकते। पश्चिमी एशियाकी समस्याएँ आसानीसे सुलझायी जा सकती है बशर्ते कि बडी ताकतें वहा हस्तक्षेप करना छोड दें। इससे यही स्पष्ट होता है कि जबतक आन्तरिक और अन्तरराष्ट्रीय सभी क्षेत्रोंमें हिंसाका पूर्णत उन्मूलन न हो जाय मानवता भविष्यके प्रति आश्वस्त नही हो सकती। जिस समय केनने अपन भाईकी जिम्मेदारी उठानेसे इनकार कर दिया मानवीय संघर्ष उसी समयसे शुरू हो गये। आज घटनाक्रमने तकन समाजके अधिकाधिक नर नारियोंमें यह चेतना पैदा कर दी है कि प्रत्येक व्यक्तिको दूसरे प्रत्येक व्यक्तिकी जिम्मेदारी स्वीकार करनी ही चाहिए। दूसरा कोई रास्ता नही है।

गांधीका यह बडा ही महत्त्वपूर्ण अवदान रहा है कि उन्होंने बुराईके खिलाफ लडनेके लिए अहिंसक योजना ससारको दी है। अभी स्थिति यह है कि जो राजनीतिज्ञ बलप्रयोग करनेके प्रतिकूल है, वे भी सामान्यत इसे ही अपनी नीतिका अनिवार्य अंग बनानेसे नही चूकते। गांधीने घोषित किया कि आन्तरिक या बाह्य किसी भी मामलेमें अनुनय विनयका तरीका ही एकमात्र मानवीय और सभ्य तरीका है। उन्होंने भौतिक शक्तिके स्थानपर नैतिक दबावके प्रयोगकी प्रतिष्ठा करनेका प्रयत्न किया। उनके तरीकेका साराश बुराईके खिलाफ अहिंसक प्रतिरोध है। उनका विश्वास था कि किसी भी व्यक्तिको अपने कार्यों द्वारा दूसरे व्यक्तियोंको प्रभावित करना चाहिए। ऐसा करनेसे व्यक्तिके अन्दर और विभिन्न व्यक्तियोंके पारस्परिक सबधोंमें पैदा होनेवाले तनाव कम किये जा सकते है। अन्तरराष्ट्रीय तनाव प्राय राष्ट्रीय तनावोंके ही परिणाम होते है। इसी तरह किसी भी समाजमें पाये जानेवाले तनाव भी व्यक्तिके अन्दर होनेवाले तनावोंके परिणाम होते हैं। जो भी व्यक्ति अपने आन्तरिक तनावोंको समाप्त कर लेता है, उसका व्यक्तित्व समन्वयपूर्ण बन जाता है। उस स्थितिमें वह शक्तिका स्रोत बन जाता है और उससे व्यक्तिगत शक्ति नि सृत होने लगती है। गांधीने राष्ट्रोंकी आन्तरिक और अन्तरराष्ट्रीय स्तरकी समस्याओंका यह समाधान प्रस्तुत किया था कि कुछ ऐसे नर-नारियोंका सघटन बनाया जाय जो अपने आन्तरिक तनावोंसे पूर्णत मुक्त हों। ये लोग समाजगत तनावोंको दूर करनेमें सहायता पहुँचायेंगे। जब समाजगत तनाव कम हो जायेंगे तो अन्तरराष्ट्रीय तनाव अपने आप दूर होने लगेंगे।

तनावके कारणोंका अनुसंधान करते हुए गांधी इस निष्कर्षपर पहुँचे कि

व्यक्तियों और राष्ट्रोमे व्याप्त अन्याय और विषमता ही हर तरहके तनावो और पारस्परिक घृणाके मूलाधार है। राजसत्ता कानूनकी दृष्टिसे सबकी समताका विधान कर आन्तरिक तनावके कारणोको कम करनेका प्रयास करती है। साम्पत्तिक विषमताओको कम करनेके लिए कराधानकी प्रगतिशील योजना भी इसी उद्देश्यसे अनुप्रेरित हुई है। राष्ट्रोके बढते हुए पारस्परिक सम्पर्कोकी भी यही माँग है कि राष्ट्रोंमे वर्तमान खटकनेवाली बडी विषमताओको कम करने तथा न्यायकी प्रतिष्ठाके लिए भी इसी तरहके तरीके अपनाये जायँ। आधुनिक युगकी सबसे बडी विडम्बना यह है कि जैसे-जैसे प्राविधिक प्रगतिके माध्यमसे संसारके सभी राष्ट्र एक-दूसरेके करीब आते जा रहे है, राष्ट्रीय सरकारे मनुष्योके मुक्त सम्पर्कमे नयी-नयी बाधाएँ खडी करती जा रही है।

आज दुनिया एक होनेके लिए बाध्य होती जा रही है, किन्तु जबतक दो शर्तें पूरी नही कर ली जाती, किसी प्रकारकी विश्व-व्यवस्था प्रतिष्ठित नही हो सकती। पहली शर्त यह है कि मानव-जातिकी छोटी-से-छोटी घटक इकाईको भी पूर्ण सांस्कृतिक स्वायत्तता और स्वतन्त्रताकी गारण्टी दे दी जाय। विगत पचास वर्षोमे हुई प्रगतिमें सर्वाधिक आकर्षक तथ्य यह दिखाई देता है कि एक ओर तो बडी शक्तियोका विकास हुआ है और दूसरी ओर मानव-जातिकी छोटी-छोटी घटक इकाइयोकी ओरसे स्वायत्तताकी माँग अधिकाधिक तीव्र होती गयी है। दूसरी शर्त यह है कि सारे संसारके प्रबुद्ध जनमतके प्रतिनिधियोका एक विशाल संघटन तैयार किया जाय। राष्ट्रीय सरकारोकी शक्ति इसीलिए बढती है कि उनकी निष्पक्षतामे जनताका विश्वास बढने लगता है। विश्व-सरकार भी यदि सबके साथ न्याय करने लगे तो ससारको वह मान्य हो जायगी।

गाधी ऐसे क्रान्तिकारी थे, जो स्वयं मानव-स्वभावको ही बदल देना चाहते थे। वे इस मानेमे यथार्थवादी भी थे कि वे जानते थे कि जनता परिणामोके आधारपर ही उनके नुस्खोको स्वीकार कर सकती है। इसीलिए उन्होने अपना कार्य व्यक्तिसे ही शुरू किया और सर्वप्रथम उसीको बदलनेका प्रयत्न किया। उनका विश्वास था कि अच्छी दिशामे किया गया अल्पारंभ भी अन्तत बडा ही श्रेयस्कर होता है और उसका व्यापक प्रभाव पडता है। इसीलिए गांधीकी टेकनीक छोटे समूहोंके लिए अत्यन्त व्यवहार्य एवं उपयुक्त है और उसका कार्यान्वयन अत्यन्त छोटी किस्मकी विनम्र योजनाओसे आरंभ किया जा सकता है। उन्होने इस सिद्धान्तको गलत बताया कि साध्यो द्वारा ही हमारे साधनोका औचित्य सिद्ध होता है। उनके लिए साधन भी उतने ही महत्त्वपूर्ण थे, जितने

जा रही थी और ३० जनवरी, १९४८ को गाधीने अपने बन्धुजनोके प्रेमकी सबसे बडी कीमत चुका दी। एक हत्यारेकी गोलीने उनके शरीरको जमीनपर गिरा दिया और उनकी भौतिक मृत्यु हो गयी, किन्तु आध्यात्मिक दृष्टिसे यह उनका पुनर्नवीकरण था। वे उन अमरोकी कोटिमे चले गये, जिनके नाम मानवीय इतिहासके गगनमे उज्ज्वल नक्षत्रोकी भाँति चमक रहे है।

स्मृतियाँ

गाधीजास मेरा जसा प्रेमपण और हार्दिक सबध था वैसा सबध उनके
लाग और केवल जवाहरलाल नहरू और राजेंद्रप्रसादसे ही था।

मन सन १९२० में दिल्लीमें खिलाफत-सम्मेलनके अवसरपर हा गाधाजाको
हली वार दखा था। उनके साथ जवाहरलाल नेहरू मौलाना आजाद और अन्य
ोग थे। मुझे उन लोगोस मिलनका अवमर नहा मिला किन्तु मने यह अनुभव
या कि ये ही वे लोग ह, जा दशकी आजादा सुख और समृद्धिके लिए काम
रेंगे और कुबानियाँ देंगे।

दूसरी वार म गाधाजास कलकत्ताम सन १९२८ में उस समय मिला जब
ग्रेस और खिलाफतका सयुक्त अधिवेशन हो रहा था। काग्रेसकी सभामें हम
ग गाधीजीका भापण सुन रह थ। इसा बीच एक क्रुद्ध युवक मचपर कूद पडा
र उनके भापणम बाधा पहुचाते हुए चिल्लाने लगा, महात्माजी, आप कायर
आप कायर ह।' गाधीजी इसपर हँस पडे। उनकी हसी बडी उन्मुक्त हँसी
और उन्हान शान्त स्वरमें अपना भापण जारी रखा। म उनकी इस शान्त
नतापर चकित रह गया। इससे उनकी महानताका परिचय मिलता था।

अगस्त १९३४ म हजारावाग-जलम छूटनपर मुझ आदश मिला था कि म
ब और उत्तर-पश्चिमी सामाप्रान्तको छोडकर कहा भी जा सकता हूँ। गाधी
मुझ तार देकर वर्धा आने और वहीं अपने साथ रहनेका निमन्त्रण दिया।
ालाल बजाज भी चाहते थे कि म उनक साथ वर्धा में रहूँ। मैंने ऐसा ही
। हम दोनो प्रतिदिन गाधीजीके पास जाते थ और उनकी प्रार्थना-सभामें
ल हात थे। म प्राय उनकी प्रार्थनाओंमें भी शामिल हुआ करता था। एक
गाधीजीने मुझसे कहा, "आपको मालूम ह एक समय मेरा शौकतअली और
दअलीसे बडा हा हार्दिक सबध था। फिर न जाने क्या हुआ, व लाग मुझस

अड वगैरह तयार करनेका इन्तजाम करना चाहिए।' मने कहा "व तो मजाक कर रहे ह। हम जहाँ कही भी जाते है, वहाँ व ही चीजें खाते है, जो हमारे मेजवान हमें देते हैं और जो वे खुद खाते ह। अगर आप उन्हें कोई दूसरी चीज खिलाना भी चाहेंगे तो वे न खायेंगे।' इस तरह मैंने और मेरे बच्चोने कोई दूसरी चीज खानेसे इनकार कर दिया किन्तु जहाँतक गाधीजीका सवाल था, वे उनकी रुचि का खाना देनेके लिए बिलकुल तयार थे।

उनकी जिस खासी चीजने हमें प्रभावित किया था वह था उनका विनोदी स्वभाव। वे लडके-लडकियाँ बुड्ढे-जवान सबके साथ हँसी-मजाक कर लेते थे और हिल मिलकर हँसते थे। उन्हें हँसी-मजाककी वडी तमीज थी। उनका हृदय परमात्माकी सतानोके लिए प्रेम और सेवा भावनासे लबालब भरा हुआ था।

एक दिन ऐसा हुआ कि वर्धाका भगी अपना काम छोडकर चलता बना। जब गाधीजीको इसकी खबर हुई तो उन्होने कहा 'ठीक है, अब हम लोग झाडू और टोकरी ले लें और जगहका सफाई कर डालें।" और हम लोग तुरन्त सफाईके काममें लग गये।

जब सन् १९३८ में गाधीजी दूसरी बार सीमाप्रान्त आये थे तो हम लोगोने चारसद्दामें, जहाँ उन्हें रातको विश्राम करना था हथियारबद पहरेदार नियुक्त कर रखे थे। ऐसा केवल गाधीजीकी सुरक्षाके ख्यालसे ही किया गया था। जब गाधीजीने इसे देखा तो मुझसे पूछने लगे यहा इन हथियारबद लोगोंको क्या जरूरत है?' मने कहा "यहाँ ये लोग सिर्फ इसलिए रखे गये ह कि किसी हमलावरको आपकी ओर बढनेका साहस न हो और वह दूरसे ही भाग जाय। किन्तु गाधीजी इसके लिए तयार न हुए। उन्होने बडी ही सरलता, किन्तु दृढतासे कह दिया "मुझे इनकी कोई जरूरत नही है। इसपर पहरेदारोंकी बन्दूकें हटा दी गयी। हमारी जनतापर इस एक घटनाका ही बडा प्रभाव पडा। वे लोग कहने लगे देखो, यह कैसा विलक्षण आदमी है। भगवानपर उसे इतना भरोसा है कि उसे हथियारोकी कोई जरूरत ही नही है।

पहले सीमाप्रान्तमें हिंसाका बोलबाला था। अहिंसा बादमें आयी। म आपको यह बतला सकता हू कि हिंसाके कारण अग्रेजोका दमन-चक्र इतना भीषण हो गया कि बडे-बडे बहादुर लोग भी बुजदिल बन गये किन्तु जब अहिंसा आयी तो बुजदिल-से-बुजदिल पठान भी बहादुर बन गया। इसके पहले पठान सिपाहियो और जेलोंसे इतना डरते थे कि उन्हें सिपाहियोंसे बात करनेकी भी हिम्मत नही पडती थी। किन्तु अहिंसाने उन्हें अपेक्षित साहस, दिलेरी और भाईचारेकी शिक्षा

दे दी। छोटे-छोटे बच्चेतक मुस्कराते हुए जेल जाने लगे। उनकी हिम्मत इतनी बढ गयी कि वे बडो-बडोका सामना करने लगे। आप सोचते होगे कि पठान इसी मानेमे बहादुर होगा कि वह ईटका जवाब पत्थरसे दे सकता है। मतलब यह कि यदि कोई उसपर प्रहार करे, तो वह बदलेमे उससे भी तगडा प्रहार कर सकता है। किन्तु असलमे यह तो बहादुरी नही, बुजदिली है। असली बहादुरी तो प्रहार-का बदला न लेनेमे है। यह मनुष्यका सबसे महान् गुण है। हमारे अहिंसाके तरीकेको तो अंग्रेजोने जल्दीसे कुचल डाला, किन्तु हमारी अहिंसाको न अंग्रेज कुचल सका, न पाकिस्तान।

मै अहिंसाका आदमी हूँ। हममे कुछ ऐसे लोग भी थे, जो कहा करते थे कि काम हिंसासे ही बन सकता है। मै इसे स्वीकार नही कर सकता। मै जनता-की खिदमत करना चाहता हूँ और बेशक यह मैं अहिंसासे ही कर सकता हूँ। मुझे उनके खिलाफ कुछ नही कहना है, जो इसके लिए हिंसाका रास्ता अपनाना चाहते है, किन्तु हमारा रास्ता उनसे अलग है। फिर भी हम उनके देश-प्रेम और देश-भक्ति की इज्जत करते हैं।

अहिंसा ही प्रेम है। हिंसा ही नफरत है। हिंसासे समस्याएँ कभी सुलझ नही सकती और दुनियामे इससे अमन भी कायम नही हो सकता। यदि ऐसी बात न होती तो प्रथम विश्व-युद्धके बाद दुनिया मे शान्ति कायम हो गयी होती? लेकिन ऐसा हुआ नही, फिर दूसरा महायुद्ध हुआ। क्या इसके बाद भी किसी तरहकी शान्ति कायम हो सकी है? बिलकुल नही। हिंसा चीज ही ऐसी है कि एक हिंसाके बाद उससे बडी हिंसा होगी। प्रत्येक लडाई अपनी पूर्ववर्ती लडाईसे उग्र होती है। अब जो युद्ध होगा, वह निश्चय ही सर्वाधिक विनाशकारी होगा। एक बात बिलकुल साफ है, यदि दुनिया सचमुच चाहती हो, तो शान्ति अवश्य हो सकती है और वह केवल अहिंसासे ही हो सकती है। यदि नही तो अब जो युद्ध होगा, वह इतिहासमे सभी युद्धोसे कही भयानक और विनाशकारी होगा, क्योकि अब पारमाणविक शस्त्रास्त्र आ गये हैं और उस युद्धसे दुनिया पूरी तरह बरबाद हो जायगी।

सन् १९४५ मे जेलसे छूटनेके बाद मैं बीमार था। उस समय गांधीजी बम्बई-मे बिडला-भवनमे ठहरे हुए थे। उन्होने खत लिखकर मुझे बम्बई बुला लिया। एक दिन उन्होने हिंसा-अहिंसाकी बात चलायी। मैंने बातो-ही-बातोमे कहा, "आप कितने उत्साहसे जनताको अहिंसाकी शिक्षा देते हैं। किन्तु आपके साथ तो आपके कार्यकर्ता है। ऐसे धनी लोग है, जो आपको बडी आर्थिक सहायता

[illegible] रहा है। फिर भी हिन्दुस्तानके अधिकांश हिस्सोंमें हिंसाकी इतनी घटनाएँ हो रही हैं। हमारे प्रान्तमें अभीतक लोगोंकी समझ नहीं है। वे किसी आत्मीयके [illegible] लिए तो [illegible] सकते हैं किन्तु देश और जातिके लिए वे ज्यादा [illegible] नहीं [illegible] सकते। दूसरी बात यह है कि हमारे पास हिंसाके लिए हथियार बहुत हैं, जो आपके पास नहीं हैं। फिर भी सीमाप्रान्तमें हिंसाकी कोई वारदात नहीं होती जब कि आपके यहाँ इसकी इतनी बहुतायत दिखाई देती है। इसका क्या कारण है? गांधीजी मेरे [illegible] थे। वे लोग कहते हैं कि अहिंसा बुजदिलोंकी चीज है। किन्तु असलियत यह है कि अहिंसा बहादुरोंकी चीज है। सीमाप्रान्तमें हिंसा इसलिए ज्यादा नहीं होती कि आप लोग सचमुच बहादुर हैं।

विभाजनके समय बिहारमें हो रहे उपद्रवोंके सिलसिलेमें हम लोग जब गांवों का दौरा कर रहे थे तो कुछ मुसलमान शरणार्थी दौड़ते हुए गांधीजीके पास आये और कहने लगे, "गांधीजी, हम लोग क्या करें? यहाँ इतनी हिंसा और हत्या हो रही है कि हमारा जाना लिए संकट पैदा हो गया है।' गांधीजीने इसके जवाब में कहा, "मैं तो केवल बहादुरोंको ही सीख दे सकता हूँ। आप लोग बहादुरोंसे अपने घरोंको वापस चले जाइये।" उन लोगोंने पूछा, "हम ऐसा कैसे कर सकते हैं? इसकी क्या गारण्टी है कि हम भी कत्ल नहीं कर दिया जायगा?" इसपर गांधीजीने फिर कहा, "मैं आप लोगोंको कौन-सी गारण्टी दे सकता हूँ? मैं केवल यही कह सकता हूँ कि अगर आपमेंसे किसीकी भी जान ली गयी तो हिन्दुओंको इसकी कीमत गांधीकी जिंदगी देकर चुकानी होगी। मैं आपको केवल यही आश्वासन दे सकता हूँ।" इससे मुसलमानोंकी हिम्मत बँध गयी और वे अपने घरोंको वापस चले गये। गांधीजीने उस दिन शामको एक प्रार्थना-सभामें कहा कि, 'मैंने इस क्षेत्रके मुसलमानोंको यह आश्वासन दिया है कि यदि उनमेंसे किसीकी भी जान ली गयी तो बिहारके हिन्दुओंको इसकी कीमत गांधीकी जिंदगीसे चुकानी होगी।

गांधीजीके शब्द प्रेम, दया और करुणाकी भावनासे ओतप्रोत होते थे, इसी लिए जनतापर उनका बड़ा प्रभाव पड़ता था। उन्होंने करोड़ों लोगोंको सेवा, प्रेम और परमात्माके प्रति अपनी अनन्य निष्ठा से प्रभावित किया था।

एक दिन जिस समय मैं एक छोटे से गाँवमें खाना खा रहा था, मुझे सहसा रेडियोसे गांधीजीकी हत्याकी खबर मिली। इसे सुनते ही मेरा और मेरे साथ बैठे अन्य लोगोंका खाना रुक गया। हम बिलकुल स्तब्ध रह गये। उसके बाद हम खाना खा ही नहीं सके। हम लोग बाहर निकले और खुदाई खिदमतगारोंको एकत्र

किया। गांधीजीकी हत्याका समाचार सुनकर सभी स्तब्ध हो गये थे—सभी यह अनुभव कर रहे थे कि उनका एक सच्चा प्रेमी, मददगार और दोस्त उन्हे छोड़-कर चला गया।

गांधीजीकी हत्या परमात्माके प्रति अपराध था। उस आदमीको मार डालना, जो जीवनभर दूसरोके लिए अपना सर्वस्व लुटाता रहा, जेल गया और मुल्ककी खिदमतमे हर तरहकी तकलीफें झेलता रहा, एक भीषण अपराध था। आज भारतको जो भी कष्ट हो रहा है, वह इसी अपराधपर हुए परमात्माके क्रोधका परिणाम है।

गांधीजीकी सबसे बड़ी देन क्या थी? उनकी किसी एक देनको बता पाना बड़ा कठिन है। उनकी न जाने कितनी देनें है। सबसे पहली देन तो यही है कि उन्होने हिन्दुस्तानियोमे बुजदिलीकी जगह हिम्मत भर दी—उनमे आजादीकी माँग करनेका साहस भर दिया। उनका सबसे बड़ा काम तो यह है कि उन्होने न सिर्फ हिन्दुस्तानको, बल्कि सारी दुनियाको अहिंसाका सबक पढ़ा दिया। उन्ही-के जरिये आजादी आयी। गांधीजीकी अहिंसा बुजदिलोकी नही, बहादुरोकी चीज थी। जो कुछ बुराई थी, वह अहिंसाके कारण नही थी, बल्कि इसलिए थी कि लोग उसे पूरी तरह आत्मसात् नही कर पाये। मै तो इतना ही कह सकता हूँ कि भारतकी आजादी गांधीजीके तरीकेसे ही आयी। यह ठीक है कि सत्ता-हस्ता-न्तरणके लिए अनुकूल वातावरणका निर्माण हो गया, किन्तु यदि गांधीजी न होते तो इसका लाभ कौन उठा सकता था?

यदि कुछ लोग गांधीजीकी आलोचना करते है या उनका गलत मूल्याङ्कन करते है तो उन्हे करने दीजिये। यही दुनियाका तरीका है। सभी बड़े आदमियो-के भाग्यमे यही बदा रहा है। उन्होने अपने मुल्क और जनताके लिए क्या कुछ नही किया, कौनसी मुसीबते नही झेली और उसकी खिदमतमे उन्होने क्या उठा रखा? उनका स्थान सुनिश्चित और सुरक्षित है। हम प्रशंसा करके उनके स्थान-को न तो ऊँचा ही उठा सकते है और न निंदा करके दुनियाकी निगाहोमे उन्हे गिरा ही सकते है। वे वही थे और भविष्यमे भी वही रहेगे, जो वे बराबर रह चुके है—महान्!

ऐसे आदमीकी सबसे बड़ी इज्जत हम क्या कर सकते है? जनताकी वे बुनियादी जरूरते पूरी होनी ही चाहिए, जिन्हे गांधीजी पूरा करना चाहते थे। यदि हम गांधीजीका दर्शन किसी देहाती सामने ले जायँ तो वह हमे बीचमे ही टोककर कहने लगेगा

"म भूखा हू। पहले मुझे खिला दीजिये। म नगा हू। मुझ कपन्द दीजिये। मर लडकोके लिए कोई स्कूल नही ह। उनक लिए एक स्कूल बनवा दाजिय। म बीमार हू किन्तु न तो मेरे पास काई डाक्टर ह न दवा। मेरा ख्याल कीजिये।'

इसीलिए म कहता हूँ कि गाधीजीकी जन्म शता मनानका सबसे अच्छा तरीका यह ह कि जनताको कम-से कम जिदगीकी बुनियादी सुख-सुविधाएँ दे दी जायँ।★

★ अफगानिस्तानस्थित जलालाबाद म खान अब्दुल गफ्फार खानसे अप्रैल १९६७ में कई बार साक्षात्कार करनेवाली टोलीके एक सदस्य यू० आर० राव द्वारा उन्हीं मुलाकातोंके आधारपर प्रस्तुत।

कुर्ट जार्ज कीसिंगर

एक महापुरुष

"जव एक न्यायाधीशने जिरहके सिलसिलेमे कहा कि राजनीतिमे किसी एक व्यक्तिकी आवाज नही सुनी जा सकती तो भारतके महान् सत्याग्रही-ने प्रशान्त भावसे उत्तर दिया यही तो वह वात है, जिसे गलत सावित करनेकी मैं वरावर कोशिश करता आ रहा हूँ।"[1]

यह वाक्य सन् १९२४ मे जर्मनमे प्रकाशित महात्मा गाधी सवंधी एक पुस्तक-से लिया गया है। इस पुस्तकका लेखक वर्लिन विश्वविद्यालयमे डॉक्टरेट उपाधि-का प्रत्याशी जाकिर हुसेन नामक एक युवक भारतीय था, जो आज भारतका राष्ट्रपति है।

गाधीकी आवाज सारी दुनियाके अनेक लोगोने सुनी। यद्यपि मैं उनसे कभी मिल न सका फिर भी मैं भारतके इस सपूतकी सराहना एक महापुरुपके रूपमें करता हूँ। गत वर्ष जव मैंने गाधी-समाधि पर एक वृक्षका रोपण किया था तो यह मेरी इस सराहनाका ही प्रतीक था।

गाधीकी जन्मशतीके वर्षमे भारत अपनी इस विशिष्टताका दावा कर सकता है कि उसने महात्माके नेतृत्वमे एक महान् राष्ट्रके रूपमे न केवल अपनी स्वतन्त्रता एवं स्वाधीनताका नया मार्ग प्राप्त कर लिया, अपितु व्यापक अर्थोमे, वह एशिया और अफ्रीका जैसे दो महाद्वीपो द्वारा आत्मनिर्णय और विश्व-राजनीतिके क्षेत्रमे पुन. प्रवेशके लिए किये गये प्रयासोमें शान्ति-विधायककी भूमिका अदा करनेमें भी समर्थ हो गया। गाधीने अपने आन्दोलनके भविष्यमे होनेवाले इस दूरव्यापी प्रभावको पहले ही देख लिया था। उन्होने सन् १९४२ मे ही प्रेसिडेण्ट रूजवेल्ट-को पत्र लिखकर स्वतन्त्रताके लिए किये जा रहे अपने संघर्षकी नयी विधिको समर्थन प्रदान करनेका आग्रह करते हुए कहा था कि इस प्रकार वे मानव-जातिके इतिहासको एक नया मोड़ देंगे और उसे समृद्ध वनायेंगे। वस्तुत. प्रथम विश्व-

युद्धकी समाप्तिके बाद ही प्रेसिडेण्ट विल्सनके इस आह्वानसे कि सभी राष्ट्रोंको आत्म निर्णयका अधिकार प्राप्त होना चाहिए गांधीको यह आशा हो चली थी कि इसके फलस्वरूप भारतको भी आत्म निर्णयका अधिकार अवश्य प्राप्त हो जायगा। द्वितीय विश्वयुद्ध छिड़नेतक उन्होंने अहिंसाका प्रतिपादन करते हुए अपने लिए एक ऐसे राजनीतिक अस्त्रका निर्माण कर लिया था, जिसे सम्मान और मान्यता प्राप्त हो गयी। अब गांधीकी अपील व्यर्थ जानेवाली न थी और ब्रिटिश सरकारको बदलते हुए समयका रुख पहचानना पड़ा।

जिस समय मैं वकिलका युवक वकील था मैंने गांधीजीकी आत्मकथा पढ़ी थी। तभीसे उनका यह वाक्य मेरी स्मृतिमें बराबर बना हुआ है 'तथ्यों का अर्थ सत्य होता है और सत्यसे आबद्ध हो जाने पर कानून स्वभावत हमारी सहायता करने लगता है।' मैं प्राय कानूनके उन युवक छात्रोंके साथ गांधीकी इस सुभिम सूक्तिपर विचार विमर्श किया करता था, जिन्हें मैं परीक्षाओंके लिए तैयार करता और पढ़ाता था। भारतके स्वातन्त्र्य-संघर्षमें गांधी बिना किसी प्रमादके बराबर सत्य और न्यायके प्रति निष्ठावान बने रहे और अन्ततोगत्वा उनके संघर्षको जो सफलता मिली, वह इसका प्रमाण थी कि कानून भी उनकी सहायताके लिए आ पहुँचा।

गांधीने अहिंसाके जिस सिद्धान्तको एक राजनीतिक सूत्रके रूपमें ग्रहण किया था उसका स्रोत भारतकी प्राचीन परम्परामें है। "अहिंसा जीवनकी समस्त विकृतियोंका निषेध है। "सत्याग्रह" शब्द प्रयोगका त्याग करते हुए सत्य और न्यायकी महत्त्वाकांक्षा है। गांधीमें निहित इस प्राचीन भारतीय परम्पराको टॉलस्टाय और ईसाके पर्वतीय उपदेश (सरमन ऑन द माउण्ट) के प्रति उनकी निष्ठा से नयी स्फूर्ति प्राप्त हुई थी। राजनीतिक दृष्टिकोणसे गांधीकी अहिंसा निष्क्रिय शान्तिवाद नहीं है। उनके लिए शान्तिवाद कायरताका द्योतक है। शान्तिवाद दुर्बलता और भयसे उद्भूत उदासीनताका द्योतक है, जिसे वे अमानुषिक प्रबल सशस्त्र हिंसाका मुखर प्रतिवादमात्र मानते हैं। गांधी शक्तिगत राजनीति और उसके समक्ष मूक समर्पण—दोनोंको ही समान रूपसे मानवीय गरिमाके प्रतिकूल और हेय समझते थे। गांधीने सन १९२० में ही लिखा था

> मेरा यह विश्वास है कि जब कभी कायरता और हिंसामें चुनाव करनेका प्रश्न उठेगा मैं हिंसाको ही चुननेकी सलाह दूँगा। किन्तु मेरा यह भी विश्वास है कि अहिंसा हिंसासे कहीं श्रेष्ठ है और क्षमामें दण्ड देनेकी अपेक्षा कहीं अधिक बहादुरी है। क्षमा किसी वीर सिपाहीको ही शोभा

> देती है । दण्ड देनेकी शक्ति होनेपर ही क्षमाका कोई अर्थ हो सकता है । किसी असहाय निरीह प्राणीके क्षमा करनेका कोई अर्थ ही नही होता । बिल्ली जिस चूहेको टुकडे-टुकडे कर डालती है, यदि वही यह कहने लगे कि उसने बिल्लीको क्षमा कर दिया, तो इसे क्षमा नही कहा जा सकता ।

और १७ वर्ष बाद सन् १९३७ मे अहिंसाके संबंधमें उनकी धारणा और विशिष्ट बन गयी

> अहिंसा हिंसासे सर्वथा श्रेष्ठ है, इसका अर्थ यह है कि अहिंसक व्यक्तिकी शक्ति उस व्यक्तिकी शक्तिसे सर्वदा श्रेष्ठ होती है, जो हिंसाका प्रयोग करता है ।

अपने राजनीतिक सिद्धान्तो और उनके प्रयोगके संबधमे सतत निष्ठावान् रह-कर गांधी भारत और सारी मानव-जातिको एक नया रास्ता दिखाना चाहते थे । यह रास्ता हिंसा और नि सहायताके अतिरिक्त और उनके विकल्पके रूपमे एक तीसरा रास्ता था । धीरे-धीरे सारे संसारमें यह तीसरा रास्ता ही एकमात्र विकल्पके रूपमे देखा जाने लगा है । धैर्यपूर्वक सतत चलनेवाले एक लबे सघर्प-के बाद अपने युगमे, और भारतमे, उनके प्रयास सफल हुए । और एशिया तथा अफ्रीकाके अनेकानेक उदीयमान राष्ट्रोने अपनी स्वाधीनता, स्वतन्त्रता और आत्म-निर्णयके लिए किये जानेवाले संघर्पोमें भारतके उदाहरणसे आशा और शक्तिका संचयन किया, यद्यपि इसके कुछ कटु अपवाद भी मिल जायेंगे ।

गाधीने पारमाणविक युगका आरंभ देख लिया था, किन्तु आधुनिक सर्वनाशी शस्त्रास्त्रोको देखते हुए इस युगमे बल-प्रयोगकी नीतिसे कितना भयकर खतरा हो सकता है इस सबंधमे हमसे कुछ भी कहनेके लिए आज वे हमारे बीच नही रह गये । यदि आज वे जीवित होते—उन्होने स्वयं एक बार कहा था कि मैं १२५ वर्षतक जीवित रहनेकी आशा करता हूँ—तो उन्हे यह देखकर बडी चिन्ता हो गयी होती कि इस समय विश्व-शान्ति मुख्यत भय और आशंकाके अस्थिर सन्तु-लनपर टिकी हुई है । आज निश्चय ही स्वतन्त्र और स्वाधीन भारतके अपने विशिष्ट आधारपर खडा होकर उन्होने सारी दुनियासे अहिंसाकी अपील करनी चाही होती ।

आजके जर्मनीमें गाधीको सक्रिय सहयोग प्राप्त होता । जर्मनीके संघीय गण-तंत्रने आरंभसे ही अपने पड़ोसियो और जर्मनीके भूतपूर्व शत्रुओका विश्वास प्राप्त करनेकी चेष्टा की है । इस चेष्टामे उसे अनेक राष्ट्रोकी सद्भावना मिली है और इधर कई वर्पोमें जर्मनीके समक्ष उपस्थित अत्यन्त जटिल समस्याओको सुलझा लिया

युद्धकी समाप्तिके बाद ही प्रेसिडेण्ट विल्सनके इस आह्वानमे कि सभी राष्ट्रोको आत्म निर्णयका अधिकार प्राप्त होना चाहिए, गाधीको यह आशा हो चली थी कि इससे फलस्वरूप भारतको भी आत्म निर्णयका अधिकार अवश्य प्राप्त हो जायगा। द्वितीय विश्वयुद्ध छिडनेतक उन्होने अहिंसाका प्रतिपादन करते हुए अपने लिए एक ऐसे राजनीतिक अस्त्रका निर्माण कर लिया था, जिसे सम्मान और मान्यता प्राप्त हो गयी। अब गाधीको अपाल व्यय जानवाली न थी और ब्रिटिश सरकार को बदलते हुए समयका रुख पहचानना पडा।

जिस समय म बर्लिनका युवक वकील था मने गाधीजीकी आत्मकथा पढी थी। तभीसे उनका यह वाक्य मेरी स्मृतिमें बराबर बना हुआ ह "तथ्या का अर्थ सत्य होता ह, और सत्यमे आरूढ हो जाने पर कानून स्वभावत हमारी सहायता करने लगता ह।" म प्राय कानूनके उन युवक छात्रोसे साथ गाधीकी इस सक्षिप्त सूक्तिपर विचार विमर्श किया करता था जिन्हें म परीक्षाओके लिए तयार करता और पढाता था। भारतके स्वातन्त्र्य-सघर्षमें गाधी बिना किसी प्रमादके बराबर सत्य और न्यायके प्रति निष्ठावान् बने रहे और अन्ततोगत्वा उनके सघर्षको जो सफलता मिली, वह इसका प्रमाण था कि कानून भी उनकी सहायताके लिए आ पहुँचा।

गाधीने अहिंसाके जिस सिद्धान्तको एक राजनीतिक सूत्रके रूपमें ग्रहण किया था, उसका स्रोत भारतकी प्राचीन परपरामें ह। 'अहिंसा जीवनकी समस्त विकृतियोका निषेध ह। "सत्याग्रह' बल प्रयोगका त्याग करते हुए सत्य और न्यायकी महत्त्वाकाक्षा ह। गाधीमें निहित इस प्राचीन भारतीय परपराको टॉल्स टाय और ईसाके पर्वतीय उपदेश (सरमन ऑन द माउण्ट) के प्रति उनकी निष्ठा स नयी स्फूर्ति प्राप्त हुई था। राजनीतिक दृष्टिकोणस गाधीकी अहिंसा निष्क्रिय शान्तिवाद नही ह। उनके लिए शान्तिवाद कायरताका प्रतीक ह। शान्तिवाद दुर्बलता और भयसे उद्भूत उदासीनताका द्योतक ह जिस व अमानुषिक प्रबल सशस्त्र हिंसाका मुखर प्रतिवादमात्र मानत ह। ऐसा शान्तिगत राजनीति और उसके समक्ष मूक समर्पण—दोनोंको ही समान रूपस मानवीय गरिमाके प्रतिकूल और हेय समझते थे। गाधीने सन १९२० में ही लिखा था

> मेरा यह विश्वास है कि जब कभी कायरता और हिंसामें चुनाव करनेका प्रश्न उठेगा मैं हिंसाका ही चुननेकी सलाह दूंगा। किन्तु मेरा यह भी विश्वास ह कि अहिंसा हिंसासे कहीं श्रेष्ठ ह और दण्डसे क्षमा कहीं अधिक बडा अहिंसक पराक्रम है। क्षमा किस बात सिपाहीका ही शोभा

देती है । दण्ड देनेकी शक्ति होनेपर ही क्षमाका कोई अर्थ हो सकता है । किसी असहाय निरीह प्राणीके क्षमा करनेका कोई अर्थ ही नही होता । बिल्ली जिस चूहेको टुकडे-टुकडे कर डालती है, यदि वही यह कहने लगे कि उसने बिल्लीको क्षमा कर दिया, तो इसे क्षमा नही कहा जा सकता ।

और १७ वर्ष बाद सन् १९३७ मे अहिंसाके संबंधमें उनकी धारणा और विशिष्ट बन गयी :

अहिंसा हिंसासे सर्वथा श्रेष्ठ है; इसका अर्थ यह है कि अहिंसक व्यक्तिकी शक्ति उस व्यक्तिकी शक्तिमे सर्वदा श्रेष्ठ होती है, जो हिंसाका प्रयोग करता है ।

अपने राजनीतिक सिद्धान्तो और उनके प्रयोगके सबंधमे सतत निष्ठावान् रह-कर गांधी भारत और सारी मानव-जातिको एक नया रास्ता दिखाना चाहते थे । यह रास्ता हिंसा और नि सहायताके अतिरिक्त और उनके विकल्पके रूपमे एक तीसरा रास्ता था । धीरे-धीरे सारे संसारमें यह तीसरा रास्ता ही एकमात्र विकल्पके रूपमे देखा जाने लगा है । धैर्यपूर्वक सतत चलनेवाले एक लबे सघर्ष-के बाद अपने युगमे, और भारतमे, उनके प्रयास सफल हुए । और एशिया तथा अफ्रीकाके अनेकानेक उदीयमान राष्ट्रोने अपनी स्वाधीनता, स्वतन्त्रता और आत्म-निर्णयके लिए किये जानेवाले सघर्षोमे भारतके उदाहरणसे आशा और शक्तिका संचयन किया, यद्यपि इसके कुछ कटु अपवाद भी मिल जायेंगे ।

गाधीने पारमाणविक युगका आरभ देख लिया था, किन्तु आधुनिक सर्वनाशी शस्त्रास्त्रोको देखते हुए इस युगमे बल-प्रयोगकी नीतिसे कितना भयकर खतरा हो सकता है इस सबंधमे हमसे कुछ भी कहनेके लिए आज वे हमारे बीच नही रह गये । यदि आज वे जीवित होते—उन्होने स्वयं एक बार कहा था कि मै १२५ वर्षतक जीवित रहनेकी आशा करता हूँ—तो उन्हे यह देखकर बडी चिन्ता हो गयी होती कि इस समय विश्व-शान्ति मुख्यत भय और आशंकाके अस्थिर सन्तु-लनपर टिकी हुई है । आज निश्चय ही स्वतन्त्र और स्वाधीन भारतके अपने विशिष्ट आधारपर खडा होकर उन्होने सारी दुनियासे अहिंसाकी अपील करनी चाही होती ।

आजके जर्मनीमे गाधीको सक्रिय सहयोग प्राप्त होता । जर्मनीके संघीय गण-तंत्रने आरंभसे ही अपने पड़ोसियो और जर्मनीके भूतपूर्व शत्रुओका विश्वास प्राप्त करनेकी चेष्टा की है । इस चेष्टामे उसे अनेक राष्ट्रोकी सद्भावना मिली है और इन कई वर्षोमें जर्मनीके समक्ष उपस्थित अत्यन्त जटिल समस्याओंको सुलझा लिया

गया है जिसके फलस्वरूप लोग अपने सभी पुराने झगड़े भूल गये हैं। उदाहरणके लिए यहाँ भारतकी समस्याका उल्लेख किया जा सकता है।

आज ताकतकी धौंस दिखलाकर राजनीतिक लक्ष्य नहीं प्राप्त किये जा सकते। पारमाणविक शस्त्रास्त्रोंके युगमें युद्धकी नीति जारी नहीं रखी जा सकती। इसी लिए जर्मन गणराज्यने सोवियत रूस और पूर्वी यूरोपके सभी राष्ट्रोंके समक्ष यह सुझाव रखा है कि वे परस्पर मिलकर समस्त प्रमुख राजनीतिक समस्याओंके समाधानके लिए ताकतकी धौंस दिखाने या उसके प्रयोग करनेकी बातको बाध्यता छोड़ देनेका निश्चय कर लें। हमने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि हमारे इस प्रस्तावमें जर्मनीके विभाजनकी समस्या भी शामिल रहेगी। शक्ति-त्यागके ऐसे ही आधारपर, जैसा कि गांधीका विचार था, सत्यका संधान शुरू किया जा सकता है। हम इसी आधारपर न्याय और सत्यको उस शान्ति-मार्गके निर्देशक सिद्धांतोंके रूपमें ग्रहण कर सकेंगे जिसपर चलनेका सभी राष्ट्रोंको अधिकार है।

गांधी उम्मीद करते थे कि बल-प्रयोगके त्याग और अपने लक्ष्योंके प्रति निष्ठासे वे उपनिवेशवादी ताकतोंको यह अनुभव करा देंगे कि उनके राष्ट्रकी जनता भी सभी राष्ट्रोंके शान्तिपूर्ण सहयोगमें सहायता दे सकती है। उनकी यह धारणा गलत नहीं थी। आज यदि राजनीति एक ऐसे नैतिक आधारपर प्रतिष्ठित हो गयी है, जिसे बहुसंख्यक राष्ट्रोंका सम्मान प्राप्त है तो इसका अधिकांश श्रेय महात्माके प्रयत्नोंको ही है और इसके लिए हम उनके आभारी हैं।

गांधीने अपने जीवनमें ही भारतको स्वतन्त्र होते हुए देख लिया। फिर भी स्वतन्त्रताका दिन उनके लिए अनशन और अनुचिन्तनका दिन था। वे १५ अगस्त १९४७ में भारतमें आयोजित समारोहों और खुशियोंमें शामिल नहीं हुए। उनके लिए यह दिन अन्तर्दर्शनका दिन था। वे उस दिन यह सोच रहे थे कि इतने बड़े बलिदानोंसे क्या चीज मिली है और आगे भविष्यमें और कितने बड़े काम करने हैं।

गांधी जिस प्रकारसे अपनी जनताको बिना बल-प्रयोग किये प्रतिरोध करनेकी शिक्षा दे रहे थे और इसके साथ ही जिस प्रकार उसकी एकताके नये सूत्रमें भी बाँधते जा रहे थे, हम लोग यूरोपमें उसका बड़ी सावधानीसे अध्ययन कर रहे थे। हम लोगोंने गांधीमें एक ऐसे गंभीर धार्मिक व्यक्तिका दर्शन किया था जिसकी भाषाको धार्मिक परंपरासे अनुप्राणित उनके देशका विशाल जनसमुदाय समझता था, हम एक ऐसे राजनेताको देख रहे थे जिसने अपनी जनताको समान लक्ष्य और बड़ी कल्पना प्रदान की थी। इतना ही नहीं, हिंसासे भर

इस विश्वमें हमें उनमें अहिंसाके एक महान् संदेशवाहकके भी दर्शन हुए। उन्हें कोई भी शक्ति अपने सिद्धांतोंसे भ्रष्ट नही कर सकती थी। उनके इन सिद्धांतोंमें बड़ी ताकतोंकी पारस्परिक प्रतिस्पर्धाकी परम्परागत नीति अथवा वर्ग-संघर्षकी किसी भी क्रांतिकारी प्रणालियों के लिए कोई गुंजाइश नही थी। गाधी एक ऐसे सर्वथा नये मंचपर आरूढ हो गये थे जहाँ पहुँचकर अनेक पुरानी पड गयी अवधारणाएँ स्वत समाप्त हो गयी।

गाधीकी गणना इस संसारके महापुरुषोंमे होगी क्योंकि उन्होने मानव-जातिकी सेवा की और राष्ट्रोंके शान्ति एवं स्वतन्त्रताके साथ जीवन-यापन करनेके अधिकारके लिए संघर्ष किया। विभाजित यूरोपके मध्य अवस्थित जर्मनी इसका महत्त्व गभीरतासे हृदयगत करता है। उस महात्माको, जिसे भारतीय जनता राष्ट्रपिता मानती हे, जो सम्मान और सराहना दे रही है, उसमे जर्मन जनता भी शामिल है।

जे० बी० कृपालानी

गांधीजीके आध्यात्मिक विचार

गांधीजी कोई ऐसे दार्शनिक या सिद्धान्तवादी नहीं थे, जो जीवन और उस
विभिन्न स्वरूपों और यदि संभव हो तो उसके अन्तिम लक्ष्यकी तर्कसंगत व्याख्
करता हुआ किसी क्रमबद्ध दार्शनिक सिद्धान्तका निरूपण करता है। गांधीजी
सारे विचार समय-समयपर उनके सामने आनेवाली स्थितियों और विभि
समस्याओंके समाधान खोज निकालनेके फलस्वरूप विकसित हुए हैं। यदि का
व्यक्ति गांधीजीके जीवन और कृतित्वको समझना चाहता है तो उसे उनके आध्या
त्मिक विचारों एवं आदर्शोंको सामूहिक अन्याय और निरंकुशताके विरुद्ध चलाये
गये उनके संघर्षों और क्रियान्वित किये गये सुधारात्मक कार्यक्रमोंके प्रकाशमें ह
समझनेका प्रयत्न करना होगा।

गांधीजी भारतमें ब्रिटिशराजकी स्थापनाके फलस्वरूप वर्तमान सभी विचारों
आदर्शों और संस्थाओंके पुनर्मूल्यांकनके लिए बाध्य हो गये। इस सम्पर्कका सब
प्रथम प्रभाव स्वभावतः धार्मिक क्षेत्रपर पड़ा था, क्योंकि भारतकी समस्त विचार
धाराएँ, आदर्श और संस्थाएं न्यूनाधिक रूपसे धर्मसे ही सम्बद्ध थीं। इस प्रभाव
के परिणाम स्वरूप ब्रह्मसमाज और प्रार्थनासमाज जैसे सुधारवादी सम्प्रदायोंका
विकास हुआ था। इन नये सम्प्रदायोंके विकासके साथ ही सनातनी हिन्दू-समाजमें
भी हिन्दू धर्मके आधारभूत सिद्धान्तोंकी पुनर्व्याख्या एवं पुनर्निर्वचनके भी आन्दोलन
शुरू हो गये थे। इसीके फलस्वरूप आर्यसमाजकी स्थापना हुई और श्री रामकृष्ण
परमहंस, विवेकानन्द, रामतीर्थ तथा श्रीमती बेसेण्टके नेतृत्वमें थियोसाफिकल
आन्दोलनने हिन्दू धर्मकी नयी व्याख्या प्रस्तुत की। यह आध्यात्मिक उथल-पुथल
हिन्दू-समाजतक ही सीमित थी, क्योंकि हिन्दुओंने ही देशमें अंग्रेजों द्वारा प्रवर्तित नयी
शिक्षा-पद्धतिको अन्य किसी बड़े समुदायकी अपेक्षा विशेष रूपसे ग्रहण किया था।

गांधीजीका पालन-पोषण धार्मिक वातावरणमें हुआ था। उनका परिवार हिन्दू

वैष्णव परिवार था। उसपर कुछ हदतक जैन-धर्मका भी प्रभाव था। उनके पिता प्राय: विभिन्न धर्मोके विद्वानोंको धार्मिक समस्याओपर विचार-विमर्शके लिए बुलाया करते थे। इंग्लैण्डमे शाकाहारी भोजनके आग्रहके कारण उनका संपर्क ऐसे आदर्शवादी अंग्रेजोसे हुआ, जिन्होने मांस खाना छोड दिया था और निरामिष-भोजी ही गये थे। उनपर ब्रिटेनकी १९वी शतीकी उदार विचार-धाराका भी प्रभाव पडा। उन्होने बाइबिलका भी अध्ययन किया, खासकर न्यूटेस्टामेण्टका। वे टॉल्सटॉय, एमर्सन और थोरोकी रचनाओसे भी परिचित हुए। दक्षिण अफ्रीकामे उन्हे विभिन्न राष्ट्रो, जातियो और रंगोंके लोगोके बीच काम करना पडा था। वहाँ वे ईसाई मिशनरियोके भी सम्पर्कमे आये। कुछ ईसाई मिशनरी उनकी आत्माके उद्धारके लिए उन्हें 'सच्चे धर्म' ईसाइयतमे धर्म-परिवर्तन द्वारा शामिल कर लेनेको उत्सुक थे। कुछ ऐसे मिशनरी भी थे, जिन्हे उनकी आत्माके उद्धारकी उतनी चिन्ता न थी, जितनी उनके उन कार्योंमे रुचि लेनेकी, जिन्हे वे दक्षिण अफ्रीकाके नागरिक बन गये अपने देशवासियोके उत्थानके लिए सम्पादित कर रहे थे। इन सारे सम्पर्कोसे उनका विश्वास अपने हिन्दू-धर्ममे ही अधिकाधिक दृढ होता गया। किन्तु उनके हिन्दू-धर्मका सबध उसके उन बाह्यरूपो, अनुष्ठानो और संस्थाओसे नहीके बराबर था, जिनका उसके अन्दर विकास हो गया था। वे ऐसी सारी चीजोको अस्वीकार कर देते थे, जो तर्क अथवा मानवताके विरुद्ध जाती हो। यद्यपि वे अपनेको सनातनी हिन्दू कहा करते थे, किन्तु उन्होने अस्पृश्यताकी अशुभ और क्रूर प्रथाका समर्थन नही किया। भारतमे जाति-प्रथा जिस रूपमे प्रचलित थी, उसमे भी उनका कोई विश्वास नही था। इसके बारेमे वे कहते हैं .

> ईश्वरने मनुष्योको श्रेष्ठता या निम्नताका बिल्ला लगाकर नही पैदा किया है, ऐसा कोई भी शास्त्र, जो किसी भी स्त्री या पुरुषको उसके जन्मके कारण छोटा या अस्पृश्य मानता हो, हमारी श्रद्धाका भाजन नही हो सकता और न हम उसके आदेशोको मान सकते है, यह तो स्वयं परमात्मा और उस सत्यका निषेध है, जो परमात्माका ही रूप है।

वे हिन्दू-पर्वो या छुट्टियोको नही मनाते थे। वे मन्दिरोमे कभी सौजन्यवश भले ही चले जायँ, वैसे शायद ही कभी गये हो। इसपर भी यदि किसी मदिरमे अछूतोका प्रवेश निषिद्ध हो तो उसमे वे किसी हालतमे प्रवेश नही कर सकते थे। उनके विचारसे मूर्तिपूजा और मन्दिरोमे जाना उन लोगोके लिए अच्छा है, जिन्हे अपने धर्ममे निष्ठा रखनेके लिए किसी सहारेकी जरूरत होती है। उनका हिन्दू-धर्म उपनिषद् और गीताके उपदेशोपर आधृत था। हिन्दूधर्मके अन्य सुधा-

रोंके समान उन्होंने भी गीतापर भाष्य लिखा था। उन्होंने अपने जीवनको सम्पूर्णतः इसी शास्त्रके मौलिक उपदेशोंके अनुसार ढाला था। वे गीतामें वर्णित कर्मयोगी थे। गीताके उपदेशोंके अनुसार ही उनकी यह मान्यता थी कि सभी शुभ कर्मोंका समापन भगवदर्पणका भावनासे करना चाहिए। उनके दरिद्रनारायण ही भगवान थे। दीन-हीन पददलित जनोंकी सेवा करना ही उनके लिए भगवान की सेवा करना था। वे कहते हैं

> मैं मानव-जातिकी सेवाके माध्यमसे ही भगवानका दर्शन प्राप्त करनेकी चेष्टा कर रहा हूँ क्योंकि मुझे यह मालूम है कि भगवान् न तो स्वर्गमें रहता न पातालमें। वह प्रत्येक व्यक्तिमें वर्तमान है।

वे यह भी कहते हैं कि मैं जब भी किसी संकटमें पड़ा हूँ मैंने गीताका सहारा लिया है। वह मेरे जीवनकी सान्त्वना रही है। अभीप्सित फलोंके पीछे दौड़े बिना यज्ञकी भावना और निर्द्वन्द्व एवं समाहित चित्तसे किये गये निष्काम कर्मोंसे मनुष्य जीवनके उस सर्वोत्तम तत्त्वकी उपलब्धि कर सकता है जिसे "मोक्ष" अथवा हिन्दू धर्मके सर्वश्रेष्ठ चिंतनकी भाषामें "आत्मसाक्षात्कार" कहा गया है। इसके विषयमें वे कहते हैं

> मनुष्यका परमपुरुषार्थ और उसका चरम लक्ष्य परमात्माका साक्षात्कार है अतः उसके राजनीतिक सामाजिक और धार्मिक सभी प्रकारके कार्योंका निर्देशन परमात्माके साक्षात्कारके इसी चरम लक्ष्य द्वारा होना चाहिए। मानवमात्रकी तात्कालिक सेवा इस प्रयासका अभिन्न अङ्ग बन जाता है क्योंकि भगवत्प्राप्तिका एकमात्र मार्ग भगवानको उसकी सृष्टिमें देखना और उसके साथ एकाकार हो जाना है। यह केवल सबकी सेवा द्वारा ही किया जा सकता है।

गांधीजीके लिए धर्म और नैतिकतामें कोई अन्तर नहीं था। दोनों एक ही वस्तु हैं। इन दोनों शब्दोंको एक-दूसरेके पर्यायके रूपमें ग्रहण किया जा सकता है। एक कर्मयोगीके लिए जिसे जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें कार्य करना है यह स्वाभाविक ही है। गांधीजी यह नहीं मानते थे कि समाजको धारण करनेवाले अन्य कार्योंसे धार्मिक क्रिया-कलाप किसी भी मानेमें भिन्न हैं। उनकी दृष्टिमें इस नैतिकताके मौलिक सिद्धान्त सत्य और अहिंसा हैं। उन्होंने इन दोनों सिद्धान्तोंको उन एकादश सिद्धान्तोंका व्यापक रूप दिया था, जो श्लोकरूपमें निबद्ध होकर उनकी प्रातः एवं सायंकालीन प्रार्थनाओंमें पढ़े जाते थे। ये एकादश सिद्धान्त इस प्रकार है

अहिंसा-सत्य-अस्तेय-ब्रह्मचर्य-असग्रह-शरीरश्रम-अस्वाद-सर्वत्र भयवर्जन-सर्वधर्म-समानत्व स्वदेशी-स्पर्शभावना

इनमेसे प्रथम पाँच हिन्दू और जैन-धर्मके मौलिक नैतिक सिद्धान्त है। अन्य छ सिद्धान्त समयकी आवश्यकताओके अनुरूप इन्हीसे निष्पन्न हुए है।

ससारके सभी महान् धर्मोके आधारभूत नैतिक मूल्योमे विश्वास रखनेके कारण उन्होने कहा था कि मेरे पास संसारको देनेके लिए कोई नयी चीज नही है। "सत्य पर्वतोके समान प्राचीन है।" वे प्राय कहा करते थे कि उन्हे कोई नये सम्प्रदायकी इच्छा नही है। वास्तविकता तो यह है कि पन्थ या सम्प्रदायोका निर्माण धर्मोपदेशक या सुधारक नही करते, इनका निर्माण उनके अनुयायी ही करते है। ईसामसीहने कहा था कि "मै धर्म (विधान) को नष्ट करने नही आया हूँ, मै उसका पालन करने आया हूँ।" इसीलिए यह कहा जा सकता है कि ईसा-मसीह दुनियाके पहले ईसाई नही थे। किसी भी धर्मका पूर्णत पालन तभी हो सकता है, जब उसके अन्तर्गत सारी मानवता आ जाय। गाधीजीने चाहे जो भी कहा हो, वर्तमान और भविष्यकी असख्य पीढियोके वे लोग ही उनके सच्चे अनु-यायी हो सकते है जो उनके विचारो और आदर्शोको इसी भावनासे ग्रहण करते हो। इसमे भी, जैसा कि ईसामसीहने कहा था, "पहला व्यक्ति अन्तिम व्यक्ति होगा और अन्तिम व्यक्ति पहला व्यक्ति होगा।"

गीताके अनुसार उनका यह भी विश्वास था कि सभी धर्म एक ही लक्ष्यकी ओर ले जानेवाले विभिन्न मार्ग है। वे कहते है

> विभिन्न धर्म एक ही केन्द्रकी ओर जानेवाले विभिन्न मार्ग है। जबतक हम एक ही लक्ष्यकी ओर पहुँच रहे है, हम किस मार्गका अनुसरण कर रहे है, उसका क्या महत्त्व है? वास्तविकता तो यह है कि जितने व्यक्ति है, उतने ही धर्म है जबतक विभिन्न धर्मोका अस्तित्व बना हुआ है, प्रत्येकके लिए किसी-न-किसी प्रकारका विशिष्ट प्रतीक भी अपेक्षित हो सकता है, किन्तु जब यह प्रतीक अन्धश्रद्धाका विषय बन जाता है और कोई व्यक्ति अपने धर्मको दूसरोके धर्मसे श्रेष्ठ बतानेमे इसका एक साधनके रूपमे प्रयोग करने लगता है, तो इसे त्याग देना ही श्रेयस्कर है।

इसीलिए वे सभी धर्मोके प्रति सहिष्णु थे। इतना ही नही, वे सभी धर्मोकी बुनियादी शिक्षाओको मानते थे। गाधीजीके अनुसार ये शिक्षाएँ लोगोको अपने दैनिक कर्तव्योके पालनमे मार्ग-दर्शन कराती है, क्योकि इन सभी कार्योको नैति-

सबके मौलिक सिद्धान्तके अनुरूप होना ही चाहिए। संसारके सभी महान् धर्मों के मौलिक सिद्धान्त एक जैसे हैं। गांधीजी कहते हैं :

> मैं दुनियाके समस्त महान् धर्मोंके आधारभूत सत्यमें विश्वास करता हूँ। मेरा यह भी विश्वास है कि ये सभी धर्म ईश्वरीय हैं और जिन लोगोंके प्रति ये प्रकट किये गये हैं, उनके लिए ये आवश्यक थे। मैं यह विश्वास करता हूँ कि यदि हम विभिन्न धर्मोंके धार्मिक ग्रन्थोंको उनके अनुयायियोंकी दृष्टिसे पढ़ें तो हमें पता चल जायगा कि ये सभी मूलतः एक हैं और सभी एक-दूसरेके लिए सहायक हैं।

यद्यपि सभी धर्मोंकी सत्यतामें उनका विश्वास था, फिर भी वे ऐसा नहीं मानते थे कि उनमें कोई त्रुटि हो ही नहीं सकती। ये सारे धर्म आखिर आदमियोंके ही रचे हुए हैं, अतः उनमें भी मानवोचित न्यूनताएं मिलेंगी। वे कहते हैं :

> काफी समयतक अध्ययन और अनुभव करनेके बाद मैं इस निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि (१) सभी धर्म सच्चे हैं, (२) सभी धर्मोंमें कुछ न कुछ त्रुटियाँ अवश्य मिलती हैं।

वे आगे कहते हैं :

> मैं वेदोंकी ही एकान्तिक दिव्यतामें विश्वास नहीं करता। मैं बाइबिल, कुरान और जेंद अवस्तामें भी उसी प्रकारकी दिव्य प्रेरणाकी अवस्थिति मानता हूँ जैसा कि वेदोंमें है। हिन्दू धर्म-ग्रन्थोंमें विश्वास होनेके कारण यह आवश्यक नहीं है कि मैं उनके प्रत्येक शब्द और प्रत्येक छन्दको दिव्य प्रेरणासे उद्भूत मान लूँ। कोई भी व्याख्या चाहे वह कितनी भी पाण्डित्यपूर्ण क्यों न हो, यदि वह तर्क अथवा नैतिक भावनाके प्रतिकूल है, तो मैं उसे माननेको तैयार नहीं हूँ।

हम कह चुके हैं कि गांधीजी धर्म और नैतिकतामें कोई भेद नहीं करते थे। वे धर्मको आजके प्रचलित अर्थोंमें नहीं ग्रहण करते थे। वे धर्मको उसी अर्थमें स्वीकार करते थे, जिस अर्थमें प्राचीन ऋषियोंने उसका प्रतिपादन किया है। हमारे सारे कार्योंमें इस धर्मकी व्याप्ति होनी चाहिए और इन्हें इसीसे अनुशासित भी होना चाहिए। धर्म वह है, जिससे धारण होता है।

चूँकि गांधीजी संसारके सभी महान् धर्मोंके मौलिक उपदेशोंमें विश्वास करते थे, इसीलिए अपने सहधर्मियोंकी तरह वे धर्म-परिवर्तनकारी अभियानमें विश्वास नहीं करते थे। उनके आश्रममें मुसलमान, ईसाई और बौद्ध सभी रहते थे, किन्तु

उन्होने कभी उन्हे हिन्दू वनानेकी कोशिश नही की। यही नही, उन्होने अपनी मान्यताके हिन्दू-धर्मंमे भी उन्हे परिवर्तित करनेका कभी कोई प्रयास नही किया। एक वार मीरावेनने हिन्दू वननेकी इच्छा प्रकट की थी। इसपर गाधीजीने उन्हे यही कहा था कि तुम अपने ही धर्ममे वनी रहो। हिन्दू बनकर तुम अपना नैतिक स्तर और उन्नत नही वना लोगी। किसी व्यक्तिके लिए अपना धर्म-परिवर्तन करना आवश्यक नही है। उसे अपने ही धर्मके मौलिक सिद्धान्तोके अनुरूप आचरण करना चाहिए। आवश्यकता इस वातकी है कि हिन्दू अच्छा हिन्दू वने, मुसलमान अच्छा मुसलमान वने और ईसाई अच्छा ईसाई वननेकी कोशिश करे। भारतके ईसाई पादरियोसे उन्होने कहा था कि आप यहाँ जो मानवतावादी कार्य कर रहे है, वह वहुत अच्छा है, किन्तु यदि आप यह कार्य दूसरे धर्मावलवियोको ईसाई वनानेकी गरजसे कर रहे है तो इससे आपके कार्यका महत्त्व घट जायगा। वे कहते है ·

> मै इसमे विश्वास नही करता कि लोग दूसरोसे अपने धर्मकी चर्चा करे और खासकर उनका धर्म-परिवर्तन करनेकी गरजसे करे। धर्ममे वतलानेकी कोई गुंजाइश नही है। धर्म जीनेकी वस्तु है। उसके अनुसार जीवनमे आचरण करना चाहिए। ऐसा होनेपर तो वह स्वयं अपना प्रचार कर लेता है।

वे यह नही मानते थे कि धर्मका आचरण किसी पर्वतीय गुफा या शिखरपर होता है। धर्मको सामाजिक मनुष्यके सभी कार्योंमे प्रकट होना चाहिए। वे कहते है .

> मै धर्मको मानव-जातिके अन्य क्रियाकलापो की तरह नही समझता। कोई भी क्रिया धार्मिक या अधार्मिक हो सकती है। यह उसके पीछे रहनेवाली भावनापर निर्भर है। अतएव मेरे लिए ऐसी कोई वात नही है कि मै धर्मके लिए राजनीति छोड दूँ। मेरे लिए तो छोटासे छोटा कार्य भी, जिसे मै धर्म समझता हूँ, उसके द्वारा अनुशासित होता है।

वे ईश्वरमे विश्वास करते थे, किन्तु उनके लिए तो नैतिक विधान अर्थात् धर्म ही ईश्वर था। अतएव उनका यह विचार था कि जिन लोगोका विश्वास नैतिक विधानमे होता है, ऐसे सभी लोग आध्यात्मिक है, चाहे वे तथाकथित नास्तिक ही क्यो न हो। वे कहते है कि "सत्य ही ईश्वर है।"

> मेरे लिए ईश्वर सत्य और प्रेम है, ईश्वर ही सदाचरण और नैतिकता है, ईश्वर ही निर्भयता है। ईश्वर प्रकाश और जीवनका स्रोत है, फिर

भी वह इन सबसे ऊपर और परे ह ।

आगे वे कहते ह

> इसम काइ सन्देह हो ही नहा सक्ता कि सजीव प्राणियोंकी यह सृष्टि एक विधान द्वारा शासित है। यदि आप विधानकी कल्पना विधायकके बिना ही करते हो तो म कहूँगा कि स्वय विधान ही विधायक ह, वही ईश्वर ह। जब हम विधानकी प्रार्थना करते हैं तो हम विधानको जानने और उसका पालन करनेकी ही अभिलाषा व्यक्त करत ह। हम वही हा जाते हं, जिसकी हम अभिलाषा करते ह।

वे प्राय राम-नामका उच्चारण किया करते थे फिर भी उन्होने स्पष्ट कर दिया था कि म जिस रामका भजन करता हूँ वह सीतापति अथवा दशरथनन्दन राम नही ह, मेरा राम घट घटव्यापी अन्तर्यामी राम ह। एसा मानत हुए भी वे प्राचीन धर्मोपदेशकोंकी भाँति साधारण नर-नारियोंके उपास्य उस राम और कृष्णका विरोध नहीं करते थ, जो सगुण और साकार ह और जो सर्वोच्च सत्ता होत हुए भी धमकी सस्थापना और अधमके नाशके लिए अवतार ग्रहण करता ह। इसके पीछे उनका उद्देश्य यह था कि साधारण लोग अपन धम पथपर दिग्भ्रान्त न हो। उनका अपना विश्वास निर्गुण और निराकार भगवान्में ही था। वे स्पष्ट रूपमें यह स्वीकार करते ह कि तर्क द्वारा भगवान्का अस्तित्व सिद्ध नहीं किया जा सकता, फिर भी उनकी सत्ता तर्कके विरुद्ध नही ह। म प्रत्यायक तर्कों द्वारा भगवानकी सत्ता भले ही सिद्ध न कर सकू किन्तु अपनी अन्तरात्मामें उसका अनुभव अवश्य करता हूँ। वे कहत ह

> प्रत्येक वस्तुमें एक अनिर्वचनीय रहस्यमय शक्ति व्याप्त ह। म उसका अनुभव करता हूँ भले ही म उसे देख न पाऊ। यह वह अदृश्य शक्ति ह जो अपना अनुभव करा देती है किन्तु फिर भी सभी प्रमाणोंसे पर रहती ह। कारण यह ह कि वह मेरे इन्द्रियानुभवगम्य सभी विषयोंसे विलक्षण ह। वह इन्द्रियातीत ह। फिर भी कुछ हद तक ईश्वरकी सत्ताकी सिद्धिके लिए तर्क दिये जा सकते हैं।
>
> मुझे अस्पष्ट रूपमे इसका प्रत्यक्ष ज्ञान होता रहता ह कि मरे चारो ओर की प्रत्येक वस्तु बराबर बदल रही ह नष्ट हो रही है फिर भी इन सारे परिवर्तनोंके मूलमें कोई एसी जीवन्त शक्ति ह, जो अपरिवर्तनीय ह जो इन सब चीजोंको धारण किये हुए ह जो इनका सृजन और प्रलय करता ह और जिसमेंसे य सारी चीजें पुन प्रकट होती रहती ह। यह सब

> व्यापी शक्ति ही आत्मा या परमात्मा है। चूँकि इन्द्रियगोचर सभी विषय नाशवान् है, अत. एकमात्र उसीकी सत्ता है।
>
> यह शक्ति उपकारी है या अपकारी ? मै तो इसे पूर्णत उपकारी ही मानता हूँ क्योकि मै यह देखता हूँ कि मृत्युके बीच जीवन, असत्यके मध्य सत्य और अन्धकारके मध्य प्रकाश बराबर बना रहता है। इससे मै यही निष्कर्ष निकालता हूँ कि परमात्मा ही जीवन, सत्य और प्रकाश है। वही प्रेम है। वही परम कल्याण है।

गाधीजी यह भी कहते थे कि प्रत्येक युग और देशके सन्त और महात्माओने परमात्मामे निष्ठा व्यक्त की है। उन्होने अपने जीवन और कार्योसे हमारे सामने परमात्माका जो निष्पक्ष साक्ष्य प्रस्तुत किया है, वह हमारे लिए अन्तिम होना चाहिए।

परमात्मामे विश्वास करते हुए गाधीजीकी प्रार्थनामे भी अटूट निष्ठा थी। आश्रममे प्रतिदिन प्रात. और सायकालीन प्रार्थनाएँ हुआ करती थी। जब वे दौरे पर रहते थे, सायकालीन प्रार्थनाएँ सार्वजनिक रूपसे हुआ करती थी और उनमें अधिकाधिक जनता शामिल होती थी। उनकी प्रार्थनामे कोई मूर्ति या प्रतीक-चिह्न नही रखा जाता था। ऊपर मै बता चुका हूँ कि मूर्ति-पूजामे उनका विश्वास नही था, किन्तु जिन लोगोके लिए ऐसे प्रतीक अपेक्षित हो, वे इनकी पूजा कर सकते है। इसपर गाधीजीको कोई आपत्ति न थी। वे कहते है.

> मेरा मूर्ति-पूजामे विश्वास नही है। मूर्ति मुझमे श्रद्धाकी कोई भावना नही पैदा करती है। किन्तु मेरा ऐसा ख्याल है कि मूर्ति-पूजा मानव-स्वभावका अंग है। हम प्रतीकवादके पीछे दौडते रहते है '' मै प्रार्थनामे मूर्तियोका प्रयोग निषिद्ध नही करता। जहाँतक मेरा सवाल है, मै निराकारकी ही उपासना करता हूँ। उपासना-पद्धतिमे किसी एकको वरीयता देना संभवत अनुचित है। कोई पद्धति किसीको रुचती है और उसके अनुकूल होती है, तो कोई अन्य पद्धति दूसरेके अनुकूल होती है, अतएव किन्ही दो वस्तुओमे तुलना करना अनुचित है।

उनकी प्रार्थनाएँ किसी उद्देश्य विशेषके लिए सकाम भावसे किये गये निवेदन नही होती थी। वे परमात्माकी स्तुतियाँ और आत्मोच्छ्वास हुआ करती थी। उनका एक यह उद्देश्य भी था कि मनुष्य शक्तिशाली बने और सासारिक प्रलोभनोसे दूर रहे। वे कहते है

> प्रार्थनाने मेरे जीवनकी रक्षा की है। इसके बिना मैं कभीका पागल हो गया

होगा। मैंने सार्वजनिक और निजी जीवनमें अनेक कटु-कटुतर अनुभव प्राप्त किए हैं। उनमें मैं अस्थायी रूपसे निराश हो जाता था। प्रार्थनाके कारण ही मैं इस निराशासे मुक्त हो सका हूँ। निराशा सत्यके समान मेरे जीवनका अविच्छिन्न अंग नहीं था। मैं कभी एक ऐसे संकटमें फँस गया था कि मैं प्रार्थना किये बिना सुखी हो ही नहीं सकता। ऐसी स्थितिमें प्रार्थना स्वतः आरम्भ हो गया। समय बीतनेके साथ-ही-साथ ईश्वरमें मेरा विश्वास दृढ़ होता गया और प्रार्थनाकी इच्छा दुर्दमनीय होती गयी। जीवन प्रार्थनाके बिना नीरस और सूना-सूना लगने लगा। मैं दक्षिण अफ्रीकामें ईसाइयोंकी प्रार्थनामें शामिल हुआ हूँ किन्तु उसमें मेरा मन न लग सका। आगे मेरा इसमें शामिल होना मुश्किल हो गया। ईसाई लोग बीचमें ईश्वरसे तरह-तरहकी विनती करते थे यह मुझे पसंद न था। आरम्भमें ईश्वर और प्रार्थनामें मेरा अविश्वास था। और इस अविश्वासके कारण मुझे जीवनमें किसी प्रकारकी शून्यताका भी अनुभव नहीं होता था किन्तु आगे चलकर जीवनमें एक ऐसी अवस्था आ गयी कि मैं यह अनुभव करने लगा कि जैसे शरीरके लिए भोजन अपरिहार्य है उसी तरह आत्माके लिए प्रार्थना अपरिहार्य है। वास्तविकता तो यहाँ तक है कि शरीरको स्वस्थ रखनेके लिए कभी-कभी उपवास आवश्यक हो सकता है, किन्तु प्रार्थनाका उपवास कभी संभव नहीं है। प्रार्थना कभी भी रोकी नहीं जा सकती। प्रार्थनासे कभी मन नहीं भर सकता। दुनियाके तीन महान शिक्षकों बुद्ध ईसामसीह और मुहम्मदने हमारे सामने इस तथ्यका अकाट्य साक्ष्य प्रस्तुत कर दिया है कि उन्हें प्रार्थनासे ही आलोक प्राप्त हुआ और वे प्रार्थना बिना जीवित नहीं रह सकते थे। करोड़ों हिन्दू मुसलमान और ईसाई एकमात्र प्रार्थनासे ही जीवनमें सान्त्वना और विश्रान्ति प्राप्त कर सकते हैं। आप उन्हें झूठा, प्रवञ्चनापूर्ण और दिग्भ्रान्त कह सकते हैं, किन्तु मैं तो यही कहूँगा कि मुझ जैसे सत्यान्वेषीके लिए इस "मिथ्या"के प्रति आकर्षण है। यह किसीके लिए भले ही "मिथ्या" हो, इसने मुझे एक ऐसा सहारा दिया है जिसके बिना मैं एक क्षण भी जीवित नहीं रह पाता। राजनीतिक क्षितिजपर घिरी निराशा जिस समय मुझे घूरकर देख रही थी, उस समय भी मेरी शान्ति नष्ट नहीं हुई। असलियत तो यह है कि मैंने लोगोंको अपनी इस प्रकारकी शान्तिसे ईर्ष्या करते हुए देखा है। वह शान्ति प्रार्थनासे ही आती है। मैं विद्वान् व्यक्ति

नही हूँ, किन्तु मै विनम्रतापूर्वक अपनेको प्रार्थनावान् व्यक्ति कह सकता हूँ। भगवान्‌की प्रार्थना किस रूपमे की जाय, इस संबंधमे मैं उदासीन हूँ और मुझे कुछ नही कहना है। इस सवधमे प्रत्येक व्यक्ति अपना निर्णय करनेके लिए स्वतन्त्र है। किन्तु इतना अवश्य है कि उपासनाकी कुछ सुनिश्चित पद्धतियाँ बन चुकी है—कुछ ऐसे मार्ग तैयार हो चुके है, जिन-पर प्राचीन कालके सन्त और महात्मा जा चुके है। इन मार्गोका अनुसरण करना अधिक सुरक्षित है। मै अपना निजी साक्ष्य दे चुका। अब प्रत्येक व्यक्ति स्वयं करके देखे कि दैनिक प्रार्थनासे उसके जीवनमे क्या नया परिवर्तन होता है। इसका अनुभव वह स्वय प्राप्त करे।

उनकी प्रार्थना-सभामे किसी प्रकारके देशभक्तिके गीत नही गाये जाते थे। देश-प्रेम वहुत अच्छा और स्पृहणीय है किन्तु वह ईश्वर-प्रेमका स्थान नही ले सकता है। प्रार्थना-सभाओमे वे जनताका विश्वास प्राप्त करनेका भी प्रयत्न करते थे और उसे सरकार तथा राष्ट्रीय संघटनके विशिष्ट व्यक्तियोकी परिषदोकी गतिविधियोसे परिचित कराते थे। वे ऐसा इसलिए करते थे कि उन्हे उस राष्ट्रीय सघर्षमे प्रबुद्ध जन-सहयोगकी अपेक्षा थी, जिसका उद्देश्य विदेशी शासनके जुएसे देशको मुक्त करना मात्र ही नही था, अपितु जनताका राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक विकास करना भी था। वे प्राय. कहा करते थे कि जिस हदतक भारतका सुधार हो सकेगा, उसी हदतक वह आजाद होगा। सुधरा हुआ भारत ही स्वतन्त्र भारत बनेगा।

गाधीजी आत्मानुशासनमे विश्वास करते थे। वे यह अनुभव करते थे कि उनकी अपनी निजी प्रगति और जीवनमे वे जो कुछ प्राप्त करनेमे समर्थ हो सके है, वह इसीलिए सभव हो सका है कि वे सदासे अनुशासित जीवन-यापन करते रहे है। वे गीताके अनुसार यह मानते थे कि "युक्ताहार-विहार, युक्त चेष्टा और उपयुक्त निद्रा एवं जागतिका प्रयोग करनेवाले व्यक्तिका योग दु खोका नाश करने-वाला होता है।"[१]

वे समय-समयपर उपवासमे भी विश्वास करते थे। उनके विचारसे इससे ध्यान केन्द्रित करनेमे सहायता मिलती है। इसके अतिरिक्त उपवाससे पवित्रता भी प्राप्त होती है। कभी-कभी वे उन लोगोकी नैतिक त्रुटियोके लिए भी, जो उनके साथ रहते और काम करते थे, उपवास किया करते थे' क्योकि वे उनके आचरण-के लिए अपनेको जिम्मेदार मानते थे। यदि उनके सहकर्मी कोई गलत व्यवहार करते है तो वे यह समझते थे कि इसके लिए उनके अपने अन्दर रहनेवाली कोई

की एक ऋचामे सूर्यकी पुत्री सूर्याके विवाहका वर्णन आता है। दो प्रेमी हृदयोंके ऐच्छिक संयोग एवं पवित्र धार्मिक बंधनके रूपमे विवाहकी सत्ता ज्ञापित करनेवाला यह महत्त्वपूर्ण मन्त्र मानवीय चिन्ताधारामे मिलनेवाला प्राचीनतम उदाहरण है। इस मन्त्रसे पता चलता है कि उस समय नारी अपने पतिकी सम्पत्ति एवं विपत्ति दोनोंमे उसकी आजीवन सहचरी ही नही थी, अपितु उसकी गृहलक्ष्मी तथा धार्मिक यज्ञोसे लेकर उसके समस्त क्रिया-कलापोकी सच्ची सहभागिनी भी थी। पतिगृहमे उसका प्रवेश एक अत्यन्त शुभ घटना मानी जाती थी, जिससे वह सम्पूर्ण पतिगृहको माङ्गल्य और आनन्दसे परिपूरित कर देती थी।

वैदिक शब्द दम्पती पति-पत्नीको संयुक्त रूपसे व्यक्त करता है। इसका व्युत्पत्त्यर्थ ही होता है गृहके संयुक्त स्वामी। ऋग्वेद पत्नीपर पतिके आज्ञानुवर्तनका दायित्व भी नही सौंपता। धार्मिक अनुष्ठानो और यज्ञोमे उसके भाग लेनेसे ही उसे समानता एवं गौरवकी यह स्थिति प्राप्त हुई थी, क्योकि इन्ही अनुष्ठानो और यज्ञोको ही उस समय समाजका सर्वोच्च अधिकार माना जाता था। स्त्रीको पुरुषोके समान ही समस्त धार्मिक सस्कारोका अधिकार प्राप्त था। पत्नीको पतिके साथ सभी प्रकारकी धार्मिक प्रार्थनाओ और यज्ञोको करनेका अधिकार तो प्राप्त था ही, वह पतिकी अनुपस्थितिमे ये सारे कार्य स्वयं अकेले भी कर सकती थी। इससे भी बढकर हमे ऋक्संहितामे अनेक ऐसी ऋचाएँ मिलतीहै, जो केवल स्त्रियोके नाम से ही है। इससे पता चलता है कि उस समय स्त्रियाँ भी तत्त्वदर्शी ऋषि थी और वे ऋचाओकी भी कर्त्री थी। उत्तरकालीन वैदिक वाङ्मयमे ऐसी बीस महिला ऋषिकाओका उल्लेख मिलता है, जिनमे लोपामुद्रा, विश्ववारा, अपाला तथा घोषाके नाम सुविख्यात है।

स्त्रियाँ इतनी उच्चकोटिकी साहित्यिक पदप्रतिष्ठा इसीलिए प्राप्त कर पाती थी कि उन्हे बचपनसे ही शिक्षाकी हर तरह की सुविधा सुलभ थी। लडकोके समान लडकियोका भी कम उम्रमे ही उपनयन-सस्कार हो जाता था। यह प्रथा वैदिक-युगके आगेतक चलती रही है। अथर्वसंहिताके एक मन्त्रसे यह तथ्य पूर्णत प्रमाणित हो जाता है। उसमे कहा गया है कि "वैदिक छात्रा युवक पतिको आकृष्ट कर लेती है।" इससे यह भी पता चलता है कि जीवनमे अच्छी स्थिति प्राप्त करनेके लिए उच्च शैक्षिक योग्यता आवश्यक मानी जाती थी। उत्तर वैदिक कालतक हमे शिक्षित स्त्रियोके दो वर्ग मिलते है (१) सद्योद्वाहा अर्थात् वे स्त्रियाँ, जिन्होने विवाहतक अपनी शिक्षा पूर्ण कर ली हो, और (२) ब्रह्मवादिनी अर्थात् वे स्त्रियाँ, जो विवाह न कर यावज्जीवन अध्ययन जारी रखें। ब्रह्मयज्ञके

कोटिकी हो गयी। इसके बाद स्त्रियोंके सबंधमें एक नयी धारणाका जन्म हुआ : स्त्रियोंमें विनय, नम्रता, आज्ञाकारिता त्याग और आत्म-बलिदानके गुणोंकी सराहना की जाने लगी और इन्हें भारतीय नारीत्वका आदर्श घोषित किया जाने लगा। ऐसी स्त्रियोंको हमारे साहित्यमें भारतीय नारीके आदर्शके रूपमें चित्रित किया गया है और विगत एक हजार वर्षोंमें हिन्दू-संस्कृतिमें इन्हें महान् गौरवका स्थान प्रदान किया गया है। इस ह्रासोन्मुख अवस्थामें भी नारियोंकी एक ऊँची पद प्रतिष्ठा बनी रही है यद्यपि यह एक दूसरे ढंगकी थी। आगे आनेवाले युगमें गांधीजीने भारतीय नारीके त्याग, कष्टसहिष्णुता एवं आत्म-बलिदानके इन्हीं गुणोंकी सराहना करते हुए उसकी आन्तरिक शक्ति और साहसको उद्बुद्ध किया और इस प्रकार उसे स्वातन्त्र्य-संघर्षमें खींच लाये।

अन्तिम शताब्दीतक भारतीय नारीकी यह हीन स्थिति बनी रही। इसके बाद ही पश्चिमी विचारोंके प्रभावसे नारी उद्धारका आन्दोलन शुरू हुआ।

एक दृष्टिसे भारतीय नारी अन्य देशोंकी अपनी बहनोंसे अधिक भाग्यवान् रही है। भारतीय नारियोंको अपने राजनीतिक एवं नागरिक अधिकारोंकी प्राप्तिके लिए बहुत संघर्ष नहीं करने पड़े हैं। पिछले सौ वर्षोंमें हमारे देशकी विचार धाराको प्रभावित एवं निर्देशित करनेवाले हमारे सभी धार्मिक एवं राजनीतिक नेताओं, समाज-सुधारकों तथा शिक्षाशास्त्रियोंने अतीतमें स्त्रियोंके प्रति किये गये अन्यायको समझा है और उन्हें पुनः समानता एवं गौरवका स्थान दिलानेका प्रयत्न किया है। सामान्यतः इन सभी विशिष्ट पुरुषोंकी दृष्टि नारियोंके प्रति सहानुभूति की रही है और उनमेंसे कइयोंने उनके उन्नयनके लिए बड़े उत्साह और लगनसे काम किया है। स्त्री-समाजके उन्नयनमें ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज, एनी बेसेण्टके नेतृत्वमें थियोसाफिकल सोसाइटी तथा इसी प्रकारके अन्य सुधार-आन्दोलनोंने महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। धीरे-धीरे शिक्षाकी सुविधाएँ और नये-नये कार्य क्षेत्र स्त्रियोंके लिए मुक्त होने लगे।

यदि स्त्रियोंके उद्धारकी प्रगति एकमात्र नागरिक सुविधाओंकी प्राप्तितक सीमित रहती तो भारतके सार्वजनिक जीवनमें आज स्त्रियोंको जो महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है उसे पानेमें उन्हें बहुत समय लग जाता। इस मानीमें भी वे भाग्यवान् रही हैं कि उन्हें एक ऐसा नेता मिल गया जिसका यह दृढ़ विश्वास था कि स्त्रियाँ और पुरुष जीवनमें समान साझेदार हैं और इस नेताने स्त्रियोंके उन्नयनको गतिशीलता प्रदान कर दिया। गांधीजी न केवल एक महान् राजनीतिज्ञ थे अपितु मानवताके भी परम प्रेमी थे। अन्याय और असमानताके तो वे घोर शत्रु ही थे। इसीलिए

हरिजनो, स्त्रियो तथा दीन-हीन जनोके प्रति उनके हृदयमे सर्वाधिक अनुराग था। स्त्रियो और उनकी समस्याओंको उनमे एक सहज समझ थी और थी उनके प्रति चिरन्तन एवं गंभीर सहानुभूति। गाधीजीके व्यक्तित्वके इस पक्षपर प्रकाश डालते हुए राजकुमारी अमृतकौर लिखती है .

> हमे उनमे केवल "बापू"—एक बुद्धिमान् पिता ही नही मिला, बल्कि उससे भी कही मूल्यवान् माँ भी मिली, जिसके सर्वव्यापी और अवबोध-पूर्ण प्रेमके सामने हमारे सारे भय और नियन्त्रण लुप्त हो गये।

गंभीर उत्तरदायित्वोका भार वहन करते हुए भी वे इस संबंधमे अपने विचारोको घोपित करने तथा जनताको समाजमे स्त्रियोकी समान साझेदारी स्वीकार करनेकी शिक्षा देनेका कोई भी अवसर हाथसे नही जाने देते थे। वे कहते थे

> स्त्रियोके अधिकारोके विषयमे मै किसी तरहका समझौता करनेको तैयार नही हूँ। मेरी रायमे उसे किसी ऐसी वैधानिक अयोग्यताका शिकार नही होना चाहिए, जिसका शिकार कोई पुरुप न हो। मै कन्याओ और पुत्रोके प्रति पूर्णत समान स्तरपर ही व्यवहार कर सकता हूँ।

उन्होने यह भी कहा था

> स्त्रीको अबला कहना उसपर लाञ्छन लगाना है; यह स्त्रीके प्रति पुरुष-का अन्याय है। यदि शक्तिका मतलब पशुबलसे है तो निश्चय ही स्त्रीमे पुरुपकी अपेक्षा कम पशुत्व है। यदि शक्तिसे तात्पर्य नैतिक शक्तिसे है तो पुरुपसे स्त्रीकी श्रेष्ठता अमाप्य है। क्या उसकी अन्त.प्रज्ञा पुरुपकी अपेक्षा कही अधिक बलवती नही होती, क्या वह आत्म-बलिदानमे श्रेष्ठतर नही है, क्या उसमे धैर्यकी शक्तियाँ पुरुपोसे अधिक नही है; क्या उसका साहस और महान् नही है ? उसके बिना पुरुपका अस्तित्व ही संभव नही है। यदि अहिंसा हमारी सत्ताका विधान है तो भविष्य स्त्रीके साथ है।

स्त्रीके विरुद्ध भेदभावको उन्होने कालगतिके विरुद्ध माना है।

> पुत्र-जन्मपर होनेवाली खुशी और कन्या-जन्मपर होनेवाले शोकका कोई कारण मुझे समझमे नही आता। दोनों ईश्वरकी देन है। उन्हे जीनेका समान अधिकार है और इस संसारको चलानेके लिए दोनो समान रूपसे आवश्यक है।

कुछ प्राचीन धर्म-ग्रन्थोकी आलोचना करते हुए वे कहते है .

> मनुकी यह उक्ति कि "न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति" कोई अनुल्लंघनीय आदेश

नही हैं । इससे केवल यही पता चलता है कि उस समय संभवत स्त्रियाँ अधीनताकी स्थितिमें रखी जाती थी । हमारे साहित्यमें पत्नीको अर्धांगना और सहधर्मिणी कहा गया है । जब पति पत्नीको देवी कहकर संबोधित करता है तो इसमें किसी निन्दाका भाव नही है किन्तु दुर्भाग्य वश ऐसा भी समय आ गया जब स्त्रियोंको उनके अधिकारों और सुविधाओंसे वञ्चित कर दिया गया और उन्हें समाजमें नीचा स्थान दे दिया गया ।

स्मृतियोंके उन अंशोंको जिनमें स्त्रियोंके प्रति निन्दाके भाव व्यक्त किये गये हैं पवित्रताको निर्भीकतापूर्वक चुनौती देते हुए उन्होंने उन्हें रद्द कर देनेतकका सुझाव दे डाला है । वे कहते हैं

> यह सोचकर दुःख होता है कि स्मृतियोंमें कुछ ऐसे पाठ मिलते हैं जिनके प्रति ऐसे लोगोंकी कोई श्रद्धा नही हो सकती जो स्त्रीकी स्वतन्त्रताको अपनी स्वतन्त्रता जैसा ही महत्त्व देते हैं और उसे मानव-जातिकी माता मानते हैं । इसके विपरीत स्मृतियोंमें ऐसे पाठ भी मिलते हैं जिनमें स्त्री को उसका उचित स्थान दिया गया है और उसके प्रति उच्च कोटिका सम्मान प्रकट किया गया है । अब प्रश्न यह उठता है कि एक ही स्मृति में पाये जानेवाले इन परस्परविरोधी पाठोंके संबंधमें क्या किया जाय— इनके उन अंशोंके संबंधका क्या किया जाय जो नैतिक भावनाके विपरीत हैं ? मैं इन स्तम्भोंमें कई बार लिख चुका हूँ कि धर्मग्रन्थोंके नामसे जो भी पुस्तकें छप चुकी हैं, उन्हें शब्द प्रतिशब्द ईश्वरीय या दैवी प्रेरणासे उद्भूत माननेकी आवश्यकता नही है, किन्तु प्रत्येक व्यक्ति उनमें क्या अच्छा और प्रामाणिक है अथवा क्या बुरा अप्रामाणिक एवं प्रक्षिप्त है—इसका निर्णय करनेका अधिकारी नही हो सकता । अतएव प्रामाणिक विद्वानोंका एक ऐसा संघटन होना चाहिए जो धर्मग्रन्थोंके नामसे मुद्रित समूचे वाङ्मयकी छानबीनकर ऐसे सभी अंशोंको उसमेंसे निकाल दे जिनका कोई नैतिक मूल्य नही है या जो धर्म एवं नैतिकताके मौलिक सिद्धान्तोंके विरुद्ध हैं और उनका ऐसा संस्करण प्रस्तुत करे जिससे हिन्दुओंका सही मार्गदर्शन हो सके ।

उनके जैसा महान और साहसी पुरुष ही ऐसे साहसिक कार्यका सुझाव दे सकता था और ऐसा सुझाव गंभीरतम आस्थाओंसे ही प्रकट भी हो सकता था ।

उनके अहिंसक संघर्षका ऐसा स्वरूप था कि उसमें सभी स्त्री और पुरुष

समान प्रभावकारिताके साथ हिस्सा बटा सकते थे। उन्होने कहा था .

यदि स्त्रियाँ यह भूल सके कि वे अबला है तो मुझे इसमें कोई सदेह नही है कि युद्धके विरोधमे वे पुरुपोसे कही अधिक अच्छा काम कर सकती है।

हमारे स्वातन्त्र्य-सग्राममे स्त्रियोने उनका नेतृत्व बडे उत्साहसे स्वीकार किया और उनके आह्वानपर वे सब कुछ करनेको तैयार हो गयी। समाजके सभी वर्गोकी स्त्रियाँ उनके चारो ओर एकत्र हो गयी। इसमे शिक्षित और अशिक्षित, उच्चकोटिकी अभिजातवर्गीय और साधारण ग्रामीण स्त्रियोका कोई भेद-भाव नही रह गया। यहाँतक कि पुराने ख्यालके परिवारोकी वे स्त्रियाँ भी संघर्पमे शामिल हो गयी, जो कभी अपने घरोसे वाहर नही निकली थी। उनके पुरुपोको यह विश्वास था कि गाधीजी द्वारा निर्देशित एवं नियन्त्रित आन्दोलनमे उनका कोई वाल भी वाँका नही कर सकता। उनके प्रेरणादायक नेतृत्व, पालन-पोपणकी भावना और प्यारभरे निर्देशनमे महिलाओने स्वातन्त्र्य-सघर्पमे महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। राजकुमारी अमृतकौर इस सबंधमे लिखते हुए कहती है

भारतमे नारी-जागरणमे योग देनेवाला कोई भी घटक इतना शक्तिशाली नही हो सका है, जितना भारतमे ब्रिटिश प्रभुत्वके विरुद्ध छिडे "संग्राम" मे गाधीजी द्वारा स्त्रियोके सामने प्रस्तुत किया गया अहिसक काररवाईका क्षेत्र। इसने सैकड़ो-हजारो स्त्रियोको अपनी चहारदीवारियोमे घिरे घरोसे निकालकर अग्निपरीक्षाके सामने निर्भीकतापूर्वक खड़ा कर दिया। इसने इस तथ्यको पूर्णत सिद्ध कर दिया कि स्त्रियाँ वुराई या आक्रमणका सामना करनेमे पुरुपोसे किसी तरह पीछे नही है। सोचनेवालोके लिए इसने यह भी सिद्ध कर दिया कि नि शस्त्र प्रतिरोध किसी भी प्रकारसे सशस्त्र विरोधसे कम प्रभावकारी नही है। इसके अतिरिक्त नि शस्त्र प्रतिरोधसे प्रतिरोधकोके समान ही प्रतिरोध्य व्यक्तियोका भी उन्नयन होता है। हर हालतमे इसने, जहाँतक भारतकी मुक्तिका सवाल था, स्त्रीका स्थान सुनिश्चित कर दिया।

उन्होने १९३२ मे पेरिसमे तथा पुन स्विट्जरलैण्डमे स्त्रियोसे कहा था .

आपने मुझसे संदेश माँगा है, किन्तु यूरोपकी स्त्रियोको सदेश देनेका मुझमे कहाँतक साहस है, मै नही कह सकता। फिर भी यदि मै ऐसा साहस करूँ और आप मुझपर नाराज न हो तो मै कहूँगा कि मै उन्हे भारतकी उन स्त्रियोकी ओर वढते देखना चाहता हूँ, जो गत वर्प सामूहिक रूपसे उठ

> खड़ी हुई थी और मेरा यह सच्चा विश्वास है कि यदि यूरोप कभी अहिंसासे अनुप्राणित होगा तो वह अपने स्त्री-समाजके माध्यमसे ही ऐसा कर पायगा।

उन्होंने जो भी रचनात्मक कार्यक्रम चलाये और जो भी सामाजिक आर्थिक एवं शैक्षिक संस्थाएं स्थापित कीं, उनमें हमेशा स्त्रियोंको पुरुषोंके समान उत्तरदायित्व एवं स्थान प्राप्त हुआ। महात्मा गांधीकी यह अभिवृत्ति आधुनिक भारतमें स्त्रियोंको समानताकी पद प्रतिष्ठा दिलानेमें सर्वाधिक महत्त्व रखती है। उनके अधीन काम करते हुए स्त्रियोंने नये आत्मविश्वास एवं दृढ़ प्रत्ययके साथ गंभीर उत्तरदायित्वोंके पालनकी शिक्षा प्राप्त की। इसीलिए स्वतन्त्रता प्राप्तिके बाद जब स्त्रियोंको समान राजनीतिक अधिकार मिले और उनके लिए नये-नये कार्यक्षेत्र मुक्त हुए, तो उन्होंने आसानीसे अपनेको इन नयी परिस्थितियोंके लिए अनुकूल बना लिया और वे नयी चुनौतियाँ स्वीकार करनेमें पूर्ण समर्थ हो गयीं।

गांधीजीके अनुसार हमारे समाजमें स्त्रियोंकी क्या भूमिका थी? इस प्रश्नका उत्तर उनके उन पत्रोंमें मिल सकता है जो उन्होंने अपने उन प्रशंसिकाओंके पत्रोंके जवाबमें लिखे थे जो यह आग्रह कर रही थीं कि गांधीजी भारतीय स्त्रियोंको इस प्रकार संघटित करनेका काम अपने हाथमें लें, जिससे वे उनके स्वातन्त्र्य संग्राममें अधिक प्रभाविता और पूर्णतासे भाग ले सकें और उनकी शक्तिशालिनी सहायिकाएँ बन सकें। यद्यपि उन्होंने स्त्रियोंको संघटित करनेके लिए सारे देशका दौरा करनेसे इनकार कर दिया, किन्तु उन्होंने यह अवश्य कहा

> मेरा यह पूर्ण विश्वास है कि अहिंसाको सर्वोत्तम एवं सर्वोच्च रूपमें प्रदर्शित करना ही स्त्रीका प्रधान मिशन है। लेकिन इसके लिए स्त्रीके हृदयको अनुप्रेरित करनेके लिए पुरुषकी क्या आवश्यकता पड़ रही है? यदि यह अपील एकान्तभावसे मुझसे एक पुरुषके रूपमें नहीं, बल्कि अहिंसाके सार्वजनिक स्तरपर व्यापक रूपमें व्यवहारमें लानेवाले सर्वश्रेष्ठ प्रचारक (जैसा कि लोग मुझे मान बैठे हैं) के रूपमें की जा रही है तो मुझमें स्त्री-समाजको अहिंसाके सिद्धान्तका उपदेश देनेके लिए देशका दौरा करनेकी कोई इच्छा नहीं है। मैं अपना पत्राचार करनेवाली महिलाको यह विश्वास दिला देना चाहता हूँ कि मैं सद्भावके किसी अभावके कारण उसकी अपील स्वीकार नहीं कर रहा हूँ, ऐसी कोई बात नहीं है। मेरी अनुभूति यह है कि यदि कांग्रेसी पुरुष अहिंसामें अपनी निष्ठा बनाये रखें और अहिंसक कार्यक्रमको पूरी निष्ठासे कार्यान्वित कर

सके तो इससे स्त्रियोका हृदय-परिवर्तन स्वत. हो जायगा। और फिर यह भी हो सकता है कि उन्ही स्त्रियोमेसे कोई एक स्त्री ऐसी उभरकर सामने आ जाय, जो मुझसे भी कही आगे बढनेमे समर्थ हो। क्योकि स्त्री अहिंसाके क्षेत्रमे अनुसन्धान और दृढतापूर्वक आचरण करनेमे पुरुपकी अपेक्षा कही अधिक समर्थ होती है। आत्मवलिदानके साहसमे वह कभी भी पुरुपकी अपेक्षा ठीक उसी तरह श्रेष्ठ है, जैसा कि पुरुप पाशवशक्ति और साहसमे उससे बढ़कर है।

एक दूसरे पत्रके उत्तरमे वे कहते है .

मुझे इस वातसे वडी खुशी हुई है और कुछ गर्व भी हुआ है कि स्त्रियोके उन्नयनकी दिशामे मेरा कार्य निश्चित रूपसे सत्याग्रहकी खोजके साथ ही आरंभ हुआ है, किन्तु पत्रकी लेखिकाका विचार है कि स्त्रियोके प्रति पुरुपोसे भिन्न प्रकारका व्यवहार अपेक्षित है। यदि ऐसी वात है तो मेरे ख्यालसे कोई भी पुरुप सही समाधान नही प्राप्त कर सकता। वह चाहे जितना भी प्रयत्न करे, निश्चित रूपसे विफल हो जायगा, क्योकि प्रकृतिने ही उसे स्त्रियोसे भिन्न वनाया है। केवल कोई भुक्तभोगी ही यह जान सकता है कि उसके दु.खका कारण कहाँ है। अतएव अन्ततोगत्वा स्त्रीको ही आधिकारिक रूपमे यह निर्णय करना होगा कि उसकी वास्तविक अपेक्षाएँ क्या है। मेरी राय तो यह है कि चूँकि स्त्री और पुरुप मूलत. एक ही हैं, अत. उनकी समस्याएँ भी मूलत. एक ही होनी चाहिए। दोनोकी आत्मा एक है। दोनो एक ही प्रकारका जीवन-यापन करते है और उनकी अनुभूतियाँ भी एक ही ढंगकी होती है। दोनो एक-दूसरेके पूरक है। उनमेसे कोई एक-दूसरेकी सक्रिय सहायताके विना नही रह सकता ·

फिर भी इसमे कोई सन्देह नही कि उनमे कुछ पार्थक्य भी है। यद्यपि दोनो मूलत. एक ही हैं, फिर भी उनकी आकृतियोमे वड़ा अन्तर है। अतएव उनकी जीविका तथा अन्य कार्योमे भी भिन्नता होनी चाहिए। मातृत्वके कर्तव्य कुछ ऐसे है, जिन्हे अधिकाश स्त्रियोको करना पड़ता है। इसके लिए जिन गुणोकी अपेक्षा होती है पुरुपोको उनकी कोई आवश्यकता नही है। स्त्री निष्क्रिय होती है, पुरुप सक्रिय होता है। स्त्री मुख्यत गृह-लक्ष्मी होती है। पुरुप रोटी कमानेवाला होता है तो स्त्री हर दृष्टिसे घरकी देखभाल करनेवाली होती है। मानव-जातिके शिशुओके पालन-पोपणका दायित्व और उसका एकमात्र अधिकार स्त्रियोके लिए सुरक्षित

है। उसके प्यार और दुलारके बिना मानव-जाति ही समाप्त हो जायगी इस तरह दोनोंके कार्यक्षेत्रोंका स्पष्ट विभाजन हो जानेके बाद दोनोंके लिए अपेक्षित सामान्य गुण और संस्कृति एक ही है

इस महान् समस्याके समाधानमें मेरा अवदान यही रहा है कि मैंने व्यक्तियों अथवा राष्ट्रोंके लिए जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें सत्य और अहिंसाको स्वीकृत कर लेनेका सुझाव दिया है। मैं स्त्रीसे ही यह आशा करता हूँ कि इसमें वह निर्विवाद रूपसे बड़ा नेतृत्व प्रदान करेगी और इस प्रकार मानवीय विकासक्रममें अपना यह महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर वह हर तरहकी आत्महीनताकी ग्रंथियोंसे मुक्त हो जायगी

मैंने इन स्तम्भोंमें बार-बार लिखा है कि स्त्री अहिंसाका अवतार है। अहिंसाका अर्थ होता है असीम प्रेम और असीम प्रेमका तात्पर्य है कष्ट सहिष्णुताकी असीम सामर्थ्य। पुरुषोंकी जननी स्त्रीको छोड़कर यह सामर्थ्य उससे अधिक और किसमें हो सकता है? वह नौ महीनोंतक शिशुको गर्भमें धारणकर और उसके पालन-पोषणमें अत्यन्त दुःखका अनुभवकर इस सामर्थ्यका परिचय दे देता है। शिशुको जन्म देनेमें होनेवाले कष्टसे बढ़कर और कौन कष्ट हो सकता है? किन्तु वह सर्जनके आनन्दमें उस कष्टको भूल जाती है। फिर उसकी सन्तान दिन-पर दिन फलती फूलती जाय, उसका विकास होता जाय—इसके लिए वह जो कष्ट उठाती है उसका मुकाबला दूसरा कौन कर सकता है? उसे अपने उस प्रेमको सारी मानवताके लिए अर्पित कर देना चाहिए और यह भूल जाना चाहिए कि वह कभी भी पुरुषकी वासनाका शिकार रही है या हो सकती है। इस तरह वह मनुष्यकी माता, स्रष्टा और मौन नेत्रीके रूपमें उसकी बगलमें अपना गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त कर लेगी। अमृतके लिए प्यासे संघर्षसे भरे इस संसारमें शान्तिकी कलाकी शिक्षा देना उसीका कर्तव्य है। वह सत्याग्रहकी नेत्री बन सकती है क्योंकि सत्याग्रहमें पुस्तकीय ज्ञानकी अपेक्षा नहीं होती अपितु अपनी निष्ठाके लिए कष्ट उठानेवाले वीर हृदयकी अपेक्षा होती है।

इसके आगे गांधीजीने एक ऐसी स्त्रीका उदाहरण दिया है जिसने शिशुको जन्म देते समय क्लोरोफार्म लेनेसे इसलिए इनकार कर दिया था कि कहीं इससे उसके भावी शिशुको कोई नुकसान न पहुँच जाय और क्लोरोफार्मके बिना ही एक जटिल आपरेशनका भयानक कष्ट सह लिया था। इसके बाद गांधीजी

लिखते है .

अतएव स्त्रियोको, जिनमे ऐसी न जाने कितनी वीराङ्गनाएँ भरी पडी हैं, कभी अपनी जातिकी निन्दा करते हुए यह न सोचना चाहिए कि उन्हे पुरुषकी योनि क्यो नही प्राप्त हुई। जिस वीर स्त्रीकी चर्चा मैने ऊपर की है, उसपर विचार करते हुए मुझे नारीको पद-प्रतिष्ठाके प्रति ईर्ष्या होने लगती है। काश स्त्रियाँ स्वय अपने इस गौरवका अनुभव कर पाती! ऐसे अनेक कारण है, जिनसे पुरुष भी यह सोच सकता है कि यदि उसे स्त्रियोका जन्म मिला होता तो वडा अच्छा हुआ होता। किन्तु इस तरहकी इच्छा करना व्यर्थ है। हम जिस स्थितिमे भी पैदा हुए है, हमें उससे सन्तुष्ट और सुखी रहकर अपनी प्रकृति द्वारा निर्दिष्ट कर्तव्य पूरा करना चाहिए।

गाधीजी ईमानदारीसे इस तथ्यमे विश्वास करते थे कि स्त्री पुरुपके समान है और स्त्री-पुरुष दोनो ही सामाजिक कार्योके निर्वाहमे संयुक्त रूपसे उत्तरदायी है। इसीलिए वे अपने अधीन काम करनेवाली स्त्रियोसे भी वडी कडाईसे काम लिया करते थे। उन्हे स्त्रियोको कठिनसे कठिन और खतरनाकसे खतरनाक काम सौपनेमे भी कभी हिचक न हुई। उन्हे पूरा विश्वास रहता था कि वे किसी भी चुनौतीको स्वीकार कर सकती है। नोआखालीकी उनकी ऐतिहासिक यात्राके समय मुझे इसके अनेक उदाहरण मिले। मुझे याद है कि एक बार उन्होने युवती आभाको शान्तिस्थापनार्थ एक उपद्रवग्रस्त गाँवमे भेजनेका निश्चय किया। मैंने उनसे वहुत कहा कि ऐसे गाँवमे, जहाँ हिन्दू-मुसलमानोमे इतनी कटुता और तनाव हो, एक इतनी कम उम्रवाली लडकीको भेजना उचित न होगा, किन्तु उन्होने मेरी एक न सुनी और यही उत्तर दिया कि "आभा वहाँ जरूर जायगी। किसीमें उसका वाल वाँका करनेकी हिम्मत नही है। वह अपने कार्यमे पूरी तरह सफल होकर लौटेगी।"

अन्तमे उनकी वात सच निकली। स्वय एक स्त्री होकर मुझे अपनी योग्यता-मे विश्वास न था, किन्तु उन्हे हमारे संवंधमे हमसे कही अधिक जानकारी थी। अपने सारे जीवनमे वे वरावर स्त्रियोको ऐसी ही कठिन परिस्थितियोमे वडीसे वडी चुनौती स्वीकार करनेके लिए भेजते रहे। एक समय जव वे जेलमे थे, उन्होने दादाभाई नौरोजीकी सवेदनशील और पढी-लिखी पौत्री खुरशीद वेन नौरोजीको अव्दुल गफ्फार खानके पठान अनुयायियोके वीच काम करनेके लिए भेज दिया था। उस कठोर, रुक्ष और विलक्षण वातावरणमे खुरशीद वेनको ऐसी

शानदार सफलता मिली कि वे पठानोंकी प्रिय बहन बन गयी। एक अच्छे शिक्षक के रूपमें वे यह जानते थे कि जब किसी छात्रको चुनौतीभरी किसी नयी स्थिति का सामना करना होता है तो उसकी अन्तर्निहित योग्यता एवं अभिक्रमकी शक्ति किस प्रकार उभरकर सामने आ जाती है।

अपनी मृत्युके कुछ दिनों पूर्व दिल्ली स्थित बिडला भवनमें हमसे बातें करते हुए उन्होंने कहा था कि, "मैं चाहता हूँ कि भारतका प्रथम राष्ट्रपति कोई हरिजन स्त्री बने। मैं उसे इस उच्चस्थानपर प्रतिष्ठित देखकर खुशीसे नाच उठूंगा।"

वे चाहते थे कि देशके निम्नसे निम्न व्यक्ति उच्चसे उच्च पदोंपर प्रतिष्ठित हों। यही उनका स्वप्न था। स्त्रीके प्रति उनकी ऐसी ही निष्ठा और विश्वासकी भावना थी। इस देशमें अनेक नेताओं और सुधारकोंने स्त्रियोंके उन्नयनका कार्य किया है, किन्तु राष्ट्रपिताने उन्हें जैसा ऊँचा सम्मान प्रदान किया था, वैसा कोई नहीं कर सका है। उन्होंने असीम सहानुभूति, समवेदना और प्रेमसे हमारा हाथ पकड़ा और हमें सहारा देते हुए समाजमें न्यायोचित सम्मान प्राप्त करनेकी ओर अग्रसर किया।

एच० एन० कुंजरू

राजनीतिका आध्यात्मिकीकरण

दक्षिण अफ्रीकासे लौटनेके तुरन्त बाद ही फरवरी, १९१५ मे महात्मा गाधी, सर्वेण्ट्स आफ इण्डिया सोसाइटीके गोपाल कृष्ण गोखले तथा अन्य सदस्योसे मिलनेके लिए पूना गये। अफ्रीकामे उन्होने अपने देशके सम्मानकी रक्षाके लिए जिस शानदार सफलतासे सघर्ष किया था, उससे सोसाइटीके सदस्य अच्छी तरह परिचित थे। उन्होने भारतका नाम जैसा उज्ज्वल किया था उसपर भी सदस्योको बडा गर्व था। वे जानते थे कि सितबर, १९०९ मे ट्रासवालमे उनके द्वारा सचालित निष्क्रिय प्रतिरोधका श्री गोखलेने बंबईकी एक सार्वजनिक सभामे समर्थन करते हुए कहा था कि .

> मुझे विश्वास है कि यदि हममेसे कोई भी व्यक्ति इस समय ट्रासवालमे रहता तो उसे गाधीजीके झण्डेके नीचे काम करने और उनके महान् उद्देश्योके लिए कष्ट उठानेमे गर्वका अनुभव होता।[1]

वे यह भी जानते थे कि १९०९ मे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसके लाहोर-अधिवेशनमे श्री गोखलेने उनके प्रति कैसी उच्च श्रद्धाञ्जलि दी थी। उन्होने कहा था .

> यह मेरे जीवनका एक बड़ा सौभाग्य रहा है कि मैं गाधीजीसे घनिष्ठ रूपमे परिचित हूँ और मैं यह कह सकता हूँ कि इस संसारमे किसी भी व्यक्तिने मुझे अपने पवित्र, श्रेष्ठ, शौर्यपूर्ण जीवन और आत्माके उन्नत गुणोसे कभी इतना प्रभावित नही किया है, जितना गाधीजीने। गांधीजी उन लोगोमेसे है, जिन्होने संयमपूर्ण जीवन व्यतीत करते हुए मानवता, सत्य और न्यायके उच्चतम सिद्धान्तोके प्रति अपनेको समर्पित कर दिया है और इस प्रकार अपने दुर्बल बन्धुओकी आँखें खोल दी है और उन्हे एक नयी दृष्टि दी है। वे पुरुषोमे श्रेष्ठ पुरुष, वीरोंमे वीर और देशभक्तोमें

भी महान् देशभक्त हैं। उनमें वर्तमान समयमें भारतीयता अपना उच्च प्रतिमान प्राप्त कर चुकी है।[२]

अतएव हम सभी लोग महात्मा गांधीसे मिलने और अपने हितके प्रश्नोंपर उनके विचार जाननेको अत्यन्त उत्सुक थे। हम लोग उनका स्वागत करने स्टेशन पहुँचे। यह देखकर हमें बड़ा ताज्जुब हुआ कि वे एक तीसरे दर्जेके डिब्बेसे उतर रहे हैं और उनके कन्धेसे उनका बिस्तर लटक रहा है। उन्होंने इतनेमें ही हममें सरलता और मानवीय गौरवका एक नयी भावना जगा दी। वे मानो हम लोगों से यह कह रहे थे कि दुनियावी टीमटाम निरर्थक होती है मनुष्यका मूल्य उसके आन्तरिक गुणोंके कारण होता है।

वे हम लोगोंके साथ एक सप्ताहतक रहे। इस बीच हमने अपने हर सम्भव सवालोंपर विचार विमर्श किया। अहिंसापर अपने विचार प्रकट करते हुए उन्होंने बुद्धकी भी चर्चा की थी। उन्होंने कहा था कि मैं तो सांपको भी प्यार करना चाहूँगा। हम उनकी इस बातपर चौंक पड़े थे कि अपनी आवश्यकतासे अधिक एक बटन भी रखनेवाला व्यक्ति चोर है। उनके विचारसे देशकी सेवामें लगे हुए लोगोंको संन्यासियोंका-सा जीवन बिताना चाहिए। हर सवालपर उनसे सहमत होना हमारे लिए कठिन था किन्तु उनके कठोर संयमपूर्ण जीवनको नजदीकसे देखकर उनके प्रति श्रद्धा और सम्मानकी भावना बहुत बढ़ गयी। उनके उन सिद्धान्तोंसे हम बहुत प्रभावित हुए जो उनके व्यावहारिक जीवनके पीछे क्रियाशील थे। यद्यपि वे अधिकांशतः राजनीतिक कार्योंमें लगे रहते थे फिर भी मूलतः वे धार्मिक व्यक्ति थे। उन्होंने राजनीतिक क्षेत्रमें धार्मिक कर्तव्यके कारण ही प्रवेश किया था। श्री गोखलेके शब्दोंमें कहें तो वे राजनीतिके आध्यात्मीकरणके लिए सतत प्रयत्नशील रहे। उन्होंने कहा है

> मुझे संसारके नश्वर राज्यकी कोई अभिलाषा नहीं है। मैं आध्यात्मिक मोक्षरूप स्वर्गीय राज्यकी स्थापनाके लिए प्रयत्न कर रहा हूँ मेरे लिए *मेरी देशभक्ति शाश्वत स्वतन्त्रता और शांतिके लोककी यात्रामें पड़नेवाला* एक पड़ावमात्र है। इससे यह स्पष्ट हो गया होगा कि मेरे लिए धर्म से विहीन राजनीतिका कोई अर्थ नहीं होता। धर्मकी सेवा करना ही राजनीतिका कर्तव्य है। धर्महीन राजनीति तो मृत्युपाशके समान है क्योंकि इससे आत्माकी हत्या हो जाती है।[३]

डाक्टर राधाकृष्णनने ठीक ही कहा है कि गांधीजीके लिए धर्म मानवीय क्रिया कलापोंसे कोई अलग वस्तु न था। वे जीवनभर साधारण मनुष्योंके सुख और

भारतकी आजादीके लिए घोर परिश्रम करते रहे। किसी नैतिक कार्यके लिए इस तरहका अथक कार्य करनेकी क्षमता मुझे गाधीजीके अतिरिक्त केवल दो व्यक्तियो—श्री गोखले और श्रीमती एनी वेसेण्टमे ही मिली है।

यद्यपि महात्मा गाधीने भारतकी राजनीतिक आजादी प्राप्त करनेके लिए ही संघर्ष किया था, फिर भी वे इस उद्देश्यके लिए किसी भी तरहके साधनोको उचित माननेके लिए तैयार नही थे। उनका यह विश्वास था कि श्रेष्ठ और पवित्र लक्ष्यो-के अनुरूप साधनोको भी श्रेष्ठ और पवित्र होना चाहिए। उन्होने कहा था कि

> यह ठीक है कि राजनीतिक स्थितिमे सुधार हुए बिना हमारी उन्नति नही हो सकती, किन्तु यह सोचना गलत है कि अपनी राजनीतिक स्थितिमे परिवर्तन लानेके लिए किसी भी तरहका कोई भी साधन अख्तियार कर हम प्रगति करनेमे समर्थ हो सकेंगे। यदि हमारे साधन अपवित्र हुए तो बहुत सम्भव है कि हम प्रगतिकी दिशामे न बढकर उसकी विरोधी दिशा-मे चलने लगे। केवल शान्तिपूर्ण और न्यायोचित पवित्र साधनोसे लाया गया परिवर्तन ही हमें सच्ची प्रगतिकी ओर ले जा सकता है।[४]

हम जो कुछ भी करे, वह नैतिक दृष्टिसे अच्छा होना चाहिए। भौतिक शक्तिका प्रयोग और किसी प्रकारकी गोपनीयता सत्यके विपरीत होती है। इससे यह जाहिर होता है कि हमे आत्मशक्तिकी प्रभावकारितामे विश्वास नही है। मनुष्यकी एक स्वाभाविक दुर्बलता होती है कि वह जल्दी सफलता प्राप्त करनेकी व्यग्रतामें गलत तरीकोका इस्तेमाल कर बैठता है, किन्तु इन तरीकोसे सच्ची प्रगतिकी ओर जल्दी नही बढा जा सकता। किसी न्यायोचित उद्देश्यके लिए संघर्ष करनेमे अहिंसा और प्रेम ही हमारे एकमात्र शस्त्र हो सकते है। विचार-भेद और पूर्वाग्रहोकी गम्भीर खाइयाँ बल-प्रयोग द्वारा नही पाटी जा सकती। मनुष्यके दिल और दिमाग तकलीफ सहकर प्रेम करनेसे ही बदले जा सकते है। नफरत हिंसाको जन्म देती है, किन्तु हमे तो अपने शत्रुओसे भी नफरत नही करनी चाहिए। घृणा आन्तरिक दुर्बलताका लक्षण होती है। विजय अपने उद्देश्योके औचित्यके प्रति निष्ठा तथा आत्म वश्वाससे ही प्राप्त की जा सकती है।

सत्याग्रहमे महात्मा गाधीकी दृढ निष्ठा थी, इसीलिए उन्होने कभी भी अपने विरोधियोकी कठिनाइयोका लाभ नही उठाया। १८९९ मे बोअर-युद्धके समय भी, जब कि उनमे अभी पर्याप्त परिपक्वता नही आयी थी, उन्होने यह अनुभव कर लिया था कि नागरिक अधिकारोका दावा करनेवाले भारतीय सरकारकी सहायता देनेके लिए नैतिक दृष्टिसे बाध्य है। इसीलिए अपनी उचित शिकायतोके बावजूद

उन्होंने अपनी तथा भारतीय जाताको ओरसे नगर-सरकारको हर तरहकी मदद दी। सरकारने भी उनकी मदद उस समय स्वीकार की जब वह एक बड़ी विपत्तिमें फँसी हुई था। उसने महात्मा गांधीको घायलोंकी सेवा करने तथा उन्हें डॉक्टरी सहायता पहुँचानेकी अनुमति दे दी। उनके सहायता-दल में ११०० भारतीय थे। इस दलने बड़े शानदार ढंगसे सेवा की। कभी-कभी तो इसे मोर्चेपर जाकर उस समय काय करना पड़ा जब दोनों ओर से गोलियोंकी बौछार हो रही था।

१९१४ में प्रथम विश्व युद्ध छिड़ गया। १९१५ में दक्षिण अफ्रीकासे भारत लौटनेपर महात्मा गांधीने भारतीय राजनीतिक नेताओंको सलाह दी कि वे अपना राजनीतिक आन्दोलन स्थगित कर दें इस समय युद्धमें ब्रिटिश सरकारकी सहायता करें और युद्ध समाप्त होनेपर अपने अधिकारोंकी लड़ाई फिर शुरू करें। यह ठीक है कि भारतीय नेताओंने उनकी सलाह नहीं मानी। १९३९ में द्वितीय विश्व युद्ध छिड़नेके समय भी, जब वे भारतके सर्वमान्य नेता बन चुके थे उन्होंने यही सलाह दी थी लेकिन उनके सहयोगियोंने इसे अव्यवहार्य समझा। उस समय मैंने उनसे पूछा था कि आप अपनी बातपर अड़े क्यों नहीं रहे। उन्होंने मुझे जवाब दिया था कि "जब राजेन्द्रप्रसादतकका यह विचार हो गया कि देशकी जनता मेरे प्रस्तावको नहीं समझेगी तो मुझे झुक जाना पड़ा।" हम यह दावा नहीं करते कि जीवनमें वे कभी झुके नहीं हैं किन्तु इतना तो तय है कि यदि उस समय उनकी सलाहके अनुसार काम हुआ होता तो सम्भवतः देशके भावी राजनीतिक विकासने कुछ दूसरा ही रूप लिया होता।

अपनी धार्मिक अभिवृत्तिके कारण ही वे कठिन प्रश्नोंको निबटानेके लिए विरोधी हितों और विचारोंवाले लोगोंको एक-दूसरेके नजदीक लानेकी ओर प्रवृत्त हुआ करते थे। उनके लिए कोई भी विजय तबतक निरर्थक थी जबतक आदमियोंको एक-दूसरेसे अलग करनेवाले कारणोंका उन्मूलन न हो जाय। जिस मुकदमेके सिलसिलेमें उन्हें दक्षिण अफ्रीका जाना पड़ा था, उसमें जब उन्होंने यह देखा कि उनके मुवक्किलकी विजयसे प्रतिपक्षी पूरी तरह बरबाद हो जायगा तो उन्होंने उसे यह स्वीकार करनेके लिए बाध्य किया कि वह प्रतिपक्षीको किश्तोंमें रकमकी भुगतान कर दे। इस प्रसंगमें वे लिखते हैं

> मैंने तो सच्ची वकालतका पाठ पढ़ लिया था। मैंने मानव-स्वभावके उज्ज्वल पक्षकी खोज निकालने और मनुष्यके हृदयतक पहुँचनेकी कला सीख ली थी। मैंने यह अनुभव किया कि वकीलका वास्तविक काम वादी प्रतिवादीमें मेल करा देना है।"

ऊपर यह कहा जा चुका है कि गाधीजी पहले धार्मिक व्यक्ति थे और देशभक्त उसके बाद थे। सत्य उन्हे सब वस्तुओसे अधिक प्यारा था। मेरे देशका पक्ष चाहे गलत हो या सही, वही मेरा सब कुछ है—गांधीजी ऐसा कोई आदर्श नही मान सकते थे। १९४८ मे भारत-विभाजनके बाद, भारत-पाकिस्तानमे संघर्ष चलते समय भी, गांधीजीने दोनों देशोमे हुए समझौतेके अनुसार भारत-सरकार-को पाकिस्तानको ५० करोड़ रुपया देनेके लिए बाध्य कर दिया। यह इस बातका ज्वलंत उदाहरण है कि गांधी जिस सत्यको स्वीकार करते थे, उसके प्रति उनमे कैसी अदम्य निष्ठा थी। इस मामलेमे उन्होने जो दृष्टिकोण अपनाया था, उसे हम भले ही गलत समझे, किन्तु हमे सत्यके प्रति उनकी उस अविचल निष्ठाकी सराहना तो करनी ही होगी, जिसके कारण वे अपने राष्ट्रके हितोकी भी बलि चढा सकते थे।

महात्मा गाधीने कई बार कहा है कि हिन्दू-धर्ममे उनकी गहरी आस्था है। वे उपनिषदो और भगवद्गीतासे प्रेरणा ग्रहण करते थे, किन्तु उनका विश्वास था कि सभी धर्मोके मौलिक सत्य एक ही है। वे "पर्वतीय उपदेश" (सरमन आन द माउण्ट) और ईसामसीहके व्यक्तित्वके प्रति अत्यन्त आकृष्ट थे। इस्लाम और उसके पैगंबरोके प्रति भी उनके बडे ऊँचे विचार थे। कोई व्यक्ति किस धर्मको मानता है, इससे उनका कोई सरोकार न था। उनकी दृष्टिमे सबको समान अधिकार मिलने चाहिए। वे असहिष्णुताको एक प्रकारकी हिंसा ही मानते थे। हिंसा अहिंसा और प्रेमके प्रतिकूल होती है। केवल अहिंसा और प्रेमसे ही विभिन्न धर्मो और स्वार्थोवाले व्यक्तियोमे सामञ्जस्य स्थापित किया जा सकता है।

धर्मके प्रति निष्ठावान् होनेके कारण ही वे अछूतोके प्रति आकृष्ट हुए। "जो मनुष्य जितना ही अच्छा होगा, उसमे समवेदना और सहानुभूति उतनी ही अधिक मात्रामे मिलेगी।" वे अस्पृश्यता तथा अस्पृश्योके प्रति किये जानेवाले अन्यायोंको देशके लिए कलंक मानते थे। अछूतोके प्रति उनकी गहरी सहानुभूति थी। भारतीय समाजपर लगे इस कलकको धोनेके लिए उन्होने जो प्रयत्न किये उन्हीके फलस्वरूप आज देशमें इस मामलेमे उत्तरदायित्वकी चेतना जागरित हुई है। सर्वेण्ट्स आफ इण्डिया सोसाइटीके उपाध्यक्ष तथा महात्मा गाधी द्वारा स्थापित अखिल भारतीय हरिजन सेवक संघके मत्री ए० वी० ठक्करने कुछ वर्षोतक अपना सारा समय और शक्ति हरिजन-सेवाके कार्योमे नियोजित करनेके बाद उन्हे एक पत्र लिखकर यह प्रार्थना की थी कि यदि आपकी अनुमति हो, तो मै अब जन-जातियोकी प्रगतिमे बाधक समस्याओके समाधानके कार्यमें लग जाऊँ। इसपर

गाधीजीने उन्हें यही जवाब दिया था कि आप अपने मनचाहे इस नये काममें लग सकते हैं किन्तु किसी भी हालतमें आपका हरिजन सेवक संघसे सम्बन्ध विच्छेद नही करना चाहिए क्योंकि हरिजनोंकी सेवा करना हमारा धार्मिक कर्तव्य है।

गाधीजीके सत्याग्रह सिद्धान्तकी भारतमें पहली परीक्षा उनके चम्पारन-अभियानके समय हुई थी। बिहारके चपारन जिलेके कुछ किसानोंने उन्हें नीलकी खेती में लागू बेगारी प्रथाके जुल्मकी जाँच करनेके लिए बुलाया था। इस सिलसिलेमें मुजफ्फरपुर पहुँचते ही उन्होंने तिरहुत कमिश्नरीके कमिश्नर तथा नीलकी खेती के गोरे मालिकोंसे सम्पर्क स्थापित किया और उन्हें बताया कि मेरी जाँचका उद्देश्य उनके खिलाफ कोई आन्दोलन चलाना नही है बल्कि मेरा उद्देश्य खेतिहरों और उनके पारस्परिक सबधोंको सुधारना है। किन्तु इससे उनका संदेह दूर नही हुआ। कमिश्नरके आदेशसे उन्हें तुरन्त चम्पारन जिलेसे बाहर चले जानेकी नोटिस मिली। गाधीजीने इस आदेशकी अवहेलना कर दी अत उनपर मुकदमा चला, अदालतमें उन्होंने अपना अपराध स्वीकार करते हुए उन कारणोंपर प्रकाश डाला, जिनसे वे कमिश्नरका आदेश न माननेके लिए मजबूर थे। उन्होंने अदालतसे कानूनके अनुसार सजा पानेकी माँग की थी, किन्तु उनका मामला आगेकी तारीख पर टाल दिया गया। उन्हें दूसरे ही दिन कलक्टरसे यह जानकर बडा आश्चर्य हुआ कि उनका मुकदमा वापस ले लिया गया है (लेफ्टिनेन्ट गवनरके आदेशसे) वे अपना जाँच-कार्य जारी रख सकते हैं और आवश्यक होनेपर सरकारी अधिकारी उन्हें इसमें हर तरहकी मदद देंगे। इस तरह देशको सविनय अवज्ञाका प्रथम प्रत्यक्ष पाठ पढनेको मिला।"[६]

'चम्पारनकी जाँच सत्य और अहिंसाके साथ किया गया बडा ही साहसिक प्रयोग थी।'[७] लेफ्टिनेण्ट गवनरने महात्मा गाधीको राँची वार्ताके लिए आमन्त्रित किया। वार्ताके बाद चम्पारनके किसानोंकी शिकायतोंकी जाँचके लिए एक समिति नियुक्त की गयी। महात्मा गाधी भी इस समितिके सदस्य बनाये गये। चम्पारनके गोरे निलहे, जो आरभमें महात्मा गाधीके कट्टर शत्रु थे शीघ्र ही उन्हें दूसरी दृष्टिसे देखने लगे। व्यक्तिगत सपर्कमें आनेपर उनपर गाधीजीके व्यक्तित्वका जादू तो चल ही गया था जाँच-समितिके सदस्यके रूपमें गाधीजीने उनके प्रति जो व्यवहार किया, उससे भी वे अत्यधिक प्रभावित हुए। जाँचके सिलसिलेमें निलहे गोरो और उनके गुर्गों द्वारा किये गये नाना प्रकारके भ्रष्टाचार एव अत्याचारोंके साक्ष्यका जो भारी अबार लग रहा था, उससे गोरे डर रहे थे किन्तु गाधीजीने इस साक्ष्यपर विचार विमर्श शुरू होते ही उन्हें भयसे मुक्त कर दिया और इस प्रकार

उनका विश्वास प्राप्त कर लिया। उन्होने साफ-साफ घोषित कर दिया कि मुझे अतीतसे उतना मतलब नही है, जितना वर्तमान और भविष्यसे, शिकायतोके संबध में कोई टिप्पणी करनेका आग्रह मै नही करूँगा, यदि नीलकी खेतीके संबंधमे प्रचलित अत्याचारमूलक प्रथा समाप्त कर दी जाय और निलहे गोरोकी निरंकुशता खत्म हो जाय तो मुझे संतोष हो जायगा। उन्होने इस बातका भी आग्रह नही किया कि अतीतमे किसानोपर जोर-जुल्म करके जो अवैध वसूली की गयी है, उनका पूरा मुआवजा दिया जाय। उन्होने केवल यही कहा कि भविष्यमे ऐसी अवैध वसूलियाँ नही होंगी, इसकी गारंटी देनेके लिए यदि २५ प्रतिशत मुआवजा दे दिया जाय तो मैं सन्तुष्ट हो जाऊँगा।[८]

इस तरह भारतमें सत्याग्रहके इतिहासका पहला अध्याय समाप्त हुआ, जिससे भारतीय जनताको एक नयी दृष्टि प्राप्त हुई। भारतीय राजनीतिको गाधीजीकी पहली देन यही है कि उन्होने अत्यन्त ज्वलन्त तरीकेसे यह दिखा दिया कि मानवीय आत्माकी शक्ति कितनी बडी होती है। सत्य और प्रेममे उनकी जैसी अटूट निष्ठा थी, उसीके कारण उन्हें प्राचीन सन्तो, ऋषियो और पैगम्बरोका दर्जा प्राप्त हो गया। उनका सदेश न केवल भारत, अपितु सारे संसारके लिए था। उनकी महानता इस बातमें है कि उन्होने यह सिद्ध करके दिखा दिया कि संसारका त्याग करनेवाले महात्माओका जीवन जिन सिद्धान्तोसे परिचालित होता है, उन्हे सारे ससारपर लागू किया जा सकता है। राजनीतिक और आर्थिक कामोमे लगे लोगोको भी इन सिद्धान्तोका पालन करना चाहिए और वे भी इनका पालन अच्छी तरह कर सकते है। वे धर्मको मठोके तंग दायरेसे बाहर निकाल लाये और उसे हमारे दैनिक जीवनका अविच्छिन्न अंग बना दिया।

---

१ स्पीचेज ऐण्ड राइटिंग्स आव गोपालकृष्ण गोखले, भाग २, पृ० ४१४।

२ वही, पृ० ४२०।

३. एस० राधाकृष्णन् (स०), महात्मा गाधी, एसेज ऐण्ड रिफ्लेक्शन्स आन हिज लाइफ ऐण्ड वर्क, पृ० १४।

४ एम० के० गाधी, गोखले : माई पोलिटिकल गुरु, पृ० ५०।

५. बी० आर० नन्दा, महात्मा गाधी, पृ० ४१।

६ एम० के० गाधी, ऐन आटोबायोग्राफी, भाग २।

७. वही।

८. प्यारेलाल, महात्मा गाधी : द लास्ट फेज, राजेन्द्रप्रसाद द्वारा लिखित भूमिका, पृ० ९-१०।

कैथलीन लॉंसडेल

गांधी और वैज्ञानिक सत्य

गाधी वकील राजनीतिज्ञ पैगम्बर और मानव-जातिके नेता तो थे ही वे इन सबसे भी ऊपर थे। बहुतोंके लिए वे सत्यके प्रतीक थे। जैसा कि हम आजके वैज्ञानिक मानते हैं विज्ञान एक विशेष तरीकेसे प्राप्त एक विशेष प्रकारका ज्ञान है एक विशेष प्रकारके सत्यकी जानकारी है। गाधीने जिस सत्यका अनुसंधान किया था वह यद्यपि नया (सत्य कभी नया नही हो सकता) नही था फिर भी वह उनके समयके ससारके लिए नया था। उन्होंने इस सत्यको केवल खोज ही नही निकाला उसके अनुसार आचरण भी किया उन्होंने केवल सत्याचरण ही नही किया, उसे प्रकाशित भी किया। उन्हें जब भी यह महसूस होता कि बारीक-से बारीक ब्योरेमें भी उनसे छोटी-सी भी गलती हो गयी है तो उसे सुधारनेके लिए हर सम्भव प्रयत्न करते थे और दुनियाको इसकी जानकारी भी दे देते थे।

> सत्य और अहिंसा पहाड़ोंके समान पुराने हैं। मैंने केवल जितना सम्भव था इन दोनोंके सम्बन्धमें बड़े-से-बड़े पैमानेपर प्रयोग करनेकी कोशिश की है। ऐसा करते समय मुझसे कभी-कभी गलतियाँ भी हुई हैं

लोग यह चाहते हैं कि सत्य उनकी तरफ हो जाय, किन्तु सच्चा वैज्ञानिक (सच्चे धार्मिक व्यक्तिके समान) स्वयं सत्यकी तरफ रहना चाहता है। और जब वह सत्यका पता लगा लेता है, फिर चाहे वह कितने ही संकीर्ण और विशेषीकृत क्षेत्रका ही क्यो न हो, विज्ञानवेत्ता उसे अपनेतक ही सीमित नही रखता, वह उसे प्रकाशित कर देता है, जिससे दूसरे लोग भी उसकी वैज्ञानिक निष्ठाकी जाँच कर सके और उसके तथ्यो तथा तरीकोका परीक्षण करते हुए जहाँतक वह पहुँचा है, उसके आगे बढ सकें। गाधी भी अपने अनुयायियोसे यही अपेक्षा करते थे। वे चाहते थे कि उनके अनुयायी हाथ-पर-हाथ धरे बैठे और उनकी प्रशंसा ही करते न रहे, उनकी स्मृतिके सामने साष्टाग दंडवत करते और उनके लिए शोक मनाते न रहें, अपितु जहाँ जो अधूरा काम वे छोड गये है, वहींसे उसे पूरा करनेके लिए आगे बढे और इस सिलसिलेमे उन्हीके समान प्रयोग करते चले तथा भूलोंसे शिक्षा लेनेके लिए उन्हीके समान तत्पर बने रहे।

गाधी अपने विचारोंकी व्याख्याके लिए प्राय. अपनी पद्धतिकी तुलना वैज्ञानिक पद्धतिसे किया करते थे

> मैं सत्यका अन्वेषक मात्र हूँ। मेरा दावा है कि मैंने सत्यकी ओर जानेवाले रास्तेका पता लगा लिया है। मेरा यह भी दावा है कि मैं उसे पानेके लिए अथक प्रयत्न कर रहा हूँ। किन्तु मैं यह स्वीकार करता हूँ कि मै अभी-तक सत्यको पा नही सका हूँ" मुझे अपनी अपूर्णताओकी कष्टकारक अनुभूति भी होती रहती है और इसी अनुभूतिमे सारी शक्ति निहित है।[२]
> तो फिर सत्य क्या है ? यह एक कठिन सवाल है, किन्तु मैंने अपने लिए इस सवालको हल कर लिया है। मैं कहता हूँ कि तुम्हारे अन्दरकी आवाज ही सत्य है। तुम पूछोगे कि फिर अलग-अलग लोगोके अलग-अलग परस्परविरोधी सत्य क्यो होते है ? इसके सम्बन्धमे मुझको यही कहना है कि चूँकि मानव-मस्तिष्क असंख्य माध्यमोसे कार्य करता है और चूँकि प्रत्येक व्यक्तिका बौद्धिक स्तर समान रूपसे विकसित नही रहता, इसीलिए एक आदमीका सत्य दूसरेके लिए असत्य हो सकता है। यही कारण है कि प्रयोक्ताओंने यह निष्कर्ष निकाला है कि इन प्रयोगोके करते समय कुछ विशिष्ट परिस्थितियाँ अपेक्षित होंगी। आध्यात्मिक क्षेत्रमे प्रयोग करते समय किसी भी व्यक्तिके लिए उसी तरहका कठोर आरम्भिक अनुशासन अपेक्षित होता है, जिसकी अपेक्षा वैज्ञानिक प्रयोगोके दौरान किसी विज्ञानवेत्तासे की जाती है। अतएव अपनी अन्तरवाणीकी

कैथलीन लॉसडेल

गाधी और वैज्ञानिक सत्य

गाधी वकील राजनीतिज्ञ, पैगम्बर और मानव-जातिके नेता तो थे ही वे इन सबसे भी ऊपर थे। बहुतोंके लिए वे सत्यके प्रतीक थे। जैसा कि हम आजके वैज्ञानिक मानते है, विज्ञान एक विशेष तरीकेसे प्राप्त एक विशेष प्रकारका ज्ञान है एक विशेष प्रकारके सत्यकी जानकारी है। गाधीने जिस सत्यका अनुसधान किया था, वह यद्यपि नया (सत्य कभी नया नही हो सकता) नही था फिर भी वह उनके समयके ससारके लिए नया था। उन्होंने इस सत्यको केवल खोज ही नही निकाला उसके अनुसार आचरण भी किया उन्होने केवल सत्याचरण ही नही किया, उसे प्रकाशित भी किया। उन्हे जब भी यह महसूस होता कि बारीक-से बारीक ब्योरेमें भी उनसे छोटी सी भी गलती हो गयी है तो उसे सुधारनेके लिए हर सम्भव प्रयत्न करते थे और दुनियाको इसकी जानकारी भी दे देते थे।

> सत्य और अहिंसा पहाडोके समान पुराने है। मैंने केवल, जितना सम्भव था इन दोनोके सम्बन्धमें बडे-से-बडे पैमानेपर प्रयोग करनेकी कोशिश की है। ऐसा करते समय मुझसे कभी कभी गलतियाँ भी हुई है और मैंने उन गलतियोंसे शिक्षा ली है। इस तरह जीवन और उसकी समस्या मेरे लिए सत्य और अहिंसाके व्यवहारमे होनेवाले अनेक प्रयोग है।[1]

यही वैज्ञानिक तरीका है पहले सत्यको खोजना उसे चिन्तन और कभी कभी प्रेरणा द्वारा प्राप्त कर लेना (प्राकृतिक प्रपचकी सीमित जानकारी और नियत्रणके अन्तगत) किन्तु हमेशा परीक्षण करते रहना, पहले छोटे और फिर बडे पैमानेपर और जो गलत हो, उसे अस्वीकार कर देना। सच्चे विज्ञानवेत्ता के लिए सत्य ही सर्वाधिक महत्त्वकी वस्तु है। इसमें किसी प्रकारकी आत्म प्रवञ्चना, तथ्योंका गोपन और साक्ष्यकी तोड-मरोड नहीं होनी चाहिए। अधिकांश

लोग यह चाहते है कि सत्य उनकी तरफ हो जाय, किन्तु सच्चा वैज्ञानिक (सच्चे धार्मिक व्यक्तिके समान) स्वयं सत्यकी तरफ रहना चाहता है। और जब वह सत्यका पता लगा लेता है, फिर चाहे वह कितने ही संकीर्ण और विशेषीकृत क्षेत्रका ही क्यों न हो, विज्ञानवेत्ता उसे अपनेतक ही सीमित नही रखता, वह उसे प्रकाशित कर देता है, जिससे दूसरे लोग भी उसकी वैज्ञानिक निष्ठाकी जाँच कर सकें और उसके तथ्यो तथा तरीकोका परीक्षण करते हुए जहाँतक वह पहुँचा है, उसके आगे बढ सकें। गांधी भी अपने अनुयायियोसे यही अपेक्षा करते थे। वे चाहते थे कि उनके अनुयायी हाथ-पर-हाथ धरे बैठे और उनकी प्रशंसा ही करते न रहे, उनकी स्मृतिके सामने साष्टाग दंडवत करते और उनके लिए शोक मनाते न रहे, अपितु जहाँ जो अधूरा काम वे छोड गये है, वहींसे उसे पूरा करनेके लिए आगे बढें और इस सिलसिलेमे उन्हींके समान प्रयोग करते चलें तथा भूलोंसे शिक्षा लेनेके लिए उन्हींके समान तत्पर बने रहे।

गाधी अपने विचारोंकी व्याख्याके लिए प्राय. अपनी पद्धतिकी तुलना वैज्ञानिक पद्धतिसे किया करते थे

> मै सत्यका अन्वेषक मात्र हूँ। मेरा दावा है कि मैने सत्यकी ओर जानेवाले रास्तेका पता लगा लिया है। मेरा यह भी दावा है कि मै उसे पानेके लिए अथक प्रयत्न कर रहा हूँ। किन्तु मैं यह स्वीकार करता हूँ कि मै अभीतक सत्यको पा नही सका हूँ... मुझे अपनी अपूर्णताओकी कष्टकारक अनुभूति भी होती रहती है और इसी अनुभूतिमें सारी शक्ति निहित है।[२]
>
> तो फिर सत्य क्या है ? यह एक कठिन सवाल है, किन्तु मैने अपने लिए इस सवालको हल कर लिया है। मैं कहता हूँ कि तुम्हारे अन्दरकी आवाज ही सत्य है। तुम पूछोगे कि फिर अलग-अलग लोगोके अलग-अलग परस्परविरोधी सत्य क्यो होते है ? इसके सम्बन्धमे मुझको यही कहना है कि चूँकि मानव-मस्तिष्क असंख्य माध्यमोसे कार्य करता है और चूँकि प्रत्येक व्यक्तिका बौद्धिक स्तर समान रूपसे विकसित नही रहता, इसीलिए एक आदमीका सत्य दूसरेके लिए असत्य हो सकता है। यही कारण है कि प्रयोक्ताओने यह निष्कर्ष निकाला है कि इन प्रयोगोके करते समय कुछ विशिष्ट परिस्थितियाँ अपेक्षित होंगी। आध्यात्मिक क्षेत्रमें प्रयोग करते समय किसी भी व्यक्तिके लिए उसी तरहका कठोर आरम्भिक अनुशासन अपेक्षित होता है, जिसकी अपेक्षा वैज्ञानिक प्रयोगोके दौरान किसी विज्ञानवेत्तासे की जाती है। अतएव अपनी अन्तरवाणीकी

> बात करते हुए प्रत्येक व्यक्तिको अपनी सीमाओंका अनुभव करते रहना चाहिए जिस व्यक्तिमें पर्याप्त विनम्रताका अभाव हो वह कभी सत्यकी उपलब्धि नहीं कर सकता।[3]

यह ठीक है कि प्रत्येक वैज्ञानिकको एक ही प्रकारका प्रशिक्षण नहीं प्राप्त होता। हम विभिन्न प्रकारके वैज्ञानिक अनुशासनोंकी चर्चा करते हैं—जैसे भौतिकी रसायन वनस्पति विज्ञान, भू विज्ञान इत्यादि। प्रत्येक वैज्ञानिकके प्रशिक्षणका आरम्भिक क्रम ही एक दूसरेसे भिन्न नहीं होता, व अपने प्राप्त तथ्योंकी व्याख्या भी भिन्न भिन्न तरीकेसे करते हैं। यहाँतक कि प्रकृतिकी एक ही शाखा—उदाहरणके लिए परमाणुकी खोज करते हुए भी उनकी व्याख्याएं अलग अलग ढंगकी होंगी। मेरे जैसे रवा विज्ञानवेत्ताके प्रयोगोंके परिणामोंको प्रकट करनेके लिए परमाणुकी जो व्याख्या मेरे लिए पर्याप्त होगी वही स्पेक्ट्रम विज्ञानवेत्ता या न्यष्टि भौतिकवेत्ताके लिए नितान्त अपर्याप्त होगी। फिर भी एक वैज्ञानिक सत्यके जिस पक्षका पता लगा लेता है वह दूसरे वैज्ञानिककी दृष्टिसे ओझल रह सकता है और चूँकि सभी वैज्ञानिकोंके वे प्रतिमान एक ही ढंगके होते हैं जिनसे वे वैज्ञानिक सत्यका परीक्षण करते हैं अतएव प्रत्येक वैज्ञानिक दूसरे वैज्ञानिकके निष्कर्षोंके प्रति सम्मानका भाव रखता है।

मेरा ख्याल है कि गांधीने मेरे इस उदाहरणको अवश्य पसंद किया होता क्योंकि सहिष्णुताके संबंधमें (यद्यपि यह शब्द उन्हें पसंद नहीं है किन्तु दूसरे और उपयुक्त शब्दके अभावमें उन्होंने इसे ग्रहण कर लिया है) विचार करते हुए वे यह सवाल उठाते हैं कि 'आखिर दुनियामें इतने प्रकारके धर्म क्यों मिलते हैं?' और फिर अपने ही जवाब भी देते हैं

> किसकी व्याख्या सही मानी जाय? प्रत्येक व्यक्ति अपने दृष्टि बिन्दुसे सही हो सकता है किन्तु यह भी असंभव नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति गलत हो। इसीलिए सहिष्णुता आवश्यक है। जिसका अर्थ अपने धर्मके प्रति उदासीनता नहीं होता, बल्कि उसके प्रति और उद्बुद्ध एवं विशुद्धतर प्रेम होता है। सहिष्णुता हमें वह आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि प्रदान करती है जो उन्मादी अन्धश्रद्धासे उतनी ही दूर है, जितना दूर उत्तरी ध्रुव दक्षिणी ध्रुवसे होता है।[4]

अनुभवी शोधकर्ता वैज्ञानिक भी प्रेरणामें विश्वास करता है, किन्तु इस प्रेरणाका स्रोत उसके अपने विषयके आधारभूत गम्भीर ज्ञान और उसके प्रति समर्पणकी भावनामें होता है। उसका विषयज्ञान इतना गम्भीर होता है कि वह अन्तर्दृष्टि

की एक झलकमे ही सतही तर्क-वितर्कसे ऊपर उठ जाता है, यद्यपि इस अन्तर्दृष्टि-का परीक्षण भी उसे वादमे व्यवहार द्वारा करना पडता है। गाधीने भारत और ब्रिटेनके बीच पारस्परिक समझदारी वढानेका कार्य अगाथा हैरिसनको सौपते हुए कहा था कि, "परमात्मा आपका मार्गदर्शन करेगा।" उन्हे यह आश्वासन उन्होने इसी विश्वासके आधारपर दिया था कि वे अपने कार्यके लिए स्वत प्रस्तुत हो चुकी थी। उन्होने अपने अमेरिकी मित्रोके नाम लिखे पत्रमे कहा था

> इसके पूर्व मुझे प्राय. कई तरहके निर्णय करने पडे है, किन्तु हर वार मेरे सामने यह कठिनाई वनी रही हे कि आखिर मुझे किस दिशामे वढना हे, किन्तु इस वार मै तुरन्त समझ गयी कि मुझे क्या करना है और मैने तुरन्त गाधीजीसे कह दिया कि यह कार्य मै अवश्य करूँगी [५]

निष्कर्परूपमे मै गाधीके लेखोसे ही एक उद्धरण देकर ईश्वरके संवंधमे दो गयी उनकी एक परिभापाका उल्लेख करूँगी। मेरी समझमे वौद्धिक निष्ठाके अनु-सधानमे लगे अनेक उद्भ्रान्त युवक वैज्ञानिकोपर इस परिभापाका वडा ही गभीर प्रभाव पडेगा।

> ईश्वर उन लोगोके लिए व्यक्तिगत साकार ईश्वर है, जिन्हे उसकी व्यक्ति-गत उपस्थिति आवश्यक होती हे। जिन्हे उसका स्पर्श अपेक्षित होता है, उनके लिए वह मूर्त और साकार हो जाता है। वह विशुद्धतम सारतत्त्व है। वह केवल उन्ही लोगोके लिए है, जिनकी उसमे निष्ठा होती है। वह सभी व्यक्तियोके लिए सव कुछ है। वह हम लोगोके अन्दर है, फिर भी हमसे परे और ऊपर है। कोई "ईश्वर" शब्दका भले ही वहिष्कार कर दे, किन्तु स्वय उस वस्तुका वहिष्कार कर देनेकी ताकत किसीमे नही हे।[६]

इसके वाद मै कार्ल हीथका एक उद्धरण देना चाहती हूँ

> उनकी प्रेमकी भावना और सत्यके निष्पक्ष अन्वेपण ने ही लाखो-करोडो व्यक्तियोके दिलोमे उनके प्रति प्रेम और गंभीर श्रद्धाकी भावना जागरित कर दी।[७]

और अन्तमे मै अपने एक जर्मन मित्र मार्गरेट लाचमण्डका उद्धरण दूँगी, जो उस समय पूर्वी और पश्चिमी वर्लिनके बीच वार्तामे संलग्न थे

> सत्यके लिए उठ खडे होनेकी शक्ति तथा अपने विचारोको स्पष्टतापूर्वक रख सकनेके साहसकी हमसे वार-वार अपेक्षा की जाती हे। वस्तुत. सारा रहस्य इसी तथ्यमे निहित है कि हम सत्यका भापण किस रूपमे करते है। यदि हम इसका भापण अवज्ञा, कटुता अथवा घृणाके उद्देश्यसे

> बात करते हुए प्रत्येक व्यक्तिको अपनी सीमाओंका अनुभव करते रहना चाहिए। जिस व्यक्तिमें पर्याप्त विनम्रताका अभाव है, वह कभी सत्यकी उपलब्धि नहीं कर सकता।[3]

यह ठीक है कि प्रत्येक वैज्ञानिकको एक ही प्रकारका प्रशिक्षण नहीं प्राप्त होता। हम विभिन्न प्रकारके वैज्ञानिक अनुशासनोंकी चर्चा करते हैं—जैसे भौतिकी, रसायन, वनस्पति विज्ञान, भू विज्ञान इत्यादि। प्रत्येक वैज्ञानिकके प्रशिक्षणका आरम्भिक क्रम भी एक दूसरेसे भिन्न नहीं होता। वे अपने प्राप्त तथ्योंकी व्याख्या भी भिन्न भिन्न तरीकेसे करते हैं। यहाँतक कि प्रकृतिका एक ही पहलू—उदाहरणके लिए परमाणुकी खोज करते हुए भी उसकी व्याख्याएँ अलग अलग प्रकारकी होंगी। मेरे जैसे रसायन विज्ञानवेत्ताके प्रयोगोंके परिणामोंको प्रकट करनेके लिए परमाणुकी जो व्याख्या मेरे लिए पर्याप्त होगी वही सूक्ष्म विज्ञानवेत्ता या न्यष्टि भौतिकवेत्ताके लिए नितान्त अपर्याप्त होगा। फिर भी एक वैज्ञानिक सत्यके जिस पक्षका पता लगा लेता है वह दूसरे वैज्ञानिककी दृष्टिमें ओझल रह सकता है और चूँकि सभी वैज्ञानिकोंके प्रतिमान एक ही ढंगके होते हैं, जिनमें वे वैज्ञानिक सत्यका परीक्षण करते हैं अतएव प्रत्येक वैज्ञानिक दूसरे वैज्ञानिकोंके निष्कर्षोंके प्रति सम्मानका भाव रखता है।

मेरा ख्याल है कि गांधीजीने मेरे इस उदाहरणको अवश्य पसंद किया होता क्योंकि सहिष्णुताके संबंधमें (यद्यपि यह शब्द उन्हें पसंद नहीं है किन्तु दूसरे और उपयुक्त शब्दके अभावमें उन्होंने इसे ग्रहण कर लिया है) विचार करते हुए वे यह सवाल उठाते हैं कि आखिर दुनियामें इतने प्रकारके धर्म क्यों मिलते हैं? और फिर अपने ही जवाब भी देते हैं :

> किसकी व्याख्या सही मानी जाय? प्रत्येक व्यक्ति अपने दृष्टि बिन्दुसे सही हो सकता है किन्तु यह भी असंभव नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति गलत हो। इसीलिए सहिष्णुता आवश्यक है। जिसका अर्थ अपने धर्मके प्रति उदासीनता नहीं होता, बल्कि उसके प्रति और उद्बुद्ध एवं विशुद्धतर प्रेम होता है। सहिष्णुता हमें वह आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि प्रदान करती है जो उन्मादी अन्धश्रद्धासे उतनी ही दूर है जितना दूर उत्तरी ध्रुव दक्षिणी ध्रुवसे होता है।[4]

अनुभवी शोधकर्ता वैज्ञानिक भी प्रेरणामें विश्वास करता है किन्तु इस प्रेरणाका स्रोत उसके अपने विषयके आधारभूत गम्भीर ज्ञान और उसके प्रति समर्पणकी भावनामें होता है। उसका विषयज्ञान इतना गम्भीर होता है कि वह अन्तर्दृष्टि

की एक झलकमे ही सतही तर्क-वितर्कसे ऊपर उठ जाता है, यद्यपि इस अन्तर्दृष्टि-का परीक्षण भी उसे वादमे व्यवहार द्वारा करना पड़ता है। गाधीने भारत और ब्रिटेनके वीच पारस्परिक समझदारी बढानेका कार्य अगाथा हैरिसनको सौपते हुए कहा था कि, "परमात्मा आपका मार्गदर्शन करेगा।" उन्हे यह आश्वासन उन्होने इसी विश्वासके आधारपर दिया था कि वे अपने कार्यके लिए स्वत प्रस्तुत हो चुकी थी। उन्होने अपने अमेरिकी मित्रोके नाम लिखे पत्रमे कहा था

> इसके पूर्व मुझे प्राय. कई तरहके निर्णय करने पडे है, किन्तु हर बार मेरे सामने यह कठिनाई वनी रही हे कि आखिर मुझे किस दिशामे बढना हे, किन्तु इस बार मै तुरन्त समझ गयी कि मुझे क्या करना है और मैंने तुरन्त गाधीजीसे कह दिया कि यह कार्य मै अवश्य करूँगी [५]

निष्कर्परूपमे मै गाधीके लेखोसे ही एक उद्धरण देकर ईश्वरके संवंधमे दी गयी उनकी एक परिभापाका उल्लेख करूँगी। मेरी समझमे वौद्धिक निष्ठाके अनु-संधानमे लगे अनेक उद्भ्रान्त युवक वैज्ञानिकोपर इस परिभापाका वड़ा ही गभीर प्रभाव पडेगा।

> ईश्वर उन लोगोके लिए व्यक्तिगत साकार ईश्वर हे, जिन्हे उसकी व्यक्तिगत उपस्थिति आवश्यक होती है। जिन्हे उसका स्पर्श अपेक्षित होता हे, उनके लिए वह मूर्त और साकार हो जाता है। वह विशुद्धतम सारतत्त्व है। वह केवल उन्ही लोगोके लिए है, जिनकी उसमे निष्ठा होती हे। वह सभी व्यक्तियोके लिए सब कुछ है। वह हम लोगोके अन्दर है, फिर भी हमसे परे और ऊपर है। कोई "ईश्वर" शब्दका भले ही वहिष्कार कर दे, किन्तु स्वयं उस वस्तुका वहिष्कार कर देनेकी ताकत किसीमे नही हे।[६]

इसके वाद मै कार्ल हीथका एक उद्धरण देना चाहती हूं

> उनकी प्रेमकी भावना और सत्यके निष्पक्ष अन्वेपण ने ही लाखो-करोडो व्यक्तियोके दिलोमे उनके प्रति प्रेम और गंभीर श्रद्धाकी भावना जागरित कर दी।[७]

और अन्तमे मै अपने एक जर्मन मित्र मार्गरेट लाचमण्डका उद्धरण दूँगी, जो उस समय पूर्वी और पश्चिमी वर्लिनके वीच वार्तामे संलग्न थे

> सत्यके लिए उठ खडे होनेकी शक्ति तथा अपने विचारोंको स्पष्टतापूर्वक रख सकनेके साहसकी हमसे वार-वार अपेक्षा की जाती हे। वस्तुत सारा रहस्य इसी तथ्यमे निहित है कि हम सत्यका भापण किस रूपमे करते है। यदि हम इसका भाषण अवज्ञा, कटुता अथवा घृणाके उद्देश्यसे

ो एक झलकमे ही सतही तर्क-वितर्कसे ऊपर उठ जाता है, यद्यपि इस अन्तर्दृष्टि-
ा परीक्षण भी उसे वादमे व्यवहार द्वारा करना पड़ता है। गाधीने भारत और
ब्रिटेनके बीच पारस्परिक समझदारी बढानेका कार्य अगाथा हैरिसनको सौपते हुए
कहा था कि, "परमात्मा आपका मार्गदर्शन करेगा।" उन्हे यह आश्वासन उन्होने
इसी विश्वासके आधारपर दिया था कि वे अपने कार्यके लिए स्वत प्रस्तुत हो
चुकी थी। उन्होने अपने अमेरिकी मित्रोके नाम लिखे पत्रमे कहा था

> इसके पूर्व मुझे प्राय. कई तरहके निर्णय करने पडे है, किन्तु हर वार मेरे सामने यह कठिनाई बनी रही है कि आखिर मुझे किस दिशामे बढना है, किन्तु इस वार मै तुरन्त समझ गयी कि मुझे क्या करना है और मैने तुरन्त गाधीजीसे कह दिया कि यह कार्य मै अवश्य करूँगी'[५]

निष्कर्षरूपमे मै गाधीके लेखोसे ही एक उद्धरण देकर ईश्वरके संवधमे दी गयी उनकी एक परिभाषाका उल्लेख करूँगी। मेरी समझमे वौद्धिक निष्ठाके अनुसधानमे लगे अनेक उद्भ्रान्त युवक वैज्ञानिकोपर इस परिभाषाका बडा ही गभीर प्रभाव पडेगा।

> ईश्वर उन लोगोके लिए व्यक्तिगत साकार ईश्वर है, जिन्हे उसकी व्यक्तिगत उपस्थिति आवश्यक होती है। जिन्हे उसका स्पर्श अपेक्षित होता है, उनके लिए वह मूर्त और साकार हो जाता है। वह विशुद्धतम सारतत्त्व है। वह केवल उन्ही लोगोके लिए है, जिनकी उसमे निष्ठा होती है। वह सभी व्यक्तियोके लिए सव कुछ है। वह हम लोगोके अन्दर है, फिर भी हमसे परे और ऊपर है। कोई "ईश्वर" शब्दका भले ही वहिष्कार कर दे, किन्तु स्वय उस वस्तुका वहिष्कार कर देनेकी ताकत किसीमे नही है।[६]

इसके वाद मै कार्ल हीथका एक उद्धरण देना चाहती हूँ

> उनकी प्रेमकी भावना और सत्यके निष्पक्ष अन्वेषण ने ही लाखो-करोडो व्यक्तियोके दिलोमे उनके प्रति प्रेम और गभीर श्रद्धाकी भावना जागरित कर दी।[७]

और अन्तमे मै अपने एक जर्मन मित्र मार्गरेट लाचमण्डका उद्धरण दूँगी, जो उस समय पूर्वी और पश्चिमी वर्लिनके वीच वार्तामे संलग्न थे

> सत्यके लिए उठ खडे होनेकी शक्ति तथा अपने विचारोको स्पष्टतापूर्वक रख सकनेके साहसकी हमसे वार-वार अपेक्षा की जाती है। वस्तुत सारा रहस्य इसी तथ्यमे निहित है कि हम सत्यका भाषण किस रूपमे करते है। यदि हम इसका भाषण अवज्ञा, कटुता अथवा घृणाके उद्देश्यसे

करते हैं तो इसका परिणाम भी कटुता ही होता ह यदि सत्यका सभा पण प्रेमपूवक किया जाय तो दूसरोके हृदयका द्वार भी धीरे-धीरे खुल सकता ह और सभवत सत्यका कुछ प्रभाव पड सकता ह बिना प्रेमके सत्यका कोई प्रभाव हा ही नही सकता, क्योकि उस हालतमें उसे कोई सुनता ही नही।

---

१ हरिजन २८ माच, १९३९।
२ यग इण्डिया, १७ जनवरी, १९२१।
३ यग इण्डिया, ३१ दिसंबर, १९३१।
४ यंग इण्डिया २३ सितबर १९२९।
५ अगाथा हैरिसन, इनकी बहन इरेने हैरिसन द्वारा दिया गया वयान जाज एलेन और अनविन लदन १९५९।
६ यग इण्डिया, ५ माच १९२५।
७ गाधी, जाज ऐलेन एण्ड अनविन लदन तृतीय सस्करण १९४८।

ईथेल मैनिन

गांधी और आधुनिक संकट

आजकी दुनियाके संदर्भमें गाधीके सम्बन्धमे कुछ भी लिखते हुए हमारे सामने आजकी सबसे वडी समस्या यह उपस्थित हो जाती है कि सिद्धान्तो और तात्कालिक लाभके लिए किये गये कार्योंके बीच समझौता कैसे कायम किया जाय। राजनीतिज्ञ लोग बातें तो शान्तिकी करते हैं, किन्तु व्यवहारमे लडाइयाँ लड़ते रहते हैं। संसारके हर देशकी सामान्य जनता बडी-से-वडी सख्यामें विश्व-शान्तिकी इच्छुक है। वह युद्धसे घृणा करती और डरती है, फिर भी मानव-जातिके इतिहासमे शायद कभी भी ऐसा कोई समय नही आया था, जब कि दुनिया राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय स्तरपर हिंसाके लिए इतनी उतारू, उतावली और लाचार हो गयी हो। आज उनके जन्मके करीब सौ वर्ष और नृशस हत्याके बीस वर्ष बाद गाधीको जो सिद्धान्त प्रिय थे, उनकी प्रशसा और समर्थनमे कुछ लिखना व्यंग्यपूर्ण विनोद और कोरी भावुकतामात्र है। क्या हम यह नही देख रहे हैं कि आजकी दुनियामें उनका प्रत्येक प्रिय सिद्धान्त ठुकरा दिया गया है? हमारा यह युग घोर भौतिकवाद और निरन्तर वर्धमान हिंसाका युग है। क्या यह पूछना प्रासङ्गिक न होगा कि गांधीकी आत्मा, जो स्वयं अहिंसा, विश्व-बन्धुत्व और बुराईके विरुद्ध अहिंसक प्रतिरोधकी ही आत्मा थी, उनकी हत्यासे ही सदाके लिए बुझा नही दी गयी? संक्षेपमे क्या हम यह नही पूछ सकते कि अन्ततोगत्वा गाधी पराजित कर दिये गये?

हमारे सवालका सीधा और साफ उत्तर 'हाँ' मे ही होगा, क्योंकि आज हम चारो ओर हिंसा-ही-हिंसा देख रहे हैं। स्वतन्त्रता-प्राप्तिके बाद भारतमें अहिंसाकी भावना कारगर नही रह गयी है, और हालके वर्षोंमें सुदूर पूर्व और मध्यपूर्व तथा सारे अफ्रीकी महाद्वीपमे जो कुछ हुआ है, वह युद्धो और गृहयुद्धोकी ही भीषण कहानी कह रहा है, यह सारी कहानी सत्ताके लिए आयोजित षड्यन्त्रो, सघर्षो

तथा बड पैमानेपर सामान्य जनताके व्यापक एव निमम उत्पीडनकी ही कहानी है। आजकी दुनियामें यह सब हिंसाका सामान्य प्रतिरूप बन गया है। हम जानते हैं कि स्वय गाधीका निधन भी हिंसा द्वारा ही हुआ था। हम कह सकते ह कि गाधी उन्ही अर्थोंम पराजित हुए ह जिन अर्थोंमें उनके पूव ईसामसीह और भगवान् बुद्ध हो चुके ह हम कह सकते हैं कि मानवकी वतमान स्थिति अहिंसाके गाधावादी सिद्धात अपन शत्रुओंको भी प्रेम करनके ईसाई सिद्धान्त और जीवनके प्रति सम्मानके बौद्ध सिद्धान्तकी पूणत अवहेलना हो गयी है। यह कहना अधिक सत्य होगा कि आजकी दुनिया इन आदर्शोंसे बिलकुल दूर हो गयी है।

फिर भी यह एक विलक्षण बात है कि दुनिया अपन महान् आध्यात्मिक नताओके उपदेशोंको व्यवहारम तो ठुकरा रही ह, किन्तु उन उपदेशोंकी प्रामाणिकता के सम्बन्धम उसका विश्वास बना हुआ ह। म समझता हू कि सभी जातियों और राष्ट्रोंके अधिकाश लोग इस बातपर सहमत होंगे कि युद्ध एक बहुत बडी बुराई ह, फिर भी जब कोई ऐसा युद्ध छिड जाता ह जिसे वे न्यायोचित मानते हों अथवा विशेषकर जिसका सम्बन्ध उनके अपन देशसे हो, तो वे उसका समथन करन लगेंगे। किसी भी हिंसाका सामना हिंसासे ही करनेके अतिरिक्त उन्ह और कोई विकल्प दिखाई ही नहीं देता और जहा उन्हें तात्कालिक दृष्टिसे आवश्यक दिखाई देता हो वे स्वय हिंसा आरम्भ करनेसे भी नहीं चूकते। गाधीने एक विकल्प सुझाया था। उन्होंने राष्ट्रव्यापी सविनय अवज्ञा आन्दोलनों तथा अपने आमरण अनशनों द्वारा इसका प्रदशन भी कर दिया था। ससारको इस विकल्प की अनुभूति भी हुई थी और वह इससे प्रभावित भी हुआ था। इसका इतना व्यापक प्रभाव पडा था कि गाधीके निधनपर व लाखों-करोडों लोग भी शोक विह्वल हो उठ थे, जिन्होंने कभी उन्हें एक बार भी नहीं देखा था। इन सभी लोगोंको ऐसा लगा था जसे उनका कोई अपना आत्मीय ही इस दुनिया से उठ गया, जसे—कल्याण करनेवाली एक महान शक्ति उनके बीचसे लुप्त हो गयी ह और उनका जीवन पहलेकी अपेक्षा अरक्षित और हिंसासे अधिक त्रस्त हो उठा ह।

यह ठीक ह कि अन्ततोगत्वा गाधी पराजित हो गय किन्तु यह भी उतना ही सत्य ह कि प्रेम और अहिंसाके सिद्धात अभी भी अपनी जगहपर बने हुए ह। सम्भव ह कि हम जिसे सही मानते हों उस हम ग्रहण कर न पायें किन्तु क्या सही ह और क्या गलत इसका जान लेना भी महत्त्वपूण ह। सत्यको देखनपर उसे पहचान लेना कोई कम महत्त्वकी बात नहीं है। यह निश्चय ही एक नतिक व्यक्ति की न्यूनतम अपेक्षा ह। यदि हम आदर्शको इसलिए ठुकराते रहें कि वह हमसे

बहुत दूर है—जैसा कि वह प्राय होता है—तो एक समय ऐसा भी आ जायगा कि हम किसी भी ऐसी वस्तुको, जो भौतिक और तात्कालिक लाभकी वस्तु न होकर उनसे ऊपरकी चीज हो, ठुकरा देगे। इसके फलस्वरूप हमे चाहे जो भी भौतिक लाभ होते हो, हमारी जो आध्यात्मिक क्षति होगी, वह निश्चय ही बहुत बडी होगी और अन्तमे चलकर उसका परिणाम बडा ही विनाशकारी होगा, क्योकि हम केवल शरीर ही नही, आत्मा भी है। किसी अच्छी चीजमे विश्वास करना, जैसे अहिंसा और विश्वबन्धुत्वके सिद्धान्तमे विश्वास करना, किन्तु उस विश्वासके अनुरूप जीवन-यापन न करना बडे दु खकी बात है, किन्तु यह मानवीय दुर्बलता है। धन कमाना और हर तरहकी चीजोको वृद्धावस्थाके लिए जोडकर रखते जाना स्वयंमे एक आत्मघाती वृत्ति है। पश्चिममे, जहाँ आजके समान जीवनमान कभी भी उन्नत नही हुआ था, ह्रासकी जो सामान्य प्रवृत्ति दिखाई देती है, वह भी उसी तरह अभूतपूर्व है।

रेजिनाल्ड रेनोल्ड्सने, जिन्हे १९२९-३० के सविनय अवज्ञा आन्दोलनके समय साबरमती-आश्रममे रहने और गाधीके साथ काम करनेका अवसर मिला था और जिन्हे ब्रिटिशराज को दी गयी गाधीकी अन्तिम चुनौतीको भी अधिकारियोतक पहुँचानेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था, अपने और अपने सहयोगियोके बारेमे कहा है कि·

> हममेसे अधिकाश लोग ऐसे देशोसे आये थे, जहाँ हमे ऐश-आरामकी असीम सुविधाएँ उपलब्ध थी। हममेसे कुछ लोग अपनेको इसलिए गरीब समझ रहे थे कि उनके "जीवनका प्रतिमान" कुछ गिर गया था। किन्तु यहाँ आकर हमने देखा कि इतनी कम सुख-सुविधाओके रहते हुए भी लोग परम प्रसन्न एवं सन्तुष्ट है। इससे हमे अपनी गरीबीका असली स्वरुप समझमे आ गया। हमारी गरीबी एक प्रकारकी आन्तरिक गरीबी थी—यह धनियोकी दीनता थी, जिसे वे 'ऊब जाने' की सज्ञा देते है। गाधी एक क्षणके लिए कभी ऐसी ऊबका अनुभव नही करते थे। मेरा अभीतक जितने लोगोसे परिचय हुआ है, उनमे किसीको कभी हमने इतना प्रसन्न नही देखा, जितना गाधीजी हमेशा रहा करते थे। उनके संबधमे मै अपने इस वक्तव्यको भी कम ही मानता हूँ। यदि जीवनका प्रतिमान स्वय जीवन ही हो सकता है तो गाधीके "जीवनका प्रतिमान" ऊँचा-से-ऊँचा था।[1]

गाधी कोई सन्त नही थे। जो लोग उनकी प्रशंसा करते-करते उन्हे देवता बना डालना चाहते है, वे उनकी स्मृति और उन लाखो-करोड़ो लोगोके प्रति बड़ा

अन्याय करते हैं, जिनके लिए वे मार्गदर्शक, प्रकाश और शक्तिके महान् स्रोत केवल इसलिए बन सके थे कि केवल एक अच्छे आदमी थे—अन्य व्यक्तियोंकी तरह ही एक आलोच्य व्यक्ति थे। समय-समयपर उनके व्यक्तित्व और कृतित्वमें निराशाजनक विसंगतियाँ उभर आती थी कभी-कभी उनसे लोगोंको ऊब भी होने लगती थी, किन्तु उनका नैतिक साहस सदैव उद्दाम बना रहता था। इसीलिए उनकी नैतिक शक्ति भी असीम हो उठती थी। वे अन्तरसे इतने महान थे कि कोई भी उनकी हँसी उडाकर उन्हें गलत ढगसे प्रस्तुत करके अथवा जैसा कि रजिनाल्ड रेनोल्डस कहते है, उनके बारेमें 'बिलकुल साफ, सीधा और सफेद झूठ बोलकर' भी उनका कुछ नही बिगाड सकता था। अपनी आत्मकथामें गाधीने स्वय अपने को नही छोडा है। इसके विपरीत उन्होंने अत्यन्त निर्भय और अनासक्त भावसे और रूसो जैसी स्पष्टोक्तिके साथ अपना उद्घाटन किया है। पश्चिममें हम लोगो के लिए यही वह वस्तु है जिसके लिए उनका हमारे निकट मूल्य है। ऐश आराम में फूले हुए भोग विलासमें आकण्ठ निमग्न भौतिकवादी पश्चिमके लिए यह एक मूल्यवान तथ्य है कि वे कोई अतिमानव नही थे, वे उसी मिट्टीके बने हुए थे, जिस मिट्टीके हम सब बने है किन्तु उनकी यही विशेषता है कि दुनियाकी सारी सपदाओ को त्यागकर और मानवताके प्रति प्रेम दिखाकर उन्होंने उसी मिट्टीसे इतना अच्छा काम कर दिखाया। अल्पसुविधाप्राप्त और अल्पपोषित दो तिहाई ससारके लिए उनका यह मूल्य है कि उन्होंने अल्पसुविधाप्राप्त उपेक्षित और तिरस्कृत मानवता के साथ—अस्पृश्योंके साथ तादात्म्य प्राप्त कर लिया था। वे साधारण आदमियोंसे बढकर आदमी थे। वे सब जगहोंमें सभी सामाजिक परिस्थितियोंमें रहनेवाली समस्त जातियोंकी जनताके आदमी थे।

यदि हम जीवनकी उनकी अहिंसक योजनाके अनुरूप जीवन-यापन नही कर सकते—और यह साफ मालूम होता है कि हम ऐसा कर सकनेमें असमर्थ है—तो यह हमारे लिए बहुत ही बुरी बात है। फिर भी जबतक हम अपने दिलो और दिमागोंमें यह अनुभव कर रहे है कि वे सही रास्तेपर थे तो मैं समझता हूँ कि हमारा पूरी तरहसे विनाश और पतन नही हो सकता, क्योंकि दुनियाके राजनेता और सेनापति व्यक्तिगत और राष्ट्रीय सत्ताकी वेदीपर प्रेमका बलिदान करते हुए हमसे चाहे जो भी करा लें, किन्तु फिर भी कल्याण और शुभका बीज अवश्य ही बचा रह जायगा, आशाका नक्षत्र अधकारमें बराबर टिमटिमाता रहेगा, मनुष्य की आत्माके प्रति निष्ठा किसी-न किसी रूपमें कायम ही रहेगी। क्वेकर लोग जिसे "प्रत्येक व्यक्तिमें निवास करनेवाला ईश्वरांश कहते हैं' उसकी सत्ता अवश्य बना

प्रेण्टा मौरिना

गाधी   भारतकी प्रतिमूर्ति और प्रतीक

अर्वाचीन कालमे किसी भी देशका कोई भी राजनेता राजनीतिज्ञ कवि या लेखकने अपने देशकी आत्मा या जनताका उस पैमानेपर प्रतिनिधित्व नही कर सका ह, जिस पमानपर गाधीने किया ह । उनके लिए कथनी और करनीम कोई अन्तर ही नही था इसीलिए अपने जीवनकालमें ही व महात्मा कहलाने लग ।

वे महान सयमी आदर्शवादी उच्चकोटिके गभीर लेखक भी थे । सभवत ब्रिटेनमें अध्ययन करते समय ही उन्होने शब्दोकी मितव्ययिता और अभिव्यक्ति की स्पष्टतासे परिपूर्ण लेखन शलीका विकास कर लिया था । किन्तु उनके विचारो पर मुख्यत इन तीन घटकोका प्रभाव पडा ह—हिंदू धमकी प्राचीन परम्परा, टॉल्सटाय और प्लेटो । आत्माकी अमरताके प्रतिपादक ग्रथ प्लेटोकी महान् कृति फेडोन का तो उन्होने अपनी मातृभाषाम अनुवाद भी किया था ।

वे हिन्दुओंसे टॉल्सटायकी इन तीन कृतियोका पढनेका अनुरोध प्राय किया करते थे द किंगडम आव गाड इज़ विदइन यू ह्वाट इज आट ? और ह्वाट मस्ट वी डू ? सन १९२१ म उनसे यह सवाल किया गया था कि काउण्ट टॉल्सटायस उनका क्या सबध रहा ह ? इसपर उन्होने जवाब दिया था कि "म उनके प्रति पवित्र श्रद्धाका भाव रखता हूँ । अपने जीवनमें म उनका बहुत ऋणी हू ।

अपनी विनम्रता और सयमपूण सरलताम तो व टालस्टायसे मिलते ही ह इसके अतिरिक्त उनमें टालसटायके समान ही सत्य और अहिंसाका अटट सङ्कल्प भी था । वे उन्हीके समान पाखण्डको घृणाकी दृष्टिसे देखते थे और आधुनिक सभ्यताके प्रति उनम अरुचिकी भावना थी । टाल्सटायके समान ही उन्होने भी कभी अपनेको किसी त्रुटिके लिए क्षमा नही किया और हर समय अपना दुबल ताओके माजनके लिए तत्पर रहे। सन्तके नामसे पुकारा जाना महात्माको बिल्कुल पसद न था

> मै भी किसी अच्छे हिन्दूके समान ही पूजा और प्रायना करता हूँ । मरा विश्वास ह कि हम सभी परमात्माके सदेशवाहक वन सकते हैं किन्तु मुझे इश्वरसे कोई विशेष तरहका दिव्य आदेश (इलहाम) नही प्राप्त हुआ

है। मैं एक सीधा-सादा कर्मकार और भारत तथा मानव-जातिका एक विनम्र सेवक होनेकी अपेक्षा और कुछ नही होना चाहता।

एक ओर यूरोपके शासकोने मनुष्योको कीड़ोकी तरह नष्ट किया है और , झूठ, नास्तिकता और प्रतिशोधके रक्तपिपासु कार्योसे अपनी अल्पजीवी राज-को दीर्घजीवी बनानेका प्रयत्न किया है तथा पारमाणविक बमोका राक्षसी र किया है। दूसरी ओर गाधीने भारतकी मुक्तिके लिए न्याय, सत्य और सत्या-का सहारा लेकर संघर्ष किया है। सत्याग्रह-आन्दोलन १९१९ मे आरभ हुआ । त्रासको शासनका आवश्यक अंग माननेवाले लेनिन गांधीसे केवल एक वर्ष : थे और स्टालिन भारतको मुक्ति दिलानेवाले इस महापुरुषके जन्मके दस वर्ष : पैदा हुए थे। गाधीका "सत्याग्रह" का मन्त्र टॉल्सटॉयके "अप्रतिरोध" का यि नही है, क्योकि इसमे प्रत्यक्ष काररवाईका आह्वान भरा हुआ है। सत्याग्रही-सरकार और सत्ता द्वारा किये जा रहे अन्यायके विरुद्ध, हिंसात्मक कार्यो-पूर्णत. विरत रहते हुए भी, आमरण सघर्ष करना पडता है। सत्याग्रहको यरतापूर्ण शान्तिवाद समझ बैठनेकी भूल नही होनी चाहिए। गाधीके हाथमे न्तिका खड्ग रहता था।

जिस तरह ईसामसीहने सागरोपर शासन किया था, उसी तरह गांधीने लीस कोटिके जन-समुद्रपर शासन किया था। जब कभी कोई जनसमूह विक्षिप्त उठता था और रक्तरंजित कार्योकी अति कर बैठता था—ऐसी अशोभन टनाओंसे कोई भी राष्ट्र पूर्णत मुक्त नही होता—तो यह गाधीकी ही शक्ति थी कि अपने अनशनसे ही विद्रोही तत्त्वोको शान्त हो जानेके लिए बाध्य कर देते थे। ास तरह सुकरातने एथेन्स-निवासियो द्वारा अपनी गिरफ्तारीका प्रतिरोध नही न्या, उसी तरह गांधीने भी १९२२ मे अंग्रेजो द्वारा की गयी अपनी गिरफ्तारीको वीकार कर लिया। कारागारसे उन्होने अपनी जनताको शान्ति, अहिंसा और कष्ट हनेके लिए तत्पर रहनेका संदेश दिया। खतरनाक बीमारी और अनिवार्य आप-गनके कारण दो वर्षोके बाद जेलसे उनकी रिहाई हो गयी। उस समय उनके ारीरमें केवल हड्डियोका ढाँचा रह गया था, फिर भी उन्होने सत्याग्रहके सिद्धान्तो-जरा भी विचलित हुए विना अपने उद्देश्यके लिए अथक प्रयत्न जारी रखा। न् १९३२ मे जब अंग्रेजोने उन्हे फिर बंबईमे कारागारमे डाल दिया तो सडकोपर ऐसा अभूतपूर्व शोरगुल शुरू हो गया और घरोमे स्त्री-पुरुष इस प्रकार रोने और चिल्लाने लगे कि उस ओरसे गुजरनेवाले यात्रियोंको किसी प्राकृतिक विपत्तिको ाशका होने लगी। असंख्य साइरनोकी आवाजकी तरह शोक और कष्टकी

ध्वनियाँ होटलोंसे लेकर महलोंतक व्याप्त हो गयी। कहा जाता है कि उस समय ९० हजार भारतीय गिरफ्तार हुए थे, किन्तु अंग्रेज अभीतक इस संख्याको ३० हजार ही बताते हैं किन्तु संख्याका कोई महत्त्व नहीं है, महत्त्व तो उस प्रशान्त भावका है, जिसके साथ गांधीके अनुयायी बराबर जेल जानेको तैयार रहते थे। उसकी स्मृति आज भी प्रेरणाप्रद बनी हुई है।

पार्थिव और मानवीय सीमाओंमें ऐसी महानताकी कल्पना भी नहीं की जा सकती जिसके साथ किसी बड़ी शोकपूर्ण घटनाका संबंध न रहा हो। "महात्मा गांधीका सारा जीवन स्वतंत्रता न्याय और अहिंसाके लिए एक आदर्श जीवन था।" हिन्दुत्वको एक नया जीवन और नया अर्थ तथा जनताको मानवीय गरिमासे अलंकृत जीवन प्रदान करनेके अतिरिक्त उनके जीवनका और कोई उद्देश्य ही नहीं था। उन्होंने अपने जीवनमें अन्य किसी वस्तुकी कामना ही नहीं की। ऐसे महात्मा की भी हत्या सन् १९४८ में एक ऐसे हत्यारेने कर दी, जो अंग्रेज नहीं था बल्कि एक हिन्दू ब्राह्मण था और जिसका मस्तिष्क इस महान् पुरुषकी महत्ताको समझ पानेमें असमर्थ था।

यह अनुमान करना कठिन है कि भारत शस्त्रास्त्रोंकी विश्वव्यापी होड़ और उद्योगीकरणकी तीव्रगतिके दौरान भविष्यमें कहाँतक गांधीके विचारोंके प्रति निष्ठावान रह पायेगा और कबतक हिंसाके मुकाबले समझदारीके शान्तिपूर्ण प्रयत्नोंको वरीयता देता रहेगा। जो कुछ भी हो आज हमारा भ्रम पूरी तरह दूर हो चुका है और हम अपने इस निरर्थक युगको हिन्दुत्वके अध्ययनमें एक नयी दिशा दे सकते हैं। हम उससे यह सीख सकते हैं कि संसरणशील तुच्छ वस्तुओंसे परे देखनेमें ही किसी सच्चे और स्थायी ऐक्यकी स्थापना हो सकती है क्योंकि समस्त जीवन और सत्ताकी परिपूर्णता समग्रतामें है उसके तुच्छ अंशोंमें नहीं। इसी विधिसे हम आजकी व्याधियोंका आन्तरिक उपचार प्राप्त करनेकी दिशामें बढ़ सकते हैं।

घृणा और हिंसासे विघटित अपने इस युगका भार हम यह सोचकर आसानीसे ढो सकते हैं कि हमारे ऐसे युगमें गांधी जैसा व्यक्ति रह चुका है जिसने दयालुताकी अपनी विनम्र शक्तिसे ही अपने देशकी मुक्तिका आन्दोलन चलाया था।

गांधीके संबंधमें विचार करते हुए हमें अपने इस विश्वासमें दृढ़ताकी अनुभूति होती है कि मनुष्य शैतानी प्रवृत्तियोंके दमनमें सर्वथा समर्थ है।

उदाहरणके रूपमें जाना गया जीवन सारी दार्शनिक प्रणालियों और धार्मिक मतवादोंकी अपेक्षा मानव जातिमें परिवर्तन लानेमें कहीं अधिक समर्थ होता है।

मीरा बेन

और बड़ी शोकपूर्ण घटना

भारत और विश्वपर गाधीजीका प्रभाव और अधिक क्यो नही पडा ? जव हम नमक-सत्याग्रहके समयकी जन-जागर्ति अथवा गोलमेज-सम्मेलनके समय गाधी-जीने जिस राजनेतृत्वसे भारतके सम्मानकी रक्षा की थी या जिस शौर्यपूर्ण धैर्य-के साथ उन्होने साम्प्रदायिक उन्मादका सामना करते हुए अन्तमे अपने जीवनकी वलि चढा दी थी—इन सब वातोपर विचार करते है हमें गाधीजीकी हत्यासे भी वढकर शोकपूर्ण अनुभूति होती है। गाधीजीके इन सव कार्योके चारो ओर ऐसा प्रतीत होता था, जैसे गरिमाका एक प्रभामंडल वन गया हो और कुछ महान् मौलिक चीजोकी उपलब्धि हुई हो। किन्तु आज तीस वर्ष वाद हम कहाँ है ?

ऐसा लगता है कि हम लोगोके सोचने और काम करनेमे वडी गलती है। क्या गाधीजी सन्तो और उद्धारकोकी श्रेणीमे इसीलिए पहुँचा दिये गये है कि उनके संदेशोका उपदेश दिया जाता रहे और उन्हे प्रकाशित करके वाँटा जाता रहे और दुनिया अपनी राह चलती रहे ? दूसरे शब्दोमे कहे तो क्या उनके सदेशोको एक सम्प्रदाय—एक वादके रूपमे नही वदला जा रहा है ?

सन् १९३६ में ही गाधीजी इस खतरेको समझ गये थे और गाधी सेवा संघके समक्ष भापण करते हुए इन शब्दोमे चेतावनी दी थी . गाधीवाद जैसी कोई चीज नही है। मै नही चाहता कि मेरे नामपर कोई सम्प्रदाय खडा हो जाय।

फिर भी आज चरखा एक तरहका "धार्मिक प्रतीक" वनता जा रहा है और गाधीजीकी जीवन-पद्धति धीरे-धीरे औपचारिक अनुष्ठानमात्र वनती जा रही है और यदि यही गति रही तो इस वातकी भी संभावना है कि कही गाधीजीकी छोटी-छोटी निजी वस्तुएँ भी "धार्मिक अवशेप" का रूप न ग्रहण कर लें। क्या इससे यह पता नही चलता कि गाधीजीके नामपर एक नया सम्प्रदाय वनना

शुरू हो गया ह ?

जब कोई विचार धारा धार्मिक रूप ले लेती ह तो वह अनुल्लघनाय वन जाती ह और उसवे विकासका स्वतत्रता जाता रहती ह। जो वस्तु "गाधा वाद का प्रतीक वनती जा रही ह वही इसका एक अच्छा-खासा उदाहरण ह। इतनी दूरसे म भारतकी वतमान स्थितिसे पूणत अवगत होनेमें असमथ हूँ किन्तु मेरी यह भावना वल्वती होती जा रही है कि यदि गाधीजीके चरखका एक पवित्र वस्तुका रूप न द दिया गया होता तो अवतक भारतने गाव-गावमें चरखोकी गूँज होने लगी होती और गावोमें खादी उत्पादन वडे पमानेपर आरम्भ हो गया होता। यह ठीक ह कि यह सब तभी सम्भव होता, जब बडे उद्योगपतियोको इसके लिए राजी कर लिया जाता।

इस वातपर कभी विश्वास नही किया जा सकता कि आधुनिक विनान और प्राविधिक दक्षतास गाँवोमें ऐसे लघु प्रतिष्ठान नही कायम किये जा सकते जिनसे वडी-वडी मिलोके समान ही उच्चकोटिके वस्त्रोका उत्पादन हो सके।

भारतके गावाम वस्त्राद्यागका पुर्नविकास गाधीजीका लक्ष्य था। ५० वपपूव चरखसे इस दिशामें आश्चयजनक काय हो सकता था, किन्तु इन ५० वर्षोमें विनान और प्रविधिम जो अभूतपूव विकास हुआ ह उससे पूरी तस्वीर वदल चुकी ह।

म पहले ही कह चुका हूँ कि मुझे भारतके सवधम पूरी जानकारी नही ह। शायद गाधीवादी कायकर्ता अपने कायक्रम का पुन सघटन कर रहे हा लेकिन मुझ गाधीवादकी उस पुरानी भावनाका तेज और सघप नही दिखाई दे रहा ह। फिर भी यह तय ह कि भारतीय ग्रामोके लिए आत्मनिभरताका जा लक्ष्य गाधी जीने स्थिर किया था उसे आधुनिक साधनोसे पूरा करनेके लिए पूणत वेगवान क्रान्तिकारी उत्साह अपेक्षित ह। इसके विना मिल-मालिकोको ग्रामाके इस विकास के प्रति सहमत बनानेका और क्या उपाय हो सकता ह। यदि इस तरहका आन्दा लन छेड दिया जाय ता एक बार पुन न केवल भारतको अपितु सार ससारको गाधीवादी आदर्शोम निहित सत्य और प्रकाशकी अनुभूति होन लगे।

यहा यूरोपम लागोकी आम धारणा यह ह कि चरखा जिसे गाधीजीके आदर्शो का प्रतीक बना दिया गया ह, उनके पूरे विचाराको समझनेमें एक वडी वाधा उपस्थित कर दता ह और उनके सिद्धान्तोका व्यावहारिकताके प्रति जनताकी आस्था कम हो जाती ह। यद्यपि गान्धीजी स्वय अपने विचारापर असाधारण दढतासे आरुढ रहा करत थ फिर भी उन्ह यदि उनम कोई परिवतन करन की आवश्यकता महसूस होता थी तो इससे व हिचकते नही थ। किसी भी वादक

प्रति उनमे उग्र विरोधकी जो भावना थी, सम्भवत. उसके पीछे यही कारण सबसे प्रमुख था।'वे हमेशा ऐसे सत्यकी खोजमे लगे रहते थे, जिससे मनुष्यके सौख्यमे वास्तविक वृद्धि की जा सके, अतएव हमे भी उनका केवल अनुसरण न करके स्वयं सत्यकी खोजमे भी लगे रहना चाहिए।'

गाधीवादी कार्यकर्ताओको केवल मिशनरी न होकर क्रान्तिकारी बनना चाहिए।

अर्ल माउण्टबैटन आव बर्मा

महात्मा गाधी—एक सच्चे मित्र

मुझे दुनियाके अनेक नेताओसे मिलने और अनेक महान प्रतिभाशाली व्यक्तियोंके साथ काम करनेका सौभाग्य मिल चुका है। अपने परिचित विशिष्ट लोगोकी इस लम्बी सूचीमें कुछ थोडसे नाम ही ऐसे है, जिन्हें मै नि सन्देह महा पुरुषोकी सज्ञा दे सकता हूँ। मुझे इसमें कोई सन्देह नही है कि महात्मा गाधीका स्थान हमारे युगके अत्यत चुने हुए व्यक्तियोकी सबसे छोटी सूचीमें रखा जा सकता है।

मुझे उनके जीवनके आखिरी समयमें ही सम्पर्कमें आनेका मौका मिला था। उस समय कम-से-कम राजनीतिक दृष्टिसे वे उत्तरदायित्वकी प्रथम पक्तिसे पीछे हट रहे थे और उनकी शक्ति घट रही थी। सत्ता हस्तान्तरणके समय भारत विभाजन पर जो अनिवार्य रूपसे जोर दिया गया उससे उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ जसे उनके जीवनव्यापी आदर्श और लक्ष्य धराशायी हो गये। उन्हें इसमे कोई विजय नही दिखायी पडी। इनके लिए तो इस निर्णयने राष्ट्र-शरीरका ही व्यवच्छेद कर डाला था। ऐसी परिस्थितियोंमें जिस समय उनके व्यक्तित्वके प्रभावका आशिक तिरो धान हो चुका हो, ऐसा सोचा जा सकता है कि हम लोगोपर उनका प्रभाव केवल धुँधले रूपमें हा पडा होगा किन्तु अपनी पहली मुलाकातसे ही मैं और मेरा पत्नी दोनोको ही यह एहसास होने लगा कि वे एक अद्वितीय व्यक्ति है और उनका प्रभाव मानवीय नेतत्वकी सामान्य सीमाओका अतिक्रमण कर चुका है। वे शीघ्र ही हमारे सच्चे मित्र हो गये।

उनके जीवनके अन्तिम वर्षकी महान् घटनाएँ अब इतिहासका अग बन चुकी है। उन्हें उस समय अपने नये कर्तव्यका ज्ञान हो चुका था और वे यह समझ चुके थे कि उनके सामने सत्ता-हस्तान्तरण-सबधी वार्तामें भाग लेनेकी अपेक्षा दूसरा बडा कर्तव्य आ गया है। उस समय सारे देशमें साम्प्रदायिकताकी आग

लगी हुई थी और पूरी समाज-व्यवस्थाके ध्वस्त हो जानेका खतरा पैदा हो गया था। गांधीजी इस आगको बुझानेके लिए उसमें स्वयं कूद पड़े। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि अगस्त १९४७ मे कलकत्ताके मैदानमे साम्प्रदायिक अग्निको बुझानेका जो साहसपूर्ण कार्य गाधीजी कर रहे थे, वह इस शताब्दीकी महान् घटना है। उस समय उनकी आन्तरिक शक्ति जिस कार्यका सम्पादनकर रही थी, उसे संसारका एक बडा आश्चर्य ही कहा जायगा।

जन-समाजके मनोविज्ञानके अध्ययनमें लगे लोगोके लिए यहाँ एक बहुत बड़ा विषय प्रस्तुत है। जिस समय सैकडो-हजारों लोग साम्प्रदायिक उत्तेजनासे पागल हो उठे थे और हाथमें छूरे लेकर दूसरोकी जान लेनेके लिए दौड रहे थे, गाधीने उन्हें अपनी प्रेमकी अद्भुत शक्तिसे जैसे बाँध दिया; उनकी, प्रतिहिंसाकी आगको शात कर दिया और उनमे अपने पडोसियोके प्रति बन्धुत्वकी भावना जागरित कर दी।

इस उदाहरणसे एक महात्माके रूपमे उनकी उस शक्तिका पता चलता है, जो किसी भी राजनीतिक प्रभावसे कही बडी होती है। इसीके द्वारा गाधीजी व्यक्तिगत उत्तरदायित्व ग्रहण कर लिया करते थे। साम्प्रदायिक शान्तिके लिए उन्होने जो निजी जिम्मेदारी ली, उसकी परिणति उनके बलिदानमे हुई। एक पागल हत्यारेके हाथसे उनका निधन हुआ और उनकी शहादतने दूसरोके घाव भर दिये।

उन्होने अपनी मृत्युसे जीवनके उस महान् औचित्यको सिद्ध कर दिया, जो सारे ससारके लिए वरेण्य है। उनका दुर्बल शरीर चिताकी ज्वालाओको समर्पित हो रहा था। यमुनाके किनारे अपार जनसमुद्र उन्हे अन्तिम श्रद्धाञ्जलि अर्पित करनेके लिए उमड पडा था। 'गाधीजी अमर हैं' के गगनभेदी नारोसे सारी दिशाएँ गूँजने लगी। मै इस दृश्यको जीवनभर कभी भूल नही सकता। मैने उस समय यह अनुभव किया था कि किन कारणोसे हमारे युगपर गाधीका इतना व्यापक और गंभीर प्रभाव पडा है। उनकी मृत्युका आघात देशकी सीमाओको पार कर ससारतक पहुँच गया।

मेरे ख्यालसे गाधीजीकी इस महानताका रहस्य इस तथ्यमें निहित है कि वे प्रतीक रूपमे बीसवी शताब्दीकी प्रचलित प्रवृत्तियोके लिए एक गम्भीर चुनौती बन गये थे। हमारे युगको हिंसाका युग अकारण ही नही कहा गया है। इस युगमे भौतिक सत्ताके लक्ष्योको प्राप्त करनेके लिए हर तरहके निजी तरीके और सार्वजनिक दबाव काममे लाये जाते है।

मै समझता हूँ कि सारे संसारने इस तथ्यको मान्यता प्रदान की थी कि उन्होने

इस चुनौतीको जिस रूपमें स्वीकार किया था वह वस्तुत ही मौलिक एव उच्चकोटि का था। पशुबलका मुकाबला अहिंसाके बलसे करनेकी उनकी अवधारणा किसी कल्पना दर्शी विचारकका स्वप्न नही थी वह मूल समस्याकी तहमें जानेवाली चीज थी। वह व्यक्तिके आचरण और महत्त्वाकांक्षाके प्रति आह्वान थी और वह मनुष्यसे आत्मनियत्रणकी माँग करती थी, जिसके बिना सभ्यता चाहे वह और दृष्टियोंसे कितनी भी समृद्ध क्यों न हो अन्तत नष्ट हो जायगी। मुझे बताया गया ह कि एक बार जब उनसे यह पूछा गया कि वाइसरायके स्थानपर यदि किसी सनिक एडमिरलको रख दिया जाय तो यह कसा होगा इसपर उन्होंने कहा था कि सनिक व्यक्तियोंसे व्यवहार करनेमें मुझे कोई आपत्ति नही ह, क्योंकि अनुशासन उनके पेशेका मूलाधार ह। स्थल और नौ-सेनाएँ जिस नियन्त्रित शक्तिका प्रयोग करती हैं वह कम से कम भीडकी अनियन्त्रित शक्तिकी अपेक्षा अच्छी ह।

सारी दुनियाका ध्यान उनकी ओर आकृष्ट होता था और व सबका सम्मान प्राप्त कर लेते थे। इसका केवल यही कारण न था कि अपने देशके समक्ष उप स्थित गम्भीर समस्याओंके प्रति उनका दृष्टिकोण बहुत मौलिक हुआ करता था बल्कि यह भी था कि उनके विचारो और कार्योंम बराबर सुसगति बनी रहती थी।

मेरे नम्र विचारमें यह कहना गलत होगा कि उनके सम्बन्धम कोई भविष्य वाणी नही की जा सकती थी और यह कहना मुश्किल था कि व कब क्या कहगे और क्या करेंगे। उनके सम्बन्धम ऐसी धारणा केवल वे ही लोग बना सकते थे जो उनके कार्यों और शब्दोंके दीर्घ अनुक्रमको समझनेमें विफल हो जाते थे। अपने पूववर्ती महान क्रांतिकारियोंके समान वे विनाशकी अपेक्षा सरक्षणका ही प्रयत्न करते थे। 'स्वराज' के सम्बन्धमें उनका जो दृष्टिकोण था उसके अध्ययनसे मेरे इस कथनकी पर्याप्त पुष्टि हो जाती ह। जिस ब्रिटेनसे सत्ता छीननेका वे प्रयत्न कर रहे थे उसीके साथ स्वतन्त्र भारतका भविष्यमें अच्छा सम्बन्ध बना रहे इसकी उन्हें बडी चिता थी।

जब १९४७ में सत्ता-हस्तान्तरणका कोई सूत्र खोज निकालनेका समय आया तो मने फिरसे डोमिनियन स्टेट्सकी अवधारणाको पुनरुज्जीवित किया। उस समय बहुतोंको यह विचार चौंका देनेवाला लगा। उनके ख्यालसे सभी सम्बद्ध पक्ष इस विचारको स्वीकार नही कर सकते थे। किन्तु गाधीजीने सन् १९२४ में ही बेलगाँवमें हुए भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसके ३९वें अधिवेशनम अपने अध्यक्षीय भाषणमें यह भविष्यवाणी की थी

ऊपर जो रूपरेखा प्रस्तुत की गयी है, उसमे पूर्णत सम्मानजनक और नितान्त समानताके आधारपर ब्रिटेनके साथ सम्बन्ध कायम रखनेकी बात पहलेसे ही मान ली गयी है। किन्तु मै जानता हूँ कि काग्रेसजनोमे एक वर्ग ऐसा भी है, जो किसी भी हालतमे ब्रिटेनसे पूर्णत मुक्त होना चाहता है। यहाँतक कि उसे समान साझेदारीकी बात भी स्वीकार न होगी। मेरी रायमे यदि ब्रिटिश सरकार जो कुछ कह रही है, वस्तुत वही उसका अर्थ भी मानती है और हमे समानताका दर्जा देनेके लिए ईमानदारीसे सहायक होती है तो यह ब्रिटेनसे पूर्ण सम्बन्ध-विच्छेदसे भी बडी विजय होगी। अतएव मै साम्राज्यके अन्तर्गत ही स्वराज प्राप्त करनेकी चेष्टा करूँगा, किन्तु मै उस समय उसके साथ सारे सम्बन्धोको तोड देनेमे भी नही हिचकूँगा, जब ऐसा करना ब्रिटेनकी अपनी गलतियोके कारण आवश्यक हो जायगा। इस तरह सम्बन्ध-विच्छेदका उत्तरदायित्व मै ब्रिटिश जनतापर डाल दूँगा। आज की दुनियाके उन्नत मस्तिष्कके लोग यह नही चाहते कि दुनिया ऐसे पूर्ण स्वतन्त्र राज्योका समुदाय बन जाय, जो बराबर आपसमे लडते रहे, बल्कि उनकी इच्छा यह है कि संसारमे अन्योन्याश्रित राज्योका एक मैत्रीपूर्ण सघ कायम हो। संभव है कि अभी इस कल्पनाके साकार होनेमे बहुत समय लग जाय।

गाधीजीमे कैसी गम्भीर राजनीतिक अन्तर्दृष्टि और कैसा नैतिक विवेक था, इसका इससे बढिया उदाहरण और क्या हो सकता है कि उन्होने अपने महान् शिष्योके रूपमे नेहरू और पटेलको चुना ?

किसी भी वर्तमान टेकनीकपर बिना निर्भर हुए ही वे जनसम्पर्क स्थापित कर लेनेमे बडे माहिर थे। वे अपनी सहज प्रवृत्तिसे ही जान लेते थे कि किस स्थान और किस समयपर कौन-सा ऐसा प्रतीकात्मक कार्य किया जाय, जिससे सब लोगोमे उनके लक्ष्योके प्रति जागरूकता पैदा हो जाय। उनका केवल यही गुण उनकी महान् प्रतिभाका परिचायक है। जनताके साथ ऐक्य सम्पादन कर लेनेमे उन्हे किसी तरहके कृत्रिम साधनोकी प्रयोजनीयताके सबंधमे गम्भीर सन्देह था। उन्होने एक बार मेरे एक कर्मचारीसे कहा था कि वे रेडियोके रहस्योको समझ सकनेमे असमर्थ हैं। वे इसके लिए पर्याप्त वृद्ध हो चुके है। यद्यपि वे सिद्धान्तत रेडियोके प्रयोगके विरुद्ध नही थे, किन्तु उनका कथन यह था कि उन्हे यह मालूम होना चाहिए कि वे किन श्रोताओको सम्बोधित कर रहे है, फिर उनकी संख्या चाहे पाँच हो या पाँच लाख। अत. पंजाब-संकटके समय जब अन्तमे उन्होने अखिल भार-

साथ रहियोंपर बोल्ना स्वीकार कर लिया तो उन्होंने यही कहा था कि म सीधे और एकान्ता गुरुदास निधिरो शरणार्थियोंको हा सवाधा करूगा। इस मामलेमें भा उनके विचार सिद्ध और पुरान होकर समयत अपन समयस बहुत आग थ। विश्व शान्ति संदेशके सम्प्रेषणके लिए क्लोरोड सरकिट हा उपयुक्त हो सकता है।

आग आनवाले अधकारपूर्ण और कठिन दिनोंमें उनके उदाहरणसे हमें प्रकाश मिलता रहेगा और उनका शान्त धीमी आवाज प्रतिस्पर्धी विचारधाराओं और अपमानजनक आरोपों प्रत्यारोपोंके कोलाहलके ऊपर सुनाई देता रहेगी।

उनमें उत्साहिता और उनके कष्टोंका प्रतिनिधित्व और सत्यको जहां भी वह सुलभ हो, खोज निकालनेकी महानता थी। उनके प्रतिमानोंके अनुसार हृदय-परिवर्तन विचार परिवर्तनकी अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण था। अनातोले फ्रांसके शब्दों में यही कहना उचित होगा कि "वे मानव जातिके अन्तःकरणके एक दुर्लभ क्षण थे।"

हीरेन मुकर्जी

गांधी और 'अभय'

७ अप्रैल, १९६८ के टाइम्स आव इण्डिया (दिल्ली सस्करण) मे एक प्रासंगिक लेखकने कुछ वर्षो पूर्व प्रेसिडेण्ट हो ची मिन्हकी दिल्ली-यात्राका जिक्र करते हुए लिखा था कि उस समय उनसे एक पत्र-संवाददाताने पूछा था कि क्या आप वियतनाममे अपनी भूमिकाकी तुलना भारतमे गाधीकी भूमिकासे कर सकते है तो उन्होने यही जवाब दिया था कि, "यह एक गलत सवाल है, तुलनाकी वात करना 'मूर्खता' होगी, किन्तु यह एक वास्तविकता है कि मै या अन्य कोई भी व्यक्ति क्रान्तिकारी हो सकता है, किन्तु प्रत्यक्षत या अप्रत्यक्षत हम सभी महात्मा गाधीके शिष्य है न इससे कुछ अधिक, न कम।"

गाधीजीके सबंधमे इस समय कुछ लिखते हुए हो ची मिन्हके उक्त वक्तव्यका ख्याल आनेसे हर्षका अनुभव हो रहा है। यह वक्तव्य उन्होने तुरन्त विना कुछ सोचे-समझे दे दिया था। इसका अर्थ विलकुल साफ है। उसमें कुछ जोड़नेकी जरूरत नही है। यदि आज गाधी जीवित होते तो उन्हे हो ची मिन्हसे बढकर ऐसा कोई व्यक्ति न मिलता, जिसे वे अपने हृदयसे लगा लेते। यह कहना मुश्किल है कि हो ची मिन्ह कभी गाधीके अहिंसाके सदेशकी ओर आकृष्ट हुए थे या नही, किन्तु वियतनामके नेताके रूपमे आज वे जिस शौर्यसे इतिहासपर नयी रोशनी डाल रहे है, वह ससारके लिए एक नमूना बन चुका है। आजकी दुनियामे यदि किसी एक व्यक्तिको अभयके उदाहरण रूपमे चुनना हो तो वह नि सन्देह हो ची मिन्ह ही होगे। सभवत भारतीय जीवनके प्रति गाधीका सवसे बडा अवदान "अभय" ही था, यद्यपि आज उनके अहिंसाके सिद्धान्तका ही बडे समारोहके साथ प्रचार एवं प्रसार किया जा रहा है।

अपने सार्वजनिक जीवनके आरम्भिक दिनोमे गाधीको दक्षिण अफ्रीकामें ऐसे कटुतापूर्ण अनुभवोसे गुजरना पड़ा था कि उन्हीपर चिन्तन करते हुए और उन्हीकी

आगम तपकर उनके चरित्रमें वह दीप्ति पैदा हुई, जिससे उनके चारो ओरका अँधेरा दूर होने लगा ।

> मने पहले ही दिन देख लिया कि यूरोपीय लाग भारतीयाके प्रति अत्यधिक अपमानपूण व्यवहार करते हैं मुझे मारिजबगमें एक पुलिस के सिपाहीने ट्रेनस धक्के देकर बाहर कर दिया । मैं प्रतीक्षालयमें घोर सर्दियोमें ठिठुरता हुआ सारी रात बठा रह गया । नीद आनका कोई सवाल ही नही था । मुझे यह भी पता नही था कि मरा बिस्तर कहाँ ह । मुझे इस सबधमें किसीसे कुछ पूछनकी भी इसीलिए हिम्मत नही पडती थी कि कही फिर मुझे अपमानित और प्रताडित न होना पडे । मेरे दिलमें सदेह पूरी तरहसे घर कर गया था । काफी रात जानेपर म इस निष्कषपर पहुँच गया कि भारत वापस जाना कायरता होगी । मन जो काय उठाया ह, उसे मुझे पूरा करना ही होगा ।[1]

ये गाधीके शब्द ह । यद्यपि य शब्द धीमे स्वरोमें कहे गय ह किन्तु इनमें तूफानका वेग छिपा हुआ ह । मारिजबगम ट्रेनम हुई उक्त घटनाकी तुलना वैलन सीनेसकी ओर जाते हुए रूसोको प्राप्त ज्ञानज्योति से की जा सकती ह । ट्रेनसे निष्कासन और ड्राइवरकी प्रताडना साधारण बातें हो सकती ह क्योकि इस तरह का अपमान और उत्पीडन तो वहाँ हर समय चलता रहता था किन्तु महत्त्वकी विशेष बात तो यह थी कि उन सर्दियोमें ठिठुरत हुए एक सवदनशाल युवकने इस उत्पीडनको एक ऐसे धैयके साथ भोगा जिससे भविष्यम दूसरोके उद्धारके लिए भी वह नया माग प्रशस्त कर सका । उसम एक नय सङ्कल्पका उदय हुआ, जो दक्षिण अफ्रीकाम कठिन सघष करते हुए निरतर दृढ होता गया । उसन यह अनुभव किया कि कष्टसहिष्णुताका उपयोग रचनात्मक ढगसे अपनेमे अलग दूसरो के उद्धारमे भी किया जा सकता ह । वर्षो बाद गाधीने कहा "मुझ अपने प्रयोग में समस्त मानव जातिको समेट लेना होगा । यह ठीक ह कि मारिजबगम ही उनका अन्वेषण पूण नही हो गया था, किन्तु इतना तो निश्चित ह कि वही उनका पुनजन्म हुआ—वही उन्हाने एक नये जीवनम प्रवेश किया ।

मारिजबर्गके अनुभवने गाधीको आध्यात्मिक दष्टिसे बुरी तरह झकझार दिया । उसने उन्हे भयके बधनोंमे पहली बार मुक्ति प्रदान कर दी—अभयदान दे दिया । हमार प्राचीन चिन्तकोके अनुसार अभय भौतिक साहस मात्र नही ह, बल्कि मनसे हा भयकी भावनाका पूणत निशेष हा जाना ह । अपनी अनक चमत्कृतिया एव दीप्तियाम परिपूण जीवनकी महान् गतिशाल अवस्थाओसे उन्हान

जिस तरह अपने देशकी जनतामें अभयका जागरण पैदा कर दिया, वैसा कोई भी व्यक्ति नही कर सका। उन्होने राजसत्ताके दमन और सामाजिक उत्पीडनका भय, शासन-यन्त्र तथा निहित स्वार्थोके सम्मिलित निर्दलनका भय भगा दिया। इतना ही नही, उन्होने देशकी जनताको भूख और घोर-से-घोर कष्टके मुकावले भी निर्भय वना दिया। यह ठीक है कि भयके काले आवरणको किसीके सिद्धान्तके जादू-से ही पलक मारते हटा नही दिया जा सकता, किन्तु हमें बार-बार यह दुहराते रहना चाहिए कि अपनी जनताको गाधीकी सबसे वडी विरासत अहिंसा नही, अभय है।

भारतकी फूट और ब्रिटेनकी धोखाधडीसे प्लासीके युद्ध (१७५७) के वाद हमारे इस प्राचीन देशमें ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी जडें जम गयी। इसके वादकी एक शताब्दी निराशाका युग रही है, फिर भी यद्यपि उच्चतम वर्गके दस हजार लोगोने भले ही अंग्रेजी सत्ताके सामने पूर्णत आत्मसमर्पण कर दिया था, किन्तु उनसे नीचे-के तबकेके दस हजार लोग विजेताके गुणोपर इतने मुग्ध नही हो गये थे कि उन्हें दासताका दंश महसूस ही न होता। वे गुलामीके साथ सहज भावसे समझौता न कर सके। सन् १८५७ तक भारतीय इतिहासमे ऐसा कोई समय नही मिल सकता, जिस वक्त कोई-न-कोई भारतीय क्षेत्र अपनी स्वाधीनताके लिए संघर्ष करता न दिखाई देता हो। सन् १८५७ का विद्रोह असन्तोषके इसी अदृश्य और व्यापक उफानका चरम शिखर था। सन् १८५७ के वाद देशमे राष्ट्रीयताका आग्रह वढने लगा। सारे देशमे राष्ट्रीय अधिकारोकी प्राप्तिके लिए वेचैनी पैदा हो गयी, किन्तु इसे समय-समयपर ब्रिटिश शासक उच्चवर्गको अपनी पार्लमेण्टकी दूकानमें तैयार किये गये कुछ सुनहले लेमनजूस थमाकर ही शात कर दिया करते थे। औपनिवेशिक अर्थव्यवस्थाके परिवेशमे यह सव कुछ वल-प्रयोग, घोखाघड़ी और फुसलाने-वाले मक्कार तरीकोसे किया जाता था। कई दशकोतक भारतकी यही राजनीति थी कि हम प्रातिनिधिक सरकारके सबसे सदिग्ध रूपोको भी छोटी-से-छोटी किस्तो-मे प्राप्त करनेके लिए अर्जियाँ भर देते रहे। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके प्रथम अधिवेशनके अध्यक्षने प्रथम विश्व-युद्धतक आगे आनेवाले अपने उत्तराधिकारियोके समान ही "ब्रिटिश सरकारके प्रति पूर्ण निष्ठा" की ही शपथ ली थी। यह अधि-वेशन (१८८५) अपने ब्रिटिश अभिभावक ए० ओ० ह्यूमके प्रति की गयी, "तीन हर्षध्वनियो" के साथ समाप्त हुआ था। ह्यूमने इसके जवावमें कहा था कि "हमें तीनकी तिगुनी और हो सके तो उससे भी तिगुनी हर्षध्वनियाँ सम्राज्ञीके लिए करनी चाहिए, जिनके जूतोका फीता खोल सकनेकी भी कावलियत मुझमे नही है।"[२]

१९वी शतीके अन्त और २०वी शतीके प्रथम दशकमे एक नयी उथल-पुथल शुरू हुई। महाराष्ट्र, बगाल और पजाब में देशभक्तोंके एसे गिरोह सामने आने लगे, जो दासताके कारण आत्म-सम्मानपर लगे आघातको दूर करनेके लिए कृत सङ्कल्प थे। वे स्वतन्त्रताके स्वप्नोसे आविष्ट थे और विदेशी प्रभुता हमे असह्य है, केवल यह सिद्ध कर देनेके लिए ही वे मौतको भी ललकार सकते थे। ये वे "आतकवादी" थे जिन्हे भारत हमेशा सम्मान करता रहेगा। उन्होने हममे पौरुष का खोया हुआ गौरव फिरसे जगा दिया वे भारतकी धरतीके रत्न थे।

अहिंसाके सदेशवाहक गाधी और उन आतकवादियोके बीच बहुत चौडी खाई है किन्तु वे दोनो 'अभय' के स्तरपर एक-दूसरेसे मिल जाते हैं। गाधी कहते थे कि 'प्रतिरोध मत करो' किसी भी हालतमें हिंसाका जवाब हिंसासे मत दो, किन्तु इसके साथ ही वे यह चेतावनी भी देते थे 'वीर बनो भय मत करो' क्योकि उनकी दृष्टिमें किसी भी समय हिंसा कायरताकी अपेक्षा वरणीय थी। उनकी अहिंसा वीरोकी अहिंसा थी। वह बुजदिलोकी अहिंसा नही थी। गाधी भयसे साँस रोके हुए सकपकाये हुए सॉय-सॉय बोलते हुए दुबल हृदय कायरोकी हरकतोको सबसे ज्यादा नफरत करते थे।

फरवरी १९१६ मे काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके उद्घाटनके अवसरपर गाधीने जैसा भाषण किया था वह बिना उस सच्ची निर्भीकता और उस साहसके सम्भव ही नही था, जो अपने बन्धुओंके बीच अपनी प्रतिष्ठाको भी दाँवपर लगा देनेमें नही हिचकता।

उस समय तत्कालीन ब्रिटिश वाइसराय विश्वविद्यालयका शिलान्यास करने वाले थे और देशके बडे-बडे राजे महाराजे, नरेश तथा राजनीतिक और शैक्षिक क्षेत्रके चुने हुए लोग एकत्र थे। इस समारोहमें गाधी अपनी स्वाभाविक मोटा झोटी वेश भूषामें शामिल हुए थे। जब उनसे भाषण करनेका आग्रह किया गया तो उन्होने नम्रतासे वहाँके चुने हुए लोगोकी तडक भडककी सख्त आलोचना कर डाली और उस सारी शान शौकत एव भोग ऐश्वर्यके जीवनके प्रदर्शनपर अपना निराली शैलीमें खुला हमला करनेसे बाज न आये। उन्होने कहा कि

> मुझे इन भद्र लोगोंसे यह कहनेकी इच्छा हो रही है कि हिन्दुस्तानका तबतक उद्धार नही हो सकता जबतक आप लोग अपने इन हीरा-जवा हरातोको अपनेसे अलग करके देशवासियोंके हितमें उन्हें व्यस्त न कर दें। मुझे विश्वास है कि सम्राट या लॉर्ड हार्डिजकी यह इच्छा नही है कि आप सम्राट्के प्रति अपनी बडीसे बडी निष्ठा दिखलानेके लिए अपने जेव

रातके सारे सन्दूक खाली कर दें और सिरसे पैरतक आभूपणोंसे सजकर उपस्थित हों।

पंडालके चारो ओर पुलिसके सिपाहियो और खुफ़िया-विभागके लोगोकी उपस्थितिकी चर्चा करते हुए उन्होने कहा

आखिर यह अविश्वास क्यो ? क्या लॉर्ड हार्डिंजके लिए एक जीवित मौत जीनेकी अपेक्षा मर जाना अच्छा नही है ?

लेकिन हो सकता है कि एक शक्ति शाली सम्राट्का प्रतिनिधि होनेके कारण यह अच्छा न हो। यह भी हो सकता है कि वे ऐसी जीवित मौत-को जीना आवश्यक समझे। किंतु हम लोगोके पीछे खुफिया पुलिस लगाना क्यो आवश्यक समझा गया ? हम उबल सकते है, हम क्रोधसे उफन सकते है, हमे खीझ हो सकती है, हम आवेशमे आ सकते है, लेकिन हमे यह न भूलना चाहिए कि आजका हिन्दुस्तान बिलकुल बेसब्र हो उठा है और उसने अराजकतावादियोकी एक पूरी सेना खड़ी कर ली है। मै स्वयं अराजकतावादी हूँ। यद्यपि एक दूसरे किस्म का

यह कितना शानदार भाषण था। श्रीमती एनी बेसेन्ट अध्यक्षकी कुर्सीपर विराजमान थी। वे भीतर-ही-भीतर तिलमिला उठी। उन्होने गाधीसे कहा, "कृपया वन्द कीजिये।" लेकिन वे उस समय मुलायम पड गयी, जब गाधीजीने उनसे कहा

यदि आप यह समझती है कि मैं बोलकर देश और साम्राज्यकी सेवा नही कर रहा हूँ तो मैं निश्चय ही बोलना बन्द कर दूँगा।

लेकिन तभी गाधीजी बोलते हुए इस तरह सोचने लगे कि उनकी यह आवाज दूसरोको सुनाई पड ही गयी .

यदि हमें स्वशासन प्राप्त करना है तो उसे हमे खुद लेना होगा। हमे स्वशासन अपनेसे नही मिल सकता। ब्रिटिश साम्राज्य और ब्रिटिश राष्ट्रके इतिहासकी ओर देखिये। यह स्वातन्त्र्य-प्रेमी अवश्य रहा है, किन्तु यह कभी ऐसी जनताको स्वयं आजादी नही दे सकता, जो खुद अपनी आजादी ले न ले। यदि आप चाहती है तो बोअर-युद्धसे ही शिक्षा ले सकती है ..

अब तो हद हो गयी थी—अध्यक्षाके लिए गाधीका भाषण आगे बरदाश्त कर पाना मुश्किल हो गया। वे कुर्सी छोडकर भाग खडी हुई। गांधीका असमाप्त भाषण वक्तृताओंके इतिहासमे एक अमर भाषण है, जिसमे सत्यको बिना किसी लल्लो-चप्पोके बिलकुल बेलौस और बेलाग ढगसे रख दिया गया है और भारतीय

जनताने अब पतनपर काडे बरसाये गये ह । यह भाषण वक्ताकी ईमानदारी और अच्छाईका वनजोर इजहार ह ।

इसके बाद १४ फरवरी को ही गाधीजीने मद्रासम आयोजित एक सम्मेलनम स्वदेशीपर अपना दूसरा जोरदार भाषण दिया । उन्होन कहा

> हम लोग जनताका प्रतिनिधित्व करना चाहते हैं, किन्तु इसम बुरी तरह विफल रहते ह । जनता अग्रेज अधिकारियोकी तरह ही हम भी नही पहचान पाती । जनताका हृदय उन दोनोके समक्ष खुली किताबके रूपम रखा नही होता । उनकी महत्त्वाकाक्षाएँ हमारी महत्त्वाकाक्षाएँ नही होती । इसीलिए हम उनसे कटे-कटे-से अलग रहत ह । असलमें सघटन करनमें कोई विफलता नही ह । प्रतिनिधियो और उस जनताके बीच किसी तरहका कोई सम्बन्ध ही नही ह ।

इसके आगे गाधीजीने जनताकी गरीबी और आत्मनिभरतापर बोलते हुए कहा कि

> यह सब बिलकुल बेवकूफीकी बातें मालूम हो सकती ह किन्तु हिन्दुस्तान तो बेवकूफियोसे भरा देश ही ह । प्याससे गला सूखनेपर यदि कोई दयालु मुसलमान पीनेके लिए साफ पानी दे रहा हो तो उस न पीना क्या बवकूफी नही ह ? फिर भी हजारो हिन्दू प्याससे मर जाना कबूल कर लेंग लेकिन किसी मुसलमानके घरका पानी न पीयेंग । य ही बवकूफ लोग, यदि उन्हें एक बार यह विश्वास हो जाय कि उन्ह भारतम ही उत्पादित वस्त्राको पहनना चाहिए और यहीका पैदा अनाज खाना चाहिए यही उनका धम ह तो फिर किसी दूसरे तरहका कपडा पहनना और कोई दूसरा भोजन ग्रहण करना भी अस्वीकार कर देंग ।

भारतके सावजनिक जीवनमें यह बहादुरीसे भरी हुई एक बिलकुल नया आवाज थी । यह उस आदमीकी आवाज थी जो जसे भारतकी धरतीसे ही उठ खडा हुआ था यह उस आदमीकी आवाज थी जो विलक्षण अजीबो-गरीब परस्पर विरोधी और असम्भव बातें किया करता था फिर भी उसकी बातोम अद्भुत साहस तात्कालिक महत्त्व और दृढ सकल्पकी एसी बाध्यता होती थी जो इसके पहले इस देशमें कही दिखाई नही पडी था ।

एसा व्यक्ति जनताकी छोटी-बडी तकलीफोको देखे बिना और उनका उपचार किये बिना रह ही नही सकता था । इसीलिए अपन नरमपथी रुझानोंके बावजूद वह देशकी तूफानी राजनीतिके चक्करमें आ ही गया और उसका केन्द्र बिन्दु तथा

प्रधान संचालक ही बन बैठा। "१९१९ में भारत" शीर्षक सरकारी समीक्षाओंमें कहा गया है कि गांधीजी "किसी भी ऐसे व्यक्ति या वर्गके लिए संघर्ष करनेको बराबर तत्पर रहते थे, जिसे वे अपनी दृष्टिसे उत्पीडित समझते थे।" शत्रुपूर्ण हृदयोंको सत्याग्रह और व्रतसे परिवर्तित करनेके अपनी तपस्यार्जित दृढ़ धारणाके अतिरिक्त वे अत्यन्त व्यावहारिक व्यक्ति थे। उनका हृदय भी उसी देशभक्तिकी वेगपूर्ण भावनाओंसे आन्दोलित होता रहता था, जिसके कारण पराधीन देशकी जनताके अनेक लोगोंके दिल टूट जाते है और वे विवश होकर क्रान्तिमार्गपर चलने लगते है। वे सोच-समझकर अपने समय-समयपर जो सीमित कार्यक्षेत्र चुनते थे, उसमें "मृत्युपर्यन्त संघर्परत" रहनेका सङ्कल्प लेते थे और हमेशा अपनी जो न्यूनतम मांगें प्रस्तुत करते थे, उन्हे किसी भी कीमतपर लेकर रहते थे। वे अन्य भारतीय नेताओंसे भिन्न प्रकारके नेता थे और उनसे मूलतः श्रेष्ठ थे, क्योंकि उनके नेतृत्वकी जड़ें जनतामें जमी हुई थी। उन्होंने सामान्य जनताके समान ही स्वयं जीवन-यापन करनेका प्रयत्न किया। जनताके श्रमकी स्थितियोंमें सुधार लानेके लिए ही वे जीवनभर सघर्प करते रहे, फिर चाहे वह तृतीय श्रेणीके रेलवे यात्रियोंका सवाल हो या अफ्रीकाके बागानोंमें काम करनेवाले भारतीय मजदूरोंका सवाल हो अथवा दीन-हीन भारतीय किसान, मिल-मजदूर या बरबाद कारीगरका सवाल हो। वे देशकी गरीब और निम्नस्तरीय जनतासे ही शक्ति और प्रेरणा प्राप्त करते थे। उन्हे अखिल भारतीय स्तरके अन्य विचक्षण एवं योग्य नेताओंसे अपना अन्तर बिलकुल स्पष्ट था। ये नेता उन्हें शायद भोले-भाले किस्मका "परोपकारी" व्यक्ति मानकर अपनेमें इसलिए मिला लेनेकी कोशिश भी किया करते थे कि शायद यह आदमी उनके लिए उपयोगी हो जाय। इसमें कोई आश्चर्यकी बात नही है कि ऐसे नेता अपने उद्देश्यमें पूर्णतः विफल रहे।

गांधीके सैद्धान्तिक झकोंके कारणों ऐसे कई शानदार जनान्दोलन बीचमें ही ठप पड गये हैं, जिनका नेतृत्व वे ही कर सकते थे। गांधीजीपर ये झक प्राय उस समय सवार हो जाते थे, जिस समय उनकी अपेक्षा बहुत कम होती थी। इसीलिए उन्हे एक बार क्रोधसे "क्रान्तिका जोन"[५] की संज्ञा भी दे दी गयी थी। यह ध्यान देनेकी बात है कि जब उन्हें सच्ची उम्मीदे बँध जाती थी—जैसा कि १९२०-२१ में हुआ था, जब कि उन्होंने घोषित कर दिया था कि १९२१ के समाप्त होनेके पहले स्वराज मिल जायगा—तो वे सिद्धान्तके मामलोंमें अपनी स्वाभाविक कठोरताको कम न कर देना चाहते हों, ऐसी बात नहीं थी। गांधी जिस तरहके व्यक्ति थे, उसे देखते हुए इसे बहुत बडा साहस कहा जायगा। वे ऐसे समयमें बहुत कुछ

दाँवपर लगा देनेको तैयार हो जाते थे। वे जानते थे कि मुसलिम मुल्ला लोगों और उनके अनुयायियोंका अहिंसामें विश्वास नहीं है किन्तु जब जनता गंभीरतासे आंदोलित हो उठी हो तो वे अपने आग्रहके लिए जिद करनेको तैयार न थे। इसीलिए, १९ मार्च, १९२० को उन्होंने कहा था कि

> मुसलमानोंके अपने कुरानके विशेष आदेश हैं, जिनके कार्यान्वयनमें हिन्दू चाहें तो शामिल हो सकते हैं और न चाहें तो नहीं भी हो सकते। अतएव असहयोग-अहिंसाकी विफलताकी सूरतमें वे न्यायको लागू करवानेके लिए ऐसे सभी साधनोंका उपयोग करनेके लिए स्वतंत्र हैं, जिनका आदेश इस्लामी धर्म ग्रंथ देते हों।[1]

यह एक प्रकारका नैतिक जुआ था, किन्तु उन्होंने खुद अपनेसे पर्याप्त संघर्ष करके यह खतरा उठा ही लिया। यही बात मोपला विद्रोहियोंके संबंधमें अपनाये गये उनके रुखमें भी दिखाई देती है। जिस समय असहयोग-आंदोलन अपने चरम शिखरपर पहुँच चुका था गांधी मोपला विद्रोहियोंका समर्थन करनेमें नहीं हिचकिचाये। उन्होंने उनके संबंधमें यही कहा कि वे लोग ईश्वरभक्त बहादुर लोग हैं। असह्य उत्तेजनाके कारण ही उन्हें कुछ ऐसे काम कर डालने पड़े हैं जिनकी सभ्य नागरिक निंदा कर रहे हैं। आगे कई वर्षों बाद सन् १९४२ में उन्होंने कुछ ऐसे शब्द कहे थे जिन्हें यह देश कभी नहीं भूलेगा। दुर्भाग्यवश उस समय इन शब्दोंका जैसा परिणाम निकलना चाहिए था, वह तो नहीं निकला किन्तु इनमें साहस और चरित्रको बल प्रदान करनेकी अद्भुत प्रेरणा भरी हुई थी।

गांधीके जीवनमें सन् १९४२ का जन-आंदोलन ही वह अवसर था जब वे अहिंसा-संबंधी अपनी बद्धमूल धारणाओंसे उतने अधिक प्रभावित नहीं थे। इस आंदोलनकी रूपरेखा बनाते समय कम-से-कम कुछ क्षणोंके लिए तो वे अपनी इन धारणाओंसे अवश्य ही मुक्त हो गये थे। अपने इस सविनय अवज्ञा आंदोलनके संबंधमें उन्होंने महत्त्वपूर्ण साक्षात्कारोंके दौरान बहुत कुछ प्रकाश डाला है। उन्होंने लुई फिशरसे कहा था

> गाँवोंमें किसान लोग लगान देना बन्द कर देंगे लगान देनेसे इनकार करनेपर किसानोंको यह सोचनेकी भी हिम्मत पैदा हो जायगी कि वे स्वतंत्र रूपसे कार्य करनेमें समर्थ हैं। उनका दूसरा कदम होगा जमीन पर कब्जा कर लेना।

यह वह भाषा थी, जिसका गांधीने कभी प्रयोग नहीं किया था। इसपर जब फिशरको आश्चर्य हुआ और उन्होंने पूछा कि, 'क्या हिंसासे?' तो गांधीजीने

जवाबमे कहा, "हिंसा भी हो सकती है, किन्तु यह भी हो सकता है कि जमीदार सहयोग करने लगे।" अपने आशावादकी चुटकी ली जानेपर गांधीने मजाक किया "वे भागकर भी तो सहयोग कर सकते हैं !" फिशरने यह सुझाव देकर उन्हे घेरना चाहा कि किसान लोग "हिंसक प्रतिरोध" का भी तो संघटन कर सकते है। इसका गाधीजीने जो जवाब दिया, वह कितना बुलंद है ! उन्होने कहा : "पन्द्रह दिनोकी अराजकता हो सकती है किन्तु मेरा ख्याल है कि हम शीघ्र ही उसपर नियन्त्रण प्राप्त कर लेगे।" ८ अगस्त, १९४२ को उन्होने असोशियेटेड प्रेसके एक संवाददाताके प्रश्नके उत्तरमे कहा था कि .

> आपका यह कहना वहुत सही है कि शीघ्र समाप्ति (संघर्षकी) के लिए आम हडताल आवश्यक है। मैंने इसपर भी सोचा है। यह मेरी कल्पनाके वाहर नही है मै वडी सतर्कतासे काम करूँगा और यदि आम हडताल अत्यन्त आवश्यक हो गयी तो मै इससे भी पीछे नही हटूँगा।

इससे थोडे ही समय पूर्व उन्होने कहा था कि

> मै आपको एक छोटा-सा मन्त्र दे रहा हूँ। आप इसे अपने हृदयोपर अंकित कर ले। आपके प्रत्येक श्वासके साथ इसी मन्त्रका उच्चार होना चाहिए। यह मन्त्र है . "करो या मरो।" हम लोग या तो भारतको स्वतन्त्र ही कर लेगे या फिर इसी प्रयत्नमे मर जायेगे।[७]

गाधी एक महान् व्यक्ति थे। ऐसा नही हो सकता कि उन्हे यह भी न मालूम हो कि किसी वास्तविक सामाजिक परिवर्तनके लिए, जिसमे विशाल जन-समुदायोको कार्यरत होना अपेक्षित होता है, केवल नैतिक आग्रह ही शक्तिशाली साधन नही वन सकता। उन्होने साप्ताहिक हरिजन (२६ जुलाई, १९४२) मे लिखा था कि, "मुझमे जनताकी शक्तिको किसी ऐसी प्रणालीमे ले जानेवाला प्रभाव नही, जिसमे जानेकी उसकी कोई रुचि ही न हो।" वे यह भी जानते थे कि उनका आन्दोलन कुछ ऐसी वैसाखियोका सहारा लेता चलता है, जो विलकुल अपेक्षित है। उन्होने १ अप्रैल, १९२८ को जवाहरलाल नेहरूको लिखा था कि "मेरा आपसे इस सवधमे पूर्ण मतैक्य है कि किसी-न-किसी दिन हमे एक ऐसा आन्दोलन चलाना होगा, जिसमे धनी लोगो और शिक्षित वर्गकी आवश्यकता न होगी। किन्तु अभी इसके लिए समय नही आया है।"[८] यह वडे दु खकी वात है कि सन् १९४५-४६ मे भी गाधीजीको वह समय आया हुआ नही दिखाई पडा। इस समय उन्होने अपनी अहिंसा-संवंधी वद्धमूल धारणाके लिए थोड़ा-सा खतरा उठाकर एक वहुत ही शानदार संघर्षका आह्वान और नेतृत्व कर डाला होता,

किन्तु यह तो दूसरी कहानी है।

गांधीजीने हमारे देशमें सन् १९२०-२१ में ही अभयकी जो ज्योति प्रज्वलित कर दी थी क्या कोई भारतीय होगा जिसे उसकी स्मृतिपर गर्व न होता हो? १८ मार्च, १९२२ को अपने "महान् अभियोग" में गांधीजीके सिवा ये शब्द और कौन कह सकता था:

> मैं जानता था कि मैं आगसे खेल रहा हूँ। फिर भी मैंने खतरा उठाया और यदि मैं मुक्त कर दिया गया तो मैं फिर यही करूँगा ... अहिंसा मेरी निष्ठाकी सर्वोपरि वस्तु है। यही मेरे धर्मकी अन्तिम वस्तु भी है। किन्तु मुझे चुनाव करना ही पड़ा। मेरे सामने दो ही रास्ते थे। या तो मैं उस व्यवस्थाके सामने सिर झुका लेता, जिसने मेरे देशको अपूरणीय क्षति पहुँचायी है या फिर मैं अपनी उस जनताके उन्मत्त क्रोधका खतरा मोल लेता, जो मेरे मुँहसे सत्यका खुलासा सुनकर आपेसे बाहर हो जाती।

हम भारतवासियोंके लिए शब्दोंका बड़ा मूल्य है—कभी-कभी यह इस मानेमें बड़े दुर्भाग्यकी भी बात है कि शायद इसी वजहसे हम कार्य करनेकी ओर अग्रसर नहीं हो पाते! किन्तु चाहे कैसी भी क्रान्तिकारी रुझानका व्यक्ति क्यों न हो इस महाविनम्र व्यक्तिके मुखसे उक्त मुकदमेके दौरान निकले इन शब्दोंको सुनकर कौन ऐसा होगा जो विचलित न हो उठे?

> शहरमें रहनेवालोंको इसकी बहुत कम जानकारी होती है कि आधा पेट खाकर रहनेवाली सामान्य भारतीय जनता किस प्रकार धीरे धीरे निर्जीवावस्थाकी ओर बढ़ती जा रही है। उन्हें यह शायद ही मालूम हो कि उनका सौख्य उस दलालीसे संभव होता है, जो उन्हें अपने विदेशी शोषकोंके लिए किये गये कामके एवजमें मिलता है और यह मुनाफा और दलाली जनताको चूसकर निकाली जाती है। उन्हें बहुत कम मालूम है कि ब्रिटिश भारतमें कानून द्वारा स्थापित सरकार जनताके शोषणके लिए ही चलायी जा रही है। किसी भी कुतर्क या आँकड़ोंकी बाजीगरीसे उस साक्ष्यको झुठलाया नहीं जा सकता, जो अनेकानेक गाँवोंमें कंकालशेष मनुष्योंको खुली आँखोंसे देखनेके बाद प्राप्त होता है। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि यदि ईश्वरकी सत्ता है तो इंग्लैण्ड और भारतके नगरनिवासियोंको मानवताके विरुद्ध किये गये इस अपराधका, जो संभवतः इतिहासमें बेजोड़ है, जवाब देना ही होगा।[१०]

अतः इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है कि होची मिन्हको ऐसा अनुभव हुआ कि, "क्रान्तिकारी" होनेके लिए "प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्षरूपसे महात्मा गाधीका शिष्य" होना आवश्यक है। क्योंकि गाधीने अपनी जनताको 'अभय' (अर्थात् निर्भयता) और धैर्यके साथ कर्तव्य-पथका अनुसरण करने का सदेश दिया था।

---

१. एम० के० गाधी, सत्याग्रह इन साउथ अफ्रीका, (अहमदाबाद, १९२८), पृ०४२।
२. डब्ल्यू० वेडरबर्न, एलन आक्टेवियन ह्यूम, आर पामदत्तके इण्डिया टुडे में उद्धृत (लंदन, १९३९) पृ० २८३-८४.
३. डी. जी. तेन्दुलकर, महात्मा, भाग १, पृ. २१९; होमर ए. जैक (सं०) द गांधी रीडर, पृ० १२८।
४. तेन्दुलकर पृ. २२६-२९।
५. आर० पामदत्त।
६. तेन्दुलकर, पृ. ३४६।
७. वही, भाग ६, पृ. १३५ : एच. अलेक्जेण्डर, इण्डिया सिंस क्रिप्स, पृ० ३७-४१।
८. तेन्दुलकर, भाग ८, पृ. ३५१-५२।
९. वही, भाग २, पृ. १२९-३३।
१०. द कलेक्टेड वर्क्स ऑव महात्मा गाधी भाग २३, पृ० ११०-२०।

गुन्नार मिर्डाल

गाधी एक मौलिक उदारवादी

मोहनदास गाधीका नतिक व्यक्तित्व एक हीरेके समान था जिस किसी ओर से भी देखा जाय सुदर ही लगता ह। उनके व्यक्तित्वम इसी तरहकी सर्वांगीण समृद्धि थी। वे विभिन्न पयवेक्षकोंको विभिन्न प्रकारके दिखाई देते थे। यह इस बातपर निभर करता था कि व पयवेक्षक उन्हें किस स्थानपर खडे होकर किस पृष्ठभूमिम देख रह ह। मैं बहुत वर्षोंतक दक्षिण एशिया और खासकर भारतकी अल्प विकास विकास और विकासके लिए अपेक्षित योजना सम्बन्धी समस्याओंके अध्ययनम लगा हुआ था। मेरा मूल्यसम्बन्धी दृष्टिकोण आधुनिकीकरणके उन तकसगत आदर्शोंपर निभर था जो यूरोपके नये वज्ञानिक युगके आरम्भम प्रकट हुए थे और जिन्हें सवत्र उदार विचारधाराने ग्रहण करके सरक्षित और विकसित किया है। मैंने अपनी पुस्तकमें जवाहरलाल नेहरू और गाधी दोनोंको ऐसे आध्यात्मिक नेताओंके रूपमें देखा ह जिनके द्वारा इन आदर्शोंका समथन नितान्त सुसङ्गत रूपम हुआ ह। इस सन्दभम देखनेपर गाधी इङ्गलण्ड के उत्तर विक्टोरियाकालीन अत्यधिक आशावादी एव मौलिक उदारवादी विचारकोंकी श्रेणीम आत ह यद्यपि उनपर भारतीय परम्पराका भी प्रभाव पडा ह। म यह अनुभव करता हूँ कि गाधीका यह चरित्र चित्रण उनके सावभौमिक दृष्टिकोणकी व्याख्याम किसी प्रकारकी बाधा उपस्थित नही करता जसा कि इस ग्रथके अन्य लेखकोंके विचारोंसे स्पष्ट हो जाता ह। किन्तु मेरा यह विश्वास अवश्य ह कि इस दृष्टिकोणसे देखनेपर गाधीकी एक ऐसी महत्त्वपूण विशिष्टतापर प्रकाश पडता ह जिससे भारतके इस राष्ट्रपिताके सम्पूण व्यक्तित्वको समझने में बडी सहायता मिलेगी।

गाधीका सविनय अवज्ञा और असहयोगका राजनीतिक शस्त्र जिससे उन्होंने औपनिवेशिक सत्ताके विरुद्ध सघष किया था, पूरी तरह उनके अहिंसाके नतिक

सिद्धान्तके अनुरूप था। काग्रेस-आन्दोलनके अन्य मौलिक उदारवादियोंने गाधी-के इस अनिवार्य नैतिक सिद्धान्तकी ऐकान्तिक अवधारणाका समर्थन नही किया था। यह नेहरू तथा उनके अन्य समसामयिक व्यक्तियोकी आलोचनाओसे स्पष्ट हो जाता है। लेकिन ये आलोचक भी यह मानते थे कि अहिंसाका सिद्धान्त देशकी वहुसंख्यक गरीव जनताके लिए अंग्रेजोसे कम-से-कम त्याग द्वारा राष्ट्रीय स्वतंत्रता प्राप्त कर लेनेका एक वहुत ही तर्कसंगत साधन है। इस तरह हम देखते हैं कि गाधीके अन्य राजनीतिक विचारोके समान ही उनका अहिंसाका सिद्धान्त भी अत्यधिक आशावादी नही सिद्ध हुआ।

गाधी एक ऐसे मौलिक विचारक थे जो सभी चीजोका मूल्याकन समानताके आधारपर करते थे। वे देशके एक कोनेसे दूसरे कोनेतक फैले ७ लाख गावोकी आधा पेट खाकर जीवित रहनेवाली मूल जनताके प्रवक्ता थे। उन्होने यह समझ लिया था कि गाँवोकी यह स्थिति उनके क्रमवद्ध "शोषण" का परिणाम है। उन्होने यह देख लिया था कि देशमे अधिक समानताकी स्थिति लाना आर्थिक प्रगति-के साथ प्रतिस्पर्धाका एक लक्ष्यमात्र नही है अपितु इसके लिए एक आवश्यक शर्त है। आगे चलकर हम भारतमे इसे भूल गये। गाधीका अभियान शुरू होनेके पहले भारतमे अथवा दक्षिण एशियामे कही भी सामाजिक और खासकर आर्थिक समानताके प्रश्नपर वहुत कम विचार हुआ था। गाधीका समानताका यह सिद्धात उनके और नेहरू जैसे अन्य तार्किक बुद्धिवादियोके वीच जो गाधीके सामने परंपरा और धर्मकी उतनी परवाह नही करते थे, एक संवंध-स्थापक सूत्र वन गया था। इन सवने मिलकर काग्रेसको आधुनिक समानतावादी आदर्शको मौलिकरूपमे स्वीकार करनेके लिए वाध्यकर दिया। सन् १९३१ के कराची-अधिवेशनमे इसकी पुष्टि हो गयी। इस अधिवेशनमे यह माँगकी गयी थी कि, "जनताका शोषण समाप्त करनेके लिए आवश्यक है कि राजनीतिक स्वतन्त्रतामे लाखो-करोडो भूखे लोगोके लिए वास्तविक आर्थिक स्वतन्त्रता भी अवश्य शामिल की जाय।"

स्वर्णयुगकी कल्पनाके अनुरूप गाधीका यह विचार था कि व्यवसायके आधारपर प्रतिष्ठित जाति-प्रथा अपने विशुद्धतर रूपमे किसी समय एक उपयोगी सामाजिक संगठन रहा होगा। इस विचारको गाधीके अतिरिक्त नेहरू जैसे नेता भी किसी-न-किसी हदतक मानते थे किन्तु गाधी वर्तमान जाति-प्रथाको वहुत ही बुरा समझते थे और इसे खत्म करना चाहते थे। वे स्त्रियोको भी अपनी वेड़ियोसे पूरी तरह मुक्त करना चाहते थे। उन्होने वाल-विवाहका भी जवर्दस्त विरोध किया। उन्होने उन धार्मिक और सामाजिक मान्यताओको भी समाप्त करनेका प्रयत्न किया जो

विधवाओंके पुनर्विवाहमें बाधक थी। इन सब मामलोंमें गांधी परम्परावादियोंके विरुद्ध थे।

आय और धन-सम्पत्तिके वितरणके सम्बन्धमें भी गांधीके विचार मौलिक थे। वे प्रायः पूर्ण आर्थिक समानताकी माँग करते हुए प्रतीत होते थे किन्तु इस मामलेमें ट्रस्टीशिपकी अपनी अवधारणाके कारण उनका विचार अस्पष्ट हो गया था। उनका कहना था यदि धनीलोग अल्प सुविधा प्राप्त जनताके हितोंमें काम करें तो वे अपने पास धन रख सकते हैं। यह धारणा एक प्रकारका व्यावहारिक समझौता थी। गांधीजी किसी भी हालतमें हिंसाका प्रयोग नहीं करना चाहते थे। वे यह महसूस करते थे कि धनीलोग अपना धन-संपदा स्वेच्छया नहीं छोड़ देंगे (नीचे भी देखिये) इसीलिए उन्होंने ट्रस्टीशिपका सिद्धान्त बनाया था। यह इतना लचीला था कि इससे घोर विषमताका भी औचित्य सिद्ध किया जा सकता था, किन्तु गांधी धनियोंका हृदय-परिवर्तन करना और देशमें नैतिक क्रान्ति करना चाहते थे। नेहरूको ऐसे हृदय-परिवर्तनकी सम्भावनामें सन्देह था। वे आर्थिक समानताके सम्बन्धमें गांधीके असङ्गत विचारोंकी आलोचना करते थे।

गांधी अपने आर्थिक विचारोंके सुपरिणामके सम्बन्धमें बराबर आशावादी बने रहे। उन्होंने अपना यह विश्वास कई बार प्रकट किया है कि भारतके आजाद हो जानेपर गरीबोंकी आर्थिक स्थितिमें मौलिक सुधार हो जायगा। वे जाति प्रथा और सामाजिक असमानताओंके शीघ्र ही समाप्त होजानेके सम्बन्धमें भी इसी तरहकी आशा रखते थे। यह आशावाद दो बातोंपर आधारित था जो अब बिल्कुल गलत साबित हो चुका है यद्यपि कांग्रेस आन्दोलनके नेहरू तथा अन्य बुद्धिवादी लोग भी इस आशावादमें विश्वास करते थे। पहली बात तो यह थी कि इन लोगोंकी रायमें भारतसे ब्रिटिश औपनिवेशिक शासनके समाप्त हो जानेपर उसने आर्थिक प्रगतिकी शक्तियोंपर जो नियन्त्रण कायम कर रखा है वह दूर हो जायगा और साम्राज्यवादकी बेड़ियाँ कट जानेपर आर्थिक प्रगति तेजीसे होने लगेगी तथा गरीबों और अमीरों दोनोंको खास लेनेकी गुंजाइश हो जायगी। दूसरी बात यह थी कि स्वतन्त्रताके साथ आनेवाले राजनीतिक लोकतन्त्रका भारतीय समाजपर क्रान्तिकारी प्रभाव पड़ेगा।

गांधीके लिए विदेशी शासनको समाप्त करनेका प्रमुख उद्देश्य और अर्थ सामाजिक और आर्थिक व्यवस्थामें मौलिक परिवर्तन लाना था। उनकी दृष्टिमें इसके बिना स्वतन्त्रता और लोकतन्त्रकी उपलब्धि निरर्थक हो जाती है किन्तु गांधी यह मानकर चलते थे कि भारतीय जनता सत्ता-हस्तांतरणके बाद स्वयं सक्रिय हो

उठेगी और आर्थिक एवं सामाजिक क्रान्ति कर डालेगी। धनी और शक्तिशाली लोगोको अपने विशेषाधिकार छोड देने होगे और ऐसा वे स्वेच्छया और शान्ति-पूर्वक ही कर डालेगे। उनके शब्दो मे

आर्थिक समानता अहिंसक स्वतन्त्रताका मूलमत्र है जबतक अमीरो और लाखो-करोडो भूखो लोगोके बीच चौडी खाई कायम रहती है किसी अहिंसक सरकारके अस्तित्वकी सम्भावना नही हो सकती। स्वतंत्र भारत-मे ऐसा एक दिन भी नही चल सकता कि एक ओर नयी दिल्लीमे बडे-बडे महल और भवन बनते रहे और दूसरी ओर गरीब मजदूर लोग झोपडियो और झुग्गियोमे नारकीय जीवन विताते रहे। स्वतंत्र भारतमे गरीबोको भी वे ही अधिकार प्राप्त होगे जो किसी भी बडे-से-बडे धनी व्यक्तिको प्राप्त हो सकते है। यदि धनीलोग अपनी इच्छासे अपने धन और शक्तिका त्याग करके सामान्य जनताके कल्याणमे उसका नियोजन नही करते तो एक-न-एक दिन हिसक और खूनी क्रान्ति अवश्यम्भावी है।

गाधी और काग्रेस दोनो ही इसे निर्विवादरूपसे स्वीकार करते थे कि स्वतंत्र भारतमे वालिग मताधिकारके आधारपर लोकतन्त्रकी स्थापना होगी। गाधीके सामने जैसी सामाजिक और आर्थिक असमानता व्याप्त थी उसीको दूर करना ही उनके लिए आर्थिक एव सामाजिक क्रान्ति शुरू करना था।

लोकतान्त्रिक सिद्धान्तकी शर्तके रूपमे नही वल्कि उसके विस्तारके लिए ही गाधी दृढ आग्रह करते थे कि राजनीतिक सत्ता अधिकाधिक विकेन्द्रित और स्थानीय एव व्यावसायिक समुदायोके पास सुरक्षित होनी चाहिये। अपने अभियान-मे उन्होने इस प्रश्नपर लोगोकी निष्ठा प्राप्त कर ली थी। वे वहुसख्यक मतोके आधारपर प्रतिष्ठित सत्ताके भी केन्द्रीकरणके प्रति सन्देहालु थे और चाहते थे कि ग्रामीण जनता अपने भाग्यका निर्णय स्वयं किया करे और केन्द्रसे केवल सामान्य नियम वना करे। इस विचारके पीछे व्यक्तियोकी गरिमाकी रक्षा करनेकी उनकी एक वडी अवधारणा काम कर रही थी। वे यह कल्पना करते थे कि लोग परस्पर मिल-जुलकर ऐसी जीवन-प्रणाली सघटित कर लेनेमे समर्थ है जिससे शान्तिपूर्ण सहयोग, प्रगति और सौख्यका विकास होगा।

गाधी स्पष्टरूपमे यह अनुभव करते थे कि विकास मूलत. अभिवृत्तियो और सस्थाओसे सम्वद्ध एक मानवीय समस्या है। इसका अनिवार्य अर्थ यह होना चाहिये कि सब जगहके लोग अपनी जीवनगत स्थितियोमे अधिक सोद्देश्यताके साथ सुधार लानेके योग्य कार्य आरंभ कर दे और इसके साथ ही अपने समुदायमे

भा एगा परिवतन ल आयें जिनसे उनके प्रयत्न अधिक प्रभावकारी हो सकें। भारतमें विभिन्न प्रकारकी सहकारी सस्थाआ और स्थानीय स्वायत्तगामी सस्थाआ द्वारा "लोकतान्त्रिक नियोजन अथवा "विकेन्द्रीकरण ' के प्रयत्नामें इसी गाधी वादी आदशाका विकास दिखाई देता ह कि लोकतन्त्रका निर्माण "नीचस होना चाहिय। यदि आज इस तरहके प्रयत्न एव नीतियाँ बहुत सफल नही हो पाया हैं तो इसका कारण यही ह कि गाधी, नेहरू तथा काग्रेसका पूरा मौलिक परि वतनवादी वग पूणत विश्वस्त था कि स्वतन्त्रता और वयस्क मताधिकारके साथ ही सामाजिक और आर्थिक क्रान्ति भी अपने आप आ जायगी, जो नही हुआ। देशमें लोकतन्त्रकी जडसे स्थापना करनेके फरमें समानताके प्रश्नको भुला दिया गया और इस तरहसे लोकतन्त्र निर्वीय हो गया क्योकि प्रभावकारी सहकारके लिए जो बहुत-सी बातें आवश्यक ह उनमें समानताकी स्थापनाका बहुत महत्त्व ह।

इस तरह हम देखते हैं कि गाधी प्राय सभी व्यावहारिक क्षेत्रोंम एक प्रबुद्ध मौलिक उदारवादी थे। शिक्षाके क्षेत्रमें भी उन्होने क्रान्तिकारी परिवतन लानकी माँगकी थी। वे यह नही चाहते थे कि औपनिवेशिक कालसे विरासतके रूपमें किसी स्थूल प्रणालीमें बिना किसी प्रकारका सुधार किये हुए अधिक-से-अधिक बच्चा और युवकाको शामिल कर लिया जाय। यह शिक्षा प्रणाली बड-बड नगरो की ससाके हितार्थ थी और उस उच्च भारतीय जन वगका स्वार्थ साधन कर रही थी जिसका विकास उसके सरक्षणमें हुआ था। इस दिशामें भी व विशेषत सारी दुनियामें अग्रणी दो देशा अमेरिका और रूसके अत्यधिक आधुनिक सम सामयिक शिक्षा शास्त्रियोके अनुरूप विचार रखते थ। उन्होंने अपने शब्दो और अपने उदाहरणसे शिक्षाके विकासमें शारीरिक श्रमके प्रति अवमाकी भावनाके कारण आनवाली गभीर बाधाका तगडा विरोध किया। जिन अनेक शैक्षिक काय क्रमोका उन्होने प्रचार किया उनका मुख्य उद्देश्य हर तरहके श्रमको उचित गरिमाके स्तरपर प्रतिष्ठित करना ही था। सामाजिक समताके प्रश्नके साथ उन्होन इसका स्पष्ट सबध देख रखा था इसीलिये इसपर जार देनेमें वे कभी थकते न थे। गाधीजी निश्चितरूपसे दीनहीन एव पददलित जनताके हिताके लिए सघष करते थे किन्तु भारतीय नताआमें नेहरूको छोडकर ऐसा कोई नही था जो जनता की काहिलीकी ऐसे साफ शब्दोमें तीव्र भर्त्सना करता रहा हो और उसकी इसलिय कडी आलोचना करता हो कि वह स्वय अपने और अपन परिवशका साफ-स्वच्छ नही रख सकती।

गाधीके इन अत्यधिक तकसगत विचाराके साथ जिनके कारण वे मौलिक

उदारतावादके प्रमुख प्रवक्ता दिखाई देते हैं; जब हम उनके परम्परावादी विचारोको देखते हैं तो उनमे प्रत्यक्षत. बडा विरोध लक्षित होता है। वे आधुनिक औद्योगिक प्रविधि और यन्त्रोका विरोध करते थे। इसी तरह ग्रामोके प्रति उनमे पक्षपात था और शहरोके वे विरोधी दिखाई देते थे। अपने इन आग्रहोको उन्होने समय-समयपर जिन शब्दोमे प्रकट किया है उनका प्रबुद्ध उदारतावादसे मेल खाना मुश्किल लगता है किन्तु इधर हालके वर्षोमे आर्थिक विकासमे कृषिको जो महत्त्व मिला है और जिस प्रकार यह समझा जाने लगा है कि खेत-मजदूरोके बेकार समयका भी खेतीका विकास करके अच्छा उपयोग किया जा सकता है उससे अब गाधीके विचार उतने तर्क-विरोधी नही लगते जितने उस समय लगते थे जब उद्योगीकरणको ही सकीर्ण दृष्टिसे विकास समझा जाता था और यह विश्वास किया जाता था कि द्रुत उद्योगीकरणसे ही ऐसे नये रोजगार पैदा किये जा सकेगे जिसमे ग्रामीणोका "फालतू श्रम" "खपाये जानेकी" संभावना बढ सकेगी। उद्योगीकरणको प्रधानता देनेवाले उस युगकी चरम परिणतिके समय भी द्वितीय पच वर्षीय योजना तैयार किये जानेवाले वर्षोमे भी नियोजकोको गाधीवादी विचारोके साथ इस मानेमे समझौता करना पडा था कि उन्होने उपभोग्य वस्तुओ-के उत्पादनका एक बडा भाग पारम्परिक श्रमको उत्तेजना प्रदान करनेवाली प्रविधिके लिए ही सुरक्षित छोड रखा था। केन्द्रीय नियोजनमे ही सामान्यत भारतीय नीति गाधीजीकी विचारधारासे मुख्यत हटी दिखाई देती है, किन्तु वहाँ भी अब ऐसे चिन्तनका विकास होने लगा है जो गाधीके विचारोके निकट आने की सभावना दिखा रहा है। जो योजनाएँ मुख्यत. आर्थिक दृष्टिसे तैयार की गयी थी वे अत्यन्त गलत, निराधार एवं भ्रामक सिद्ध हो चुकी हैं। इसके फलस्वरूप अब भारत यह समझने लगा है कि विकासको सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्थाके साथ सम्बद्ध प्रक्रियाके रूपमे देखना आवश्यक है। गाधीजीका भी यही विचार था यद्यपि उन्होने कभी इसकी विस्तारसे व्याख्या नही की थी।

गाधीकी दृष्टिसे राजनीतिकी जडें नैतिकतामे होनी चाहिए। अपने इस दृष्टि-कोणसे भी उन्होने वास्तविक उदारतावादी सिद्धान्तोपर ही जोर दिया था। आज बहुत-से लेखक, खासकर अर्थशास्त्री इस विचारसे दूर जा पडे है। गाधीका यह आग्रह करना की नैतिकता धर्मपर प्रतिष्ठित होनी चाहिए उदारतावादी दृष्टिकोणसे अधिक संदेहास्पद है। किन्तु यहाँ भी गाधीने सभी धर्मोके सामान्य तत्त्वोमे ऐक्यका प्रतिपादन करके और सभी धर्मों द्वारा अनुमोदित "उच्चतर" आदर्शोको बल प्रदान करके अपनी धर्मकी अवधारणाको एक मानवतावादी और तर्कसगत रूप दे

दिया ह । उन्होंने धार्मिक अनुष्ठानों और परम्परागत विधिनिषेधोंको अस्वीकार कर दिया ह, जो अलग-अलग धर्मोंमे अलग-अलग ढगसे मिलते ह और जिनका आधार भी प्राय बुद्धिसगत नही होता । यौन-सुखसे दूर रहनेकी (ब्रह्मचर्यकी) उन्होंने जो इतनी प्रशसा की ह और गर्भनिरोधके प्रति जसा तीव्र विरोधका भाव दिखाया ह वह निश्चित रूपसे उनके नतिक दर्शनका बुद्धिविरोधी तत्व ह । जनसख्या-वृद्धि के विस्फोटके समय तो उनके इस विचारका पालन करना और भी उदारतावाद विरोधी प्रतीत होने लगता किन्तु यह समस्या उनकी मृत्युके बाद ही उपस्थित हुई ह । इसी तरहसे उनके गौ पूजा और मूर्तिपूजा सबधी विचार भी स्पष्टत प्रबुद्ध उदारतावादके विपरीत ह ।

(२)

गाधीकी शिक्षाओं और उद्देश्योंका जिन लोगोंने भी कुछ गभीरतासे अध्ययन किया हैं उन्होंने यह जरूर सोचा होगा कि यदि आज स्वतन्त्रता प्राप्तिके बीस वर्षों बाद गाधी अपने भारतमें पुन वापस आ जाते तो उनकी बौद्धिक, नतिक और राजनीतिक प्रतिक्रिया किस ढगकी होती । इतना तो तय ह कि उन्होंने यह मान लिया होता कि स्वातन्त्र्य सघर्षके दौरान वे और उनके अन्य समसामयिक नेता जिस असीम आशावादसे अनुप्राणित थे वह गलत थी ।

उन्होंने जिस सामाजिक और आर्थिक क्रान्तिकी कल्पना की थी उसे पहले स्थगितकर दिया गया और बादमें बिलकुल ही समाप्त कर दिया गया । इसके सबध में अब केवल समय-समयपर सार्वजनिक भाषणोंमें जोरदार शब्दोंमें जोश-खरोशके साथ चर्चा भी होती रहती ह । वापस आकर उन्होंने देखा होता कि आर्थिक समानताके स्थानपर विषमताए दिनपर दिन बढती जा रही ह । आर्थिक सत्ताका केन्द्रीकरण दृढ होता जा रहा ह । गाधीकी विरासतके प्रभावके अन्तर्गत सविधान में जाति प्रथाके विरुद्ध स्पष्ट आदेश और विशेष प्रावधान होनेके बावजूद इसकी बुराइयाँ न केवल वर्तमान ह बल्कि सभवत सामाजिक सस्थाके रूपमें जाति प्रथा का महत्व और बढ गया ह । स्त्रियोंकी स्वतन्त्रता और पद प्रतिष्ठामे उत्थान लाने का उन्होंने जो प्रयत्न किया था वह आज अधिकाशत एक निरर्थक नुस्खा बनकर रह गया ह । केवल उच्चवर्गीय स्त्रियाँ ही इसका अपवाद हो सकती हैं । भूमि, खेती और काश्तकारी सबधी सुधार भी बहुत कुछ दिखावटी ही हैं । शिक्षामें कोई मौलिक सुधार नही हुआ ह । उससे अभी भी हाथसे कामकरनेवालों और तथाकथित शिक्षाप्राप्त लोगोंके बीच खाई पूर्ववत बनी हुई ह । ग्रामीण जीवनका उत्थान करनेवाले और उसे प्रेरणा देनेवाले सारे प्रयत्न—कृषि विस्तार, प्रसार,

ऋण-व्यवस्था, सहकारी संस्थाएँ सामुदायिक विकास, पंचायतराज और ऐसी ही और सारी चीजें अपने घोषित उद्देश्योके विपरीत केवल भरेपेट वालों और ऊँचे तबकेके लोगोका ही हितसाधन करनेमे लगी हुई हैं।

इन सब बातोका परिणाम यह हुआ है कि देहातोकी जनता, जिसकी संख्या आज भी गाधीजीके समयकी तरह ही देश की कुल जनसंख्याका अस्सी प्रतिशत है, अधिकाशत. अपेक्षाकृत स्थितिशील अवस्थामे बनी हुई है और उसकी प्रगति पूर्ववत् अवरुद्ध है। इन ग्रामीणोमे भी वह भूमिहीन और दरिद्रतर जनता—गाधी-की मूक आधा पेट खाकर जीनेवाली लाखो-करोडों जनता—२५ वर्षो पूर्वकी स्थिति से भी बदतर हालतमे हो तो कोई ताज्जुब नही। इतना तो तय है कि उसका कोई भी विकास नही हुआ है। इसमे संदेह नही कि आज गाधीको देशमे जिस बडे पैमानेपर अपनी कल्पनाकी विफलता दिखाई देती उसमे जनसंख्या-वृद्धिकी अनवरुद्ध विस्फोटक स्थितिने भी बडी सहायता कर दी है। इसका इस समय केवल अटकल ही लगाया जा सकता है कि जनसख्या वृद्धि और पशु-संख्या वृद्धि की मौजूदा विस्फोटक स्थितिको देखते हुए गाधीजीने गर्भ-निरोध और गोवध संबंधी अपने विचारोमे संशोधन किया होता या नही। चूँकि तर्कसंगत उदारता-वाद गांधीके चिन्तनका प्रमुख तत्त्व था इसलिए इस संबंधमें उनके विचारोमे परि-वर्तन हो जाना नितान्त अकल्पनीय नही है। हर हालतमे सभवत उन्होने इन समस्याओको प्रमुखता न देकर इन्हे राजनीतिक क्षेत्रकी विफलताके परिणामके रूप-में ही देखा होता।

स्वातन्त्र्यप्राप्तिके बाद गांधीका निधन हो गया किन्तु यदि आज वे जीवित होते तो भारतीय राजनीतिकी मौजूदा प्रगतिकी उन्होने बडी ही तीव्र निन्दा की होती। उन्होने देखा होता कि इसमे तेजीसे नैतिक अस्वस्थता बढती जा रही है। नैतिक भ्रष्टता सारी राजनीति और समाजमें कैंसरकी तरह बढ गयी है। भ्रष्टा-चार इसका ज्वलन्त साक्ष्य दे रहा है। इसके अलावा राजनीतिक जीवनके एक दूसरे ह्रासोन्मुख पक्षपर भी उनका ध्यान गया होता। देशमे एक ओर ऐसे उप-द्रवोमे वृद्धि हो रही है जिनका प्राय कोई प्रमुख राजनीतिक उद्देश्य नही होता और दूसरी ओर पुलिसकी पशुता भी बढती जा रही है। इन दोनो रूपोमे जिस तरह हिंसाकी वृद्धि हुई है वह गाधीकी चिन्ताका प्रमुख कारण बन गया होता। प्राय. कहा जाता है कि अंग्रेजोके विरुद्ध संघर्षके समय इस तरहकी बातें बहुत कम

दिया है। उन्होंने धार्मिक अनुष्ठानों और परम्परागत विधिनिषेधोंको अस्वीकार कर दिया है, जो अलग-अलग धर्मोंमें अलग-अलग ढंगसे मिलते हैं और जिनका आधार भी प्रायः बुद्धिसंगत नहीं होता। यौन-सुखसे दूर रहनेकी (ब्रह्मचर्यकी) उन्होंने जो इतनी प्रशंसा की है और गर्भनिरोधके प्रति जो तीव्र विरोधका भाव दिखाया है वह निश्चित रूपसे उनके नैतिक दर्शनका बुद्धिविरोधी तत्त्व है। जनसंख्या-वृद्धिके विस्फोटके समय तो उनके इस विचारका पालन करना और भी उदारतावाद विरोधी प्रतीत होने लगता किन्तु यह समस्या उनकी मृत्युके बाद ही उपस्थित हुई है। इसी तरहसे उनके गौ पूजा और मूर्तिपूजा संबंधी विचार भी स्पष्टतः प्रबुद्ध उदारतावादके विपरीत हैं।

(२)

गांधीकी शिक्षाओं और उद्देश्योंका जिन लोगोंने भी कुछ गंभीरतासे अध्ययन किया है उन्होंने यह जरूर सोचा होगा कि यदि आज स्वतन्त्रता प्राप्तिके बीस वर्षों बाद गांधी अपने भारतमें पुनः वापस आ जाते तो उनकी बौद्धिक, नैतिक और राजनीतिक प्रतिक्रिया किस ढंगकी होती। इतना तो तय है कि उन्होंने यह मान लिया होता कि स्वातंत्र्य संघर्षके दौरान वे और उनके अन्य समसामयिक नेता जिस असीम आशावादसे अनुप्राणित थे वह गलत थी।

उन्होंने जिस सामाजिक और आर्थिक क्रान्तिकी कल्पना की थी उसे पहले स्थगितकर दिया गया और बादमें बिल्कुल ही समाप्त कर दिया गया। इसके संबंधमें अब केवल समय-समयपर सार्वजनिक भाषणोंमें जोरदार शब्दोंमें जोश-खरोशके साथ चर्चा भी होती रहती है। वापस आकर उन्होंने देखा होता कि आर्थिक समानताके स्थानपर विषमताएं दिनपर दिन बढ़ती जा रही हैं। आर्थिक सत्ताका केन्द्रीकरण दृढ़ होता जा रहा है। गांधीकी विरासतके प्रभावके अन्तर्गत संविधानमें जाति प्रथाके विरुद्ध स्पष्ट आदेश और विशेष प्रावधान होनेके बावजूद इसकी बुराइयाँ न केवल वर्तमान हैं बल्कि संभवतः सामाजिक संस्थाके रूपमें जाति प्रथाका महत्त्व और बढ़ गया है। स्त्रियोंकी स्वतन्त्रता और पद प्रतिष्ठामें उत्थान लानेका उन्होंने जो प्रयत्न किया था वह आज अधिकांशतः एक निरर्थक नुस्खा बनकर रह गया है। केवल उच्चवर्गीय स्त्रियाँ ही इसका अपवाद हो सकती हैं। भूमि खेती और काश्तकारी संबंधी सुधार भी बहुत कुछ दिखावटी ही है। शिक्षामें कोई मौलिक सुधार नहीं हुआ है। उससे अभी भी हाथसे कामकरनेवालों और तथाकथित शिक्षाप्राप्त लोगोंके बीच खाई पूर्ववत बनी हुई है। ग्रामीण जीवनका उत्थान करनेवाले और उसे प्रेरणा देनेवाले सारे प्रयत्न—कृषि विस्तार प्रसार,

सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संस्थाओ, अभिवृत्तियो एव व्यवहारोमे क्रांतिकारी परिवर्तन लानेके लिए जनतामे नयी विद्युत्-चेतनाका संचार कर सकता है। आज देशको सबसे अधिक इसीकी आवश्यकता है।

---

१. एशियन ड्रामा, ऐन इन्क्वायरी इन्टू द पॉवर्टी आव नेशन्स, पेन्थियन पब्लिशर्स, न्यूयार्क, और पेंग्विन पब्लिशर्स, लंदन, १९६८, आमुख, परिच्छेद ९ और अध्याय २। लेख में गाधीके विचारोंके संबधमे जो मन्तव्य दिये गये हैं वे इसी ग्रंथमें दिये गये अनेक उद्धरणों-पर आधृत हैं।

होती थी। इसका कारण गाधीका अनुशासन ही था। भारतीय राजनीतिकी इस व्याधिके सबधमें उन्होंने यही कहा होता कि यदि आजादीके बाद काग्रेस राजनीतिसे अलग हो जाती और उसने स्वयसेवक सस्थाके रूपमें सामाजिक सुधारका काय प्रारभकर दिया होता, जैसा कि उन्होंने सुझाव दिया था तो आज यह स्थिति कदापि पैदा न होती। नेहरू तथा काग्रेसके अय बहुसख्यक नेताओने गाधीजीका यह सुझाव न मानकर शासनमें बना रहना इसलिए कबूल किया था कि उस समयतक काग्रेस देशकी राष्ट्रीय पार्टी बन चुकी थी। इसमें सदेह नही कि उसने आजादीके बादके प्रथम दस वर्षोंमें देशको अपेक्षाकृत सफल और स्थिर सरकार प्रदान किया किन्तु इन्ही दस वर्षोंमे धीरे धीरे सामाजिक और राजनीतिक क्रांति का स्थगन मान्य हो गया। देशमें उस क्रान्तिकी गति रुद्ध हो गयी जो गाधी नेहरू तथा अन्य नेताओंकी आशाओंके अनुरूप देशका नक्शा बदल देनेके लिए आवश्यक थी।

आज यदि गाधीजी वापस आते तो उन्हें निश्चय ही स्वीकार करना पडता कि वे तथा अय नेता अत्यधिक आशावादी थे। यह भी तय है कि आज भी वे अपने आधारभूत मूल्याङ्कनोंके प्रति निष्ठावान रहते क्योकि उनकी जड़ें उनके नतिक विश्वासो और धममें निहित हैं। यह तो सोचा ही नही जा सकता कि व इन परिस्थितियोंके मौन दशक बने रहते और हाथ-पर-हाथ धर बैठे रहत। उन्होंने फिरसे अपना धम-युद्ध छेड दिया होता। उन्होंने जनताको उसकी मोह निद्रासे यक्झोरकर जगा दिया होता। उन्होंने उसकी सामाजिक और आर्थिक धारणाओको बदलनेका व्यापक प्रयास आरभकर दिया होता। अपने इस अभियानके लिए विभिन्न क्षेत्रोंमें पूववत उनके नये अनुयायी उठ खडे होत और उन्होंने उन्हें अपनी निष्ठा साधनसम्पन्नता और अपने प्रेमी एव विनोदी स्वभावसे एकत्र बद्धकर रखा होता।

म जब कभी भारतकी दिमाग चकरा देनेवाली विकासकी विषम समस्याओ पर विचार करने लगता हूँ तो मुझे यही अनुभव होता ह कि आज इस महान देशको किसी भी विदेशी सहायता और पुनरावर्ती सङ्कटोंका सामना करनेके लिए अपनी नीतियोम दिन प्रतिदिन सामञ्जस्य बैठानेकी अपेक्षा गाधी जस महान, प्रेमी और निभय आध्यात्मिक नेताकी जरूरत ह। देर हो जानेपर भी यदि आज देशको कोई ऐसा नेता मिल जाय तो वह अपने चारो ओर एकत्र राष्ट्रभक्तोंके सहयोगसे

सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संस्थाओ, अभिवृत्तियो एव व्यवहारोमे क्राति-कारी परिवर्तन लानेके लिए जनतामे नयी विद्युत्-चेतनाका संचार कर सकता है। आज देशको सबसे अधिक इसीकी आवश्यकता है।

---

१. एशियन ड्रामा, ऐन इन्क्वायरी इन्टू द पॉवर्टी आव नेशन्स, पैन्थियन पब्लिशर्स, न्यूयार्क, और पेंग्विन पब्लिशर्स, लंदन, १९६८, आमुख, परिच्छेद ९ और अध्याय २। लेख मे गाधीके विचारोंके सबधमे जो मन्तव्य दिये गये हैं वे इसी ग्रथमे दिये गये अनेक उद्धरणों-पर आधृत हैं।

सुशीला नायर

जो मैंने देखा

अनेक लोगोंने महात्मा गांधीके व्यक्तित्वकी चुम्बकीय शक्तिके सबधमें लिखा है। ऐसे बहुतसे लोग जो पहले उनके पास उनका मजाक उडाने आये थे उनके साथ उनकी प्रार्थना करनेके लिए रहने लगे। वे उनके उत्साही प्रशसक और अनुयायी बन गये। शायद इसका रहस्य मानवीय व्यक्तित्वके प्रति उनकी अन्तर्निहित आदरकी भावना थी। व किसी भी स्त्री या पुरुषको उसकी योग्यताके अनुरूप पूरा सम्मान देते थे और उन्हें ऐसा अनुभव होने लगता कि वे उन सबकी देखभाल कर रहे है और उनके व्यक्तित्वके पूर्ण विकासमें सहायता पहुँचा रहे हैं। जहाँतक उनकी अपनी त्रुटियोंका सवाल था वे उनके प्रति स्वय बड निष्ठुर एव निर्मम थे किन्तु दूसरोकी दुर्बलताओंके प्रति उनमें बडी सहिष्णुता थी और वे उनमें जो कुछ भी सर्वोत्तम था उसे खोजकर व्यवहारमें बाहर निकाल लानेके लिए बराबर उत्सुक रहा करते थे। उनकी सहानुभूति समझ और समवेदनाके कारण अनेक तरहके लोग उनके पास खिंच आते और उनके प्रेमके बदी बन जाते थे।

सन १९३२ में गाधीजीसे द्वितीय गोलमेज सम्मेलनसे लौटनेके बाद मेरी माँ उनसे मिलने बम्बई गयी। मेरे पिताका देहात उसी समय हो गया था जब मैं अभी दूध पीती बच्ची थी। मेरी माँ मुझसे बताती थी कि व मेरे पिताके जीवनकालमें परदेमें रहती थी। उनका वह बडा ही शान शौकतका जमाना था। घर नौकर चाकरोंसे भरा रहता था। इस बीच एकाएक उनकी दुनिया ही बदल गयी। मेरे सबसे बडे भाई जो एम० ए० की उपाधिके लिए तयारी कर रहे थे गाधीजीके आह्वानपर पढाई छोडकर असहयोग आन्दोलनमें कूद पडे। मेरे दूसरे भाईको भी कम उम्रमें ही, परिवारका भार वहन करनेके लिए पढाई छोड देनी पडी। मैंने अभी दिल्लीस्थित लेडी हार्डिंग मेडिकल कालेजमें प्रवेश लिया था।

उन दिनो यह आवासीय कालेज था। मेरी माँ गाधीजीसे मिलने चली गयी थी और मेरे भाई जो गाधीजीके साथ ही ब्रिटेन गये थे वहाँ से वापस घर आ गये थे। मेरी माँ की उम्र उस समय पचासके ऊपर थी। उन्हें मधुमेहकी शिकायत रहा करती थी। दो दिन रहनेके वाद वे महात्माजीसे विदा लेने गयी।

जव माँ उनका चरण-स्पर्शकर चलनेको हुई तो उन्होने पूछा "जवतक हम-लोग जेल न चले जायँ आप यहाँसे कैसे जा सकती है ?"

मेरी माँने कहा, "तो ठीक है मैं और दो दिन ठहर जाती हूँ।"

महात्माजीकी आँखोमें खुशीकी चमक आ गयी। उन्होने पूछा, उसके वाद क्या आप हमे जेल जाते देखकर घर चली जायँगी ? यह कैसे हो सकता है ?

इसपर तो मेरी माँ की वोलती ही वंद हो गयी। वे वहाँ तीन या चार दिनोतक रुकी रही—फिर एक सप्ताह रुकी रही तव एक दिन आधी रातको पुलिसवाले आये और उन्हे गिरफ्तार कर ले गये। गाधीजीके जेल जानेके थोड़े ही दिनो वाद वे भी "स्वराज मन्दिर" पहुँच गयी (उन दिनो जेलको यही कहा जाता था)।

मेरे सवसे वडे भाई और मेरी माँ जेलमे थी। इसी वीच गर्मीकी छुट्टी आ गयी और मेरा छात्रावास वंद हो गया। मेरी समझमें नही आ रहा था कि मैं अव कहाँ जाकर रहूँ। तभी मेरे परिवारके एक मित्रने मुझे अपने वच्चोके साथ रहकर अपनी छुट्टियाँ वितानेके लिए मुझे आमन्त्रित किया। मेरी माँ इस वारेमे वडा सावधान रहा करती थी कि उनके वच्चे छुट्टियाँ कैसे और कहाँ रहकर वितायें किन्तु अव उन्हे इसकी चिन्ता नही रह गयी थी। अव वे भारतके लाखो-करोड़ो वच्चोंके वारेमे सोचने लगी थी। महात्माजीने उनकी दृष्टिको व्यापक वना दिया था। ऐसा ही परिवर्तन उन्होने न जाने कितनोके जीवनमे कर दिया था।

मेडिकल कालेजसे स्नातिका वननेके वाद मैं १९३० के कालमे गाधीजीके साथ सेवाग्राम गयी। मैं अच्छी छात्रा थी और मुझे अपने डाक्टरी-ज्ञानके वारेमे काफी गर्व था। गाधीजी मुझसे स्वास्थ्य, पोषण, स्वच्छता और व्याधि-निरोधके संवंधमे एक-से-एक गंभीर सवाल पूछने लगे। मैं घरपर वहुत काम करके उनके सामने ले जाती थी ताकि वे मुझे अज्ञान न समझ लें और मुझसे सन्तुष्ट हो सकें। कुछ ही दिनो वाद वहाँ हैजेका प्रकोप हो गया। उन्होने मुझे इसपर नियन्त्रण पानेका आदेश दिया और मेरी सहायताके लिए कुछ आश्रम-वासियोको मेरे साथ भेज दिया। मुझे मामूली-से-मामूली वातोके प्रवंधसे लेकर इस समस्याके समाधानके लिए सभी सुलभ मानवीय एवं प्राकृतिक साधनोको

उपलब्धकर गाँवकी सेवाका काय संघटित करना पडा। गांधीजीने मुझसे कहा कि, "तुम्हें सारे गाँवको अस्पताल समझना ह और प्रत्येक झोपडीको वाड बनाना है।' मैं कुँओंके पानीको स्वच्छ बनाने तथा हजेके कीडोंसे मरीजोंको मुक्त करने के लिए कुछ टाकरियामें ब्लीचिंग पाउडर और कुछ अप्रशिक्षित सहकर्मियोंको साथमें लेकर सेवाकार्यके लिए निकल पडी। मेरे साथी निर्विषीकरणका काय देख रहे थे। म आवश्यकता पडनेपर मरीजोंको स्नायविक सूई लगा रही थी। *सारा काम लगन और सेवा-सङ्कल्पसे पूरा हो गया।* जो लोग सक्रमणसे बच गये थे उन्हें हमने टीके लगा दिये। इस तरह हजेके प्रकोपपर नियन्त्रण हो *गया। इस प्रकार म सामाजिक और रोग निरोधक सेवामें उतार दी गयी।* गांधीजीने मुझमें अपनी सहायतासे अभिक्रम और आत्मविश्वासका विकास कर दिया। मैं उनके साथ कुछ दिन रहनेके लिए गयी थी और करीब १० वर्षोंतक— उस समयतक रही जबतक हत्यारेकी गोलीने उन्हें हमसे छीन नही लिया।

सन् १९४६ में मुस्लिमलीगने अपनी तथाकथित "प्रत्यक्ष कारवाई' शुरू की जिसके फलस्वरूप कलकत्तामें बडे पैमानेपर हत्याएं हुइ। दूसरी तरफसे भी इसी तरहकी जवाबी कारवाई हुई और ऐसा ही उन्माद दिखाया गया। इसके बाद नोआखालीके मुसलिमबहुल क्षेत्रम हिंसाका ताण्डव होने लगा। फिर इस की प्रतिक्रिया बिहारमें हुई, जहाँ नोआखालीकी घटनाए दूसरे पक्षके साथ उससे भी बडे पमानेपर दुहरायी गयी। यदि उग्रहिंसाकी प्रतिशोधात्मक प्रतिक्रियाओंकी यह श्रृङ्खला समाप्त न की जाती तो भारतकी आजादीका स्वप्न हिंसाकी आगमें जलकर भस्म हो जाता। इसी सकटको रोकनेके लिए गांधीजी नोआखालीके उपद्रवग्रस्त क्षेत्रोंकी "पदल यात्रा' पर निकल पडे। वहाँ उन्होंने जो कुछ देखा उससे वे सन्न रह गये। वहाँ बहुत बड पमानेपर अग्निकाण्ड मारकाट हत्या लूट, बलात्कार, *बलात धम परिवतन और कुमारियां एवं विवाहिताओंके साथ* जबदस्ती विवाहकर लेनेकी घटनाएँ बहुत बड पमानेपर हुई थी। मीलोंतक सभी हिन्दू घरोंको पहले लूटा गया बादमे जला दिया गया था। हिन्दू जनता आतक ग्रस्त था। कितने घर-बार छोडकर भाग चुके थ और बहुत बडी सख्यामें उनके *घर छोडकर निकल पडनेकी आशका हो गयी थी। इससे अनिवायत सारे क्षेत्रमें* उपद्रवकी ज्वालाएँ भडक उठती। आतकको रोकने जनताका धीरज और हिम्मत बँधाने अपराधी उपद्रवियोंके हृदयमें प्रायश्चित्तकी भावना जगानेके उद्देश्यसे, जिससे दोनो समुदायोंके लोग फिरसे पूववत भाई भाईकी तरह एक साथ रहने लगें, गांधीजीने अपने दलके प्रत्येक सदस्यको एक बरबाद हुए गाँवमें नियुक्त

किया। दलके प्रत्येक स्त्री और पुरुष सदस्यने यह सङ्कल्प ले लिया था कि जिन लोगोकी रक्षाका भार उन्हें सौपा गया है उनमे किसीका भी बाल बाँका होनेके पहले वे अहिंसक ढंगसे अपने जीवनकी बलि चढा देंगे। हममेंसे जिन्हे बंगला नही आती थी उनके साथ दुभापिये कर दिये गये थे। इसके अतिरिक्त हममेसे प्रत्येक-को केवल भगवान्के प्रति अटूट आस्थापर आधारित अपने निजी साहसपर निर्भर करना था। इस कार्यके लिए केवल उन्ही लोगोको योग्य समझा गया था, जिन्होने गाधीजीको यह सतोष दिला दिया था कि वे मरनेसे नही डरते और भयानक-से-भयानक पाशविक अत्याचार करनेवाले उपद्रवियोके विरुद्ध भी क्रोध नही करेंगे और न उनके प्रति किसी तरहकी दुर्भावना ही रखेगे। गाधीजीने हम सबका व्यक्तिगत रूपसे अलग-अलग यह जाननेके उद्देश्यसे साक्षात्कार किया कि हम अपने कार्यके लिए उपयुक्त है या नही।

जब मेरी बारी आयी तो मैने उनसे साफ-साफ कह दिया कि मैने यहाँ जो कुछ देखा और सुना है उससे मै डरती हूँ किन्तु मै अपने भयपर विजय पानेकी कोशिश करूँगी। गाधीजीने कह रखा था कि यदि किसी स्त्रीकी इज्जतपर खतरा आता हो और वह आत्महत्या कर ले तो वे इसे उचित मानेंगे। मै और दूसरी लडकियोने उनसे आत्महत्या करनेके लिए ऐसे उपयुक्त साधन देनेको कहा जिस-का हमलोग संकटकी स्थितिमे आवश्यकता पडनेपर उपयोग कर सके। किन्तु उन्होने इसपर यही कहा कि मै तुम्हे ऐसी कोई चीज नही दे सकता। तुम्हे अपनी रक्षाके लिए अपने आत्मविश्वास और भगवान्पर भरोसा रखना चाहिये। इनके इस दूसरे सवालपर मैने जवाब दिया कि मुसलमानोने यहाँ जो कुछ किया है उसे देखकर मै क्रोधसे भर उठती हूँ यद्यपि मै यह भी अनुभव करती हूँ कि असली अपराध इन निरीह लोगोका नहीं है जो केवल दूसरोके हाथके औजार भर है। असली अपराधी तो वे लोग है जिन्होने प्रत्यक्ष काररवाई शुरूकी है और इन लोगोको उत्तेजित करके ऐसे जघन्य कार्योंमें लगा दिया है। मुझे इसमे सदेह है कि मै इस परीक्षामे सफल हो सकूँगी या नही। गाधीजी क्षणभर मौन बैठे रहे फिर उन्होने कहा कि तुम किसी बाहरी चौकीपर जा सकती हो। वे इससे सन्तुष्ट हो गये थे कि मै भय और क्रोधपर विजय पानेकी कोशिशकर रही हूँ।

हममेसे प्रत्येकने अपनी विशिष्ट अभिवृत्ति और योग्यताके अनुरूप सेवा-भावना-से कार्य किया। मै गाधीजीके शिविरसे दो मील दूर चंगीरगाँव नामक एक छोटेसे गाँवमें नियुक्त थी। वहाँ पहुँचनेपर मैने देखा कि किसी समयका यह समृद्ध गाँव इस समय पूरी तरह बरबाद हो चुका है। चारो ओर जला हुआ धान

किया। दलके प्रत्येक स्त्री और पुरुष सदस्यने यह सङ्कल्प ले लिया था कि जिन लोगोकी रक्षाका भार उन्हें सौंपा गया है उनमे किसीका भी बाल बाँका होनेके पहले वे अहिंसक ढगसे अपने जीवनकी बलि चढ़ा देंगे। हममेसे जिन्हे बंगला नही आती थी उनके साथ दुभाषिये कर दिये गये थे। इसके अतिरिक्त हममेंसे प्रत्येक-को केवल भगवान्के प्रति अटूट आस्थापर आधारित अपने निजी साहसपर निर्भर करना था। इस कार्यके लिए केवल उन्ही लोगोको योग्य समझा गया था, जिन्होने गाधीजीको यह संतोष दिला दिया था कि वे मरनेसे नही डरते और भयानक-से-भयानक पाशविक अत्याचार करनेवाले उपद्रवियोके विरुद्ध भी क्रोध नही करेंगे और न उनके प्रति किसी तरहकी दुर्भावना ही रखेंगे। गांधीजीने हम सबका व्यक्तिगत रूपमे अलग-अलग यह जाननेके उद्देश्यसे साक्षात्कार किया कि हम अपने कार्यके लिए उपयुक्त है या नही।

जब मेरी बारी आयी तो मैंने उनसे साफ-साफ कह दिया कि मैंने यहाँ जो
कुछ देखा और सुना है उससे मैं डरती हूँ किन्तु मैं अपने भयपर विजय पानेकी
कोशिश करूँगी। गाधीजीने कह रखा था कि यदि किसी स्त्रीकी इज्जतपर खतरा
आता हो और वह आत्महत्या कर ले तो वे इसे उचित मानेंगे। मै और दूसरी
लडकियोने उनसे आत्महत्या करनेके लिए ऐसे उपयुक्त साधन देनेको कहा जिस-
का हमलोग संकटकी स्थितिमें आवश्यकता पडनेपर उपयोग कर सके। किन्तु
उन्होने इसपर यही कहा कि मै तुम्हें ऐसी कोई चीज नही दे सकता। तुम्हे
अपनी रक्षाके लिए अपने आत्मविश्वास और भगवान्पर भरोसा रखना चाहिये।
इनके इस दूसरे सवालपर मैंने जवाब दिया कि मुसलमानोने यहाँ जो कुछ किया
है उसे देखकर मैं क्रोधसे भर उठती हूँ यद्यपि मैं यह भी अनुभव करती हूँ कि
असली अपराध इन निरीह लोगोका नही है जो केवल दूसरोंके हाथके औजार भर
है। असली अपराधी तो वे लोग है जिन्होने प्रत्यक्ष काररवाई शुरूकी है और इन
लोगोको उत्तेजित करके ऐसे जघन्य कार्योंमें लगा दिया है। मुझे इसमें सदेह है
कि मै इस परीक्षामे सफल हो सकूँगी या नही। गाधीजी क्षणभर मौन बैठे रहे
फिर उन्होने कहा कि तुम किसी बाहरी चौकीपर जा सकती हो। वे इससे सन्तुष्ट
हो गये थे कि मै भय और क्रोधपर विजय पानेकी कोशिश कर रही हूँ।

हममेसे प्रत्येकने अपनी विशिष्ट अभिवृत्ति और योग्यताके अनुरूप सेवा-भावना-
से कार्य किया। मै गाधीजीके शिविरसे दो मील दूर नन्दीग्राम नामक एक
छोटेसे गाँवमे नियुक्त थी। वहाँ पहुँचनेपर मैंने देखा कि किसी समयका यह समृद्ध
गाँव इस समय पूरी तरह बरबाद हो चुका है। लूटा और जला हुआ धान

उपलब्धकर गाँवकी सेवाका काय सघटित करना पडा। गांधीजोने मुझसे कहा कि "तुम्ह सारे गाँवको अस्पताल समझना ह और प्रत्येक झोपडीको वाड बनाना ह। मैं कुँआके पानोको स्वच्छ बनाने तथा हैजेके कीडोंसे मरीजाको मुक्त करने के लिए कुछ टोकरियामें ब्लीचिंग पाउडर और कुछ अप्रशिक्षित सहकर्मियोको साथमें लेकर सेवाकायके लिए निकल पडी। मेरे साथी निर्विषीकरणका काय देख रहे थे। म आवश्यकता पडनेपर मरीजोको स्नायविक सूई लगा रही थी। बाकी सारा काम लगन और सेवा-सङ्कल्पसे पूरा हो गया। जो लोग सक्रमणसे बच गये थे उन्हें हमने टीके लगा दिये। इस तरह हजेके प्रकोपपर नियत्रण हो गया। इस प्रकार मैं सामाजिक और रोग निरोधक सेवामें उतार दी गयी। गाधीजोने मुझमें अपनी सहायतासे अभिक्रम और आत्मविश्वासका विकास कर दिया। म उनके साथ कुछ दिन रहनेके लिए गयी थी और करीब १० वर्षोतक—उस समयतक रही जबतक हत्यारेकी गोलीने उन्हें हमसे छीन नही लिया।

सन् १९४६ में मुस्लिमलीगने अपनी तथाकथित "प्रत्यक्ष काररवाई शुरू की जिसके फलस्वरूप कलकत्तामें बडे पैमानेपर हत्याएँ हुइ। दूसरी तरफसे भी इसी तरहकी जवाबी काररवाई हुई और ऐसा ही उन्माद दिखाया गया। इसके बाद नोआखालीके मुसलिमबहुल क्षेत्रम हिंसाका ताण्डव होने लगा। फिर इस की प्रतिक्रिया बिहारमें हुई, जहाँ नोआखालीकी घटनाएँ दूसरे पक्षके साथ उससे भी बडे पैमानेपर दुहरायी गयी। यदि उग्रहिंसाकी प्रतिशोधात्मक प्रतिक्रियाओंकी यह शृङ्खला समाप्त न की जाती तो भारतको आजादीका स्वप्न हिंसाकी आगमें जलकर भस्म हो जाता। इसी सकटको रोकनेके लिए गाधीजी नोआखालीके उपद्रवग्रस्त क्षेत्राका "पदल यात्रा" पर निकल पडे। वहाँ उन्होने जो कुछ देखा उससे वे सन्न रह गये। वहाँ बहुत बडे पमानेपर अग्निकाण्ड मारकाट, हत्या लूट, बलात्कार, बलात धम परिवतन और कुमारिया एव विवाहिताओंके साथ जबदस्ती विवाहकर लेनकी घटनाएँ बहुत बड पमानपर हुई थी। मीलातक सभी हिन्दू घराको पहले लूटा गया बादमें जला दिया गया था। हिन्दू जनता आतक ग्रस्त थी। कितने घर-बार छोडकर भाग चुके थे और बहुत बडी सख्यामें उनके घर छोडकर निकल पडनेकी आशका हो गयी थी। इससे अनिवायत सारे देशमें उपद्रवकी ज्वालाएँ भडक उठती। आतकको रोकने, जनताको धीरज और हिम्मत बँधाने अपराधी उपद्रवियोके हृदयमें प्रायश्चित्तकी भावना जगानके उद्देश्य, जिससे दोना समुदायोंके लोग फिरसे पूववत भाई भाईकी तरह एक साथ रहने लगें, गाधीजीने अपने दलके प्रत्यक सदस्यको एक बरबाद हुए गाँवमें नियुक्त

किया। दलके प्रत्येक स्त्री और पुरुष सदस्यने यह सङ्कल्प ले लिया था कि जिन लोगोकी रक्षाका भार उन्हें सौपा गया है उनमें किसीका भी बाल बाँका होनेके पहले वे अहिंसक ढगसे अपने जीवनकी बलि चढा देंगे। हममेसे जिन्हे बगला नही आती थी उनके साथ दुभापिये कर दिये गये थे। इसके अतिरिक्त हममेंसे प्रत्येक-को केवल भगवान्के प्रति अटूट आस्थापर आधारित अपने निजी साहसपर निर्भर करना था। इस कार्यके लिए केवल उन्ही लोगोको योग्य समझा गया था, जिन्होंने गाधीजीको यह संतोष दिला दिया था कि वे मरनेसे नही डरते और भयानक-से-भयानक पाशविक अत्याचार करनेवाले उपद्रवियोके विरुद्ध भी क्रोध नही करेंगे और न उनके प्रति किसी तरहकी दुर्भावना ही रखेंगे। गाधीजीने हम सबका व्यक्तिगत रूपसे अलग-अलग यह जाननेके उद्देश्यसे साक्षात्कार किया कि हम अपने कार्यके लिए उपयुक्त है या नही।

जब मेरी बारी आयी तो मैने उनसे साफ-साफ कह दिया कि मैने यहाँ जो कुछ देखा और सुना है उससे मै डरती हूँ किन्तु मै अपने भयपर विजय पानेकी कोशिश करूँगी। गांधीजीने कह रखा था कि यदि किसी स्त्रीकी इज्जतपर खतरा आता हो और वह आत्महत्या कर ले तो वे इसे उचित मानेंगे। मै और दूसरी लडकियोने उनसे आत्महत्या करनेके लिए ऐसे उपयुक्त साधन देनेको कहा जिस-का हमलोग संकटकी स्थितिमे आवश्यकता पडनेपर उपयोग कर सकें। किन्तु उन्होने इसपर यही कहा कि मैं तुम्हे ऐसी कोई चीज नही दे सकता। तुम्हे अपनो रक्षाके लिए अपने आत्मविश्वास और भगवान्पर भरोसा रखना चाहिये। इनके इस दूसरे सवालपर मैने जवाब दिया कि मुसलमानोने यहाँ जो कुछ किया है उसे देखकर मैं क्रोधसे भर उठती हूँ यद्यपि मै यह भी अनुभव करती हूँ कि असली अपराध इन निरीह लोगोका नही है जो केवल दूसरोके हाथके औजार भर है। असली अपराधी तो वे लोग है जिन्होने प्रत्यक्ष काररवाई शुरूकी है और इन लोगोंको उत्तेजित करके ऐसे जघन्य कार्योंमें लगा दिया है। मुझे इसमे सदेह है कि मैं इस परीक्षामे सफल हो सकूंगी या नही। गाधीजी क्षणभर मौन बैठे रहे फिर उन्होने कहा कि तुम किसी बाहरी चौकीपर जा सकती हो। वे इससे सन्तुष्ट हो गये थे कि मै भय और क्रोधपर विजय पानेकी कोशिशकर रही हूँ।

हममेंसे प्रत्येकने अपनी विशिष्ट अभिवृत्ति और योग्यताके अनुरूप सेवा-भावना-से कार्य किया। मैं गाधीजीके शिविरसे दो मील दूर चंगीरगाँव नामक एक छोटेसे गाँवमें नियुक्त थी। वहाँ पहुँचनेपर मैने देखा कि किसी समयका यह समृद्ध गाँव इस समय पूरी तरह बरबाद हो चुका है। चारो ओर जला हुआ धान

बिखरा पड़ा था। घर जला दिये गये थे। मलबोंमेंसे जली हुई टीनकी चद्दरें निकाली गयी और उन्होंने अस्थायी आश्रय आवास बना लिये गये। एक बड़े घरमें केवल एक छोटा-सा कमरा बच रहा था। वही मुझे रहनेके लिए दे दिया गया। उस गाँवमें एक कम्पाउण्डर डाक्टरका काम करता था। वह मेरे पास आया और उसने मुझे अपनी सेवाएँ अर्पित कर दी। यह छोटा-सा घर उसीका था। हथियारबंद उपद्रवियों और गुण्डोंका एक गिरोह उसके दरवाजेपर चढ़ आया था। उन्होंने उसका मकान लूटना शुरू कर दिया और धार्मिक चित्रोंके शीशे तोड़ने और चित्रोंको फाड़ने लगे। तस्वीरके शीशेका एक टुकड़ा छिटककर गिरोहके नेताके पैरमें धँस गया जिससे उसका पैर लहू-लोहान हो गया। इसपर यह वृद्ध चिकित्सक अपनी मुसीबत भूलकर उसे अपने आधे लुटे हुए दवाखानेमें ले गया और बड़ी सावधानीसे उसकी मरहम-पट्टी कर दी। बुराईके बदले भलाईके इस अप्रत्याशित व्यवहारसे चकित होकर गुण्डाके सरदारने उन्हें उसके मकानमें आग न लगानेका आदेश दिया और गुण्डे वहाँसे चले गये। इस तरह उस क्षेत्रमें केवल वही मकान ध्वस्त होनेसे बचा रह गया।

इसी कम्पाउण्डरकी सहायतासे मैंने दोनों सम्प्रदायोंके घायलों और उत्पीड़ितोंकी सेवाका काम शुरू कर दिया। मुसलमानोंके बीच एक अरक्षित हिन्दू लड़कीके रहनेका उदाहरण सामने पाकर हिन्दुओंका धीरज बँधा। डाक्टरी चिकित्सा द्वारा मैं वहाँके मुसलमानोंके निकट सम्पर्कमें आ गयी और एक हदतक मैंने उनका विश्वास भी प्राप्त कर लिया। चंगीर गाँवमें मेरी नियुक्ति २३ नवंबर को हुई थी। गाँवके कुल ७६ परिवारोंमें १९ परिवार ऐसे थे जो कभी गाँव छोड़कर नहीं गये। बचे हुए परिवारोंमेंसे २२ परिवार ८ दिसंबर १९४६ तक वापस आ गये थे। बाकी जितने दिनोंतक मैं वहाँ रही वहाँ कोई दुर्घटना नहीं हुई।

नोआखालीसे गांधीजी बिहार गये जहाँ साम्प्रदायिक उन्मादके शिकार मुसलमान थे। वहाँ भी गांधीजी बहुसंख्यक हिन्दुओंमें प्रायश्चित्तकी भावना जगानेके उसी उद्देश्यसे गये जिस उद्देश्यसे वे बहुसंख्यक मुसलमानोंके बीच नोआखाली गये थे। बिहारसे भारतके मनोनीत वाइसराय लार्ड माउण्ट बेटनने उन्हें दिल्ली बुला लिया।

अगस्त, १९४७ के प्रथम सप्ताहमें गांधीजी कश्मीरसे लौटते समय रास्तेमें रावलपिण्डी जिलेके वाह शिविरमें आये। वाह शिविरमें १५ हजार हिन्दू और सिख शरणार्थी थे। उन्हें साम्प्रदायिक उपद्रवके बाद पासके गाँवसे हटाकर इस शिविरमें लाया गया था। उनमें बड़ी बेचैनी व्याप्त थी। कांग्रेस और मुस्लिम

लीग दोनोने लार्ड माउण्ट बैटनका देश-विभाजनका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया था। वाहके शरणार्थियोका विश्वास था कि वे १५ अगस्तको पाकिस्तान बन जानेके बाद वहाँ सुरक्षित न रह सकेगे। वे यह चाहते थे कि महात्माजी उनके साथ उस समयतक रहे जबतक उन्हे सुरक्षित रूपमे भारत न भेज दिया जाय। गाधीजीने उनसे कहा कि मै नोआखालीके लोगोको यह वचन दे चुका हूँ कि मै फिर उनके पास आ जाऊँगा अतएव मे यहाँ अधिक समयतक नही ठहर सकता, किन्तु मै अपनी जगहपर सुशीला नायरको यहाँ छोड जाता हूँ जो मेरी पुत्रीके समान है। वह इससे पहले कि आपपर किसी तरहकी आँच आये, अपना जान दे देगी।

मै वाह शिविरमे इस विश्वासके साथ रह गयी कि हिन्दू और सिखोका पाकिस्तान छोडकर भागना अनुचित है। मुसलमानोको इस उद्देश्यसे प्रभावित करनेके लिए कि वे हिन्दुओको जान-मालकी सुरक्षाकी गारंटी दें मै उन क्षेत्रोमे गयी जहाँसे ये लोग भागकर आये थे। एक गाँवके मुसलिम जमीदारने अल्प-संख्यक सम्प्रदायके लोगोको संरक्षण प्रदान कर रखा था। मुसलमानोने मुझसे बार-बार कहा कि "यहाँ केवल तीन हत्याएँ हुई है और कुछ थोडेसे हिन्दुओके घर जला दिये गये है। यदि हिन्दू यहाँ वापस आ जायँ तो हम उनका स्वागत करेगे।" किन्तु मुझे सन्देह बना हुआ था। ऐसी स्थितिमे मेरी समझमे नही आ रहा था कि मे वाह शिविरके लोगोको क्या कहूँ। डिप्टी कमिश्नरने मेरे पास आकर मुझे यह आश्वासन दिया कि शरणार्थी पूरी तरह सुरक्षित रहेगे और शीघ्र ही उनके पुनर्वासकी व्यवस्था कर दी जायगी। मैने वहाँ रहकर उचित समय-की प्रतीक्षा करनेका ही निश्चय किया।

तभी वह घटना घटी जिसकी आशा नही थी। समाचार मिला कि पूर्वी पंजाबका गैरमुसलिम बहुसंख्यक क्षेत्र रावलपिण्डीका बदला ले रहा है। इस समाचारके मिलते ही पूर्वी पंजाबका बदला लेनेके लिए पूरा पश्चिमी पंजाब प्रति-शोधकी अग्निमे जलने लगा। हमारे चारो ओरके क्षेत्रोसे साम्प्रदायिक उन्मादके शिकार घायल व्यक्तियोका शिविरके अस्पतालमे ताँता लग गया। इनमे एक १७ सालकी युवती थी। यह उन ७४ स्त्रियोमे अकेली बची थी जो अपनी इज्जत बचानेके लिए एक कुएँमें डूब मरी थी। उसके पिता सरदार प्रताप सिंह उसके पहले ही शिविरमे आ चुके थे। गोली लगनेसे उनकी एक टाग टूट गयी थी। उन्होने अपने साथियोके साथ, जिस समय उनके गाँवपर उपद्रवियोने हमला किया था, उनका सशस्त्र प्रतिरोध किया था और इस मुकाबलेमे उनके नेता तथा कई

साथी घायल हुए और कुछ मर भी गये। बचे हुए लोगोसे कहा गया कि या तो वे इस्लाम स्वीकार कर लें या तत्काल मरनेके लिए तैयार हो जायें। उन्होन अपना निर्णय बतानेके लिए अगले दिनतकका समय मांगा।

शिविरसे सटी हुई एक सीमेंट फैक्टरी थी। कहा जाता था कि दुनियाकी सबसे बडी फक्टरियोमे यह एक ह। म इसे देखने गयी थी। जब म वहाँसे लौटनेको हुई तो फक्टरीके डाक्टरने मुझे अपने घरपर बुला लिया। वे बगाली थे। घरमें एक दो वर्षकी प्यारी-सी बच्ची खेल रही थी। डाक्टरने कहा कि वह बच्ची मेरी गोद ली हुई लडकी है। वह पजाबी ह। उसकी माँ अस्पतालमें उसे जन्म देनेके बाद ही मर गयी और पिताने उसकी कोई खोज-खबर न ली। अत म और मेरी पत्नीने उसे गोद ले लिया। वह हमारे लिए प्राणोंसे भी प्यारी ह। एका एक डाक्टरकी आवाज आशकासे कॉपने लगी। वे कहने लगे "पिछले हफ्तेमे मुझे बराबर इसका भय बना हुआ ह कि कही किमी दिन मुझे घर वापस आन पर वह बच्ची न मिले। उपद्रवी किसी समय भी घरमें घुसकर उसे या तो उठा ले जायगे या मार डालेंगे। मन उनका प्रतिवाद करते हुए कहा 'आप नाहक इतना चिंतित होते हैं। ऐसा कौन होगा जो इतनी प्यारी बच्चीपर हाथ छोडेगा। फिर फैक्टरीमे सुरक्षाका मुकम्मल इन्तजाम ह।" डाक्टरने जवाब दिया आप ठीक कहती ह किन्तु अभी दो दिना पहले ही मेरे घरके ठीक सामने जिस समय फक्टरीका एक हिन्दू ठेलेपर सीमट ले जा रहा था उसकी हत्या कर दी गयी। हत्यारने पीछसे उस छुरा भोक दिया। चारो ओर आदमी-ही-आदमी थे किन्तु किसीको उसे रोकनेकी हिम्मत नही हुई। वह भाग गया। सभवत वह यही कही होगा। ऐसी हालतम किसीको सुरक्षाका क्या विश्वास हो सकता ह? क्या आप मेरी पत्नी और बच्चीको किसी सुरक्षित स्थानपर भेज देनेकी व्यवस्था नही कर सकती? उनके स्वरमें विनतीकी भावना भरी हुई थी। म इससे विचलित हो उठी। उस छोटी-सी बच्चीको इन सब बातोंसे कोई मतलब न था। वह आनन्दसे कुत्तेके साथ खेल रही थी। यह मानकर ही कि कोई ऐसी भोली भाली बच्चीकी भी जान ले सकता ह मेरा मन न जाने कैसा हो गया। मन यथाशीघ्र उनकी पत्नी और बच्चीको वहाँसे हटा देनेका इन्तजाम करनेका वचन दे दिया।

दो दिनों बाद ही मैं फिर डाक्टरके पास गयी और उन्हें सूचित किया कि व कल ही अपनी पत्नी और बच्चीको भेज सकते हैं क्योंकि इसके लिए सारी आव श्यक व्यवस्था कर ली गया ह। उनका चेहरा खुशीसे चमक उठा। उनकी पत्नी इस विचारसे थोडा बेचन थी कि वे अपने पतिको छोडकर अकेले कैसे जायेंगी।

डाक्टरने मुझसे कहा . "आपको भी इन लोगोके साथ चला जाना चाहिए। यह स्थान अव वड़ा ही अरक्षित हो गया है।" मैने इस सुझावके लिए उन्हे धन्यवाद देते हुए वताया कि मै यहाँसे क्यो नही हट सकती। मुझे गाधीजीने यहाँ जिस कार्यके लिए नियुक्त किया है मुझे उसे पूरा करना है। वे वार-वार इस वातपर जोर देने लगे कि मुझे यहाँसे तुरन्त चला जाना चाहिए क्योकि यह जगह वहुत ही खतरनाक हो गयी है। यहाँ रहकर जिंदगीको खतरेमे डालना किसी तरह ठीक नही है। लेकिन मैने उन्हे फिर यही जवाव दिया कि, "मै किसी हालतमें यहाँसे नही जा सकती। आप कृपया मेरी चिन्ता न करे। जवतक मेरा वक्त पूरा नही हो जाता मैं सव जगह सुरक्षित ही रहूँगी और जिस समय मेरा वक्त पूरा हो जायगा मेरे लिए कही भी सुरक्षा नही रहेगी।" यह कहकर मै वहाँसे चली आयी। वे कुछ ही घण्टो वाद मुझसे मिलने आये। ऐसा लगता था कि मेरे शव्दो और उन्हे कहनेके मेरे ढंगसे वे अवश्य ही कुछ प्रभावित हो गये थे। मेरी वातोने उनका दिल छू दिया था। जिस समय वे मेरे सामने आकर खडे हुए उनके चेहरेपर एक नयी आभा झलक रही थी। वोले "आपने मेरी पत्नी और वच्चीको यहाँसे हटानेकी जो व्यवस्था की है उसके लिए आपको धन्यवाद। किन्तु अव मैने यह निश्चय कर लिया है कि वे यहाँसे नही जायँगे। यदि यह स्थान आपके लिए सुर-क्षित हो सकता है तो उनके लिए भी सुरक्षित है।" यह कहते हुए उनकी आँखो-मे आँसू छलछला आये। मेरा हृदय भगवान् और वापूके प्रति कृतज्ञतासे भर उठा। मै सोचने लगी, "उन्होने हमारे जैसे नाचीज लोगोमे भी थोडेसे विश्वास और साहसका वीज डाल दिया है जो इसी तरहकी अनुभूतियाँ दूसरोमे भी जगा सकता है।"

अन्तमें वाह शिविरके शरणार्थियोको भारत लाना पडा और मै गाधीजीके पास वापस आ गयी। नोआखाली जाते समय उन्हे कलकत्तामें रुकना पड़ा था क्योकि वहाँ साम्प्रदायिक उपद्रवकी भयानक ज्वाला भड़क उठी थी। मेरे वहाँ पहुँचनेके थोड़ी देर पहले ही उन्होने नगरमे व्याप्त साम्प्रदायिक उन्मादके विरुद्ध किया गया अपना सफल अनशन भंग किया था। कलकत्तामे उन्हे जो शानदार सफलता मिली थी उसकी प्रशंसा करते हुए लार्ड माउण्ट वैटनने सार्वजनिकरूपसे कहा था कि, "गाधीजी अकेले ही सीमा-रक्षक-सेनाके समान है। उन्होने कल-कत्तामे वह काम कर डाला है जिसे करनेके लिए पंजावमें ५५ हजार सैनिक लगाये गये थे।"

कलकत्तासे हम दिल्ली वापस आये। उस समय दिल्ली "मुर्दोंका शहर" वन

घुसी थी। पुराना किला और हुमायूँ मकबरा — ये दो बड़े शरणार्थी शिविर कायम किये गये थे जहाँ पाकिस्तान जानेवाले मुसलमान शरणार्थी भारी संख्या में लाकर रखे गये थे। १३ सितंबर १९४७ को गांधीजी पुराने किलास्थित मुस्लिम शरणार्थी शिविर गये। यहाँ करीब ७५ हजार मुस्लिम शरणार्थी थे जो पाकिस्तान भेजे जानेकी इन्तजारी कर रहे थे। शिविरमें तमाम मुस्लिम लीगी भरे हुए थे जो सारी गड़बड़ी और शरारत करते थे" और उन शरणार्थियोंके 'नेता' बापूका दम भर रहे थे। ये अपने बन्धु शरणार्थियोंकी यही सेवा कर रहे थे कि उनके लिए राशनकी जो व्यवस्था हुई थी उसे बीच ही में उड़ा देते थे जिसके फलस्वरूप करीब दस हजार शरणार्थियोंको रोज आधपेट खाकर ही रहना पड़ रहा था। ऐसा कहा जाता था कि कुछ ऐसे मुसलमान पुलिसवाले भी जो अपने हरबा-हथियारोंके साथ भाग आये थे इन्हीं शरणार्थियोंमें घुस गये हैं। इससे इस जगहको खास खतरनाक समझा जाता था।

ज्योंही गांधीजीकी कार दरवाजेके अन्दर घुसी शरणार्थियोंकी भीड़ अपने शिविरोंसे टूट पड़ी और उसने उनकी कारको घेर लेनेकी कोशिश की। वे दुर्भावना और क्रोधसे उबल रहे थे और गांधीविरोधी नारे लगा रहे थे। आवेशमें एक आदमी झपटकर गांधीजीके कारका दरवाजा जबरदस्ती खोलने लगा। गांधीजीका एक दोस्त, जो उन्हें उस शिविरतक ले आया था आतंकित हो उठा और उसने ड्राइवरसे उनकी कारको जल्दीसे सबसे पासके दरवाजेसे शिविरके बाहर निकाल ले जानेको कहा। ड्राइवरने एक्सेलरेटर दबाया और कार तेजीसे आगे बढ़ गयी किन्तु गांधीजीने उसे फौरन गाड़ी रोक देनेको कहा। वे क्रुद्ध भीड़का सामना करना चाहते थे। कारके रुकते ही शरणार्थी दौड़ते हुए उसके पास पहुँच गये और उसे चारों तरफसे घेर लिया। मैं और उनके अन्य साथी अभी लाचारीसे उनकी ओर देख ही रहे थे कि गांधीजी कारसे उतर पड़े। भीड़ने हमें चारों ओरसे बुरी तरह दबा दिया। गांधीजीने उन्हें सामनेके घासके मैदानमें चलनेको कहा। कुछ लोग वहाँ जाकर बैठ गये। बाकी लोग क्रोधसे उफनते हुए उनके चारों ओर खड़े रहे। वे तरह-तरहके ऐसे इशारे कर रहे थे जिससे लगता था कि वे हमला कर देनेके लिए उतावले हो रहे हों।

ये बड़े ही संकट और बेचैनीके क्षण थे। गांधीजीकी दुर्बल और धीमी आवाज दूरतक नहीं पहुँच पाती थी। उन्होंने अपने एक साथीके कंधेका सहारा लेकर उससे अपने शब्दोंको पूरे जोरसे चिल्लाकर दुहरानेको कहा। पहले तो शरणार्थियोंका रुख बहुत उग्र और कठोर था। जब गांधीजीने कहा कि, "ईश्वर सबके लिए

एक ही है—मै हिन्दू, मुसलमान, ईसाई और सिखोमे कोई अन्तर नही मानता। वे सब मेरे लिए एक जैसे है"—क्रुद्ध प्रतिवादके नारे लगने लगे। गाधीजीने उनसे शान्त रहने और क्रोध तथा भयको त्याग देनेकी प्रार्थना की और कहा कि, "हम सबका अन्तिम शरण ईश्वर ही है, कोई मनुष्य नही फिर चाहे वह कितना ही ताकतवर क्यो न हो। मनुष्यने जो कुछ विगाड रखा है उसे ईश्वर ही बनायेगा। जहाँतक मेरा सवाल है मै यहाँ करने या मरने आया हूँ।"

गाधीजीके शब्दोमे कोई नयी वात नही थी किन्तु उन्होने उन शब्दोके पीछे जो भावावेग था उसे सुना और उनके मुरझाये हुए चेहरे पर अंकित गंभीर व्यथा और उदासीको पढा। उन्हे यह महसूस हुआ कि गांधीजी हमारे दु.खसे किस तरह व्यथित हो उठे है और हमारी पीडा किस तरह शूल बनकर उनके हृदयमे चुभ रही है। शीघ्र ही सारा शोरगुल बंद हो गया। कुछ लोगोके आँखोसे आँसू बहने लगे। वे भरे हुए गलेसे उन्हे अपनी कष्ट-गाथा सुनाने लगे। उन्होने उनकी सारी बातें गंभीर सहानुभूति से सुनी और उनसे वादा किया कि वे उनकी सहायताके लिए अपनी शक्तिभर कुछ न उठा रखेगे। जो लोग कुछ ही क्षणो पूर्व उनके खूनके प्यासे हो रहे थे, उनके दोस्त बन गये। वे उन्हे बडे आदरसे कारतक ले गये और जिस समय उनकी गाडी शिविरसे गुजरने लगी वे वहीपर चुपचाप खडे रहे। गाधीजी कारकी पिछली सीटपर बैठे हुए हाथ जोडकर उनसे विदा ले रहे थे और उनके चेहरेपर घोर कष्टकी रेखाएँ उभर आयी थी।

शरणार्थियोने उनसे अपने शिविरमे डाक्टरी चिकित्सा व्यवस्थाके अभावकी शिकायत की थी। गाधीजीने मुझे दूसरे ही दिनसे वहाँ जानेका आदेश दिया। अनेक लोगोने मुझे वहाँ जानेसे मना किया और गाधीजीको सलाह दी कि वे मुझे पूरन किला न भेजें क्योकि वहाँकी हालत बहुत ही खराव है। उन्होने गाधीजीसे यह भी कहा कि यदि वे मुझे वहाँ भेजना ही चाहते है तो पर्याप्त पुलिस-संरक्षणमे भेजे। बापूने जवाब दिया कि, "यही उसे मरवा डालनेका सबसे अच्छा तरीका होगा।" आखिर मै अकेले ही गयी और मेरा वहाँ स्वागत हुआ। शरणार्थियोंमे मुझे अपने कालेजके दो-एक पुराने दोस्त भी मिल गये। वे मेरे सेवा-कार्यमे शामिल हो गये। बादमे मैने हिन्दू शरणार्थियोके बीच भी सेवा-कार्य किया। मैने देखा कि जो लोग स्वय साम्प्रदायिक उपद्रवो द्वारा उत्पीडित हुए थे उनमे सामान्यत प्रतिशोधकी भावना नही थी किन्तु जिन लोगोने अपने सहधर्मियोके कष्टोकी केवल कहानियाँ सुन रखी थी वे ही सबसे अधिक उत्तेजित और हिंसक हो उठे थे। ऐसे लोग ही आँखके बदले आँख निकाल लेने और दाँतके बदले दाँत

उखाड़ लेनेके लिए उतावले हो रहे थे। यह एक ऐसा तथ्य था जिससे मैं अत्यधिक प्रभावित हुई थी।

गांधीजीको हिंसाके खतरसे उतना दुःख नही होता था जितना असत्यके खतर से। दिल्लीके हिंदू नेता हिंदुओके गलत कामोकी रिपोट बहुत कुछ दबा देते थे और उनके अपेक्षाकृत बडे अत्याचारोको भी छोटा करके दिखाते थे जबकि मुसल मान नेता इन्ही बातोंको बहुत बढा चढ़ाकर पेश करत और उसपर काफी रग चढा दिया करते थे। ऐसी स्थितिमें उन्हें सत्यका पता आखिर कस चलता? और जब धूठका ऐसा वातावरण बन गया हो तो समझौतेकी क्या सभावना हो सकती ह? अत १३ जनवरी, १९४८ को उ होने स्वय अपनेको और अपने चारो ओरके वातावरणको पवित्र करनेके लिए अपना अतिम अनशन शुरू किया। अनशनके पहले ही दिन पश्चिमी पाकिस्तानके शरणार्थियोकी क्रुद्ध भीड जुलूस बनाकर आयी और नारे लगाने लगी—"गांधीको मरने दो। हमें रहनेको घर दो।" दिल्लीमें जनवरीमें कड़ाकेकी सर्दी पडती ह। निराश्रित हिंदू शरणार्थी इस बातपर क्रुद्ध हो उठे थे कि ऐसी सर्दियोमें यदि वे मुसलमान उद्वासितोंके खाली पडे मकानो, मसजिदो आदि पर कब्जा करके रह रहे ह तो गाधीजी इस पर क्यो आपत्ति कर रहे ह किन्तु गाधीजीको यह दढ विश्वास हो गया था कि यदि इसे मान लिया गया तो मुसलमानोंको उनके घरोंसे बाहर निकालकर उस पर कब्जाकर लेनेकी प्रक्रियाका कभी अन्त न होगा। वे महीनोंसे आधापेट ही भोजन कर रहे थे। अनशनके तीसरे ही दिन उनकी हालत खराब हो गयी। उनके पेशाबसे एसीटोन जाने लगा और वे बहुत कमजोर हो गये। मने उनसे अनुरोध किया कि यदि उन्हें आपत्ति न हो तो, जैसा कि सन् १९४३ में आगाखाँ के महलमें अनशन करते समय आगे चलकर किया गया था, उनके जलमें थोडा सा नारगीका रस भी मिला दिया जाया करे किन्तु इससे उन्होने साफ इनकार कर दिया और कहा कि, 'उस अनशनकी बात दूसरी थी। उस समय मैं अपने सामर्थ्यके अनुसार अनशन कर रहा था किन्तु यदि यह सारा पागलपन बद नही होता तो मै यह अनशन प्राणान्ततक जारी रखूँगा। यह मेरे निष्ठाकी परीक्षा है। यदि ईश्वरमें मेरी पूण निष्ठा ह तो पेशाबमे एसीटोन जाना स्वय बद हो जायगा।" इसपर मैंने रसायन और शरीर विज्ञानपर एक लम्बा प्रवचन देते हुए उन्हें यह समझानेका प्रयास किया कि अनशन करनवाले व्यक्तिके शरीर-सस्थानमें किस तरह एसीटोन पैदा होने लगता ह और कहा कि आखिर अनशनकालमें कोशिका स्थित चर्बीके प्रदाहकी प्रक्रियाका ईश्वर निष्ठास कस बदला जा सकता ह? उन्होंने

मेरी सारी बातें धैर्यपूर्वक सुनी फिर असीम विषाद और सहानुभूतिके साथ बोले, "क्या तुम्हारा विज्ञान सर्वज्ञ है?" इसके बाद वे थोड़ी देर रुके और मैं मौन बनी रही, फिर कहने लगे, "क्या तुम भगवद्गीतामे भगवान्‌के उन वाक्योको भूल गयी हो जिनमें उन्होने कहा है कि मैं अपनी सत्ताके अंशमात्रसे इस सारी सृष्टिमे व्याप्त हूँ और उसे धारण कर रहा हूँ—"एकांशेन स्थितो जगत्?"

बोलनेके आयाससे वे बिलकुल थक गये थे जिससे सुस्त होकर लेट गये। मै गहरी चिन्तामे डूब गयी किन्तु शीघ्र उनके दर्शनके लिए शरणार्थियोकी भीडके आ जानेसे मेरा ध्यान भंग हो गया। शरणार्थियोकी आँखोसे आँसू बह रहे थे। उन्होने गाधीजीसे अपना अनशन त्याग देनेकी प्रार्थना करते हुए कहा कि वे उनके हर तरहके निर्णयोको मानेगे। अगले दिन गाधीजीके अनशनका पाँचवाँ दिन था। उसी दिन जब सभी वर्गोके प्रतिनिधियो द्वारा गाधीजीकी सारी शर्ते स्वीकार कर ली गयी और हिन्दुओ तथा मुसलमानो दोनोने अपने हस्ताक्षरोसे उन्हे लिखित आश्वासन दे दिये उन्होने अपना अनशन समाप्त किया।

कुछ दिनो बाद मदनलाल नामक एक पागल हिन्दूने गाधीजीकी प्रार्थना-सभामे बम फेंका। इससे सभामे खलबली मच गयी। इसपर गाधीजीने श्रोताओ-की तीव्र भर्त्सना करते हुए कहा कि, "आप डरते क्यो है? प्रार्थना करते हुए मर जानेसे अच्छी बात और क्या हो सकती है?" किन्तु इसके साथ ही उन्होने यह भी कहा कि उन्हे ऐसा उपदेश देनेका कोई अधिकार नही है। वे यह कैसे जान सकते है कि भगवान्‌का नाम लेते हुए और हृदयमे घृणाका कोई भाव न रखते हुए वे स्वयं भी हत्यारेकी गोलीका सामना कर सकते है? आखिर ३० जनवरीको इसकी परीक्षा हो ही गयी। ऐसा लगता है कि अपनी पहलेकी उस सभामे ही, जिसमे बम फेंका गया था, गाधीजीने अपनी इस भूमिकाका पूर्वाभ्यास कर लिया था। इससे सारा भारत हिल उठा। इससे पाकिस्तान हिल उठा। इसने सारी दुनियाको हिला दिया। मुसलिम लीगी नेता मियाँ इफ्तिखारुद्दीनने, जिस समय हम दोनो लाहौरसे पालम हवाई अड्डे पर उतरे, आँखोमे आँसू भरकर कहा कि, "बापूका हत्यारा केवल वह व्यक्ति नही है जिसने उन्हे मारनेके लिए अपनी पिस्तौलका घोड़ा दबा दिया था। हम सभी लोग, जिन्होने उनके शब्दोपर सदेह किया है और उनकी सलाहके अनुसार काम नही किया है, अपराधी है।"

और ये ही वे शब्द है जिन्हे गाधी जन्मशतीके सन्दर्भमे जिस समय धर्म, क्षेत्रीयता और जातिके नामपर सर्वत्र हिंसाकी ज्वालाएँ फिरसे भड़कने लगी है और क्षुद्र स्वार्थकी भावना उन सभी मूल्योको समाप्त करनेपर उतारू हो गयी है

जिनके लिये राष्ट्रपिता जीये और मरे थे हमें बार-बार याद करते हुए हृदयगत करना है।

---

१ नीचे मेरी डायरीका वह अंश दिया जा रहा है जिसे मैंने बाह शिविरमें रहते समय शरणार्थियोंसे प्रत्यक्ष सुनकर अंकित किया था

दूसरे दिन सुबह उनको कैदकर रखनेवाले उपद्रवी उनके बाल काट देने और दाढ़ी बना देनेके लिए कैंची और अस्तुरेके साथ तैयार थे। यही उनके इस्लाममें परिवर्तितकर लिये जानेका प्रतीक था। उपद्रवियोंकी भीड़में कुछ लोग बड़े ही गन्दे तरीकेसे चिल्ला चिल्लाकर यह चर्चा कर रहे थे कि उनमेंसे कौन कौन व्यक्ति किन खास खास स्त्रियोंको अपने पास रखेंगे। स्त्रियोंने उनकी यह चर्चा सुनी। उन्हें इस्लाम कबूल करनेके लिए बाहर निकल आनेका आदेश मिला। उन तमाम स्त्रियोंकी तरफसे बोलती हुई एक वृद्धाने उपद्रवियोंसे अनुरोध किया कि 'तुम लोग हमें आत्म समर्पण करनेके पहले आखिरी बार प्रार्थना कर लेने दो और गुरुद्वारेमें अभी हालमें बने कुएँका पानी पी लेनेकी इजाजत दे दो।' यह प्रार्थना स्वीकार कर ली गयी। उन्हें कुछ मिनटोंका समय दे दिया गया। इसके बाद चौहत्तर स्त्रियाँ और लड़कियाँ उस अहातेमें गयीं जहाँ कुआँ था। उन्होंने धार्मिक स्नानकी रस्म पूरीकी और प्रार्थना करने लगीं। इसी बीच उपद्रवी मुसलमानोंने बेसब्रीसे चिल्लाकर जल्दी करनेका हुक्म दिया। इसपर उन स्त्रियोंकी नेत्रीने उन्हें जोरसे चिल्लाकर आवाज दी 'हिम्मत हो तो चले आओ। तुम हमें जिंदा नहीं पा सकते।' इतना कहते ही वे तुरन्त कुएँमें कूद पड़ी और देखते-देखते उनके साथकी तमाम औरतें भी उसी कुएँमें समा गयीं। आत्मबलिदानकी इस शौर्यपूर्ण घटनासे वे गुण्डे ऐसे हतप्रभ हो गये कि उनके पैर मानो वहीं जमीनमें गड़े रह गये। थोड़ी देर बाद वे सिर झुकाये एक-एक करके वहाँसे विदा हो गये। उन्होंने जिन पुरुषों और बच्चोंको बलात् धर्म परिवर्तनके लिए जमाकर रखा था उन्हें वहींका वहीं अछूता छोड़ दिया। इसके बाद सिखोंने अहातेमें जाकर कुएँसे डूबी हुई स्त्रियोंकी लाशें निकालीं। सरदार प्रताप सिंहकी पुत्रीको छोड़कर वे सभी स्त्रियाँ मर चुकी थीं। उसी रात मुसलमानोंकी एक दूसरी भीड़ने भी उनपर हमला किया किन्तु सैनिकोंकी गश्ती टुकड़ीके आ जानेसे उनकी जानें बच गयीं और उन्हें वाह शिविरमें पहुँचा दिया गया।'

जब मैंने बादमें गांधीजीसे यह कहानी कही तो उनकी आँखोंमें आँसू आ गये। वे बोले 'अहिंसक साहस कभी बेकार नहीं जाता। जब मनुष्यकी विपत्तियाँ सीमा पार कर जाती है तो भगवान् उनका उद्धार ऐसे रूपमें कर देता है जिसकी कभी कोई कल्पना भी नहीं की जा सकती।'

एल० बी० पियर्सन

गांधी और हमारा युग

जब गाधीकी हत्या हुई थी और उनकी इस नृशस हत्यासे, जो उनके जैसे महान् शान्तिपूर्ण व्यक्तिके लिए बिलकुल बेमेल थी, भारत और सारा ससार स्तब्ध रह गया था प्रधान मन्त्री नेहरूने राष्ट्रको सबोधन करते हुए कहा था :

> प्रकाश बुझ गया है किन्तु मेरा यह कहना गलत है क्योकि जो प्रकाश इस देशमे जला था वह कोई साधारण प्रकाश नही था। जो प्रकाश इस देशको इन अनेक वर्षोसे आलोकित करता रहा है वह इस देशको अभी अनेक वर्षोतक आलोकित करता रहेगा और हजार वर्षोके बाद भी वह इस देशमे दिखाई देता रहेगा, और संसार उसे देखेगा तथा वह असख्य हृदयोको सान्त्वना देता रहेगा।

इन शब्दोमें मनुष्यमात्रके लिए गाधीके सदेशका साराश निहित है, उनकी सत्ताका मूल तत्त्व निहित है—वह तत्त्व यही है कि एक प्रकाशका उदय हुआ था, पहले इसे उनके देशवासियोने देखा और फिर सारे ससारने देखा। वह प्रकाश उस समयमे भी और आज भी सभी प्रकारकी विचारधाराओ और हर तरहकी गुजरती हुई प्रचलित मान्यताओ और फैशनोका अतिक्रमण करता जा रहा है। यह प्रकाश एक शान्तिसंस्थापक व्यक्तिका प्रकाश है, सभी प्राणियोके प्रति सद्भावना रखनेवाले, उनकी देखभाल करनेवाले दयालु व्यक्तिका प्रकाश है। यह उस व्यक्तिका प्रकाश है जो राष्ट्रोकी दृष्टि उनके अपने सर्वोत्कृष्ट स्वरूपकी ओर उठा देता है और अपनी आत्माकी प्रदीप्तिसे एक ऐसे संकीर्ण पथको आलोकित कर देता है जिसपर चलकर हम अपनी दृष्टिसे परे रहनेवाली संभावनाका प्रकाश देखने लगते है।

ये सारी चीजें मर्त्य प्राणियो द्वारा ही इसी ससारमें प्राप्त की जा सकती है। यह सोचनेकी जरूरत नही है कि हमें इस ससारकी अपेक्षा श्रेष्ठतर

किसी अन्य ससारके लिए प्रतीक्षा करनी होगी । कुछ थोन्स चुने हुए लोगाका ऐसा छोटा-सा समूह बराबर इस ससारमें कायम रहा ह जो प्राचीनकालसे ही विभिन राष्ट्रो और मानव-जातिको अपनी सत्ता और कर्मोंके औचित्यसे ही प्रभावित करता आया हं । गाधीके समान ही लिंकनने भी एक राष्ट्रका कायाकल्प कर दिया था और आज भी उनकी आत्मा उन सभा लोगाको लज्जित करनके लिए अमर ह जो उनके आदर्शोंकी उपेक्षा करत ह । लिंकन भी गाधीकी ही तरह दुनियाको प्रभावित किया था और आज भी दुनिया उनके विचारो और उनकी सत्तासे आलोकित ह । हम गाधीवादी आदर्शोंकी बात उसी रूपमें करते ह जिस रूपम पेरिक्लीज एथेंसकी चर्चा करते ह—व्यक्तिका नाम एक विचारको एक नवयुगको आलोकित कर देता ह ।

लिंकन और गाधी दोनोंने अपने देशकी जनताकी कल्पना एक ऐस नगरके रूपमें की थी जो किसी पहाडी पर स्थित हो जिसकी ओर आँखें उठायी जा सकें और जहां समस्त मानवता की अन्तश्चेतनाका स्रोत स्थापित रह सके । इसीतरह उनके देशकी जनताने उनकी कल्पना सम्भाव्यताके सजीव एव सप्राण प्रतीकोंके रूपम की थी । गाधीकी मृत्युपर आइन्स्टीनने कहा था

> हमारे युगमें राजनीतिक क्षेत्रम उच्चतर मानवीय सबधके लिए प्रयास करनेवाले वे ही एकमात्र राजनेता थे ।

इस तरह महात्मागाधीने अपना जीवनयापन केवल भारतके निर्णायक सकट कालमें नही बल्कि सारे ससारके लिए निर्णायक कालमें किया था । यह असदिग्ध रूपसे कहा जा सकता ह कि अपने विचाराकी शक्तिसे गाधी सयुक्तराष्ट्रसघके ही नही अपितु हमारे समयके जटिल ससारमे भी विवेक गाभीय, स्वच्छता और शान्तिपूर्ण व्यवस्थाकी सभावनाओके जनक थे । गाधीकी मृत्युपर सयुक्तराष्ट्रसघमें फिलिप नोएल बेकरने उनकी प्रशस्तिमें कहा था कि 'व सबसे गरीब सबसे एकाकी और असहाय एव बरबाद हुए लोगाके मित्र थे । उनकी महान उपलब्धियाँ अभी भी भविष्य गभमें छिपी ह । निश्चय ही सयुक्तराष्ट्रसघका अन्तिम तात्पय मानवमात्रकी आशा प्रदान करना ह । यही गाधोके जीवनका भी तात्पय था । उनके लिए आशाका सूत्र अटूट था क्योकि व न केवल सत्य, दयालुता, आत्मबलिदान, विनम्रता, सेवा और अहिंसाके सिद्धान्तोंमें ही अपितु अपने बन्धुजनोंमें तथा उनकी महानताकी सम्भावनाओंमें भी गभीर विश्वास रखते थे और वे अपने इसी विश्वासके लिए अपने ढगसे सघष करनेको भी प्रस्तुत रहते थे । उन्होंने कहा था

एल० वी० पियर्सन

मैं ऐसा पैदाइशी योद्धा हूँ जिसके लिए विफलता नामकी कोई चीज ही नही है 'क्योकि मानवता एक समुद्र है। यदि समुद्रकी कुछ बूँदें गंदी हैं तो इससे सारा समुद्र गंदा नही हो जाता।

यह सबसे महत्त्वपूर्ण बात है और इसे हमेशा याद रखना चाहिए कि गाधी जिस तरह ऊँचे आदर्शोवाले व्यक्ति थे उसी तरह वे बडे ही व्यावहारिक और कर्मठ व्यक्ति भी थे। उनमे इन दोनो तत्त्वोका सम्मिलन हो गया था जिससे उनकी शक्ति अमाप्य हो गयी थी। अपने विचारोके ठोस प्रयोगसे वे आन्तरिक शान्ति प्राप्त करते थे। इस तरह वे संयुक्तराष्ट्रसंघके विचारके प्रत्यक्ष पुरोधा थे। संयुक्तराष्ट्रसंघ किसी विचारकी सर्वातिशायिनी शक्तिके विना अपनेको कायम रखनेकी आशा नही कर सकता। यदि गाधी न रहे होते तो संयुक्तराष्ट्रसघ उतना समृद्ध न होता। गाधीने कहा था कि, "यदि इस दुनियाको एक नही होना है तो मैं इसमें नही रहना चाहता।" उन्होने इस लक्ष्यकी प्राप्तिके लिए हमारा मार्ग दर्शन किया है। साम्प्रदायिक हिंसाको रोकनेके लिए किये गये अपने अन्तिम महान् अनशनकी समाप्ति पर, जो ठीक उनकी हत्याके पूर्व ही हुआ था— उन्होने जिस मन्त्रका उच्च स्वरसे उच्चारण करनेका आदेश दिया था वह समस्त मानव-जातिके लिए भी उनका संदेश वन सकता है

असतो मा सद्गमय
तमसो मा ज्योतिर्गमय।

फादर डोमिनिक पायर

गांधी सन् २००० में

मैंने अपने दफ्तरके कार्यालयमें गांधीका एक चित्र लगा रखा है। इस चित्रमें उन्हें एक कुष्ठरोगी पर विनम्रतापूर्वक झुका हुआ और उसकी सेवा सुश्रूषामें लगा हुआ दिखाया गया है। मैं इस चित्रमें जिस गांधीको देखता हूँ वह एक ऐसा व्यक्ति है जिसे मैं समझ पाता हूँ। ऐसा लगता है कि मैं उनके बहुत करीब हूँ। द्वितीय विश्वयुद्धके बाद जब चारों ओर शरणार्थियोंकी भरमार हो गयी थी मैंने अपने अत्यन्त सीमित साधनों द्वारा ही अपनी पूरी शक्ति उनकी सहायतामें लगा दी जिससे उनकी जड़ें फिरसे अच्छी तरह जम जायें (शरणार्थी = उन्मूलित)।

पहले १९६० और फिर १९६६ में मैं नयी दिल्लीस्थित गांधी समाधिपर अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करने गया था। १९६६ में इसी नगरमें मैंने एक गांधी संग्रहालय भी देखा था। यह बहुत ही साधारण किस्मका था। इससे मुझे दुःख हुआ था। यह ठीक है कि नेहरूकी मृत्युके बाद दो ही वर्षोंमें बनकर तैयार हुआ शानदार नेहरू संग्रहालय हमारे लिए गांधीके राजनीतिक उत्तराधिकारीका सुन्दर स्मारक था किन्तु इससे मुझे यह जरूर लगा कि गांधी संग्रहालयको एक अच्छा स्मारक बनानेमें और विलम्ब लगना उचित नहीं है।[1]

मैं सार्वजनिक रूपमें यह पूछता हूँ कि मुझपर गांधीकी मृत्युका प्रभाव उनके जीवनसे भी अधिक तीव्रतासे पड़ता है। उनकी हत्या हुई थी — दूसरों आदि पड़ोसी द्वारा नहीं किसी शत्रु या विदेशी द्वारा भी नहीं बल्कि अपने ही एक मित्र एक भाई और अपने ही धर्मके एक व्यक्ति द्वारा। मेरा मौन मेरा ... बचपनमें ही मुझे दूसरे धर्मोंके प्रति भी अपने ही धर्मके समान आदर भावना रखनेकी शिक्षा दी थी। मैं टागोरके इस विचारसे पूर्णतः सहमत हूँ कि

> आज विश्वव्यापी स्थिति यह नहीं है कि सभी विभिन्नताओं मिटाकर एकता कैसे स्थापित किया जाय बल्कि समस्या यह है कि सभी विभिन्नताओं पूर्ण

कायम रखते हुए ऐक्य कैसे कायम किया जाय।' जव स्वाभाविक विभेदोका सामञ्जस्य हो जाता है तभी सच्ची एकता होती है।

अपने सभी कार्यो, सभी संस्थाओ, जिनमे भारतमे मेरी वर्तमान गतिविधि भी शामिल है, मैं राष्ट्रीय, राजनीतिक या धार्मिक किसी भी क्षेत्रमे किसी उपयोगितावादी किस्मका कोई उद्देश्य न रखनेका प्रयत्न करता रहता हूं। इसके साथ ही यह भी सत्य है कि मै दूसरोके धर्मो और स्वय अपने अन्त.करणके आदेशोके प्रति भी समानरूपमे आदरकी भावना रखनेका भी प्रयत्न करता रहता हूँ और कोशिश यह करता हूँ कि मै अपने धार्मिक विचारोको दूसरोपर न लादूँ। जीवन-यापनका यह तरीका बड़ा ही खतरनाक है। गाधीकी मृत्यु इसका प्रमाण है। इस दृष्टिकोणसे भी मै गाधीके साथ अपने नैकटचका अनुभव करता हूँ किन्तु पाठकोको इसमे यह भ्रम नही होना चाहिये कि मै उनके साथ अपनी कोई तुलना कर रहा हूँ। गाधी एक बडे अपवाद थे, मै तो शान्तिके लिए काम करनेवाला एक ऐसा विनम्र और साधारण-सा कार्यकर्त्ता मात्र हूँ जिसे शान्तिस्थापनका आदेश मिला था जिसे उसने इसीलिए स्वीकार किया है कि वह "उन लोगोकी आवाज बननेकी कोशिश कर सके जिनके पास अपनी कोई आवाज नही है।"

यहाँ तक मैने जो कुछ लिखा है उसे लिख पाना मेरे लिए आसान था किन्तु आगे मै एकाएक उलझनमे पड जाता हूँ। मेरी समझमे नही आता कि मै क्या लिखूँ। सन् २००० मे अहिंसाका क्या मूल्य होगा, देशसे अग्रेज उपनिवेशवादियोको निकाल बाहर करने और देशको आजाद बनानेमे गाधीको जो सफलता मिली थी उसका क्या महत्त्व होगा, वियतनाम और दक्षिण अफ्रीका मे, अमेरिका अथवा केनियामे व्याप्त जातीय भेदभाव और पृथक्करणमे इसकी क्या उपयोगिता होगी? मेरे पास इसका कोई जवाब नही है। मेरे ऐसे कुछ मित्र, जिनका अहिंसामे पूर्ण विश्वास है, इसपर मुझे भला-बुरा कहते है। वे मुझे इस बातका विश्वास दिलाते है कि अहिंसा एक दिन हिंसाको निरस्त कर देगी। उनका कहना है कि मै अहिंसाको अच्छी तरह नही समझ पाता। व्यक्तिगतरूपसे हर मामलेमे मुझे इसका पूरा भरोसा नही होता। हिंसा चाहे जितनी बुरी क्यो न हो कभी-कभी अन्यायकी ऐसी स्थितियाँ पैदा हो जाती है, जिनमे एक ओर तो दुर्बल-से-दुर्बल लोग होते हैं और दूसरी ओर एक-से-एक ताकतवर होते है, कि मुझे अहिंसाके बारेमे सन्देह होने लगता है। मेरी आशंका यहाँ तक बढ जाती है कि क्या गाधीके शिष्योको भी इस तरहका सन्देह हुए बिना रह सकता है। इसके लिए पैस्टर मार्टिन लूथर किंग जैसे किसी व्यक्तिको घनिष्ठतासे जानना आवश्यक है। यह केवल मेरा ही

मामला नही है उनके साथ रहना, उन्हें समझना और किसी पूर्वाग्रहके बिना उनपर विचार करना आवश्यक ह। यह ठीक ह कि उग्र हिंसाके विस्फोटका सामना करते समय अहिंसाका उपासक और अधिक अहिंसक बनना और गाधीका विशेष रूपसे अनुसरण करना चाहता ह। यही उसके लिए तकसगत स्थिति ह किन्तु क्या भारतको उपनिवेशवादसे मुक्त करने और वियतनाममें हो रहे युद्धमें सचमुच कोई अन्तर नही ह ? मेरा सदासे यह विचार रहा ह—और म अभी भी यही सोचता हूँ—कि यद्यपि मैं अपने विचारको गलत घोषित करनेके लिए हमेशा तयार हूँ—गाधीकी अहिंसाकी सफलता अग्रेजोकी उदारनीतिमूलक प्रवृत्ति और उनकी उस कठोर यथार्थवादिता पर निभर थी जिसके द्वारा उन्होने यह तुरन्त महसूस कर लिया कि अब राजनीतिक उपनिवेशवादको त्याग देनेका समय आ गया ह और उसके लिए वे तैयार हो गये। उन्हें यह भी विश्वास था कि इससे आर्थिक उपनिवेशीकरणके सरक्षण और शायद विकासमें सहायता मिलेगी। उनका यह विश्वास पूरी तरह सच निकला ह।

इन पक्तियोको लिखते समय म गाधीके चित्रकी ओर देख रहा हूँ जो मेरी उस छोटी-सी मेजकी बायी तरफ लगा हुआ ह जिसपर मै बैठा हुआ हूँ। मैं उनसे अपनी इन पक्तियोकी अकिञ्चनताके लिए क्षमा मांगता हूँ। किन्ही विशिष्ट और सुनिरूपित मामलोमें और किन्ही अत्यन्त विशिष्ट परिस्थितियोमें हिंसाके प्रयोगकी आवश्यकताके सबधमें मैने यहाँ जो थोडा-सा सन्देह उठा लिया ह उसके लिए भी म उनसे क्षमा-याचना करता हूँ। अपने पुराने मित्र अलबट श्वित्जरके साथ मेरा भी यही विश्वास ह कि प्रबुद्ध और सक्रिय जनमतका निर्माण ही शान्तिकी सबसे उत्तम गारण्टी दे सकता ह। भले ही किसी भी समय कायका जैसा शान्तिपूर्ण विस्फोटक स्वरूप होता ह उसमें भी मेरा आस्था ह। कुछ रोगीको सवाम सम्पन्न गाधी इसके उदाहरण हैं। मैं अपनेसे अधिक बुद्धिमान् लोगो द्वारा इस सबधम प्रकाश पानेकी भी प्रतीक्षा कर रहा हूँ कि आज वियतनाममें जो स्थिति है उसमें गाधीने क्या किया होता। यदि हमें इसका पता चल जाय तो निश्चय ही आजकी दुनियाके लिए यह एक अत्यन्त अनुकरणीय आदर्श होगा। किन्तु हमें इस प्रसग में यह भी याद रखना चाहिये कि गाधी अपने प्यारे देशके टुकडोंमें विभाजित होकर मर ह उन्हें उस समय यह भी मालूम था कि इस 'विभाजन' के कारण उतर २० लाख शरणार्थियोंकी जानें गयी हैं और एक करोड लोग अपने स्थान विस्थापित हुए हैं।

मेरे सामने तो इस सात्त्विक पवित्र और साधु व्यक्तिका उदाहरण रहता है

जिसने दिन प्रतिदिन अपनेको गरीबोंकी सेवामें समर्पित कर दिया था, मैं उनकी जन्मशती कलक्कड स्थित महात्मा गांधी शान्ति द्वीपमें दिन-प्रतिदिन गरीबोंके सेवाकार्यका संगठन करके मनाऊँगा।

---

१. मुझे आशा है कि मेरे मित्र डाक्टर अलबर्ट श्विट्जरके आध्यात्मिक उत्तराधिकारी उनके निधनके दो वर्ष बाद ही सही इस ओर ध्यान देंगे। उनके अभिलेखोंका अभी भी वर्गीकरण नहीं हो सका है और गन्नबाच स्थित उनका आवास केवल थोड़ेसे अतिथियोंके लिए ही मुक्त है।

२. १९६० में बेल्जियममें महात्मा गांधीके नामसे मेरे द्वारा स्थापित एक शान्ति विश्वविद्यालयके शिलान्यासके अवसरपर।

३. द्वितीय शान्ति द्वीपकी स्थापना (शान्तिद्वीप किसी विकासशील देशके अन्तर्गत एक देहाती जिलेके उन्नयनकी अल्पकालीन योजना होता है)। शान्ति द्वीपकी प्रथम योजना पाँच वर्षों तक पूर्वी पाकिस्तानमें क्रियान्वितकी गयी थी। यह योजना मई १९६७ में समाप्त हो गयी। शान्ति द्वीपकी द्वितीय योजना १९६८ में कलक्कडमें (मद्रासराज्यका तिरूनेलवेली जिला) शुरू हुई है। यह सप्तवर्षीय योजना है।

४. ब्रूसेल्सस्थित दक्षिण अफ्रीकी राजदूतने मुझे २७ फरवरी, १९३८ को यहाँ उद्धृत पत्र उस समय लिखा था जब मैंने उनके 'द साउथ अफ्रिकन पेनोरमा, नामक पत्रिकाको, जिसमें उनके देशकी विशेषताओंकी बड़ी तारीफ लिखी होती थी, लेनेसे इनकार कर दिया था और उसे उनके पास वापस भेज दिया था। "मैं आपको यकीन दिलाता हूँ कि मैंने आपकी यह इच्छा तुरन्त स्वीकार करली है कि अब आपके पास "द साउथ अफ्रीकन पैनोरमा" न भेजा जाय। शायद आपके अन्तःकरणको यह देखकर कष्ट पहुँचा है कि यहाँ श्वेत और अश्वेत दोनों जातियाँ पूर्ण सामञ्जस्यके साथ सुखपूर्वक रह रही हैं। इससे शायद आपको यह भी लगा हो कि आप जातीय पृथक्करणकी नीतिकी जो आलोचना करते हैं और उसे जिस तरह अस्वीकार करते हैं उससे हमारी श्वेत जनताकी आजादीकी मनमानी भर्त्सना तो होती ही है इसके साथ ही उससे यह भी पता चलता है कि आप हमारे यहाँके अश्वेत लोगोंकी सुख समृद्धि देखना भी पसन्द नहीं करते।" जब कि स्थिति यह है कि जातीय पृथक्करण का पाप अश्वेत लोगोंके चारों ओर अपना घेरा मजबूत करता आ रहा है।

५. गवर्नर वैलेसने अत्यधिक आग्रहसे घोषित किया कि "जातिवादी ऐसा व्यक्ति होता है जो अपने पड़ोसीको प्रेम करता है। वह ईश्वरकी सृष्टिको घृणा करता है। किन्तु इसके विपरीत जातीय पृथक्करणका हिमायती दूसरे लोगोंको प्रेम करता है किन्तु वह यह जानता रखता है कि ईश्वरने कुछ लोगोंको श्वेत और कुछको अश्वेत बनाकर शुरूसे ही इस लोगोंको एक दूसरेसे अलग कर दिया है।" देखिये फ्रेंच रीव्यू, एल' एक्स प्रेस, २९ फरवरी, १९६८, पृ० १९।

प्यारेलाल

भारत बापू के बाद

> 'जब तक मेरी निष्ठाकी ज्योति जलती रहती है, जैसा कि मैं आशा करता हूँ मेरे एकाकी रहनेपर भी वह बराबर जलती ही रहेगी, मैं कब्र में भी जिंदा रहूँगा, इतना ही नहीं मैं वहाँसे भी बोलता रहूँगा।'
>
> —गांधीजी

(१)

गांधीजीकी जन्मशती हमें अपनेसे यह पूछनेका उपयुक्त अवसर प्रदान करती है कि हमने राष्ट्रपिताकी विरासतका सर्वोत्तम उपयोग किया है या नहीं और हमारे सामने उपस्थित अनेकानेक समस्याओंके समाधानमें अभी भी इस विरासतका उपयोग किया जा सकता है या नहीं।

गांधीजी जनताके आत्मा थे। वे किसी भी ऐसी वस्तुको अपने उपयोगमें लानेसे इनकार कर देते थे जिसका उपयोग स्वयं जनता न करती हो अथवा जिसका उपयोग उसकी सेवामें न किया जा सके। उनके लिए अपना व्यक्तिगत मोक्ष भी व्यर्थ था यदि वह दूसरोंकी सेवामें बाधक होता हो। यही कारण था कि उनके लिए ऐसी आजादी भी व्यर्थ थी जिसे अहिंसा द्वारा न प्राप्त किया गया हो क्योंकि अहिंसाके रास्तेसे दुर्बल-से-दुर्बल व्यक्ति शारीरिक दृष्टिसे बलवानसे बलवान व्यक्तियोंके कंधेसे कंधा मिलाकर आजादीके संघर्षमें शामिल हो सकते थे जिससे आजादी मिलनेपर वे भी दूसरे लोगोंके समान ही उसके सुफलको प्राप्त करनेका दावा कर सकते थे। वे एक आत्मनिर्भर भारतका निर्माण करना चाहते थे जिसमें साधारणसे साधारण आदमी भी यह अनुभव कर सके कि वह अपना भाग्यविधाता स्वयं है और बिना किसी बाहरी सहायता या दबावके अपने इच्छानुरूप अपने भाग्यका निर्माण कर सकता है। वे ऐसे एक भारतका स्वप्न देखते थे जिसमें प्रत्येक व्यक्तिको अपनी बुनियादी जरूरतोंको पूरा कर सकने लि

उन्नत नागरिक जीवनको ही मिली जिसके अन्तर्गत हमारा नेतृत्व पैदा हुआ था और जिसपर उसीका प्रभाव पूर्णत. छाया हुआ था। इसने मुख्यत. नागरिक मूल्योको ही सन्तोप प्रदान किया। संक्षेपमे इसका अर्थ यह हुआ कि देशपर नगरो-का ही राजनीतिक और सामाजिक प्रभुत्व कायम हो गया। देहातोके मुकावले नगरोको प्रधानता मिली और उन्ही चुने हुए विशिष्ट लोगोके हाथमे हर तरहकी सत्ता तथा सर्वाधिक अभिलषित सुविधाएँ चली गयी जो हमारे शासक वर्गमे शामिल थे।

भारतीय राष्ट्रीय नेता अग्रेजो की मा-वाप सरकारके अधीन विकसित पैत्रिक शासन प्रणालीकी तीव्र भर्त्सना करते थे। पुश्तैनी शासकोके कारण जनताका अभिक्रम मर चुका था और उसमे जडता जड जमा चुकी थी। वह अपनी हालतोमें सुधार लानेके लिए किसी वाहरी सत्तापर ही निर्भर रहा करती थी और उसमे वरावर उसी सत्ताका मुँह जोहते रहनेकी आदत पड गयी थी किन्तु जव हमारे नेता खुद सरकार वन गये तो उन्होने "कल्याणकारी राज्य" के फैश-नेवुल लेवुलके नीचे वही भूमिका खुद अख्तियार करली जिसकी वे पहले कटु निन्दा किया करते थे। उनका यह ख्याल वन गया कि विदेशी शासनमें स्थिति चाहे जैसी भी रही हो उनके सत्तामें आते ही सव कुछ अपने आप ठीक हो जायगा। जो कोई भी उन्हे इसके विपरीत सुझाव देता वे उससे नाराज हो जाते और ऐसे किसी भी सुझावको राष्ट्रभक्ति और सेवाके अपने पुराने कीर्तिमानपर लांछन समझने लगते थे। गाधीजीने उनके इस रवैयेको देख लिया था और इससे उन्हे वेचैनी हो रही थी।

गाधीजीका भी अपना एक नियोजन दर्शन था किंतु उनके नियोजनकी कल्पनाएँ ऐसी थी जिनमे जनता ही स्वय अपने जीवनको जिस ढंगसे वह सर्वोत्तम समझती नियोजित करती। गाधीजीका नियोजन समाजके सवसे निचले स्तरसे शुरू होता था। वे नियोजनकी ऐसी रूपरेखाओमे विश्वास नही करते थे जिन्हे दूसरे लोग अपनी दृष्टिसे उसके लिए सर्वोत्तम मानकर उसके सिरपर थोप दें और उसे स्वय कार्यान्वित करें। गाधीजीके नियोजनमें प्रमुख स्थान शहरोको नही गाँवोको प्राप्त था।

ऐसी किसी योजनाको कार्यान्वित करनेके लिए नेताओको विल्कुल दूसरे ढग का दृष्टिकोण अपनाना पडेगा और विल्कुल नये किस्मकी तैयारी करनी होगी। आज सामान्यत सत्ताको जिस अर्थमें ग्रहण किया जाता है उस अर्थमे इस पद्धतिसे सत्ता तो नही प्राप्तकी जा सकती किन्तु इससे कमसे कम समयमे देशको भुखमरी,

> साकार कर सकते ह और यह सरलता केवल चरखा और उन समस्त अभिप्रायोमें ही उपलब्ध हो सकती ह जो प्रतीक रूपमें चरखाके माध्यम से व्यक्त होते ह ।

पण्डित नेहरूकी सभावित आपत्तियोपर विचार करते हुए उन्होने आगे लिखा था

> यदि आज दुनिया गलत रास्तेपर जा रही ह तो इसका मुझे कोई डर नही ह । हो सकता है भारत भी उसी दिशामें चलने लगे और अन्तत ज्वालाके चारो ओर अत्यन्त उग्रतासे नाचते-नाचते अपनेको पतगकी तरह जला डाले । किन्तु भारत और उसके माध्यमसे सारे ससारको इस विनाशसे बचानेके लिए अन्तिम श्वास तक प्रयत्न करना मेरा प्रधान कर्तव्य ह ।

अब मैं इस असमाप्त विवादपर विचार करना समाप्त करता हूँ । यह विवाद अभी आगे चलता कि इसी बीच हम इतिहासकी लहरोकी गिरफ्तमें आ गये और यह विवाद बीचमें ही खतम हो गया । स्वतन्त्रताके पूर्व और पश्चात् जिस तरह के उथल-पुथल हुए और जो आपदाएँ आयी उनके कारण हम गाधीजीके इच्छानुसार अतीतसे पूरी तरह सबध विच्छेदकर जडसे नये युगका निर्माण करनेका मौका ही नही मिला । हम अधिकसे अधिक यही कर सके कि अपने महान् प्रयत्नासे अपनेको अराजकताकी उन उत्ताल तरगोपर उतराता हुआ रख पाये और डूब नही मरे । फलत हमारा शासन-यत्र जमाका तमा रह गया और सारा प्रशासन उसी पुराने ढरेपर चलता रहा । अग्रेजोने अपनी हुकूमत कायम रखनेके लिए जिन अधिकारियो और सरकारी कर्मचारियोको प्रशिक्षित कर रखा था वे ही लोग प्रशासनमें पूर्ववत बने रहे । भारतको प्रशासनके तरल्तयके लिए यही कीमत चुकानी पडी । इससे विदेशी शासनके स्थानपर स्वदेशी शासनका सक्रमण आसानी से हो गया और शासन-यत्रके अस्थायी रूपसे टूटने या ठप पड जानेकी असुविधाए अथवा या कहें कि सत्ता हस्तान्तरणके समय अस्थायी अराजकताकी असुविधाए भोगनी नही पडी किन्तु इससे शासनके प्राशासनिक प्रणालीगत कष्टा । अर्थात् अनिश्चितकालके लिए बढ गयी ।

अग्रेजी शासनके अधीन निरकुश और निराधार रूपसे इतिहासगत कारण केन्द्रीय सरकारमें आक्रमण हो । सरकारी नियोजनके प्रति अनुचित जिम्मेदारी स्थान पैदा हो गया । इस तरहके नियोजनमें नागरिक बुद्धि विचारके प्रति अवाछ आकर्षण होता है । इसमें राष्ट्रमति और प्रशासिक अनुरूप विशेष सुविधाएँ उस

उन्नत नागरिक जीवनको ही मिली जिसके अन्तर्गत हमारा नेतृत्व पैदा हुआ था और जिसपर उसीका प्रभाव पूर्णत. छाया हुआ था। इसने मुख्यतः नागरिक मूल्योंको ही सन्तोप प्रदान किया। संक्षेपमे इसका अर्थ यह हुआ कि देशपर नगरो-का ही राजनीतिक और सामाजिक प्रभुत्व कायम हो गया। देहातोके मुकाबले नगरोको प्रधानता मिली और उन्ही चुने हुए विशिष्ट लोगोके हाथमे हर तरहकी सत्ता तथा सर्वाधिक अभिलषित सुविधाएँ चली गयी जो हमारे शासक वर्गमे शामिल थे।

भारतीय राष्ट्रीय नेता अंग्रेजो की मा-बाप सरकारके अधीन विकसित पैत्रिक शासन प्रणालीकी तीव्र भर्त्सना करते थे। पुश्तैनी शासकोके कारण जनताका अभिक्रम मर चुका था और उसमे जडता जड जमा चुकी थी। वह अपनी हालतोमे सुधार लानेके लिए किसी बाहरी सत्तापर ही निर्भर रहा करती थी और उसमे बराबर उसी सत्ताका मुँह जोहते रहनेकी आदत पड गयी थी किन्तु जब हमारे नेता खुद सरकार बन गये तो उन्होने "कल्याणकारी राज्य" के फैश-नेबुल लेबुलके नीचे वही भूमिका खुद अख्तियार करली जिसकी वे पहले कटु निन्दा किया करते थे। उनका यह ख्याल बन गया कि विदेशी शासनमे स्थिति चाहे जैसी भी रही हो उनके सत्तामे आते ही सब कुछ अपने आप ठीक हो जायगा। जो कोई भी उन्हे इसके विपरीत सुझाव देता वे उससे नाराज हो जाते और ऐसे किसी भी सुझावको राष्ट्रभक्ति और सेवाके अपने पुराने कीर्तिमानपर लाछन समझने लगते थे। गाधीजीने उनके इस रवैयेको देख लिया था और इससे उन्हे बेचैनी हो रही थी।

गाधीजीका भी अपना एक नियोजन दर्शन था किंतु उनके नियोजनकी कल्पनाएँ ऐसी थी जिनमे जनता ही स्वयं अपने जीवनको जिस ढंगसे वह सर्वोत्तम समझती नियोजित करती। गाधीजीका नियोजन समाजके सबसे निचले स्तरसे शुरू होता था। वे नियोजनकी ऐसी रूपरेखाओमे विश्वास नही करते थे जिन्हे दूसरे लोग अपनी दृष्टिसे उसके लिए सर्वोत्तम मानकर उसके सिरपर थोप दे और उसे स्वयं कार्यान्वित करें। गाधीजीके नियोजनमे प्रमुख स्थान शहरोको नही गाँवोको प्राप्त था।

ऐसी किसी योजनाको कार्यान्वित करनेके लिए नेताओको बिल्कुल दूसरे ढंग का दृष्टिकोण अपनाना पडेगा और बिल्कुल नये किस्मकी तैयारी करनी होगी। आज सामान्यत सत्ताको जिस अर्थमे ग्रहण किया जाता है उस अर्थमे इस पद्धतिसे सत्ता तो नही प्राप्तकी जा सकती किन्तु इससे कमसे कम समयमे देशको भुखमरी,

अज्ञान, अशिक्षा और अभावसे मुक्त किया जा सकता है और प्रत्येक व्यक्तिको स्वतंत्रता, स्वास्थ्य और समृद्धिका आश्वासन दिया जा सकता है। इसके अन्तर्गत राष्ट्रके नेताओं और सेवकोंसे यह अपेक्षा की जाती है कि वे अपने उच्च आसनोंसे उतरकर जनताके स्तरपर आ जायेंगे और जनताके दिन प्रति दिनके अनुभवोंके आधारपर ही विचार करेंगे तथा योजना बनायेंगे। इसमें प्रथम वरीयता उन्हीं चीजोंको मिलेगी जिनका स्थान सबसे पहले आता है। राष्ट्रीय गौरव ऐश्वर्य और शक्तिकी लम्बी चौडी महत्वाकांक्षापूर्ण बडी-बडी परिकल्पनाओंको पहले छोड देना होगा और उनके लिए इन्तजार करना होगा। यह बात हमारे नेताओं और उन चुने-हुए विशिष्ट नागरिकोंको नहीं रुची जो हमारी प्रशासनिक सेवाओंमें भर पडे हैं।

जिस समय अंग्रेजी हुकूमतके खिलाफ लडाई चल रही थी अहिंसक पद्धतिके विकासमें हमारा नेतृवर्ग रुचि लेता था। सत्ता मिलनेपर उसकी यह रुचि समाप्त हो गयी। अब उनके हाथमें प्रशासन यंत्र आ गया था। इसे वे जब चाहे जिस दिशामें भी चालू कर सकते थे। यही उनके लिए आसान तरीका रह गया था। जनताकी अहिंसक शक्ति दुधारी तलवार होती है। यह ऐसे शासकोंके लिये भी खतरनाक हो सकती है जो जनता द्वारा चुने हुये रास्तेपर चलनेको तैयार न हों। इसीलिए हमारे नेताओंने जनताकी अहिंसक शक्तिको बढावा देना उचित न समझा और खुद देशकी सरकार बन जानेपर वे इससे सकुचाने लगे। गांधीजी द्वारा निरूपित रचनात्मक कार्यक्रममें भी उनकी कोई रुचि नहीं रह गयी। वे केवल अपने स्वार्थ और चुनाव प्रचारके लिए ही कभी-कभी इसका नाम ले लिया करते हैं। जनताने भी उनके इस बदले हुए रुखको भाप लिया और वह निष्क्रिय हो गयी।

एक पत्रसम्वाददाताने इस स्थितिसे खिन्न होकर गांधीजीसे इसकी शिकायत करते हुए कहा था कि

> आपके ही आदर्शों और उन आदर्शोंपर आधारित आचरण द्वारा भारत आज अपनी वर्तमान पद प्रतिष्ठा प्राप्त कर सका है। किन्तु आज क्या साफ नजर नहीं आ रहा है कि हमने उसी सीढीको ठुकरा दिया है जिसपर चढकर हम इस ऊचाई तक पहुँचे हैं? आज हिन्दू मुसलिम एकता, हिन्दुस्तानी खादी, और ग्रामोद्योगोंका कहाँ पता चलता है? क्या इन सबके बारेमें बात करना पाखण्ड नहीं है? उसने पूछा था कि क्या कांग्रेसी नेताओंने गांधीजीको जिन्दा ही नहीं गाड दिया है?

गांधीजीने 'क्या वे जिन्दा गाड दिये गये हैं?' शीर्षक लेखमें उसके प्रश्नोंका

जवाव इन शव्दोमे दिया था .

मै आज भी यही आशा करता हूँ कि मुझे जिदा नही गाड़ दिया गया है। मेरी इस आशाका आधार यह है कि जनताने अभी भी उनमे (मेरे आदर्शोमे) विश्वास नही खोया है। जव यह सिद्ध हो जायेगा कि उसका विश्वास उठ चुका है तभी मेरे वे आदर्श लुप्त हो जायेंगे और तभी यह कहा जा सकेगा कि मै जिदा गाड़ दिया गया हूँ। किन्तु जव तक मेरी निष्ठा की ज्योति जल रही है, जैसा कि मै आशा करता हूँ मेरे एकाकी रहनेपर भी वह जलती ही रहेगी, मै कब्रमे भी जिन्दा रहूँगा और इतना ही नही इससे भी आगे वढकर मै वहाँसे वोलता भी रहूगा।

गाधीजीने आगे चेतावनी दी है कि जनतामे आलोचनात्मक प्रवृत्ति दिखाई दे रही है इसका कोई न कोई ठोस कारण अवश्य होना चाहिये और उसके इस वदले हुए रुखकी उपेक्षा नही होनी चाहिये यदि स्थितिमे सुधारके कोई लक्षण नही दिखाई देते और वह दिन पर दिन विगडती ही जाती है, जैसा कि इस समय हो रहा है, तो आनेवाली आधीको रोक पाना यदि असम्भव नही तो भी वहुत कठिन हो जायेगा।

उनकी चेतावनीका कोई ख्याल नही किया गया, जनता कष्ट भोगती रही और उसके कष्ट वरावर वढते रहे। २६ जनवरी १९४८ को प्रथम स्वातन्त्र्य दिवस समारोहके अवसरपर, यही गाधीजीके जीवनका अन्तिम समारोह था, गाधीजीने जनताकी गम्भीर निराशाको व्यक्त करते हुए कहा था

आज हम किस वातका समारोह मना रहे है? यह समारोह इस तथ्यका द्योतक है कि हमारे भ्रम अभी दूर नही हुए है। हम इस आशासे यह समारोह अवश्य कर सकते है कि हमारे सवसे वुरे दिन खत्म हो गये और अव हम उस रास्ते पर आ गये है जिससे निम्नसे निम्न श्रेणीके ग्रामीणको भी यह अनुभव कराया जा सकता है कि वह अपनी गुलामी-से मुक्त हो चुका है और अव जन्मसे उसे भारतके नगरोकी गुलामी नही करनी होगी और वह सोच समझकर देहातोमे जो श्रम करेगा उसके उत्पादनोका शहरोमे उचित विज्ञापन होगा और उसका उचित पुरस्कार मिल सकेगा। उसे भारतीय समाजकी रीढ माना जायेगा। इसका यह अर्थ भी होता है कि देशके सभी वर्गो, धर्मो और सम्प्रदायोको समानता प्राप्त होगी। कोई भी वहुसख्यक समुदाय किसी भी अल्पसख्यक समुदायपर, चाहे वह अपने सदस्योकी संख्या अथवा प्रभावकी दृष्टिसे कितना भी नगण्य

क्या न हो, अपना प्रभुत्व और श्रेष्ठता कायम न कर सकेगा। हमें इस सम्भावनाको टालते नहीं जाना चाहिये जिससे जनता मायूस हो जाय।

(३)

गांधाजीकी मृत्युके कुछ ही दिना पूर्व मेरी बहिन सुशीलाने (डाक्टर सुशीला नायर) गांधीजीसे पूछा था कि, 'बापू, आपने बराबर यही कहा है कि आप मुख्यतः समाजसुधारक हैं। अब हिन्दुस्तानके आजाद होनेपर आप क्या समाजसुधार की ओर ध्यान देंगे ?' गांधीजीने उसका जवाब देते हुए कहा था कि अभी मेरी कल्पना की आजादी नहीं मिली है। उन्होंने यह भी कहा था कि उन्हें सबसे पहला काम देशकी राजनीतिको स्वच्छ बनानेका करना है। उन्होंने कहा कि, यदि मैं इन ज्वालाओंसे (साम्प्रदायिक उपद्रवों) से बचा रह गया तो मेरा पहला काम राजनीतिक सुधार होगा।'

आजादी मिलनेके बादसे कांग्रेसजनोंके चारित्रिक प्रतिमान में तेजीसे गिरावट आयी है। वे अपने अतीतके त्यागको भुनाकर नकद लाभ करनेमें बुरी तरह लग गये हैं। उनकी निष्ठाएँ डावाडोल हो गयी हैं और उन्हें कुर्सी पानेके लिए हर तरह का उचित और अनुचित काम कर डालनेमें कोई संकोच नहीं होता है। अगर उन्होंने यह सोच लिया है कि अंग्रेजोंके चले जानेके बाद सब कुछ आसान हो गया है और अब उन्हें हाथ पर हाथ धरे बैठे हुए केवल मौज उड़ाना है तो यह उनकी बहुत बड़ी गलती है। गांधीजीने उन्हें इसीके खिलाफ चेतावनी दी थी। उन्होंने कहा था कि आजादीको कायम रखने और उसके वास्तविक उद्देश्योंको पूरा करने के लिए त्याग और समर्पणकी उसी भावनाके साथ उतना ही कठिन परिश्रम करना होगा जितना उसे प्राप्त करनेके लिए करना पड़ा था। इसीलिए कांग्रेसजनों को स्वतः आत्मत्यागके नियमोंका पालन करना चाहिये और सत्ता तथा उसके विशेषाधिकारोंको छोड़कर जनतामें अहिंसक शक्तिके निर्माणमें पूरी तरह लग जाना चाहिए जिससे राजनीति स्वच्छ बन जाय और इसका उपयोग जनसेवामें ही किया जा सके और कुछ लोग अपने व्यक्तिगत स्वार्थोंके साधन तथा प्रभुत्व स्थापन के लिए इसका लाभ न उठा सकें। इसके लिए गांधीजीने एक योजना भी तैयार की थी (यह उनका अन्तिम संकल्प-पत्र और अभिलेख है)। यह उनकी मृत्युके बाद हरिजन में प्रकाशित हुआ था। मैंने अपनी पुस्तक महात्मागांधी—द लास्ट फेजमें इसे अविकल रूपमें उद्धृत किया है। इस योजनाको तुरन्त ताकपर रख दिया गया।

उनके दूसरे काम युवक संघटन और जन संघटन थे। गांधीजी युवकोंमें बढ़ता

हुई अनुशासनहीनता, खासकर छात्रोकी अनुशासनहीनता और जनतामे व्याप्त अशान्तिसे बहुत चिन्तित थे। उनकी दृष्टिमे इस अनुशासनहीनता और अशान्ति का कारण निराशा और नेताओकी कथनी और करनीमे पाये जानेवाले बडे अन्तर-से उत्पन्न रोप है। निराशा इसलिए उत्पन्न हुई है कि देशका साधारण आदमी विकासके उस प्रतिरूपको अधिकाशत. समझ ही नही पाता जिसे सरकार कार्यान्वित करना चाहती है। इसमे उसे अपनी कोई आवाज नही सुनाई देती है और न उसकी कोई राय ही ली जाती है। इसके अलावा कल्याणकारी राज्यके लक्ष्यके अनुरूप राष्ट्र-निर्माणकारी कार्यकलापोको जिस तरह अफसरो और आफिसोके द्वारा ही चलाये जानेकी प्रवृत्ति बढती जा रही है, उससे भी साधारण जनतामे उदासीनता पैदा हो जाती है। जनता जब देखती है कि नेताओ द्वारा बार-बार जिन आदर्शोका नाम लेकर त्याग करनेके लिए उसका आह्वान किया जाता है उन्ही आदर्शोको वे स्वयं ताकपर रखकर अपना घर भरनेमे लगे हुए है और ठीक उलटा आचरण कर रहे है तो इन नेताओके विरुद्ध उसके हृदयमें घृणा और रोप की भावना बढ जाती है।

गांधीजी कहा करते थे कि वे जीवित रह गये और ईश्वरने उन्हे और काम करनेका मौका दिया तो वे फिरसे राष्ट्र-निर्माणके कार्यमें उचित हिस्सा लेनेके लिए छात्रोका उसी तरह आह्वान करेंगे जैसा कि उन्होने असहयोग आन्दोलनके आरम्भ-मे किया था। वे छात्रोको इस रूपमे संघटित करेंगे जिससे उनके आदर्शों और रचनात्मक शक्तिको देशकी सामान्य जनताकी सेवामे लगकर कृतार्थ होनेका पूरा-पूरा अवसर प्राप्त हो सकेगा। अन्तमे वे सारे देशका दौरा करके जनताको स्वतन्त्रता-प्राप्तिके बाद मिले उस महान् अवसरके प्रति जागरूक बनायेगे जिसमे वह आगे बढकर अपना भाग्य अपनी मुट्ठियोमें ले सकती है और उसे मनचाहा रूप दे सकती है। वे जनताको इस बातके लिए उत्साहित करते कि वह अपने नेताओ पर उन वादोको पूरा करनेका दबाव डाले जो उन्होने आजादीकी लड़ाईके दौरान किये थे। ये वादे खादीके व्यापक प्रचार, ग्रामोद्योगोके पुनरुद्धार, पूर्ण मद्य-निपेध, अस्पृश्यताके मूलोच्छेद तथा जीवनमे जो कुछ भी सर्वोत्तम हो सकता है उसकी प्राप्तिके लिए देशके सबसे छोटे और सबसे बडे आदमीको समान अवसर प्रदान किये जानेके सम्बन्धमें दिये गये थे।

इसके लिए राजनीति और नियोजन दोनोका ही इसी तरह लोकतन्त्रीकरण करना है और उन्हे फिरसे एक ऐसा नया रूप देना है जिससे जनताको तत्काल वे सारी सुविधाएँ सुलभ हो सकें जिनसे वह इतने दिनोंसे वंचित रही है।

(४)

स्वतन्त्रताप्राप्तिके बाद इन दो दशकोंमें करीब ४ खरब ५ अरब रुपया विदेशी सहायताके रूपमें हमारे देशमें आ चुका है किन्तु अभी तक गांधीजी द्वारा निरूपित काम पूरे नहीं किये जा सके हैं। आज भी हमारे सामने मँहगाईकी घोर विभीषिका बनी हुई है, दिन-पर दिन जीवनोपयोगी वस्तुओंकी कीमतें बढ़ती जा रही हैं, जनता पर करका भार बढ़ता जा रहा है विदेशी विनिमय सम्बन्धी कठिनाइयाँ और खाद्याभावकी समस्याएँ अभूतपूर्व पैमाने पर जटिल होती जा रही हैं। कहा यह जा रहा है कि चौथी योजनाके दौरान हम विदेशोंसे जो कर्जे लेंगे उनका एक तिहाई भाग पहलेके ऋणोंपर लगे सूदकी अदायगी और नये विदेशी ऋणोंके भुगतानकी गारण्टी देनेमें ही खतम हो जायगा। बाहरसे समय-समयपर जो मेहमान हमारे यहाँ आया करते हैं वे हमारी उपलब्धियोंकी जो मधुमिश्रित प्रशंसाएं करते हैं तथा हमारे देशके पण्डितगण जैसा ऊँचा मन्तव्य देते हैं उससे बहक जाना बड़ा ही खतरनाक होगा। अब ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गयी है कि हमें अपनी शर्तोंपर विदेशी सहायता मिलना दिन-पर दिन कठिन होता जा रहा है। यदि और किसी से नहीं तो कम-से-कम इसी एक बातसे ही हमारी आँखें खुल जानी चाहिए और हमें अपनी स्थितिका पुनर्मूल्यांकन करते हुए अपनी नीतिसम्बन्धी त्रुटियोंको दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिये।

हमें बताया जाता है आज हमारे सामने सबसे बड़ी समस्या "विशाल जन संख्या" की समस्या है। हमारी यह विशाल जनसंख्या हमारे लिए उपयोगी और लाभजनक न होकर अत्यन्त अनुपयोगी और हानिकर है। यदि हमें जनताको हर तरहकी गन्दगी और बुराइयोंसे मुक्तकर एक स्वच्छ और स्वस्थ समाजका रूप देना है तो इसका एकमात्र उपाय यही है कि हम किसी भी कीमतपर जन संख्यावृद्धिको रोकनेकी कोशिश करें।

जो चिन्तन हमारी जनशक्तिके इस विशाल भाण्डारको केवल एक ऐसे विशाल जनसमुदायके रूपमें देखता है जो भूखा है और जिसके पास खानेके लिए केवल मुँह ही मुँह है और जो कोई काम करने लायक हाथोंसे वञ्चित है उसके सबंध में केवल यही कहा जा सकता है कि उसे जनताकी अन्तर्निहित शक्तिपर और इस तथ्यपर घोर अविश्वास है कि यह जनता स्वयं अपनेसे भी कुछ कर सकनेमें समर्थ है। इसके पीछे बुद्धिजीवी नागरिकोंकी उस व्यक्तिके प्रति अवज्ञाका भाव निहित है जो सामाजिक स्तम्भके सबसे निचले स्तरपर है, जो देहाती है, जो सीधा-सादा और सरल जीवन व्यतीत करता है। हमारा नागरिक बुद्धिवाद इस आदमीको

भार समझ रहा है और वहुजनहिताय इससे शीघ्रातिशीघ्र मुक्ति पाना चाहता है। यदि आजकी स्थितिमे "सवसे अधिक लोगोकी सवसे अविक भलाई" का सिद्धान्त कार्यान्वित किया जाय तो यह निष्कर्प अनिवार्य हो जायगा। यदि हम गाधीजी द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त पर चलें तो हमारे सामने एक दूसरा ही चित्र उभरने लगेगा। गाधीजीका सिद्धान्त है कि "सवसे कमकी भलाईमे ही सवकी भलाई निहित है।" इस सिद्धान्तको स्वीकार कर लेने पर सामाजिक स्तम्भके सवसे निचले स्तर पर रहनेवाला व्यक्ति हमारे लिए कोई ऐसा वोझ न रह जायगा जिसे समाप्त कर देना प्रगतिके हितमे आवश्यक प्रतीत होता हो। इसके विपरीत हमे वह व्यक्ति उस नीवके रूपमे दिखाई देने लगेगा जिसपर हमे अपने सामाजिक कल्याणकी पूरी इमारत खडी करनी है। तव हम उसे भी अपने साथ ले चलनेके लिए अपनी प्रगतिका सामञ्जस्य सामान्य जनके सामर्थ्यके साथ वैठानेका प्रयत्न करेंगे। तव हम अपनी जनशक्ति और पशुशक्तिके स्थानपर यन्त्रोको लाकर नही वैठा देंगे वल्कि यन्त्रोका प्रयोग उनके पूरक रूपमें करेंगे जिससे हमारी पूर्ण जन-सख्या और पूर्ण पशुसंख्याकी अन्तर्निहित क्षमताका अधिक-से-अविक लाभ उठाया जा सके। उत्पादनके साधनो और प्रविधियोंका चुनाव करते समय हमे यह ध्यान रखना होगा कि ये हमारी उस कोटि कोटि जनताकी क्षमता, दक्षता और विवेक वुद्धिके अनुरूप हो जिसका हितसावन ही उनका लक्ष्य हो सकता है। इन साधनो और प्रविधियोसे सज्जित होकर जनता अपनी अविकाश वुनियादी जरूरतोको स्वयं पूरा कर सकती है और इस प्रक्रियामे वह स्वयं अपनेको शिक्षित भी वना सकती है।

जनसंख्यावृद्धि पर नियन्त्रण रखनेकी आवश्यकताके संवंधमे दो राय नही हो सकती किन्तु इसके लिए हम चाहे जो भी तरीका चुनें तर्कसंगत वात यही है कि हम जो भी अर्थप्रणाली स्वीकार करें उसे देशमे सुलभ भूमि पर आवाद अधिकतम जनसंख्याके भरण-पोपणमे समर्थ होना चाहिए। कृत्रिम खादोकी सहायता-से वडे पैमानेपर की जानेवाली यान्त्रिक खेतीसे उत्पादनकी लागते कागजपर देखनेमे कम दिखाई देती है, गल्लेको वसूल खेतोसे वाहर ले जाना भी आसान हो जाता है और उत्पादन भी पूर्ण क्षमताके अनुरूप वढाया जा सकता है, इसके अन्तर्गत प्रति मजदूर उपज भी अधिक हो जाता है। किन्तु खेतोकी प्रति इकाई अधिकतम उपज कृपिकी अन्य प्रणालियोकी अपेक्षा छोटे पैमाने पर की जानेवाली खेतीमे अधिक ऊँची होती है और यदि हम सामान्य जनके प्रमुख कल्याणकी दृष्टि-से—उस स्वास्थ्य और जीवनी शक्तिकी दृष्टिसे विचार करें जो खेतोमे शारीरिक

श्रम करनेम मजदूरोका सहज ही प्राप्त होती ह और इससे जनताकी जो सेवा होती है उस दृष्टिसे भी विचार करें तो उत्पादनका मान कहीं अधिक ऊचा दिखाई देगा। श्री चेस्टर बाउल्सने ऐम्बेसेडस रिपोर्टमें इस तर्कको मिथ्या सिद्ध कर दिया है कि व्यक्तिगत भूस्वामियोंके पास रहनेवाले छोटे-छोटे खेतोंमें अनका उत्पादन कम होता है।

सामान्यत सवमान्य गणनाके अनुसार पश्चिमी प्रतिमानकी दृष्टिसे प्रत्येक व्यक्तिको न्यूनतम पर्याप्त आहार प्रदान करनेके लिए २ ५ एकड भूमि अपेक्षित होती है शाकाहारी भोजनके लिए प्रति व्यक्ति १ ५ एकड भूमि ही पर्याप्त होगी। यह अन्तर इसलिए पडता है कि एक एकड भूमिमें पदा हानेवाले गल्ले, शाक सब्जियो और फलोसे जितना पोषक तत्त्व प्राप्त होता है उतना ही पशुओसे प्राप्त करनेके लिए जितने पशुओको मारना होगा उनको चरानके उद्देश्यसे ७ एकड भूमि अपेक्षित होगी।

गाधीजी कहते थे कि यदि उचित भूमिव्यवस्था कर दी जाय तो हम अपनी जीविकाश्रित प्राचीन कृषि प्रणालीसे अपने सुलभ साधनो द्वारा ही उत्पादनवृद्धिकी वर्तमान गतिसे ही अभी बहुत दिनोतक अपनी समूची जनताका भरण-पोषण कर सकते ह बशर्ते कि हम फिलहाल तथाकथित "प्रगति" का टीमटाम छोड दें और सवप्रथम आवश्यक कामोका सबसे पहले करें।

खेती कही भी आत्मनिभर धधा नही ह। इससे मामूली किसान कवल खाता जीता चलता ह। पशु और मानवीय श्रमप्रणालीपर आधारित इस पुराने खेता को आर्थिक दृष्टिसे अधिक आत्मनिभर बनानेके उद्देश्यसे पूरकरूपमें हस्तशिल्पा और लघु उद्योगाकी व्यवस्था चलायी जानी चाहिए। गाधीजीका कहना था कि खेतोमें पैदा हानेवाली चीजाका स्थानीय उपयोगके लिए खेतामें ही तयार मालका रूप देना चाहिए। वज्ञानिक हमें बतलाते है कि यदि समुद्रके जलमें मिले हुए अत्यल्प स्वणको एकत्र कर लेनेका काई अल्पव्यय साधन खोज निकाला जाय तो इस बहुमूल्य धातुकी जो राशि हमें उपलब्ध होगी वह ससारकी सभी खानका खानामें मिलनवाली समूची स्वण राशिसे कई गुना बडा होगी। इसी तरह गाधी जो कहते थे कि हमारे गावा में प्रत्येक घरक दरवाजेपर ही इतन प्राकृतिक साधन बेकार पड़ हुए हैं कि यदि उनका पूरा तरहस उपयोग कर लिया जाय ता चाहे वे व्यावसायिक दृष्टिसे भले ही उपयोगी न हो किंतु गाँवाकी जनताकी बुनियादी जरूरताको पूरा कर देनेक लिए पर्याप्त होंग। यही बात करोडा आदमियोंके हाथा द्वारा किये गये छोटे कामा और थोड-थोड समय तक किये गय श्रमका

सचित राशिके सम्बन्धमे भी लागू होती है। थोडे-थोडे समयोमे बाँटकर किये गये ये छोटे-छोटे श्रम व्यावसायिक दृष्टिसे उपयोगी नही हो सकते किन्तु इनसे समाज-की व्यक्तिगत आवश्यकताएँ मजेमे पूरी की जा सकती है। इनके समुचित उपयोग मे हमारी समूची जनताको तत्काल उसकी आवश्यकताकी वे सारी चीजे दी जा सकती है जिन्हे कोई भी केन्द्रीय नियोजन भारीसे भारी विदेशी सहायतासे और बडेसे बडे पैमानेपर कार्यान्वित होकर भी नही दे सकता।

उदाहरणके लिए, हम अपनी वस्त्र और जूतोकी आवश्यकता को ही ले ले। १९५७ मे सर्वोच्च सोवियतके समक्ष भाषण करते हुए सोवियत प्रधान मन्त्री ख्रुश्चेवने यह स्वीकार किया था कि चार दशकोके अनवरत केन्द्रीय नियोजनके बाद भी अभी रूसी उद्योगको देशकी वस्त्रो और जूतोसबंधी पूरी आवश्यकताकी पूर्तिमे पाँच या सात वर्ष और लग जायँगे। इसके विपरीत प्रत्यक्ष अनुभवसे ही यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दुस्तानमें ऐसी कोई जगह नही है जहाँ कि हर स्त्री पुरुष और बच्चे स्थानीय सुलभ साधनोसे ही अपने लिए इन दोनो चीजोकी व्यवस्था न कर लें। इसमें जिन देशी औजारोकी वे सहायता लेते है उनकी कीमत बहुत मामूली होती है और उचित प्रशिक्षण एवं संघटनसे वे यह सारा काम साल छ महीनेमे ही पूरा कर ले सकते है।

हमे मिलनेवाली विदेशी सहायता चाहे जितनी बडी दिखाई देती हो भारतीय जनताकी दृष्टिसे वह प्रति व्यक्ति प्रति सप्ताह दो पैसेसे अधिक नही पडती किन्तु अपने ही हाथोसे बनाई हुई तकलीपर सूत कातकर एक बच्चा भी इतना पैसा रोज कमा सकता है। इसमें यदि आप चालीस करोडके एक मामूली हिस्सेका भी गुणा कर दें तो देखें यह कितना अधिक हो जाता है।

अब हम एक दूसरा उदाहरण लेते हैं। १९६४-६५ मे हमने अपने मृत पशुओ-की हड्डी निर्यात करके ३ करोड़ रुपया प्राप्त किया। इससे हमारे देशकी मिट्टी-को कितने फासफोरस और कैल्शियमकी क्षति पहुँची जिसमे पहलेसे ही इन तत्त्वो-का पर्याप्त अभाव हो चुका है? एक ओर तो हमने यह किया और दूसरी ओर विदेशोसे ५० करोड रुपयेके रासायनिक खाद खरीदे। चौथी पंचवर्षीय योजनामे खादके कारखानोपर ५ अरब १ करोड रुपया व्यय करनेका निश्चय किया गया है—और यह भी उस समय जबकि हमारी विदेशीविनिमयकी स्थिति अत्यन्त संकटग्रस्त है। किन्तु भारतकी समूची आबादीके पाखाना और पेशाबसे प्रतिवर्ष जो खाद तैयारकी जा सकती है उसका मूल्य २ अरब ३० करोड़ रुपया होता है। इसी तरह समूचे पशुओसे उत्पादित खादका मूल्य ९ अरब ८२५ करोड़

श्रम करनेसे मजदूरोंको सहज ही प्राप्त होती है और इससे जनताकी जो सेवा होती है उस दृष्टिसे भी विचार करें तो उत्पादनका मान कहीं अधिक ऊंचा दिखाई देगा। श्री चेस्टर बाउल्सने ऐम्बेसेडर्स रिपोर्टमें इस तर्कको मिथ्या सिद्ध कर दिया है कि व्यक्तिगत भूस्वामियोंके पास रहनेवाले छोटे-छोटे खेतोंमें अन्नका उत्पादन कम होता है।

सामान्यतः सर्वमान्य गणनाके अनुसार पश्चिमी प्रतिमानकी दृष्टिसे प्रत्येक व्यक्तिको न्यूनतम पर्याप्त आहार प्रदान करनेके लिए २.५ एकड़ भूमि अपेक्षित होती है। शाकाहारी भोजनके लिए प्रति व्यक्ति १.५ एकड़ भूमि ही पर्याप्त होगी। यह अन्तर इसलिए पड़ता है कि एक एकड़ भूमिमें पैदा होनेवाले गल्ले, शाक सब्जियों और फलोंसे जितना पोषक तत्त्व प्राप्त होता है उतना ही पशुओंसे प्राप्त करनेके लिए जितने पशुओंको मारना होगा उनको चरानेके उद्देश्यसे ७ एकड़ भूमि अपेक्षित होगी।

गांधीजी कहते थे कि यदि उचित भूमि-व्यवस्था कर दी जाय तो हम अपनी जीविकाश्रित प्राचीन कृषि प्रणालीसे अपने सुलभ साधनों द्वारा ही उत्पादनवृद्धिकी वर्तमान गतिसे ही अभी बहुत दिनोंतक अपनी समूची जनताका भरण-पोषण कर सकते हैं बशर्ते कि हम फिलहाल तथाकथित 'प्रगति' का टीमटाम छोड़ दें और सर्वप्रथम आवश्यक कामोंको सबसे पहले करें।

खेती कहीं भी आत्मनिर्भर धन्धा नहीं है। इससे मामूली किसान केवल खाता जीता चलता है। पशु और मानवीय श्रमप्रणालीपर आधारित इस पुरानी खेती को आर्थिक दृष्टिसे अधिक आत्मनिर्भर बनानेके उद्देश्यसे पूरकरूपमें हस्तशिल्पों और लघु उद्योगोंकी व्यवस्था चलायी जानी चाहिए। गांधीजीका कहना था कि खेतोंमें पैदा होनेवाली चीजोंका स्थानीय उपयोगके लिए खेतोंमें ही तैयार मालका रूप देना चाहिए। वैज्ञानिक हमें बतलाते हैं कि यदि समुद्रके जलमें मिले हुए अत्यल्प स्वर्णको एकत्र कर लेनेका कोई अल्पव्यय साधन खोज निकाला जाय तो इस बहुमूल्य धातुकी जो राशि हमें उपलब्ध होगी वह संसारकी सभी सोनेकी खानोंसे मिलनेवाली समूची स्वर्ण राशिसे कई गुना बड़ी होगी। इसी तरह गांधी जी कहते थे कि हमारे गांवों में प्रत्येक घरके दरवाजेपर ही इतने प्राकृतिक साधन बेकार पड़े हुए हैं कि यदि उनका पूरा तरहसे उपयोग कर लिया जाय तो चाहे वे व्यावसायिक दृष्टिसे भले ही उपयोगी न हों किंतु गाँवोंकी जनताकी बुनियादी जरूरतोंको पूरा कर देनेके लिए पर्याप्त होंगे। यही बात करोड़ों आदमियोंके हाथों द्वारा किये गये छोटे कामों और थोड़े-थोड़े समय तक किये गये श्रमसे

सचित राशिके सम्बन्धमे भी लागू होती है। थोडे-थोडे समयोमे बाँटकर किये गये ये छोटे-छोटे श्रम व्यावसायिक दृष्टिसे उपयोगी नही हो सकते किन्तु इनसे समाज-की व्यक्तिगत आवश्यकताएँ मजेमे पूरी की जा सकती हैं। इनके समुचित उपयोग से हमारी समूची जनताको तत्काल उसकी आवश्यकताकी वे सारी चीजे दी जा सकती है जिन्हे कोई भी केन्द्रीय नियोजन भारीसे भारी विदेशी सहायतासे और वडेसे वडे पैमानेपर कार्यान्वित होकर भी नही दे सकता।

उदाहरणके लिए, हम अपनी वस्त्र और जूतोकी आवश्यकता को ही ले लें। १९५७ मे सर्वोच्च सोवियतके समक्ष भाषण करते हुए सोवियत प्रधान मन्त्री ख्रुश्चेवने यह स्वीकार किया था कि चार दशकोके अनवरत केन्द्रीय नियोजनके बाद भी अभी रूसी उद्योगको देशकी वस्त्रो और जूतोसबंधी पूरी आवश्यकताकी पूर्तिमे पाँच या सात वर्ष और लग जायँगे। इसके विपरीत प्रत्यक्ष अनुभवसे ही यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दुस्तानमे ऐसी कोई जगह नही है जहाँ कि हर स्त्री पुरुष और वच्चे स्थानीय सुलभ साधनोसे ही अपने लिए इन दोनो चीजोकी व्यवस्था न कर लें। इसमे जिन देशी औजारोकी वे सहायता लेते हैं उनकी कीमत वहुत मामूली होती है और उचित प्रशिक्षण एव सघटनसे वे यह सारा काम साल छ महीनेमे ही पूरा कर ले सकते हैं।

हमें मिलनेवाली विदेशी सहायता चाहे जितनी वडी दिखाई देती हो भारतीय जनताकी दृष्टिसे वह प्रति व्यक्ति प्रति सप्ताह दो पैसेसे अधिक नही पड़ती किन्तु अपने ही हाथोसे वनाई हुई तकलीपर सूत कातकर एक वच्चा भी इतना पैसा रोज कमा सकता है। इसमे यदि आप चालीस करोडके एक मामूली हिस्सेका भी गुणा कर दे तो देखें यह कितना अधिक हो जाता है।

अव हम एक दूसरा उदाहरण लेते है। १९६४-६५ मे हमने अपने मृत पशुओ-की हड्डी निर्यात करके ३ करोड़ रुपया प्राप्त किया। इससे हमारे देशकी मिट्टी-को कितने फासफोरस और कैल्शियमकी क्षति पहुँची जिसमे पहलेसे ही इन तत्त्वो-का पर्याप्त अभाव हो चुका है? एक ओर तो हमने यह किया और दूसरी ओर विदेशोसे ५० करोड रुपयेके रासायनिक खाद खरीदे। चौथी पंचवर्षीय योजनामे खादके कारखानोपर ५ अरव १ करोड़ रुपया व्यय करनेका निश्चय किया गया है—और यह भी उस समय जवकि हमारी विदेशीविनिमयकी स्थिति अत्यन्त संकटग्रस्त है। किन्तु भारतकी समूची आवादीके पाखाना और पेशावसे प्रतिवर्ष जो खाद तैयारकी जा सकती है उसका मूल्य २ अरव ३० करोड़ रुपया होता है। इसी तरह समूचे पशुओसे उत्पादित खादका मूल्य ९ अरव ८३५ करोड़

होता है। यह दर १ हजार रुपया प्रति टन सालाना होगी। यदि कम्पोस्ट खाद तैयार करनेकी प्रणाली पूरी तरह स्वीकार कर ली जाय तो हमारे गमूचे मानवीय और पाशव स्रोतोंसे प्राप्त होनेवाले नाइट्रोजनबहुल पदार्थोंसे प्रतिवर्ष न केवल ५० करोड़ रुपयोंके विदेशी विनिमयकी बचत और ५ अरब रुपयेका पूंजीगत नियोजन ही किया जा सकता है अपितु राष्ट्रकी वार्षिक आयमें १२ अरब १३ करोड़ रुपयेकी वृद्धि भी की जा सकती है। इतना ही नहीं इससे जनताकी सफाई, स्वास्थ्य और जातीय शक्तिमें भी पर्याप्त वृद्धि होगी क्योंकि इससे पोषक पदार्थोंकी मात्रामें वृद्धि हो जायगी और बीमारियाँ भी कम हो जायेंगी। गांधीजीने सबसे अन्तिम कार्य यह किया था कि उन्होंने दिल्लीमें अखिल भारतीय कम्पोस्ट सम्मेलनका आयोजन किया था। इस सम्मेलनके निर्णयके अनुसार खाद्य और कृषि मन्त्रालयके अन्तर्गत एक कम्पोस्ट विभाग भी खोला गया था। कुछ पता नहीं चलता कि अब इसका अस्तित्व भी कायम रह गया है या नहीं।

जिस तरह औद्योगिक प्रतिष्ठानोंसे निकलनेवाले बहुतसे कचरेमेंसे जो यों ही बरबाद चला जाता है, कीमती पदार्थको छोटे छोटे परिमाणोंमें संचित कर लेनेके लिए विशेष प्रक्रियाएं अपेक्षित होती हैं उसी तरहसे प्राकृतिक साधनोंके भी कणकण सचयनके लिए और सारे देशमें बिखरे हुए लाखों-करोड़ों पुरुषों, स्त्रियों और बच्चोंके समय, श्रम, विवेकबुद्धि और दक्षताओंमें प्राप्त साधनोंको कणकण एकत्र कर लेनेके लिए भी विशिष्ट प्रविधि अपेक्षित है। इस प्रविधिकी व्याख्या गांधीजीके निम्नलिखित शब्दोंमें जिस ढंगसे की गयी है उससे अच्छी व्याख्या कर सकनेमें मैं असमर्थ हूँ :

> सुनहला नियम यह है कि हम ऐसी कोई भी चीज स्वयं स्वीकार करनेसे इनकार कर दें जो लाखों करोड़ों लोगोंको सुलभ न हो। हमें तबतक विश्राम करने या मजेमें भोजन करनेसे लज्जित होना चाहिए जबतक देशमें कोई भी ऐसा पुरुष या स्त्री मौजूद है जो हाथ पैर रहते और मेहनत करनेकी स्थितिमें होते हुए भी, करनेके लिए कोई काम नहीं पा जाती या उसे कुछ भी खानेको नहीं मिल पाता।
>
> काम करनेका एक मात्र तरीका यह है कि हम जाकर उनके बीच बैठ जायें और अविरल निष्ठाके साथ उनके सफाई मजदूरों, नर्सों या उनके सेवकोंके समान कार्य करना शुरू कर दें। हम अपनेको उनका पृष्ठपोषक या मालिक न मानें और ... भरे पेट वालों या धनवानोंको भूल जायें। हमें उन किसानोंके साथ तादात्म्य प्राप्त कर लेना होगा जो खेतोंमें काम

करते हुए अपनी झुकी हुई पीठोपर सूरजकी प्रखर धूपको झेलते रहते है और यह देखना होगा कि हमे उन पोखरो और गडहियोसे पानी लेकर पीना कहाँ तक अच्छा लगता है जिनमे गाँवोके लोग नहाते है, अपने कपडे और बर्तन धोते है और जिनमे गाँवके जानवर भी पानी पीते और लोटते रहते है। तभी और केवल तभी हम जनताका सच्चा प्रतिनिधित्व कर सकते है, और तभी वह जनता हमारी प्रत्येक आवाजको उसी निश्चयके साथ सुनेगी जैसा निश्चय यह है कि मै इस वक्त यह लिख रहा हूँ।

गाधीजी व्यावहारिक आदर्शवादी थे। वे कभी भी किसीपर ऐसा भार नही डालते थे जिसे उठा पाना उसकी सामर्थ्यके बाहर हो। वे यह आशा नही करते थे कि हमारी आर्थिक नीतियोके नियामक उनके उन सारे सुझावोको विना किसी ननुनचके अविकल रूपमे तत्काल स्वीकार कर लेगे जिन्हे उन्होने सर्वोदय व्यवस्थाको साकार करनेकी गरजसे उपस्थित किये है किन्तु वे उनसे इतनी आशा अवश्य करते थे कि वे आत्मसहायताके आधारपर क्षेत्रीय आत्मनिर्भरताके उस लक्ष्यको प्राप्त करनेके लिए, जिसमे प्रत्येक व्यक्तिको तत्काल अपनी बुनियादी जरूरतें पूरीकर लेने लायक साधन सुलभ हो जायगे, कमसे कम सार्वजनिक प्रयासका शुभारंभ तो कर ही देगे और यदि संभव हो तो उसे प्रोत्साहन देते हुए उसके साथ सहयोग भी करेंगे। इस लक्ष्यकी प्राप्तिके लिए उन्होने कुछ सुझाव भी दिये थे जो इस समय भी उतने ही महत्त्वपूर्ण है जितने उस समय थे। वे सुझाव इस प्रकार थे

> सरकारको (१) आर्थिक सहायता देकर अथवा आशिक या पूर्णरूपसे करोमे छूट देकर ग्रामीण हस्तशिल्पोको समुचित प्रेरणा प्रदान करनी चाहिये। इसके लिए जहाँ भी इस दिशामे सर्वाधिक प्रगति हुई हो उसे पुरस्कार अथवा अन्य प्रकारसे मान्यता देनेकी व्यवस्था होनी चाहिये। (२) ग्रामीण हस्त-शिल्पोकी ऐसी इकाइयो अथवा क्षेत्रोको जो आत्मनिर्भरताके लक्ष्यकी पूर्तिके लिए भारी उद्योगोके साथ होनेवाली प्रतिस्पर्धासे संरक्षण चाहते हो उन्हे यह सरक्षण प्रदान करना चाहिये। उनके बीच विजलीमे चलनेवाले यंत्रोके बैठाने और उस क्षेत्रमे बडे पैमानेपर यंत्रोत्पादित वस्तुओंके आयातपर प्रतिबध लगा देना चाहिये और (३) उनके उत्पादनोकी व्यापक और बलात् वसूलीसे उन्हे मुक्त करके भावो और कीमतोकी अस्थिरतासे उन्हें बचानेका प्रयत्न करना चाहिये और

ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये कि वे अपने देयोंका भुगतान अंशतः नकद रूपमें न करके वस्तुओंके रूपमें कर सकें और आवश्यक होनेपर उन्हें उन क्षेत्रोंमें रोककर रख भी सकें जहाँ कोई नया प्रयोग होता हो जिससे बाहरी आर्थिक सहायतापर निर्भर हुए बिना ही वे अपनी योजनाएं कार्यान्वित कर सकें।

(५)

आजकी बढ़ती हुई प्रतिस्पर्धाके कारण भारत अपनी उत्पादित वस्तुओंको विदेशी बाजारोंमें कहाँ तक और कब तक बेच पायेगा यह तो अनिश्चित है ही अब तो ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गयी है कि संसारकी जनसंख्यामें निरन्तर होनेवाली स्वाभाविक वृद्धिके कारण जो देश अपनी आवश्यकतासे अधिक गल्ला पैदा करते थे उनके पास भी निर्यात करनेके लिए गल्ला उतनी मात्रामें नहीं बच पा रहा है। इन परिस्थितियोंमें कमसे कम यही कहा जा सकता है कि कृषियोग्य भूमिपरसे जनसंख्याका भार कम करने और जनताका जीवनमान ऊंचा उठानेके तात्कालिक उद्देश्यसे द्रुत उद्योगीकरणकी नीति अपना लेना बड़ा ही खतरनाक जुआ खेलना होगा। यदि हम चाहते हों तो स्वर्गमें सीढ़ी लगानेकी योजना बड़े शौकसे बनावें किन्तु शर्त यह है कि हम अपने समाजके सबसे नीचेके स्तरपर रहनेवाले आदमीको भी अपने साथ ऊपर ले चलें। हमें सबसे पहले लोकतन्त्रके मूल आधारोंको मजबूत बनाना चाहिये। इसके बिना हम तथाकथित राष्ट्रीय समृद्धिकी जो बुलन्द इमारत तैयार करनेकी कोशिश कर रहे हैं वह एक बहुत ही खतरनाक फन्दा साबित हो सकता है और यह पूरीकी पूरी इमारत किसी भी समय ढह सकती है जिससे उसके नीचे रहनेवाली सभी चीजें कुचलकर नष्ट हो सकती हैं। इस खतरेकी अनेक गम्भीर चेतावनियाँ हमारे सामने अभी ही प्रकट हो चुकी हैं जिससे हमें समय रहते सावधान हो जाना चाहिये।

जब कभी भी और जहाँ कहीं भी नागरिक प्रशासनके ठप पड़नेपर बार-बार सुरक्षार्थ फौज सेना बुला लेना एक खतरनाक लक्षण है। यदि यही रवैया जारी रहा और लाखों-करोड़ों व्यक्तियोंको प्रभावित करनेवाली समस्याएं हल न की जा सकीं तो इस बातका बड़ा खतरा है कि एक न एक दिन बहुत दिनोंसे कष्टोंको भोगती आनेवाली जनता वाम अथवा दक्षिणपन्थीय अधिनायकवादको उतना बुरा न समझने लगे। यह ठीक है कि हम हमेशा अच्छासे अच्छा प्रगतिकी ही आशा करनी चाहिये किन्तु मौजूदा परिस्थितियोंमें हम इस गलतफहमीका उपशमन बेहद अपनी ही कीमतपर कर सकते हैं।

लोकतंत्रकी यह एक बडी कसौटी है कि जनता पुलिसको अपना मित्र समझे और उसे अपनी किसी कठिनाईमे पुलिसकी सहायता लेनेमे कोई हिचक न हो। देशकी पुलिस ऐसी हो कि नागरिक उसके साथ स्वेच्छया सहयोग करनेको तत्पर रहे। किन्तु आज स्थिति कुछ ऐसी है कि भारतका सामान्य नागरिक पुलिसको भय और आशंकाकी दृष्टिसे देखता है और उससे अधिकसे अधिक दूर रहनेमे ही अपनी भलाई समझता है। जहाँतक पुलिसका सवाल है कुल मिलाकर वह कानून और व्यवस्थाके क्षेत्रमे किसी व्यक्ति अथवा स्वयंसेवी संघटनके किसी भी हस्तक्षेपको बुरा मानती है और ऐसा समझती है कि जैसे वह हस्तक्षेप उसके अपने लिए सुरक्षित क्षेत्र और अधिकारोमे हो रहा हो। जन सहयोगके अभावमे हमारी पुलिस अधिकाधिक वलप्रयोगपर निर्भर होती जा रही है। यह आकड़ो द्वारा सिद्ध किया जा चुका है कि स्वतंत्र भारतमे अंग्रेजोके शासनकालकी अपेक्षा सामान्य परिस्थितियोंमे पुलिस द्वारा गोली चलायी जानेकी घटनाएँ कही अधिक हुई है। ब्रिटेनकी पुलिसकी अपेक्षा भारतीय पुलिस हथियारोपर कही ज्यादा भरोसा करती है और यदि उसे इसके विपरीत कोई सुझाव दिया जाता है तो उसे यह ब्रिटिश पुलिसकी अपेक्षा कही अधिक नागवार गुजरता है।

समाजवाद एक सुन्दर शब्द है किन्तु इसका आकर्षण वहुत ही खतरनाक सावित हो सकता है। अंग्रेज शासक अपनेको "समाजवादी" कहनेमे नही हिचकते थे। वे अपने "समाजवाद" के व्यावहारिक उदाहरणके रूपमे वडी-वडी रेलवे लाइनो और सिंचाईकी वड़ी-वड़ी प्रणालियो तथा भूमिकरसम्वन्धी व्यवस्थाओंकी ओर इशारा कर देते थे। किन्तु हमे मालूम है कि उनके समाजवादका असली अर्थ क्या है। समाज-रचनाके दो दशकोके प्रयोगके वाद जो नतीजा निकला है वह यह है कि कुल ५५ अरब रुपयेके नियोजनके आधे भागपर करीब ७५ और तिहाई भागपर १२ एकाधिकारी पूँजीपतियोका नियंत्रण है और सवसे निचले स्तरके आदमियोंकी, जिनकी कुल संख्या साढे चार करोड है, प्रतिदिनकी औसत आय २० और ३५ पैसेके वीच है। जव भी वर्तमान साधनोके न्यायोचित और समान उपभोगकी वात की जाती है तो प्राय इसका मजाक उड़ाते हुए इसे "गरीवी का वँटवारा" कह दिया जाता है। जब देशके लाखो-करोड़ो व्यक्तियोंके पास हमारे साथ बाँटकर भोगनेके लिए गरीवीके सिवा और कुछ न हो उस समय "गरीवीके वँटवारे" के संवंधमे इस तरहके मजाक उडानेसे वढकर क्रूर और हृदयहीन वात की कल्पना भी नही की जा सकती। "सीमान्त गाधी" के नामसे विख्यात वादशाह खान अब्दुल गफ्फारखाँने हमसे कहा था कि," "समाजवादी समाजकी रचना उस समय

घनाका उत्तर देते हुए विलियम मारिसने कहा था कि

> मैं इस बातमें विश्वास नहीं करता कि दुनियाको किसी भी व्यवस्था द्वारा बचाया जा सकता है। म आग्रहपूर्वक केवल यही कहता हूँ कि चाहे जो भी व्यवस्था हो उसके भ्रष्ट हो जानेपर उसपर हमला किया जाना आवश्यक है।

विलियम मारिस यह नहीं बता सके हैं कि आखिर यह काम किस तरीकेसे किया जाय जिससे उसका उद्देश्य नष्ट न हो सके। गाधीजीने यहीं आकर इस समस्याको अपने हाथमें ले लिया ह और इसका उत्तर इन शब्दोंमें प्रस्तुत किया ह

> इसका उत्तर परमात्मा रूप सत्य और सत्याग्रहके बीच पाये जानेवाले सम्बधमें निहित है। सत्याग्रह समस्त मानवीय समस्याओंके समाधानकी कुजी है। सत्याग्रहके नियमोंकी अभी भी खोज हो रही है। जब यह नियम पूरी तरह खोज निकाले जायेंगे, तब पूर्ण समाजवाद मात्र काल्पनिक मनोराज्य न रहकर एक ठोस वास्तविकता बन जायगा।

सत्याग्रहके नियमोंके आधारपर उन्होंने घोषित किया ह कि 'ट्रस्टीशिप (न्यासाधिकार)' समाजवादी मूल्योंकी उपलब्धिके लिए सर्वाधिक विश्वसनीय साधन प्रस्तुत करता ह।

(६)

आज हमारे सामने चारित्रिक सकट सबसे गभीर चुनौतीके रूपमें प्रस्तुत ह। सभी सरकारी विभागोंमें "पार्किसनका नियम" प्रतिशोधके साथ लागू हो रहा ह। सरकारी अफसर और कमचारी फजूलखर्ची और बरबादीके प्रति हृदयहीन उदासीनताकी भावना रखते ह। निजी मुलाकातोंमें उच्चपदस्थ अधिकारी भी इस बातपर अफसोस करते पाये जाते ह कि उनके ऊपरके मन्त्रियों और बड़े लोगोंने ऐसी स्थिति बना रखी है जिनमें उनके लिए ईमानदारीसे कर्तव्य निर्वाह कर पाना कठिन हो रहा ह। लोकतन्त्र एक खर्चीला विलास बन गया है। आजके शासकवगके पास जितने प्रकारके विशेषाधिकार और विशिष्ट सुविधाएँ मौजूद हैं, वे उन अग्रेज शासकोंके पास भी नहीं थीं, जिनकी हम निन्दा किया करते थे। स्वतन्त्र भारतका शासकवग भोग ऐश्वयमें अग्रेज शासकोंको बहुत पीछे छोड चुका ह। अग्रेज शासक जिस तरहकी भोग विलासकी जिंदगी बसर किया करते थे, उसके लिए कम-से-कम यह बहाना बनाया जा सकता था कि उनका सास्कृतिक स्तर हमसे अलग बिलकुल भिन्न प्रकारका था और नैतिक मूल्योंके प्रति उनका दृष्टिकोण भी अलग था किन्तु हम लोग ऐसा कोई बहाना नहीं बना सकते। जनता

दिनपर दिन सरकारी तडक-भड़ककी अधिकसे-अधिक आलोचक बनती जा रही है। हमारा शासकवर्ग आज भ्रष्टाचारकी जिस समस्याका समाधान खोजना चाहता है, उसके मूलमे यही तथ्य है। इस सम्बन्धमें किसीको कोई भ्रम न होना चाहिए कि डॉक्टरको रोगीका इलाज करनेके पहले स्वयं अपना इलाजकर लेना चाहिए। गाधीजी कहते हैं कि

> मेरा कहना है कि एक तरहसे हम सभी चोर हैं। जबतक इन लाखो-करोडोंको वस्त्र और भोजन नही मिल जाता, हमे अपने पास उन चीजो-को रखनेका कोई अधिकार नही है, जो आज हमारे पास है।

गुड़ खाकर गुलगुलेसे परहेज करनेसे कोई सुधार नही हो सकता। बुराईको दूर करनेके लिए उसकी जडतक जाना होगा।

राष्ट्रपिताने हमें पचीस वर्षोतक सत्य, अहिंसा, आत्मसंयम और आत्मत्याग-का प्रशिक्षण दिया था। हममेंसे कुछ लोगोने इन अनुशासनोको ईमानदारीसे ग्रहण कर लिया था। कुछने इन्हे साध्यविशेषके लिए प्रयुक्त साधनके रूपमे ही स्वीकार किया था। हममेसे बहुतसे लोग ऐसे भी थे, जो इनका मजाक उडाते थे, किंतु बाहरसे इनका आडम्बर बनाये रखना सुविधाजनक समझते थे। जो भी हो, हर हालतमें इन अनुशासनोके न्यूनाधिक पालनसे सबको लाभ हुआ। आगे चलकर जिन लोगोने इन्हें केवल अस्थायी रूपसे तात्कालिक लाभके लिए अथवा जनमतके दबावसे अनिच्छापूर्वक अपना लिया था, वे धीरे-धीरे उनकी उपेक्षा करने लगे। कुछ लोगोने इनकी खुली उपेक्षा की और कुछने छिपकर। यह प्रवंचना—कथनी और करनीका यह अन्तर जनताकी निगाहोसे छिपा न रह सका। उसका नेताओपरसे विश्वास उठ गया। नयी पीढी क्षुब्ध, निराश और शंकालु हो उठी। उसने विद्रोह कर दिया। नैतिक मूल्योके वर्तमान ह्रास और छात्रोकी बढती हुई अनुशासनहीनताकी यही व्याख्या है।

यहाँ एक उदाहरण देना अप्रासंगिक न होगा। प्रतिवर्ष ३० जनवरीको गाधी-जीकी निधन-तिथिपर राजघाट-स्थित समाधिके सामने सैनिक लोग अपनी बन्दूको-को जमीनपर उल्टा रखकर, औपचारिक ढंगसे खडे होकर गाधीजीके प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करते हैं। किसी व्यक्तिकी समाधि पवित्र वस्तु होती है। उसका सार्व-जनिक स्मारकके रूपमे उपयोग किया जाना उसकी पवित्रताको नष्ट कर देता है। एक ऐसे व्यक्तिकी स्मृतिके प्रति, जो इस संसारमे शान्ति और अहिंसाकी प्रतिष्ठाके लिए ही जीया और मरा, घातक हथियारोंको हाथमें लेकर सम्मान प्रकट करना क्रूर व्यंग्य ही कहा जायगा। कुछ वर्षों पूर्व गाधीजीके कुछ प्रमुख शिष्योने, जिनमें

विनोबाभावे भी शामिल थे, अपने हस्ताक्षरसे इसके विरुद्ध एक सार्वजनिक वक्तव्य दिया था। तत्कालीन उपराष्ट्रपति डाक्टर राधाकृष्णन्की सलाहसे यह वक्तव्य पत्रोंमें नहीं दिया जा सका। आगे चलकर सरकारकी ओरसे यह दलील दी गयी कि गांधी-समाधिपर सैनिक समारोहको रोक देनेसे सेनाका अपमान होगा। किन्तु जब मैंने एक बार जनरल करियाप्पासे इसकी चर्चा की तो वे स्तब्ध रह गये। उन्हें उक्त रस्मकी जानकारीतक न थी। वे इसे 'अपवित्र आचरण' मानते थे। मैं नहीं समझता कि इस रस्मको जारी रखनेसे दुनियामें हमारी कोई प्रतिष्ठा बढ़ती है। उस महान् व्यक्तिके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि देनेका एकमात्र तरीका यही है कि हम उनके बताये हुए रास्तेपर चलें। उनके भस्मके सामने उन चीजोंका प्रदर्शन करना जिनसे वे हमें दूर रखना चाहते थे कोई श्रद्धांजलि नहीं कही जा सकती।

इसके बाद मद्यनिषेधका सवाल आता है। यह हमारे संविधानमें अंकित है। ऐलन आक्टेवियन ह्यूम जिन्हें भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसका जनक माना जाता है, आबकारीको 'पापकी कमाई' मानते थे। उन्होंने बड़े ही आत्मिक क्षोभसे इसका विरोध करते हुए कहा था कि

> इसी अनुचित प्रणालीने पहले एक ऐसे वर्गका निर्माण किया, जिसका एक मात्र स्वार्थ अपने बंधुजनोंको शराब पीनेकी आदत डालकर, उन्हें नशेमें डुबाकर जुआ व्यभिचार चोरी आदि अनेक प्रकारके अपराधोंमें लिप्त कर देना है। आज यह प्रणाली इसी वर्गका समर्थन भी कर रही है।

अत्यन्त अनुभवी प्रशासकके रूपमें उन्होंने आगे कहा है कि

> हम अपनी प्रजाको तो भ्रष्ट करते ही हैं आर्थिक दृष्टिसे भी हमें उनकी बरबादीसे कोई लाभ नहीं होता। इस राजस्वके सम्बन्धमें यही कहा जा सकता है कि बुरी कमाई कभी फलती-फूलती नहीं। आबकारीसे मिलनेवाले प्रत्येक रुपयेके लिए कम-से-कम दो रुपये इस रूपमें खर्च हो जाते हैं कि जनतामें इससे अपराधकी प्रवृत्ति बढ़ती है जिसे दबानेकी सरकारको व्यवस्था करनी पड़ती है जो खर्चीली होती है।

भारतके परम आदरणीय नेता दादाभाई नौरोजी, गोखले, रानाडे और लाला लाजपत राय जैसे सभी महामान्य नेताओंने, जिन्हें हम अपने स्वातंत्र्य निर्माताओंके रूपमें आदर करते हैं नशीली दवाओं और शराबके व्यापारसे होनेवाली आयको अनैतिक बताया है और उसकी तीव्रतम आलोचना की है। स्वतंत्रता संग्रामके दौरान हजारों-लाखों माताओं बहनों और पुत्रियोंने शान्तिपूर्ण रीतिसे शराबकी दुकानोंके सामने गुण्डों द्वारा की गयी बेइज्जती और पुलिसकी ज्यादतियोंका

वहादुरीसे सामना करते हुए कारावास वरण किया है। किन्तु आज भारतसंघमे एकके वाद दूसरे सभी राज्य मद्य-निपेधको ताकपर रखते जा रहे है। इसके लिए वे यह वहाना वनाते है कि चूँकि मद्य-निपेधका कानून वना देनेपर भी लोग लुके-छिपे शराव पीते ही रहते है, अत इससे कानूनकी अवहेलना तो होती ही है, सरकारको राजस्वका नुकसान भी होता है। यह सविधानकी जघन्य अवहेलना है। मद्यनिपेध समाप्त करनेकी अपेक्षा जो लोग इस तरहकी लचर दलीलें पेश करते है, उन्हीको कान पकडकर वाहर निकाल देना चाहिए।

इससे भी वढकर दु खकी वात तो यह है कि गाधीजीके विचारोको वर्तमान परिस्थितियोके "अनुकूल" वनानेके लिए "गाधीकी पुनर्व्याख्या" के प्रयत्न किये जा रहे है। तव तो और आश्चर्य होता ह, जव ऐसे प्रयत्न वे सस्थाएँ करती है, जो गाधीजीके नामपर चलायी जा रही है। हालमें ही इस सववमे कई शोध-प्रवन्ध प्रस्तुत हुए है। एक ऐसे ही शाध-प्रवन्धमे वडी गम्भीरताके साथ यह स्थापना की गयी है कि (क) गाधीजीका अहिसापर जोर देना उनके लिए एक ऐसा "आग्रह" वन गया था, जिसके लिए कोई तर्क नही दिया जा सकता, (ख) साधनोको साध्यके अनुरूप होना चाहिए—इस सिद्धान्तको "अधश्रद्धाका विपय" नही वनाना चाहिए, (ग) अहिसा कभी हिसाकी जगह नही ले सकती, वह उसकी केवल पूरक वन सकती है, और (घ) गाधीजीका यह दावा करना कि अहिसा नाजी निरंकुशता और अणुवमको चुनौती स्वीकार कर सकती है, गलत है। इस दावेमे "सत्य उनकी पकडसे निकल गया।" इन विचारोपर कोई टिप्पणी न करना ही ठीक है।

जिस मौलिक आध्यात्मिक अनुशासन और नैतिक मान्यताओके कारण हमे आजादी मिली है, उनका मजाक उडाना आजकल एक फैशन वन गया है। हमने भौतिक प्रगतिकी पूजा देवताके रूपमे करनी शुरू कर दी है और अव हमे इस देवताका वरदान भी मिलने लगा है। नष्ट और वरवाद करना आसान होता है, किन्तु जनतामे नैतिक अभिवृत्तियोका निर्माण करना वहुत कठिन कार्य है। इसमे वहुत समय लगता है। हम उस घडीके समान होते जा रहे है, जिसकी चाभी धीरे-धीरे खत्म होती जा रही है। यदि हम अव भी सावधान नही हुए और वास्तविक शक्ति-निर्माणकी दिशामे कुछ भी न करके केवल कुर्सीके पीछे दौड़ते रहे तो एक दिन इस घडीका चलना वन्द हो जायगा। आजादीके आगमनसे जो आशाएँ वँधी है, यदि हम उन्हें व्यर्थ नही जाने देना चाहते तो हमे मौलिक आध्यात्मिक अनुशासनकी ओर वापस जाना होगा।

गांधीजीका यह मन्त्र भी उनकी किसी विरासतमे कम महत्त्वपूर्ण नही ह कि हरएक व्यक्तिमें असीम सम्भावना छिपी होती ह और सामाजिक एव राजनीतिक परिवर्तनकी कुजी उसके हाथमें ह । यदि वह दूसराका इतजार किये बिना अपने विश्वासके अनुरूप पूरी ईमानदारी, लगन और निष्ठाके साथ आचरण शुरू कर दे तो दूसरे ऐसे बहुतसे लोग उसका साथ देने लगेंगे जो उसीके समान चुप बैठे हुए यह इतजार कर रहे थे कि कोई आगे आये और नेतृत्व प्रदान करे तो हम भी उसके पीछे चलें । हमारी जनता और युवक बडे ही अच्छे दिलके लोग हैं । उन्हें केवल सही नेतृत्वकी जरूरत ह । मेरा विश्वास है कि यदि केवल हमारे चुने हुए नेतागण हाथम कुदाल और फावडे लेकर जनतामें उसी तरह फिरसे उतर पडें, जस वे असहयोग-आदोलनके समय धोती और कुर्तोमें निकल आये थे, और उसके साथ कधेसे कधा भिडाकर काम करने लगें, उसके बीच बसा ही जीवन व्यतीत करने लगें और जहाँतक सभव हो, उसके कष्टोंमें शामिल होते हुए उन चीजोका न ग्रहण करें, जो उसे सुलभ नही ह तो देशमें उत्साहकी एक ऐसी लहर आ सकती ह, जिसे देखकर लोग आश्चर्यचकित रह जायेंगे । हमारे भूतपूर्व प्रधान मत्री लालबहादुरशास्त्रीका इसमें बडा विश्वास था ।

लोग कहेगे कि अब तो हम लोग इस रास्तेपर इतनी दूर निकल आये हैं कि अब हम क्या कर सकते ह । इसका जवाब यही ह कि हमें पीछे मुडना शुरू कर देना चाहिए और उसी जगहपर फिर पहुँचकर, जहाँसे हमने गलत दिशा पकडी थी, आगे बढना शुरू करना चाहिए । नही तो इस गलत रास्तेपर हम जितना ही आगे बढते जायेंगे, उतना ही खराब होगा । गाधीजी हमसे कहा करते थे कि हमारा दिन उसी क्षण शुरू होता है, जिस क्षण हम जाग जाते ह ।

यदि हममें तत्काल कोई निर्णायक कदम उठानेकी शक्ति नही ह तो हम कम-से-कम इतना तो कर ही सकते हैं कि स्वय अपने और दूसरोंसे झूठ बोलना छोड दें । हमें अपनी गलती साफ-साफ कबूल कर लेनी चाहिए । तरह-तरहके बहाने बनाकर अपनी दुर्बलताको गुणके रूपमें प्रदर्शित करना बहुत गलत है । अपनी कमजोरीको स्वीकार कर लेनेसे सभव ह कि किसी दिन हममें अपनी लगन गहराई और ईमानदारीके अनुरूप उससे उद्धार पा जानेकी शक्ति भी पैदा हो जाय किंतु यदि हमने ऐसा नही किया और बराबर बहानोका ही सहारा लेते रह तो हमारे उद्धारकी सारी सम्भावना ही विनष्ट हो जायगी ।

सी० राजगोपालाचारी

हिंसा हृदयमें होती है

महात्माजीके साथ अपने घनिष्ठ संबंधके बावजूद यह एक विलक्षण तथ्य है कि जब मैं उनके बारेमे कुछ लिखना चाहता हूँ तो इसमे बडी असमर्थताका अनुभव करता हूँ। मेरा चित्त अपनी सामर्थ्यके प्रति शंकालु हो उठता है। उनके धर्म-निरपेक्ष प्रशंसकोने उनके प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए कहा है कि उन्होने ससारको संघर्षोके समाधानका एक नया रास्ता दिखाया है। उन्होने बताया है कि सारे संघर्ष हिंसा द्वारा न निवटाकर सत्य और प्रेम द्वारा निवटाये जा सकते है। वे प्राय. इस तरीकेको एक प्रकारकी "टेकनीक" कहते है। जैसा कि धर्म-निरपेक्षवादियोने महात्माको समझा है, उनका छद्म सिद्धान्त इस टेकनीकको अप्रमाणित कर देता है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि हमे प्रेम और सत्यकी तहमें जाकर यह पता लगाना चाहिए कि वस्तुत: वह कौन-सी चीज है, जो गांधीजीके समाधानको व्यावहारिक वास्तविकताका रूप दे सकती है।

विदेशोके गण्यमान्य नेताओने गाधीजीकी प्रशंसा करते हुए कहा है कि उन्होने अन्याय और बुराईके विरुद्ध सघर्ष करनेके लिए अहिंसापर आधृत एक नयी प्रभावकारी 'टेकनीक' का विकास किया है। यह धारणा ही बडी भ्रामक और निराशाजनक है कि गाधीजीने हमे किसी 'टेकनीक' की शिक्षा दी है। गाधीजीके पहले हम जो कुछ हिंसा और बडी परेशानियोसे प्राप्त करनेका प्रयत्न करते थे, उसे प्राप्त करनेके लिए अहिंसाके रूपमे गाधीजीने हमे कोई सुविधाजनक तरीका उस रूपमे नही दे रखा है, जिस रूपमे आज हम खाना पकानेके लिए कोयला या लकडीका इस्तेमाल न करके बिजलीका इस्तेमाल करते है। यह ठीक है कि गांधी-जीकी 'टेकनीक' किसी बुराईका सामना करनेके लिए प्रेम और सत्यको प्रस्तुत करती है किन्तु प्रेम और सत्य बाजारमें नही बिकते। हम उन्हे उसी तरह नही प्राप्त कर सकते, जैसे हम बन्दूक और पिस्तौल प्राप्त कर लेते है। वे केवल ईश्वर-

गांधीजीका यह मन्त्र भी उनकी शिक्षा विरासतमें कम महत्त्वपूर्ण नहीं है कि हरएक व्यक्तिमें असीम सम्भावना छिपी होती है और सामाजिक एवं राजनीतिक परिवर्तनकी कुंजी उसीके हाथमें है। यदि वह दूसरोंका इंतजार किये बिना अपने विश्वासके अनुरूप पूरी ईमानदारी, लगन और निष्ठाके साथ आचरण शुरू कर दे तो दूसरे ऐसे बहुतसे लोग उसका साथ देने लगेंगे जो उसीके समान चुप बैठे हुए यह इंतजार कर रहे थे कि कोई आगे आये और नेतृत्व प्रदान करे तो हम भी उसके पीछे चलें। हमारी जनता और युवक बड़े ही अच्छे दिलके लोग हैं। उन्हें केवल सही नेतृत्वकी जरूरत है। मेरा विश्वास है कि यदि केवल हमारे चुने हुए नेतागण हाथमें कुदाल और फावड़े लेकर जनतामें उसी तरह फिरसे उतर पड़ें जैसे वे असहयोग-आन्दोलनके समय धोती और कुर्तोंमें निकल आये थे, और उनके साथ कंधेसे कंधा भिड़ाकर काम करने लगें, उसके बीच वैसा ही जीवन व्यतीत करने लगें और जहाँतक संभव हो, उसके कष्टोंमें शामिल होते हुए उन चीजोंको न ग्रहण करें जो उसे सुलभ नहीं हैं तो देशमें उत्साहकी एक ऐसी लहर आ सकती है, जिसे देखकर लोग आश्चर्यचकित रह जायेंगे। हमारे भूतपूर्व प्रधान मंत्री लालबहादुरशास्त्रीका इसमें बड़ा विश्वास था।

लोग कहेंगे कि अब तो हम लोग इस रास्तेपर इतनी दूर निकल आये हैं कि अब हम क्या कर सकते हैं। इसका जवाब यही है कि हमें पीछे मुड़ना शुरू कर देना चाहिए और उसी जगहपर फिर पहुँचकर जहाँसे हमने गलत दिशा पकड़ी थी आगे बढ़ना शुरू करना चाहिए। नहीं तो इस गलत रास्तेपर हम जितना ही आगे बढ़ते जायेंगे, उतना ही खराब होगा। गांधीजी हमसे कहा करते थे कि हमारा दिन उसी क्षण शुरू होता है जिस क्षण हम जाग जाते हैं।

यदि हममें तत्काल कोई निर्णायक कदम उठानेकी शक्ति नहीं है तो हम कम-से-कम इतना तो कर ही सकते हैं कि स्वयं अपने और दूसरोंसे झूठ बोलना छोड़ दें। हम अपनी गलती साफ-साफ कबूल कर लेनी चाहिए। तरह-तरहके बहाने बनाकर अपनी दुर्बलताको गुणके रूपमें प्रदर्शित करना बहुत गलत है। अपनी कमजोरीको स्वीकार कर लेनेसे संभव है कि किसी दिन हममें अपनी लगन, गहराई और ईमानदारीके अनुरूप उससे उद्धार पा जानेकी शक्ति भी पैदा हो जाय, किंतु यदि हमने ऐसा नहीं किया और बराबर बहानोंका ही सहारा लेते रहे तो हमारे उद्धारकी सारी सम्भावना ही विनष्ट हो जायगी।

सी० राजगोपालाचारी

हिंसा हृदयमें होती है

महात्माजीके साथ अपने घनिष्ठ संबंधके बावजूद यह एक विलक्षण तथ्य है कि जब मैं उनके बारेमे कुछ लिखना चाहता हूँ तो इसमे बडी असमर्थताका अनुभव करता हूँ। मेरा चित्त अपनी सामर्थ्यके प्रति शंकालु हो उठता है। उनके धर्म-निरपेक्ष प्रशंसकोने उनके प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए कहा है कि उन्होने संसारको संघर्षोके समाधानका एक नया रास्ता दिखाया है। उन्होने बताया है कि सारे संघर्ष हिंसा द्वारा न निबटाकर सत्य और प्रेम द्वारा निबटाये जा सकते हैं। वे प्राय. इस तरीकेको एक प्रकारकी "टेकनीक" कहते हैं। जैसा कि धर्म-निरपेक्षवादियोने महात्माको समझा है, उनका छद्म सिद्धान्त इस टेकनीकको अप्रमाणित कर देता है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि हमें प्रेम और सत्यकी तहमें जाकर यह पता लगाना चाहिए कि वस्तुत. वह कौन-सी चीज है, जो गाधीजीके समाधानको व्यावहारिक वास्तविकताका रूप दे सकती है।

विदेशोके गण्यमान्य नेताओने गांधीजीकी प्रशंसा करते हुए कहा है कि उन्होने अन्याय और बुराईके विरुद्ध संघर्ष करनेके लिए अहिंसापर आधृत एक नयी प्रभावकारी 'टेकनीक' का विकास किया है। यह धारणा ही बडी भ्रामक और निराशाजनक है कि गाधीजीने हमे किसी 'टेकनीक' की शिक्षा दी है। गाधीजीके पहले हम जो कुछ हिंसा और बड़ी परेशानियोसे प्राप्त करनेका प्रयत्न करते थे, उसे प्राप्त करनेके लिए अहिंसाके रूपमे गाधीजीने हमे कोई सुविधाजनक तरीका उस रूपमे नही दे रखा है, जिस रूपमे आज हम खाना पकानेके लिए कोयला या लकडीका इस्तेमाल न करके बिजलीका इस्तेमाल करते हैं। यह ठीक है कि गांधी-जीकी 'टेकनीक' किसी बुराईका सामना करनेके लिए प्रेम और सत्यको प्रस्तुत करती है किन्तु प्रेम और सत्य बाजारमें नही बिकते। हम उन्हें उसी तरह नही प्राप्त कर सकते, जैसे हम बन्दूक और पिस्तौल प्राप्त कर लेते हैं। वे केवल ईश्वर-

निष्ठासे ही प्राप्त होन हैं।

हम लागाने पशुओं द्वारा शक्ति प्राप्त करनके स्थानपर वाष्पशक्तिका आविष्कार कर लिया ह। इसी तरह और विकास कर हमन वाष्पशक्तिका तलके इधन से बदल लिया ह और तेलके स्थानपर भी बिजलीका प्रयोग करन लग हैं। शक्तिके इन तमाम परिवर्तित रूपोंके आधारपर महात्मा गाधीकी टक्नीक को नहा समझा जा सकता। नतिक शक्ति जिसे गाधीजी आत्मशक्ति कहना पसद करत थे, धम और सच्ची धार्मिक निष्ठासे ही प्राप्त हो सकती ह। गाधीजीन मृत्युपयन्त शक्तिके इसी स्रातपर बल दिया ह। उनके बड से-बड अनुयायियो द्वारा भी सुविधा अथवा रक्तपात बचानेकी दृष्टिसे जिस अहिंसाका प्रयोग किया जाता ह, वह गाधीजीकी अहिंसा नही ह, बल्कि हिंसाका ही एक रूप ह। अहिंसाका केवल यह अथ नही होता कि लाठी, छुरा या पिस्तौलका सहारा न लिया जाय। हमें अहिंसाके वास्तविक स्वरूपका ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। यह स्वरूप ह भगवान्की सर्वोच्च सत्ताम दृढ निष्ठा। जहाँ इस निष्ठाका अभाव हागा, वहाँ अहिंसा विफल हो जायगा। यह सभी लोग जानते ह कि गाधीजीने जिस अहिंसक मागका निर्देश किया था उसम भौतिक शस्त्रास्त्रोंका प्रयाग निषिद्ध ह। किन्तु यह सब लागाका नही मालूम ह कि भौतिक हिंसाके प्रयोगसे दूर रहत हुए भी यदि हमारे हृदयमें घृणा और विषकी ज्वाला जल रही ह ता यह गाधीजीकी अहिंसा नही कही जायगी।

यह कहना आसान ह कि प्रेम और सत्यके रूपम गाधीजीने हम घृणा, झूठ और हिंसा जसे शत्रुओंके विरुद्ध सघष करनके लिए नये शक्तिशाली शस्त्र दिय ह। यह कहना भी आसान ह कि प्रम और सत्य ससारके तमाम जातीय आर्थिक और राजनीतिक सघर्षोंका हल कर सकते ह और ये ही इनके समाधानके एक मात्र तरीके ह, किन्तु व्यवहारम इसके सबधमें एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठ खडा हाता ह। जिस व्यक्तिने हमारे प्रति ऐसा व्यवहार किया ह कि हम उसके प्रति घृणा किये बिना रह ही नही सकत, उसके प्रति हम प्रम कसे कर सकते ह? हब्शी गोरेको कसे प्रेम कर सकता ह? पाकिस्तानी देशभक्त भारतीयोंको कसे प्रेम कर सकता ह? भारतीय देशभक्त पाकिस्तानियोंको कसे प्रम कर सकत ह? जहाँ प्रेम विरोधी भावनाके लिए पर्याप्त कारण मौजूद हों, वहाँ अकारण ही प्रेम नहा पदा हा सकता। यदि हम गाधीजीके तरीकेको एक नि सार सिद्धान्त और निराशाजनक टेक्नीक बन जानेसे बचाना चाहते हैं तो हम यह मान लेना चाहिए कि प्रेम परमात्मा और मनुष्योंके हृदयपर स्थापित उसकी सर्वोच्च प्रभुसत्ताम दृढ

निष्ठासे ही पैदा हो सकता है। जैसा कि शेक्सपियरने दिखाया है जब मिस्रके मार्क ऐण्टोनीको पता चला कि एनावार्वस शत्रुसे जा मिला है तो उसने इसके बदले अपना खजाना उसके पास भेज दिया। इससे एनावार्वस शर्मसे जमीनमे गड गया और पश्चात्तापकी अग्निसे जलने लगा। विक्टर ह्यूगोने भी हृदय परिवर्तनकी एक ऐसी ही मार्मिक घटनाका उल्लेख अपने एक उपन्यासमे किया है जब पादरीको मालूम हुआ कि जीन वालर्जाननें उसका एक चाँदीका मोमदान चुरा लिया है तो उसने उसके पास अपना दूसरा मामदान भी भेज दिया। इससे उसका तुरन्त हृदय-परिवर्तन हो गया।

ईश्वर. सर्वभूताना हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानिमायया ॥

(भगवद्गीता, १८, ६१)

गीताने हमे उपर्युक्त मन्त्रमे बताया है कि भगवान् प्रत्येक प्राणीके हृदयमे निवास करता है और प्राणिमात्र उसीकी शक्तिसे ठीक उसी तरह संचालित होते है जैसे यन्त्रपर रखी हुई कोई वस्तु संचालित होती है। सब प्राणियोके हृदयमें परमात्माकी उपस्थितिका रहस्य ही सत्याग्रहका रहस्य है। यह कोई नयी टेकनीकके प्रयोगकी बात नही थी, बल्कि प्राचीन आध्यात्मिक शिक्षाको ही ग्रहण करने और उसकी सत्यतामे दृढ निष्ठा रखनेकी बात थी। सत्याग्रह नास्तिको और सन्देहालु लोगोके लिए नही है। यह उन वैज्ञानिकोके लिए भी नही है जो इस दृश्यमान जगत् और इसमे दिखाई पडनेवाली वस्तुओंके सतर्क वर्गीकरणसे ही सतुष्ट रहते है। यदि सत्याग्रहको हम एक सुन्दर फाउन्टेनपेन मान ले तो केवल देखनेमें सुन्दर लगनेसे कुछ नही होगा। यदि उसमे स्याही न हो या हम स्याहीकी जगह पानी भर दे तो उससे कुछ लिखा नही जा सकता। गाधीजीको जन्मशती मनाते हुए हमे उनके वास्तविक उपदेशो और उनके कार्योसे मिलनेवाली सच्ची शिक्षापर मनन करना और उसे अपने जीवनमे उतारनेका प्रयत्न करना चाहिए। हमे केवल यह न समझना चाहिए कि गाधीजी एक ऐसे आविष्कारक मात्र थे जिन्होने हमारे लिए एक पुराने कष्टदायक तरीकेके स्थानपर कोई नया सुविधाजनक तरीका खोज निकाला है। गाधीजी कोई आविष्कर्त्ता नही थे, वे भगवान्के भक्त थे। इसीलिए उन्हे महात्मा कहा जाता था।

सी० रामचन्द्रन्

गांधीका मूल स्वरूप

गांधीका व्यक्तित्व बहुमुखी था। उनके जीवनकी बाह्य सरलता और अहिंसाके प्रति उनकी अविरल और घनीभूत निष्ठाके कारण उनके अनेक विचारों अनुशासनों निष्ठाओं और महत्त्वाकांक्षाओंकी वे गंभीर धाराएँ जो उनके अन्दर उद्वेलित होती रहती थीं प्रायः बड़े प्रभावकारी ढंगसे आवृत रह जाया करती थीं। वे एक साथ सन्त और क्रान्तिकारी, राजनीतिज्ञ और समाजसुधारक, अर्थशास्त्री और धर्मनिष्ठ शिक्षाशास्त्री और सत्याग्रही तो थे ही धर्म और बुद्धिवाद दोनोंके प्रति उनकी समान निष्ठा थी। वे हिन्दू होते हुए भी सर्वधर्मसमन्वयी थे, राष्ट्रवादी होते हुए भी अन्तरराष्ट्रवादी, व्यवहारकुशल कर्मनिष्ठ व्यक्ति होनेके साथ स्वप्नद्रष्टा चिन्तक भी थे। वे विरोधी प्रवृत्तियोंके महान् संराधक थे, फिर भी इसकेलिए उन्हें किसी प्रकारके तनावका अनुभव नहीं करना पड़ता था और न उनके व्यक्तित्वमें कोई कृत्रिमता ही आती थी। वे प्रेमके आगार थे किन्तु उनमें भावुकता नाममात्रको न थी। वे निःसंकोच भावसे यह तथ्य स्वीकार करते थे कि दो परस्पर विरोधी दिखाई देनेवाली प्रवृत्तियोंमें भी समन्वयके रूपमें सत्य निहित हो सकता है। उनका अन्तर्निहित समन्वय इतना आश्चर्यजनक था कि उसके मन्त्रमुग्धकारी प्रभावके कारण अबतक किसीने उनके जटिल और भव्य व्यक्तित्वके स्पष्ट विश्लेषणका प्रयत्न ही नहीं किया है।

एक बार कवि रवीन्द्रनाथ टगोरने कहा था कि ऊपरसे सरल और सीधे दिखाई देनेवाले गीतमें अनन्त प्रयास और आत्मसंयमकी अत्यन्त जटिल प्रक्रिया काम करती रहती है। एक आत्मोल्लासपूर्ण गीत गानेवाले महान् गायककी संगीत साधनापर यदि हम ध्यान दें तो हम उसके उस कठिन श्रमका कुछ अंदाज लगा सकते हैं जो उसे संगीत शिक्षण-कालमें प्रतिदिन करना पड़ता है। गांधीजीका जीवन अनवरत साधना और तपश्चर्याकी एक महान् गाथा ही है। उनके समग्र

व्यक्तित्वकी सतत वर्धमान परिपूर्णताके पीछे अनेक सत्प्रवृत्तियोका वह क्रमश. सचयन है जिसने उनके जीवनका निर्माण किया है। एक सावारण व्यक्तिसे उठकर वे हमारे इतिहासके अद्वितीय महात्मा वन गये, किन्तु उनके इस अद्‌भुत विकासके पीछे कोई भी ऐसी वात नही है जिसे रहस्यमय या चमत्कारी कहा जा सके। उनका जीवन हम सवके लिए एक खुली पुस्तकके समान है। हम स्पष्ट रूपसे देख सकते है कि वे किस तरह सत्यके अनन्त टुकडोको एकत्रकर उन्हे अपने जीवनकी आगमे गलाकर एकाकार करते हुए एक-एक कदम आगे वढ़ते गये है। हम यह जान सकते है कि उन्होने अपनी सत्यकी साघनामे किस तरह तथ्योपर हमेशा दृष्टि रखी है, उनके वास्तविक महत्त्वको समझा है और जिस सदुद्देश्यको उन्होने एक वार ग्रहण किया उसको पूर्तिके लिए वे किस तरह प्राणपणसे जुटे रहे फिर चाहे उसका जो भी परिणाम हो। वे अपनी गलतियोके लिए कोई भी कष्ट या दण्ड भुगतनेको हमेशा तैयार रहते थे। वे हमेशा खुले दिल दिमागसे वरावर आगे वढते रहते थे और कभी किसी वाघासे वीचमे रुक नही जाते थे। अपना खोया हुआ लक्ष्य पुन. प्राप्त करते हुए वे सदैव निर्भयता और समर्पणकी शौर्यपूर्ण भावनाके साथ सत्यपर दृढ वने रहते थे और उसे प्राप्त करनेके लिए किसी भी कीमतपर निरन्तर सचेष्ट रहा करते थे। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि वे जन्मजात महात्मा नही थे। उन्होने अपनी उस तपस्यासे यह पदवी प्राप्तकी थी जिसकी वे स्वयं साकार प्रतिमा वन चुके थे। एक साघारण व्यक्तिकी स्थितिसे उठकर उन्होने अपनी महान् साघनासे असाधारण ऊँचाई प्राप्त करली थी। वे भगवान् नही थे लेकिन अपनी तपश्चर्यासे परम भागवत पुरुष वन गये थे। गाघी स्वयं यह जानते थे इसीलिए उन्होने अपनी आत्मकथाको "सत्यके साथ मेरे प्रयोगोकी कहानी" का नाम दिया है। प्रयोग उनके जीवनका एक गंभीरतम भाव था। उन्होने आहार, स्वास्थ्य, चिकित्सा, वस्त्र और वेशभूषासे लेकर राजनीति और अर्थशास्त्र, शिक्षा और सुधार, नैतिकता और आध्यात्मिकता तथा सघटन और क्रान्ति तकके सभी क्षेत्रोमे प्रयोग किये। उन्होने तर्कसंगत विवेक और साहसकी साधनासे प्रत्येक दिशामे नवीन उपलब्धियोके मार्ग मुक्त किये फिर भी उनकी कल्पना इतनी विस्तृत थी और मस्तिष्क इतना गभीर था कि वे हमेशा सत्यको असत्यसे, वास्तविकको अवास्तविकसे तथा सफलताको विफलतासे अलग करनेमें समर्थ वने रहे और उन्होने अपने समस्त लक्ष्यो एवं प्रयत्नोको अपने व्यक्तित्वकी आन्तरिक एकतामे पूर्णत. नियोजित कर दिया।

जव हम उनके विचारो और कार्योके अद्‌भुत वैविध्यपूर्ण प्रतिरूपपर विचार

करते हैं तो उनकी एक ऐसी अद्वितीय वस्तु उभरकर हमारे सामने आ जाती है जो उन्हें विश्वके नेतृत्वमें अग्रणी बना देती है। यह एक अद्वितीय प्रयोगशालामें की गयी एक अद्वितीय खोज थी। उनकी वह प्रयोगशाला दक्षिण अफ्रीका था और वह खोज सत्याग्रह। गांधीको ऐतिहासिक कालचक्रने ही दक्षिण अफ्रीकाकी प्रयोगशालामें ला पटका था। दक्षिण अफ्रीकाकी तत्कालीन स्थिति इतिहासमें स्वयं अभूतपूर्व थी। वहाँ केवल यही स्थिति नहीं थी कि अल्पसंख्यक गोरी सरकार लाखों करोड़ों अश्वेत लोगोंको स्थायी रूपसे गुलाम बनाये रखनेके प्रयासमें पाशविक स्तरपर उतर आयी थी वहाँ की दासप्रथा इस मानमें बेजोड़ थी कि इसके समर्थनमें वहाँ विकृत विज्ञानका सहारा लेकर एक नये तत्त्वदर्शन और नीतिशास्त्रकी ही रचना कर डाली गयी थी। उस समय दासता संसारके लिए कोई नयी वस्तु नहीं थी किन्तु दक्षिण अफ्रीकामें दासताको जो यह एक नया दर्शन दिया गया था यह उसकी निराली विशेषता बन गयी थी। कुछ मजबूत लोग बहुसंख्यक दुर्बलोंपर अपना प्रभुत्व कायम रखनेके लिए अपने विचारों और कार्योंमें कैसी दानवी दक्षता प्रदर्शित कर सकते हैं इसका नमूना दक्षिण अफ्रीकामें मिल रहा था। वहाँ किसी प्रकारका विद्रोह पूर्णत असंभव था। विद्रोहका विचारतक कानूनकी दृष्टिमें देशद्रोह माना जाता था। अल्पसंख्यक गोरी सरकार केवल शस्त्रोंसे ही नहीं विकृत विधिविधानों संस्थाओं और दर्शनसे भी उत्पीड़नके लिए सिरसे पैरतक सज्ज एवं सन्नद्ध थी। दासताको वहाँ मनुष्यके लिए निर्मित ईश्वरीय विधानका अंग माना जाता था और बाइबिलके ‘यूटेस्टामेण्ट’के उपदेशोंको तोड़ मरोड़कर काला और पीला बनाकर इसके समर्थनमें पेश किया जाता था। बाइबिल २० शताब्दियोंसे यह शिक्षा देता आ रहा था कि भगवानने मनुष्यको अपना प्रतिरूप बनाया है किन्तु दक्षिण अफ्रीकाके क्रूर निरंकुश शासक कहा करते थे कि बाइबिलका यह उपदेश केवल गोरोंपर लागू होता है। वहाँकी दुर्बल और पराधीन अश्वेत जनता शस्त्रास्त्र शिक्षा संघटन और किसी भी प्रकारकी सत्तासे पूर्णत वञ्चित थी। दासताकी इस दुर्भेद्य चहारदीवारीमें वह किसी प्रकार मन्थन करती हुई घुट घुटकर जिंदा थी। इस निष्ठुर दासताको स्वीकार करनेपर ही उसे किसी तरह भोजन वस्त्र आश्रय मिल सकता था किन्तु किसी प्रकारके आधुनिक मानवीय अधिकारोंकी बात ही क्या उसे इतना-सा भी अधिकार नहीं प्राप्त था कि पति अपनी पत्नीके साथ अथवा माँ अपने बच्चोंके साथ भी स्वच्छन्दतापूर्वक रह सके। वे इस विलगावकी सम्भावनाकी आशंकामें जानवरोंकी भाँति जिन्दगी बसर कर रहे थे। यदि उन्होंने इस दायरेके बाहर जानेके लिए जरा भी हाथ पैर चलाया तो

उन्हें भीषण उत्पीड़न और मौतका सामना करना पडता था। पूरा देश एक ऐसा भयानक कारागृह बन गया था जिसकी एक नयी सभ्यताके अन्तर्गत बडी सावधानीसे देखभालकी जारही थी।

इतिहासने दासताके इसी कारागृहमें गाधीको ला फेंका। उन्होने लदनमे शिक्षा प्राप्त की थी और वहाँके वातावरणमे रह चुके थे। उन्होने मिडिल टेम्पुल-से बैरिस्टरी पास की थी। वे एक भारतीय अभिजात परिवारमे पैदा हुए थे। उनके रक्तमे इस परिवारकी महान् और प्राचीन परम्पराके संस्कार मिले हुए थे। जिस समय वे अफ्रीका पहुँचे, वे अनुभवहीन युवकमात्र थे। ऐसी स्थितिमे वे दक्षिण अफ्रीकाके आतंक-राज्यसे घबराकर भाग खडे हो सकते थे किन्तु इसी स्थितिमे गाधीको अपनी महानताके प्रथम प्रकाशका साक्षात्कार हुआ। वे वहाँसे भागे नही बल्कि उस आतंकसे आँखें मिलाकर उसके मुकाबले दृढतासे खडे हो गये। क्या हम विनम्रतापूर्वक यह नही कह सकते कि इसी स्थितिमे इतिहासमे भगवान् प्रकट हो गये और उसने गाधीमे अन्यायके विरुद्ध चट्टानी दृढताके साथ खडा होनेकी आन्तरिक प्रेरणा जगा दी? उनके पीछे केवल अशिक्षित, गरीब, कमजोर और असघटित भारतीय "कुलियो" की सेना थी और गुलामोंके उस कैदखानेकी कुंजी रखनेवाले घमण्डी गोरे गाधीको कुली बैरिस्टरकी सज्ञा दे चुके थे। गाधीके सामने इतिहासकी यही चुनौती थी कि कमजोर मजबूतोसे लडते हुए सफलताकी कोई आशा कर सकता है या नही।

समूचे इतिहासमे कमजोरो और मजबूतोकी लडाईमे कमजोर बराबर या तो आत्मसमर्पणके लिए बाध्य हुआ है या नष्ट हो गया है। गाधीने अपनेसे यही सवाल पूछा कि क्या यह स्पष्ट दिखाई देनेवाला अनिवार्य ऐतिहासिक तथ्य कभी सत्य, न्याय और प्रेमके ईश्वरीय विधानका प्रतिनिधित्वकर सकता है। यहाँ फिर गाधीकी आत्मामें भगवान्‌की ज्योतिका प्रवेश हुआ और वे यह तुरन्त समझ गये कि उनके चारो ओर ईश्वरीय विधानका निषेध हो रहा है और इसीलिए यह इतिहासका भी निषेध है। यह समझते ही गाधीकी सारी द्विविधा जाती रही और वे उस शस्त्रको, जिसमे कमजोर मजबूतोके विरुद्ध व्यक्तिगत रूपमे नही, बल्कि सामूहिक रूपमे सफलतापूर्वक संघर्ष कर सकता है, खोज निकालनेके लिए हमारे युगके सबसे बडे प्रयोगमे कूद पडे।

यहाँ हम इस आश्चर्यजनक प्रयोगके कुछ मूल उपादानोपर विचार करेगे। पहला उपादान गाँधीजीकी अटूट भगवन्निष्ठा है। गाधीजीके लिए परमात्मा ही सत्य, प्रेम और न्याय था। सत्य और न्याय अवधारणाएँ है किंतु प्रेम या घृणा ही

उनकी पारस्परिक क्रिया प्रतिक्रियाकी प्रेरणा देती है। दक्षिण अफ्रीकामें घृणा अन्याय और असत्यको स्थायी बनानेके लिए क्रियाशील थी। सवाल यह था कि क्या उसी क्षेत्रमें सामुदायिक मानव-जीवनमें सत्य और न्यायकी प्रतिष्ठाके लिए प्रेमको सक्रिय नही बनाया जा सकता ? गाधीजीको अपनी आन्तरिक गहराइयोंसे इस प्रश्नका उत्तर मिल गया। उनके अन्तर्मनने कहा कि यदि संसारमें परमात्मा और मनुष्यको एक साथ रहना है तो यह अवश्य हो सकता है नही तो दूसरी सूरतमें परमात्माका अस्तित्व ही समाप्त हो जायगा और मनुष्य जिन्दगीके जगलमें अकेला ही भटकता रह जायगा, लेकिन यह कभी नही हो सकता। गाधीकी यही चिंतन-पद्धति थी। वे अपने जीवनके अन्ततक इसी दृष्टिसे सोचते रहे। दूसरा सवाल यह था कि गुलामोंके सामूहिक जीवनमें प्रेमको कैसे सक्रिय बनाया जाय ? इसका पहला उत्तर यह था कि प्रेमको घृणाकी अपेक्षा बिलकुल भिन्न प्रकारसे कार्यान्वित करना चाहिए। और जगहोंकी तरह दक्षिण अफ्रीकामें भी दमन, निदलन उत्पीडन अत्याचार हिंसा, जेल और गोली घृणाके उपकरण थे। ये प्रेमके उपकरण नही हो सकते। सवाल यह उठता है कि आखिर प्रेमके उपकरण क्या हो सकते हैं ? शक्तिशालियोंके विरुद्ध दुबलोंके सघर्षमें गाधीने घृणाके हथियारोंका बहिष्कार करके प्रेमके हथियारोंकी खोज शुरू की। उन्हें एकके बाद एक नये हथियार मिलते गये। दुबल आज्ञापालनसे इनकार कर दे, वह किसी भी हालतमें आत्मसमर्पण न करे और दूसरोंको कष्ट न पहुँचाकर स्वय कष्ट झेलनेको तैयार रहे। प्रेमके शस्त्र ऐसे हों जो घृणाके शस्त्रोंको यथासभव बेकार कर दें और सबसे बडी बात यह है कि सामूहिक रूपमें गुलामोंकी एकता बराबर बनी रहे। यह हमेशा याद रखना चाहिये कि गाधीके सामने प्रेमके शस्त्रोंको सामूहिक रूपमें प्रयोग करनेकी चुनौती थी। गाधीके लिए यह बिलकुल स्पष्ट था कि यह सारी लडाई अनिवार्यत अहिंसक रूपमें ही लडनी है। इतना ही नही पूरे जनसमुदायको एकजुट होकर अहिंसक ढगसे कार्य करना है। गाधी सख्याबलके महत्वको अच्छीतरह समझते थे। उन्होंने सन्तभावसे इस तथ्यकी उपेक्षा नही की। इस दृष्टिसे वे बिल्कुल आधुनिक विचारक थे। उन्होने तत्काल अनुभव कर लिया कि इस अहिंसक लडाईमें पहला कदम स्वय उन्हें ही उठाना होगा। पहले वे ही अन्यायपूर्ण कानूनोंकी अवहेलना करेंगे और उसके बाद ही अपनी अनुयायी जनताको अवहेलनाके लिये प्रेरित करेंगे। उन्होने यह समझ लिया कि अल्पसख्यक सरकार अश्वेत जनताको दबा रखनेके लिए ही क्रूर हिंसाका प्रयोग करती है। उसे यह विश्वास है कि दमन द्वारा ही लाखो-करोडों अश्वेत जनता, जिसमें भारतीय

भी शामिल है, विना चूं-चपड किये हुए उनका आज्ञापालन करनेके लिए विवश हो जायगी । वे आतंक द्वारा आज्ञापालन करवाना चाहते थे । गाधीजीने इस स्थितिका निदान इस रूपमे किया कि उन्होने आतंकके मुकावले निर्भयता और आत्मसमर्पणके मुकावले आज्ञोल्लंघनको प्रोत्साहित किया । इस प्रकार गाधी अपने प्रयोगके इस उपादानपर पहुँच गये कि इस स्थितिमे आज्ञोल्लंघन ही एकमात्र कर्त्तव्य वन जाता है । यहाँ भी यह सवाल उठता है कि क्या आज्ञोल्लघन हिसक नही हो सकता ? गाधीने अन्वेषण द्वारा यह जान लिया कि हिंसाके कारण आज्ञोल्लंघन दुर्वल पड जाता है क्योकि इससे अभिक्रम उन निरंकुश अत्याचारियोके हाथमे चला जाता है जो हिंसाकी कलामे माहिर है । यदि आज्ञोल्लघन अहिंसक होगा तो उसका प्रभाव वहुत वढ जायगा । इससे अत्याचारियोकी हिंसा एक हद-तक कम की जा सकेगी और उसी हदतक अहिंसा प्रभावकारी वन जायगी । इस तरह गाधीजीने तीव्र अहिसक आज्ञोल्लंघनका मार्ग खोज निकाला । लेकिन आज्ञोल्लघनको आत्मसमर्पणसे विलकुल दूर रखना आवश्यक है । यह कैसे हो सकता है ? यदि अत्याचारियोकी आज्ञाकी अवहेलना कर दी जायगी तो इसका परिणाम क्या होगा ? स्पष्ट है कि वे गुलामोको सजा देने लगेगे, उन्हे मारेंगे-पीटेंगे, जेलोमे ठूस देंगे और गोलियोका निशाना बनायेगे । गाधीजीने अपने अनुयायियोसे कहा कि अत्याचारी चाहे जो कुछ करें तुम्हे हर सूरतमे उनकी आज्ञाकी अवहेलना जारी रखनी है । वे जवर्दस्ती आज्ञा मनवानेके लिए भरसक कोई भी अत्याचार उठा न रखेंगे किंतु वे अहिसक ढंगसे प्रतिरोध करनेवाले पूरे जन-समुदायका मूलोच्छेद नही कर सकते । प्रतिरोधियोकी संख्या जितनी वडी होगी परिणाम उतना ही अच्छा होगा । लेकिन यहाँ यह सवाल उठता है कि क्या दुर्वल लोग वडी सख्या-मे अत्याचारियोकी आज्ञाकी अवहेलना करनेका साहस दिखायेंगे और इसके भयानक परिणाम भुगतनेके लिए तैयार होगे । यहाँ आकर गाधीका मस्तिष्क क्षणभरके लिए विचलित हो उठा, किंतु उन्होने तुरन्त ही अपने प्रयोगके दूसरे महत्त्वपूर्ण उपादानका आविष्कार कर डाला । उन्होने देखा कि हर व्यक्तिमे एक आत्मा होती है । भौगोलिक और ऐतिहासिक परिस्थितियोके कारण मनुष्य-मनुष्यमे चाहे जितना भी अन्तर क्यो न आ जाय, किंतु मनुष्य मूलरूपमे हजारो वर्षसे इस पृथ्वीपर मनुष्य ही वना हुआ है और इस रूपमे एक मनुष्यकी आत्मा दूसरे मनुष्यकी आत्माके समान है । वाइविलने कहा है कि परमात्माने मनुष्यकी रचना अपने प्रतिरूप जैसी की है । गीताने भी कहा है कि प्रत्येक व्यक्तिके हृदयमें भगवान्‌का निवास होता है । बुद्ध और मुहम्मदने भी इसी सत्यका प्रतिपादन किया है । गाधीकी

सौभाग्यसे गांधीने सत्याग्रहकी शक्तिको असंदिग्ध रूपमें प्रदर्शित भी कर दिया है। दक्षिण अफ्रीकामें अहिंसक संघर्ष चलानेके बाद गांधीने भारतमें अंग्रेजी शासनके विरुद्ध तीन बार सामूहिक एवं अहिंसक जनक्रान्तियोंका नेतृत्व किया और मुख्यतः इन्हींके कारण भारत आजाद हुआ। अब यह नया उत्तरदायित्व हमपर अनिवार्य रूपसे आ गया है कि हम सत्याग्रहके हथियारको दुनियाकी तमाम निर्दलित और उत्पीडित जनताके हाथमें सौंप दें। सन १९६९ में मनायी जा रही गांधी जन्म शतीके अवसरपर भारतीय जनताके समक्ष इससे बड़ा और कोई कर्तव्य नहीं हो सकता।

किसीको यह सोचकर धोखा नहीं खाना चाहिए कि संसारके घटनाचक्रपर गांधी और अहिंसाका स्पष्ट और ठोस प्रभाव नहीं पड़ा है। ऊपरसे ऐसा अवश्य लगता है कि आज दुनियाको गांधी और सत्याग्रहसे कोई मतलब नहीं रह गया है। आज अमेरिका और रूस ऐसे पारमाणविक शस्त्रास्त्रोंसे सज्ज हो चुके हैं जिनकी संहारक शक्ति अपरिमेय है। इसके कारण दुनियापर हिंसाका प्रभुत्व कायम हो चुका है। आजकी सभ्यता निरंतर वर्धमान हिंसाके चंगुलमें फँसती जा रही है किन्तु हमें यह भी याद रखना चाहिए कि द्वितीय विश्वयुद्धके बादसे संसारके विभिन्न जनसमुदायोंने निरंकुशता और शासके विरुद्ध सत्याग्रहका सफल प्रयोग भी किया है। इससे भी महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि संसारमें पारमाणविक शस्त्रास्त्रों और तीसरे विश्वयुद्धकी संभावनाके विरुद्ध तथा विश्वशान्तिके पक्षमें व्यापक प्रतिक्रिया हुई है। यह देखकर कुछ आश्चर्य होता है कि अमेरिका, रूस, ब्रिटेन और जापान जैसे सर्वाधिक प्रगतिशील राष्ट्रोंमें ही शान्ति-आन्दोलन सबसे प्रबल रहे हैं। सारे संसारमें व्याप्त हिंसाकी उत्ताल तरंगोंके मुकाबले अहिंसाकी शक्ति नगण्य दिखाई देती है किन्तु ये तरंगें यदि एक ओर सभ्यताके ह्रास और विनाशकी ओर संकेत करती हैं तो दूसरी ओर नगण्य दिखाई देनेवाली अहिंसा ही स्वतंत्रता, न्याय और शान्तिपर आधृत एक नये मानव-समाजका निर्माण करनेवाले आध्यात्मिक पुनर्जागरणके महान् युगकी ओर संकेत कर रही है। शक्तिवाद और पारमाणविक शस्त्रास्त्र तीव्र गतिसे लुप्त हो रहे युगके रक्तरञ्जित प्रतीक हैं जब कि गांधी और अहिंसा न्याय और शान्तिके धारे-धीरे उभरनेवाले नये युगके स्फूर्तिदायक प्रतीक हैं। गांधीके व्यक्तित्व और कर्तृत्वका यही सारतत्त्व है। गांधीके जीवन और कार्योंका मूल संदेश यह है कि हम प्रेमको घृणाकी अपेक्षा कहीं अधिक प्रभावकारी बना सकते हैं। हम लोगोंको यह समझा सकते हैं कि जहाँ भी घृणा होगी वहाँ हिंसा अवश्यम्भावी है और जहाँ भी अहिंसाकी बात

वरण बनेगा वहाँ प्रेमका साम्राज्य अवश्य कायम हो जायगा। हम संसारको यह विश्वास दिला सकते है कि संसारके हर क्षेत्रकी जनता हर प्रकारकी निरंकुशता-के विरुद्ध पूर्णरूपसे अहिंसाका संघटन कर सकती है।

स्वामी रगनाथानन्द

महात्मा गाधी   जीवन और कार्योंके स्थायी तत्व

दुनियाके महान् नेताओंको दो श्रेणियोमें विभाजित किया जा सकता ह। पहली श्रेणीमें वे नेता आते ह जिनका अपने समकालीन लोगोंके जीवन और विचारोंपर न्यूनाधिक प्रभाव होता ह किन्तु उनका यह प्रभाव उनकी मृत्युके बाद शीघ्रतासे लुप्त होने लगता ह। दूसरी श्रेणीमें वे चुने हुए थोडेसे नता आते हैं जो इस ससारसे उठ जानेके बाद भी अपने जीवन और सदेशसे मानवताको दीर्घकाल तक प्रभावित करते रहते हैं। दूसरी श्रेणीके इन नेताओम ऐसी महानता होती ह जो कालके प्रभावका अतिक्रमणकर जाती ह। काल ससारकी प्रत्येक वस्तुको अपने निमम प्रवाहसे धो बहाता ह किन्तु वह भी इन महापुरुषोंके यश शरीरका कुछ नही बिगाड सकता। यह महानता अपने नेताके जीवन और सदेशमे मिलने वाली कुछ ऐसी स्थायी और गम्भीर महत्वकी वस्तुको प्रकट करती ह जो उसके अस्थायी और क्षणभगुर विचारो एव मूल्योंसे परे होती ह। गाधीजी इसी दूसरी श्रेणीके नता थ।

गाधीजीने अध्यात्म-साधनाको अपने जीवनका सबसे प्रमुख आग्रह और केन्द्रीय ध्येय बताते हुए लिखा ह —

> मं अपने जीवनके इन तीस वर्षोंमें जिस लक्ष्यको प्राप्त करनेकी कोशिश करता रहा हूँ और जो मेरे जीवनकी सबसे बडी अभिलाषा रही है वह आत्म-साक्षात्कार ह। म परमात्माका साक्षात् दर्शन करना चाहता हूँ। मेरा उद्देश्य मोक्ष प्राप्त करना रहा ह। म इसी लक्ष्यको प्राप्त करनेके लिए जीवित हूँ और मेरा सारा काय इसी ओर अभिमुख ह। मैं बोलकर और लिखकर जो कुछ भी करना या कहना चाहता हूँ और राजनीतिक क्षेत्रमें मैं जो कुछ भी प्रयास करता हूँ वह सब-का-सब इसी एक उद्देश्य की ओर निर्दिष्ट होता ह।[1]

उनकी मृत्युके बीस वर्ष बाद और उनकी प्रथम जन्मशतीके अवसरपर उनके जीवन और कार्योंका इस दृष्टिसे अध्ययन होना चाहिए कि उनमे क्या स्थायी तत्त्व है और उससे हम क्या लाभ उठा सकते है। यही हमारा उचित कर्त्तव्य होगा। बीस वर्षोंकी इस अल्प अवधिमें उनकी सामाजिक एवं आर्थिक योजनाओ तथा कार्यक्रमोकी अनेक बातें अपना महत्त्व खो चुकी है। गाधीजीने स्वयं अपने भापणोमे इसकी सम्भावना व्यक्त कर दी है। सत्यके दृढ़प्रतिज्ञ प्रयोक्ता होनेके कारण वे यह बिल्कुल पसन्द नही करते थे कि उनके बाद उनके नामपर गाधी-वादका कोई सम्प्रदाय चल पड़े। सत्यका अनुसंधान भौतिक विज्ञान, सामाजिक जीवन अथवा आध्यात्मिक जीवन किसी भी क्षेत्रमे जडीभूत स्थिर सिद्धान्तोके प्रति आसक्ति होनेसे नही चलाया जा सकता। इस दृष्टिसे देखनेपर यह स्पष्ट हो जाता है कि विचारोकी मूर्खतापूर्ण सतत सुसङ्गति छोटे दिमागोकी ही उपज होती है।

गाधीजीने हरिजनमे (३०-९-१९३९, पृष्ठ २८८) इस विपयपर लिखा है कि .

> मेरा लक्ष्य किसी विशेष प्रश्नपर पहले दिये हुए किन्ही वक्तव्योके साथ हमेशा संगतिपूर्ण विचार व्यक्त करते रहना नही है। इसके विपरीत मेरा लक्ष्य समय विशेपपर सत्य अपनेको जिस रूपमे मेरे सामने प्रस्तुत करता है उसके साथ संगति बैठाना है। इसका परिणाम यह हुआ है कि मै एक सत्यसे दूसरे सत्यकी ओर बढते हुए बराबर विकसित होता रहा हूँ।

सत्यके प्रति अपने इसी प्रेमके कारण गाधीजीने किसी भी सम्प्रदाय या दल-से आबद्ध होनेसे इनकार कर दिया। यग इण्डियामे (२५-८-१९२१ पृष्ठ २६७) गाधीजीने लिखा है कि .

> शिमलासे पत्राचार करनेवाले एक व्यक्तिने मुझसे बार-बार यही प्रश्न किया है कि क्या मै किसी तरहका सम्प्रदाय बनाना चाहता हूँ अथवा किसी प्रकारकी दिव्यताका दावा करता हूँ ? मैने उसे एक निजी पत्रमे जवाब दे दिया है। किन्तु पत्रलेखक चाहते है कि मैं आनेवाली पीढियो-लिए इसकी सार्वजनिक घोपणा कर दूँ। मैंने अत्यन्त स्पष्ट और दृढ शब्दोमें यह व्यक्तकर दिया है कि दिव्यताके प्रति मेरा किसी तरहका कोई दावा नही है। मै भारत और मानव-जातिका एक नम्र सेवक होने-का ही दावा करता हूँ और उसीकी सेवा करते हुए मर जाना चाहता हूँ। मैं किसी तरहका सम्प्रदाय बनाना नही चाहता। वस्तुत. मुझे अपने

किसी सम्प्रदाय या अनुयायी वर्गसे कोई सरोकार हो ही नहीं सकता क्योंकि मैं किन्हीं नये सत्योंका प्रतिपादन नहीं कर रहा हूँ। मैं तो केवल सत्यको *जिस रूपमें जान पाता हूँ उसी रूपमें उसे प्रतिपादित करना चाहता हूँ* और मेरा यह प्रयास रहता है कि मैं उसी रूपमें उसका अनुसरण कर सकूँ। मेरा यह दावा अवश्य है कि मैंने अनेक प्राचीन सत्योंपर नया प्रकाश डाला है।

गांधीजीके संदेशकी शाश्वत आत्मा सत्य और अहिंसामें निहित है। उन्होंने स्वयं इस तथ्यपर न जाने कितनी बार प्रकाश डाला है। इस दिशामें गांधीजीकी अद्वितीय देन यह रही है कि उन्होंने इन महत्वपूर्ण गुणोंका प्रयोग सामूहिक सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन और कार्योंके बृहत्तर क्षेत्रोंमें किया है। उन्होंने जिस आग्रहके साथ आध्यात्मिक अनुसंधान किया था उसी आग्रहसे उन्होंने सर्वत्र मानवीय आत्माके स्वातंत्र्य और गरिमाकी रक्षाके लिए उसे संघर्षमें भी रूपान्तरित कर दिया था। उन्होंने राजनीतिमें भी इन मूल्योंकी प्रतिष्ठा करके उसे मानवीय विकासके महान उद्देश्यकी सिद्धिका एकमात्र मार्ग बना दिया। उन्होंने मानव-पशु को देवकल्प मानवके रूपमें विकसित करनेका प्रयत्न किया। उन्होंने मानव-जातिको भाग्यके चौराहे पर खड़ा देखा था। विगत कुछ शताब्दियोंमें मनुष्यकी प्रज्ञा नितान्त अनुशासित एवं तीक्ष्ण हो उठी है और मनुष्य शक्ति एवं सत्ताके विराट साधनोंका स्वामी बन चुका है किन्तु आध्यात्मिक दिशानिर्देशके अभावमें इस समस्त प्रगतिने मनुष्यकी पाशविक बुभुक्षाओंको ही तीव्र बनाया है और उसके आन्तरिक संघर्षों और तनावोंको गहरा कर दिया है जिसके फलस्वरूप संसारमें घृणा, हिंसा और युद्धका वातावरण बनता जा रहा है। गांधीजीने अपने अनेक समसामयिक विचारकोंके समान ही इस बातकी आवश्यकता महसूसकी थी कि मनुष्यने अपने *भौतिक और बौद्धिक जीवनमें जो विकास किया है उसीके अनुरूप उसे अपने* आध्यात्मिक जीवनमें भी विकास करना चाहिए। उसका भौतिक और बौद्धिक जीवन उसके लिए अपेक्षाकृत अधिक प्रत्यक्ष और वास्तविक होता है किन्तु आध्यात्मिक जीवन उतना वास्तविक और प्रत्यक्ष नहीं होता किन्तु बीसवीं शताब्दीके जीव विज्ञानने यह सिद्धकर दिया है कि मनुष्यके वास्तविक विकासका क्षेत्र विशेषरूपसे उसका आध्यात्मिक जीवन ही है। जब मनुष्यकी जीवनशक्तिको आध्यात्मिक दिशा मिलती है तभी वह सच्चा मानव बन पाता है और तभी उसका जीवन सच्चा जीवन होता है। इसमें विफल होनेपर उसकी जीवनशक्ति जड़ हो जाती है और उसका अन्तश्चेतना मूर्छित होने लगती है। वैसी स्थितिमें

उसका जीवन मिथ्या हो जाता है और उसे अपूर्णीय क्षति पहुँचती है। केन उपनिषद् (२, ५) में इसकी उद्घोषणा इन शब्दोंमें की गयी है .

इह चेदवेदिनथ सत्यमस्ति
न चेदिहावेदिन्महती विनष्टि.

"जब मनुष्य यहाँ (इस जीवनमे) अनुभव कर लेता है (अपने आध्यात्मिक आयाम का) तभी वह सच्चे जीवनका अनुभव कर पाता है, यदि वह यहाँ इसका अनुभव करनेमें विफल हो जाता है तो उसकी महती क्षति होती है।"

गाधीजी केवल वाचनिक सत्यके ही आग्रही नही थे। वे उस सत्यको खोज-रहे थे जो समग्र जीवन और अनुभवमे केन्द्रस्थ रूपसे अन्तर्निहित रहता है। जब हम क्रमश उनके सत्यसंधानकी गहराइयोमे उतरने लगते है तो हमे उनके सामान्य जैव स्वभावपर प्रतिष्ठित आध्यात्मिक स्वभावके अन्तरग सत्यका दर्शन होता है और हम प्राणिमात्रके साथ उनके तादात्म्य और आध्यात्मिक ऐक्यका अनुभव करने लगते है। इस खोजका एक स्वाभाविक परिणाम यह है कि हम प्राणिमात्र-के प्रति अपना प्रेम क्रमश वढाते जायँ क्योकि आध्यात्मिक इकाई और वन्धुत्वकी चेतनासे ही प्रेमका उद्भव होता है। इसीलिए गाधीजीने सत्यके प्रति अपने आग्रह-को प्रेमके प्रति समान आग्रहके साथ सयुक्तकर दिया और इसे अहिंसाकी संज्ञा प्रदानकी। गाधीजीने अपने चारो ओर मानसिक और भौतिक हिंसाका वाहुल्य देखा इसीलिए उन्होने अहिंसापर इतना वल दिया। फिर भी उन्हे इस वातका वरा-वर सन्देह वना रहा कि कही लोग उनकी अहिंसाको भी निषेधक अर्थोमे ही न ग्रहण करने लगें, जैसा कि सामान्यत होता है, इसीलिए उन्होने वार-वार यह स्पष्ट किया है कि अहिंसा प्रेमकी वास्तविक और सकारात्मक शक्ति है। हम प्रेम-के सकारात्मक सिद्धान्तसे ही किसी प्रकारकी सक्रिय सामाजिक नैतिकताका ग्रहण और पोषणकर सकते है। यह अहिंसाके निषेधात्मक सिद्धान्तसे कभी संभव नही है। गांधीजी मुख्यत. गतिशील सामाजिक नैतिकताके ही उपदेष्टा और व्यवहर्ता है। उनकी नैतिकताका उद्देश्य आध्यात्मिक दृष्टिसे संवेदनशील नरनारियोमे अन्त-निहित प्रेमके स्रोतको मुक्तकर देना है जिससे पूरे समाज की नैतिकता उन्नत और सुदृढ़ हो सके। केवल ऐसा ही समाज अपने सदस्योको सर्वाङ्गीण विकासकी प्रेरणा दे सकता है।

गाधीजीके राजसत्तासंवंधी विचार मानव स्वभावसंवंधी उनके उपर्युक्त दर्शन-पर ही आधारित है। स्वतन्त्रभारतमे लोकतान्त्रिक राजसत्ताके सवंधमें अपनी परिकल्पना प्रस्तुत करते हुए गाधीजीने कहा था .

> मैं यह दिखला दनकी आशा करता हूँ कि सच्चा स्वराज्य कुछ लोगों द्वारा सत्ता प्राप्तकर लेनेस नही आयेगा बल्कि सत्ताक दुरुपयोगके प्रति रोधके लिए सबके द्वारा सामथ्य प्राप्तकर लनेसे आयगा । दूसर शब्दोंम जनताको सत्ताके नियमन और नियन्त्रणके अपने सामथ्यके प्रति सजग बनानेकी शिक्षा द्वारा ही स्वराज्यकी उपलब्धि हो सक्ती ह ।[2]

राजसत्ता नागरिककी परिपूर्णताकी अभिलाषाकी पूर्तिकी साधिका ह । उस का सवधन और विकास ही राजसत्ताके अस्तित्वका औचित्य ह । यह सवधन और विकास मुख्यत मनोवैज्ञानिक सामाजिक, नतिक और आध्यात्मिक होता ह किन्तु *इसके लिए आधार रूपमें आर्थिक सुरक्षा और राजनीतिक स्थिरता अपेक्षित होती* ह जिसे विवकपूण सहकारी श्रम और अयोन्याश्रयकी नतिक चेतनासे उदभूत सेवा भावनासे ही प्राप्त किया जा सकता ह । इसके लिए समाजम सत्य और अहिंसा के अविभाज्य मूल्योका व्यापक प्रसार अपेक्षित ह । जब तक राष्ट्रके नागरिकोंका उनयन नैतिक स्तरतक नही हो जाता लोकतन्त्रका अस्तित्व सदिग्ध ही बना रहेगा । इसके सबधम गाधीजी कहते ह

> लोकतन्त्रके सम्बधमें मेरी यह धारणा ह कि इसके अन्तगत दुबलतम लागोको प्रबलतम लोगोंके समान अधिकार मिलन चाहिये । अहिंसाके बिना यह कभी सभव नही हा सकता ।[3]

उन्नीसवी शतीके जीवविज्ञानमें विकास प्रक्रियाका जसा निरूपण किया गया ह उसम प्रेमके नतिक मूल्य और मानवकी मानवके प्रति शुभ भावनाकी कोई स्थान नही मिला था । जसा कि टामस हक्सलेने अपने एवाल्यूशन ऐण्ड एथिक्स" नामक ग्रथम बताया ह उन जीव वज्ञानिकोके लिए विकासका अथ अस्तित्वके लिए सघप और उसम योग्यतमका ही अवशिष्ट रह जाना मात्र था जब कि नीति शास्त्रके अनुसार विकासका अथ होता ह यथासभव अधिकस अधिक लोगोको अपने अस्तित्व रक्षणके लिए समथ बना देना । इस प्रकार उन्नीसवी शतीमें विकासकी कल्पना नीतिशास्त्रके समानान्तर चल रही थी किन्तु बीसवी शताब्दीमें जीवविज्ञानम जो क्रान्तिकारी प्रगति हुई ह उसन मानवीय स्तरपर नतिकताको विकासका केन्द्रबिन्दु मान लिया ह ।

आधुनिक युगके प्रमुख जीवविज्ञानवेत्ता सर जूलियन हक्सलेने 'विकासकी परिकल्पना विषयपर विचार करते हुए विकास प्रक्रियाको एक अध्यात्मिक दिशा दी ह

मनुष्यका विकास जव विकास न होकर मन सामाजिक विकास ह यह

> उस सास्कृतिक परम्पराके माध्यमसे क्रियान्वित होता है जिसमे मानसिक क्रियाकलापो एवं उनके परिणामोका समुच्चयात्मक आत्म-प्रक्षेपण और आत्मवैविध्य निहित होता है। इसीलिए विकासके मानवीयस्तरपर प्रगतिके प्रमुख चरण ऐसी वैचारिक एव मानसिक क्रान्तियो द्वारा अग्रसर होते है जिनसे ज्ञान, विचार और विश्वासोके मानसिक संघटनमे नये प्रभावी प्रतिरूप उभर आते है। यह संघटन शरीरसास्थानिक या जैव न होकर वैचारिक होता है।[४]

बीसवी शताब्दीमे जीवविज्ञानमे हुई क्रान्तिकारी प्रगतिके प्रकाशमे मानवीय विकासका लक्ष्य "महत्तर परिपूर्णता" को मानते हुए हक्सले कहते है .

> अपने वर्तमान ज्ञानके प्रकाशमे हम यह कह सकते है कि मानवका सर्वाधिक व्यापक लक्ष्य मात्र अस्तित्वरक्षण, सख्यावृद्धि, सघटनकी वर्धमान जटिलता अथवा पर्यावरणपर उसका वर्धमान नियन्त्रण न होकर एक महत्तर परिपूर्णता ही दिखाई देता है। यह परिपूर्णता मानवजाति द्वारा सामूहिक रूपमे अधिकाधिक सभावनाओकी अपेक्षाकृत व्यापक उपलब्धि और व्यक्तिगत रूपसे उसके अधिकाधिक सदस्योके सह-अस्तित्वकी चेतनामे निहित है।[५]

परिपूर्णताकी इस अवधारणाकी व्याप्तिके वैज्ञानिक अध्ययनकी आवश्यकतापर जोर देते हुए हक्सले इस निष्कर्षपर पहुँचते है कि

> यदि हम एक बारगी महत्तर परिपूर्णताको मनुष्यका चरम अथवा सर्वाधिक प्रभुत्वकारी लक्ष्य मान लेते है तो हमे मानवीय संभावनाओके एक ऐसे विज्ञानकी आवश्यकता होगी जो आगे आनेवाले मन सामाजिक विकासकी दीर्घयात्रामे हमारा मार्गदर्शन कर सके।[६]

अन्तरमानवीय सबंधमे सत्य और अहिंसाकी प्रतिष्ठाके लिए गाधीजीने जो सन्देश दिया है उससे "मानवीय संघटनके नये मानसिक प्रतिरूपोकी दिशामे अग्रसर वैचारिक क्रान्तियो" जैसी एक प्रमुख क्रान्ति ही परिलक्षित होती है। गांधीजी कहते है

> आश्चर्योके इस युगमें कोई यह न कहेगा कि कोई वस्तु या विचार केवल इसीलिए मूल्यहीन है कि वह नया है। फिर कठिन होनेके कारण भी इसे असंभव कह देना युगकी भावनाके अनुरूप नही है। जिन चीजोकी स्वप्नमे भी कल्पना नही की गयी थी वे दिन-प्रतिदिन प्रत्यक्ष होती जा रही है, असंभव निरन्तर संभव बनता जा रहा है। हम, हिंसाके क्षेत्रमे

> की गयी आश्चर्यजनक खोजोंसे आजकल निरन्तर चकित होते जा रहे हैं किन्तु यह मेरी मान्यता है कि अहिंसाके क्षेत्रमें ऐसी खोजें होंगी जो और भी अकल्पनीय हैं और जो आज कहीं अधिक असम्भव दिखाई देती हैं[७]

यही वह विज्ञान है जो संसारके समस्त धर्मोंका आध्यात्मिक सारतत्त्व है। यही मानवीय संभावनाओंका विज्ञान है। गांधीजीने इसी विज्ञानको अपने संदेश और उससे भी बढ़कर अपने जीवन और उदाहरणसे अत्यधिक समृद्ध बनाया है।

---

१ ऐन भाटो बायोग्राफी भूमिका पृ० ४ ५।

२ निर्मल कुमार बोस सिलेक्शंस फ्राम गांधी पृ० १०९।

३ डी० जी० तेंदुलकर लाइफ ऑव मोहनदास करमचंद गांधी, भाग ५, पृ०३४३।

४ जूलियन हक्सले एवोल्यूशन आफ्टर डार्विन भाग ३ पृ० २५१।

५ वही भाग १, पृ० २०।

६ वही, पृ० २१।

७ हरिजन २५-८-१९४ पृ २६०।

बी० शिवराव

गांधी और मानवीय अधिकार

भारतके सुदीर्घ और वैविध्यपूर्ण इतिहासमे अन्य किसी व्यक्तिकी अपेक्षा महात्मा गाधी ही भावी सन्ततियो द्वारा भारतके भाग्यविधाताके रूपमे याद किये जायँगे। उन्होने जिस पद्धतिसे राष्ट्रीय स्वतन्त्रताके लिए आन्दोलन चलाया वह अन्तत संयुक्त राष्ट्रसंघके घोपणापत्रमे प्रतिष्ठित हो गयी। स्वतन्त्रताकी ओर होनेवाली हमारी प्रगतिके विभिन्न स्तरोपर और प्राय कठिन स्थितियोमे भी उन्होने हिंसा और घृणाका परित्याग किया।

गाधीके नेतृत्वके सम्पूर्ण महत्त्वका आकलन उन्ही परिस्थितियोकी पृष्ठभूमिमे हो सकता है जिनमे प्रथम महायुद्धके अन्तमे उन्होने राष्ट्रीय आन्दोलनका नेतृत्व ग्रहण किया था। इस शताब्दीके प्रथम दो दशकोमे जिस समय राजनीतिक क्रियाकलापोमे निश्चितरूपसे त्वरा आ रही थी ब्रिटिश शासक वर्गके प्रति पौरुपहीन घृणाके फलस्वरूप आतंकवादका जन्म हो चुका था। १९१९ मे एक ब्रिटिश जेनरलके आदेशसे अमृतसरमे जो भीपण हत्याकाण्ड हुआ उसीके सिलसिलेमे गाधीने देशका नेतृत्व अविसंवादित रूपमे ग्रहण कर लिया। उस हत्याकाण्डका रोमाञ्चक विवरण जैसे-जैसे सामने आता गया सारे देशमे तीव्र रोपकी लहर व्याप्त होती गयी। इस आक्रोशपर गाधी ही नियन्त्रण प्राप्त कर सकते थे।

प्रथम महायुद्धकी समाप्तिपर उन लाखो प्रशिक्षित सिपाहियोको तुरन्त सेवामुक्त कर दिया गया जिन्होने युद्धके विभिन्न मोर्चोपर भारी आपदाओका वहादुरीसे सामना करके गौरव प्राप्त किया था। ऐसे वातावरणमे गाधीका अहिंसक असहयोगका प्रयोग खतरेसे खाली नही था किन्तु जनतापर उनके व्यक्तित्वका ऐसा प्रभाव था कि उस मार्गके उल्लंघनकी घटनाएँ अत्यल्प और साधारण किस्मकी ही रही, पूरे एक दशकके अविराम और अथक संघर्पके वाद उसकी सभी स्मृतियोको भुलाकर गांधीने १९३१ मे लदनमे आयोजित गोलमेज सम्मेलनमें

की गयी आश्चर्यजनक खोजोंसे आजकल निरन्तर चकित होते जा रहे हैं किन्तु यह मेरी मान्यता है कि अहिंसाके क्षेत्रमें ऐसी खोजें होंगी जो और भी अकल्पनीय हैं और जो आज कहीं अधिक असम्भव दिखाई देती हैं[7]

यही वह विज्ञान है जो संसारके समस्त धर्मोंका आध्यात्मिक सारतत्त्व है। यही मानवीय संभावनाओंका विज्ञान है। गांधीजीने इसी विज्ञानको अपने संदेश और उससे भी बढ़कर अपने जीवन और उदाहरणसे अत्यधिक समृद्ध बनाया है।

---

१ ऐन आटो बायोग्राफी भूमिका पृ ४५।
२ निर्मल कुमार बोस सेलेक्शन्स फ्राम गांधी पृ० १०६।
३ डी० जी० तेन्दुलकर लाइफ ऑव मोहनदास करमचंद गांधी, भाग ५ पृ०३४३।
४ जूलियन हक्सले एवोल्यूशन आफ्टर डार्विन, भाग ३ पृ० २५१।
५ वही भाग १, पृ० २।
६ वही, पृ० २१।
७ हरिजन २५-८-१९४ पृ० २६०।

बी० शिवराव

गांधी और मानवीय अधिकार

भारतके सुदीर्घ और वैविध्यपूर्ण इतिहासमे अन्य किसी व्यक्तिकी अपेक्षा महात्मा गाधी ही भावी सन्ततियो द्वारा भारतके भाग्यविधाताके रूपमे याद किये जायँगे। उन्होने जिस पद्धतिसे राष्ट्रीय स्वतन्त्रताके लिए आन्दोलन चलाया वह अन्तत संयुक्त राष्ट्रसंघके घोषणापत्रमे प्रतिष्ठित हो गयी। स्वतन्त्रताकी ओर होने-वाली हमारी प्रगतिके विभिन्न स्तरोपर और प्राय. कठिन स्थितियोमे भी उन्होने हिंसा और घृणाका परित्याग किया।

गाधीके नेतृत्वके सम्पूर्ण महत्त्वका आकलन उन्ही परिस्थितियोकी पृष्ठभूमिमे हो सकता है जिनमे प्रथम महायुद्धके अन्तमे उन्होने राष्ट्रीय आन्दोलनका नेतृत्व ग्रहण किया था। इस शताब्दीके प्रथम दो दशकोमे जिस समय राजनीतिक क्रिया-कलापोमे निश्चितरूपसे त्वरा आ रही थी ब्रिटिश शासक वर्गके प्रति पौरुषहीन घृणाके फलस्वरूप आतंकवादका जन्म हो चुका था। १९१९ मे एक ब्रिटिश जेनरलके आदेशसे अमृतसरमे जो भीषण हत्याकाण्ड हुआ उसीके सिलसिलेमे गाधीने देशका नेतृत्व अविसंवादित रूपमे ग्रहण कर लिया। उस हत्याकाण्डका रोमाञ्चक विवरण जैसे-जैसे सामने आता गया सारे देशमे तीव्र रोपकी लहर व्याप्त होती गयी। इस आक्रोशपर गाधी ही नियन्त्रण प्राप्त कर सकते थे।

प्रथम महायुद्धकी समाप्तिपर उन लाखो प्रशिक्षित सिपाहियोको तुरन्त सेवा-मुक्त कर दिया गया जिन्होने युद्धके विभिन्न मोर्चोपर भारी आपदाओका बहादुरी-से सामना करके गौरव प्राप्त किया था। ऐसे वातावरणमे गाधीका अहिंसक असह-योगका प्रयोग खतरेसे खाली नही था किन्तु जनतापर उनके व्यक्तित्वका ऐसा प्रभाव था कि उस मार्गके उल्लंघनकी घटनाएँ अत्यल्प और साधारण किस्म-की ही रही, पूरे एक दशकके अविराम और अथक संघर्पके बाद उसकी सभी स्मृतियोको भुलाकर गाधीने १९३१ मे लंदनमे आयोजित गोलमेज सम्मेलनमे

ब्रिटिश सरकार और विरोध पक्षके प्रतिनिधियोंके समक्ष एक बड़ी ही मार्मिक अपील इन शब्दोंमें की थी

> निस्सन्देह भारतपर तलवारके बलसे शासन किया जा सकता है। मुझे इस बातमें क्षणभरके लिए सन्देह नहीं है कि तलवारसे भारतपर आधिपत्य बनाये रखनेमें ब्रिटेन पूर्णतः समर्थ है। किन्तु ग्रेट ब्रिटेनकी समृद्धिमें, उसकी आर्थिक स्वतन्त्रतामें कौन सा भारत अधिक सहायक होगा—एक पराधीन किन्तु निरन्तर विद्रोह करता हुआ भारत अथवा एक ऐसा भारत जो ब्रिटेनके सम्मानित साझीदारके रूपमें उसके दुःखोंमें हिस्सा बटानेको तैयार और उसकी विपत्तियोंमें उसके साथ कंधे-से-कंधा भिड़ा कर चलनेको प्रस्तुत हो? यदि इस पृथ्वीपर किसी भी जाति अथवा किसी भी व्यक्तिके शोषणका प्रश्न न हो और सारे संसारके कल्याणका उद्देश्य सामने हो तो भारत उसके लिए भी स्वेच्छापूर्वक अवश्य ही ब्रिटेनके साथ होकर संघर्ष करनेको तैयार है। आप मेरा विश्वास करें यदि मैं भारतकी आजादी चाहता हूँ और उसमें कुछ भी सहायता कर सकता हूँ तो मैं एक ऐसे राष्ट्रका व्यक्ति होते हुए, जिसमें संपूर्ण मानव जातिका पंचमांश निवास करता है, वह आजादी इसलिए नहीं चाहता कि इस संसारमें मैं किसी भी जाति अथवा एक भी व्यक्तिका शोषण कर सकूँ। अपने देशके लिए वह स्वतन्त्रता चाहते हुए यदि मैं उसी स्वतन्त्रताके प्रति किसी भी दुर्बल अथवा सबल जातिके समान अधिकारका सम्मान और पोषण नहीं करता हूँ तो मैं उस स्वतन्त्रताके योग्य नहीं रह जाऊंगा। उस परिस्थितिमें मैं ब्रिटिश द्वीप समूहके यहीं निवास लेकर विश्व हो जाना अच्छा समझूँगा कि ब्रिटेन और भारतमें समानताके आधारपर सम्मानजनक साझेदारी हो सकती थी जो मेरी असमर्थताके कारण न हो सकी।

इस अपीलपर ब्रिटेनकी जो प्रतिक्रिया हुई वह केवल निराशाजनक ही नहीं थी बल्कि कटु ही बुरी थी। भारत वापस आने ही गांधीजी तथा कांग्रेसको निजरबन्द कर लिया गया और कुछ समय छूटने पर ब्रिटेन द्वारा निर्मित संविधानके लिखित रूपमें शासन आ गया। इस संविधानके अन्तर्गत १९३७ के शुरूके महीनोंमें हुए प्रथम चुनावोंमें उनके ग्यारहमें कांग्रेसको अत्यन्त निर्णायक विजय प्राप्त हुई। इसके एक पक्षिपातपूर्ण वर्गने आरोप पर आवाज उठाई कि इस संविधानको अन्दर ही अन्दर ध्वस्त कर लिया जाय और उसके स्थानपर निर्वाचित संविधान

सभाके माध्यमसे भारतीय जनताके प्रतिनिधि एक नये संविधानका निर्माण करें।

ऐसे दबावका प्रतिरोध कर पाना आसान नही था, किन्तु गाधीने कटुतासे सर्वथा मुक्त रचनात्मक दृष्टिकोण अपनाना ही पसंद किया। उस वर्ष गर्मियोमे हर एक साक्षात्कारके अन्तमे उन्होने मुझसे कहा था कि, "अंग्रेज अच्छे लोग है, उनके साथ किसी कामका समझौता करना आसान है।" उनकी दृष्टिमे अंग्रेजोने भारतको जो नया सविधान दिया था वह "चाहे कितना भी सीमित क्यो न रहा हो तलवारके शासनकी जगह बहुसंख्यक जनताके शासनकी स्थापनाका मार्ग प्रशस्त कर रहा था।" कुछ समय बाद उन्होने अंग्रेजोसे कहा था कि उन्हे भारत छोडनेकी आवश्यकता नही है। उन्होने इससे भी आगे बढकर यह कहा था कि

> भारत एक विशाल देश है। आप और आपकी जनता यहाँ आरामसे रह सकती है बशर्ते कि आप अपनेको हमारी यहाँकी परिस्थितियोके अनुरूप बना लें।

१९३९ मे द्वितीय विश्वयुद्ध छिड़नेपर गाधीने अभूतपूर्व उदारताके साथ हिटलरके विरुद्ध अंग्रेजोको बिना शर्त सहायता देनेका आह्वान किया था। अपने अहिंसाके आधारभूत दर्शनके अनुरूप उनकी सहायता मनुष्यो और साधनोके रूपमे न होकर नैतिक हुई होती।

युद्धके आरंभिक दो वर्षोमे उन्होने प्रगतिशील विचारोवाले नरेशो और मुस्लिम लीगके उस वर्गके सहयोगसे, जो सर सिकन्दर हयात खाँके मार्गदर्शनमे विश्वास करता था, ब्रिटेनसे युद्धकालीन समझौता करनेके लिए अनेक प्रयत्न या तो स्वय शुरू किये या उन्हे प्रोत्साहन दिया। दुर्भाग्यवश अंग्रेजी सरकारने उनके सभी प्रयत्नोको विफल कर दिया। प्रधानमन्त्री श्री चर्चिलने कहा कि "मै सम्राट्-का प्रथम मन्त्री इसलिए नही बना हूँ कि मेरी ही अध्यक्षतामें ब्रिटिश साम्राज्यका विघटन कर दिया जाय।" किन्तु अपने सिद्धान्तोमे गाधीकी निष्ठा अपराजेय थी। भावी पीढियां उस व्यक्तिकी दूरदृष्टि और विवेकपर आश्चर्य करेंगी जो दो विश्व-युद्धो द्वारा रक्तरञ्जित कालमे गौतमबुद्धके सिद्धान्तोपर अटूट निष्ठासे काम करता रहा।

भारतके स्वातन्त्र्य आन्दोलनमे गाधीके नेतृत्वकी भावनाका स्मरण करना एक और कारणसे भी समीचीन होगा। यह कारण भी कोई कम महत्त्वपूर्ण नही है। इस शताब्दीके आरम्भिक दशकोमें सर्वप्रथम दक्षिण अफ्रीकामे गांधीने ही तत्कालीन दक्षिण अफ्रीकी सरकार द्वारा वहाँ जाकर बसे हुए भारतीय मूलके लोगोंके विरुद्ध किये गये जातीय भेदभावके विरुद्ध आवाज उठायी थी। उन्होने अन्याय,

उत्पीडन और अत्याचारके विरुद्ध निष्क्रिय प्रतिरोधके नस्त्रका सीमित पैमानेपर निर्माण किया। सीमित क्षेत्रमें मिली सफलतासे भारतमें ब्रिटिश शासनके विरुद्ध इसके व्यापक प्रयोगकी संभावनाओंके प्रति उनकी आँखें खुल गयी। यहाँ भी उन्होंने बडी सावधानीसे काम लिया। १९१६ में दक्षिण अफ्रीकासे यहाँ पहली बार पहुँचनेपर उन्होंने प्रथम विश्वयुद्धकी समाप्तिके बाद भारतके लिए स्वशासन की माँगको लेकर चलनेवाले आन्दोलनका समर्थन नहीं किया। उस समय ब्रिटेन जर्मनीके विरुद्ध एक दारुण युद्धमें फँसा हुआ था। ऐसी स्थितिमें उनकी दृष्टिमें ऐसा कोई कदम उठाना जिससे उसके संकटका अप्रत्यक्ष ढंगसे भी लाभ उठानेकी भावनाका संकेत मिलता हो, अनुचित था।

स्वतन्त्रताप्राप्तिकी उनकी योजना कांग्रेसमें उनके पूर्ववर्तियोंके कार्यक्रमसे एक दृष्टिसे भिन्न थी। उनके पूर्ववर्ती राजनीतिक नेताओंकी दृष्टि सांविधानिक सुधारोंके माध्यमसे ही स्वतन्त्रताकी ओर अग्रसर होनेपर लगी हुई थी। यह ठीक है कि उन्नीसवीं शतीके उत्तरार्धसे ही सुधारकोंका ध्यान देशके उन अछूतोंकी सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक अनहताओंकी ओर आकृष्ट हो चुका था जिनकी संख्या उस समय ६ करोड थी। इस क्षेत्रमें सबसे पहले सुधारका काम शुरू करनेवाले इन नेताओंको बडा त्याग और बलिदान करना पडा था। वे समाजके पुरातनपंथियों द्वारा किये गये सामाजिक बहिष्कार, अवमानना, व्यंग्य और उत्पीडनको सहते हुए यह महान कार्य कर रहे थे। किन्तु भारतीय मंचपर गांधी के अवतरणके पूर्व राजनीतिक और सामाजिक प्रगतिकी ये दोनों धाराएं एक दूसरेसे अलग ही बनी रही।

गांधी अभी ताजे-ताजे दक्षिण अफ्रीकासे आये थे। वे जातीय औद्धत्यकी अमानुषिकताके प्रति गम्भीर रूपसे सचेत थे। उन्होंने यहाँ आते ही तुरन्त यह समझ लिया कि अस्पृश्यतानिवारण और भारतकी स्वतन्त्रतामें महत्त्वपूर्ण संबंध सूत्र है। १९१७ में भारतकी दूसरी महान सेविका श्रीमती एनी बेसेण्टकी अध्यक्षतामें कलकत्तामें आयोजित कांग्रेसके वार्षिक अधिवेशनके अवसरपर पहली बार इस संबंधसूत्रको सुदृढ बनानेके लिए ठोस कदम उठाया गया। गांधीकी वहस पर इस अधिवेशनमें इस आशयका प्रस्ताव स्वीकृत किया गया कि 'कांग्रेस भारत की जनतासे यह अपील करती है कि वह प्रथारूपमें देशके दलित वर्गोंपर जो अनहताएँ थोप दी गयी है उन्हें हटानेके न्यायपूर्ण औचित्यको समझे। ये अनहताएँ अत्यन्त चिन्ताजनक एवं उत्पीडक है। इनसे दलितवर्गोंको बडी कठिनाई और असुविधाका सामना करना पडता है।

दो वर्षोके वाद गाधीने देशकी स्वतन्त्रतामे लगे सभी कार्यकर्ताओके लिए एक रचनात्मक कार्यक्रम तैयार किया जिसमे अस्पृश्यता तथा उससे भारतके सामाजिक और आर्थिक जीवनमे पैदा होनेवाली सभी बुराइयोके मूलोच्छेदको सर्वोच्च प्राथमिकता दी गयी थी। एकवार उन्होने घोषित किया था कि वे भारत की आजादी लेनेके लिए भी अछूतोके महत्त्वपूर्ण स्वार्थोका वलिदान नही करेंगे। उन्होने कहा था कि, "इस अस्पृश्यताके जीवित रहनेकी अपेक्षा मै यह कही अधिक पसंद करूँगा कि हिंदू-धर्मकी ही मौत हो जाय।" अपने यग इण्डिया पत्रमे उन्होने वार-वार अपने इस दृष्टिकोणके औचित्यका प्रतिपादन किया है। १९२१ मे उन्होने एक लेखमे लिखा था कि

> मेरे कार्यक्रममे अस्पृश्यताको किसी भी हालतमे गौण स्थान नही दिया जा सकता। इस कलंकको धोये विना स्वराज एक निरर्थक शब्द हैं। कार्यकर्ताओको अपना काम करते हुए सामाजिक वहिष्कार और यहाँ तक कि सार्वजनिक जीवनसे निष्कासनका स्वागत करना चाहिए। मै स्वराजप्राप्तिकी प्रक्रियामे अस्पृश्यता निवारणको सवसे शक्तिशाली घटक मानता हूँ।

अस्पृश्यताके विरुद्ध राष्ट्रव्यापी संघर्षमे चाहे जितना समय, शक्ति अथवा साधन लग जाय, गाधी उसे कम ही मानते थे। उनका यह दृढ विश्वास था कि इन दलित वर्गोको इस हदतक संरक्षण नही प्रदान किया जाना चाहिए कि वह आगे चलकर उनके तथा देशके लिए हानिप्रद हो जाय। दूसरी ओर वे यह भी चाहते थे कि नये संविधानमें ऐसा प्राविधान होना चाहिए जिससे किसी भी रूपमे अस्पृश्यताको अपराध माना जाय। परिगणित जातियोंके लिए पृथक् निर्वाचन क्षेत्रोकी व्यवस्थाके वे घोर विरोधी थे। इसपर वे किसी तरहका समझौता नही कर सकते थे। उनकी दृष्टिमे

> अछूतोके लिए पृथक् निर्वाचन क्षेत्रोके वन जानेपर उनकी दासता शाश्वत हो जायगी। क्या आप चाहते हैं कि वे हमेशा अछूत वने रहे? पृथक् निर्वाचन क्षेत्र इस कलकको स्थायी वना देगे। आवश्यकता अस्पृश्यता-को नष्टकर देनेकी हे। जव आप यह काम कर लेगे तो उद्धत श्रेष्ठ वर्ग द्वारा "निम्न" वर्गपर आरोपित दुष्टतापूर्ण विभेदकी दीवाल स्वत. ढह जायगी। इस दीवालके ढह जानेपर आप पृथक् निर्वाचन क्षेत्र किसके लिए वनायेंगे? वयस्क मताधिकारसे आप अछूतोको पूर्ण सुरक्षा प्रदानकर देते है। उस स्थितिमे पुरातनपन्थियोको भी वोट माँगनेके लिए उनके

पाया जाता होगा।

१९४२ में द्वितीय विश्वयुद्धकी समाप्तिके बाद स्वातन्त्र्य-संघर्षके दौरान पहला बार ब्रिटिश सरकारने भारतको बिना किसी शर्तके हमेशाके लिए अपना संविधान स्वयं बनानेका अधिकार प्रदान किया (क्रिप्स योजनाके माध्यमसे)। साम्प्रदायिक दृष्टिसे विभक्त हुए इन वर्गोंका आगामी संविधानमें जो आश्वासन पेश कर दिया था उसका यह परिणाम हुआ कि अखिल भारतीय मुस्लिम लीग-जैसे संगठनने यह घोषित कर दिया कि कोई भी ऐसा संविधान परिगणित जातियोंको स्वीकार न होगा जिसमें (१) उनकी सहमति न हो (२) यह तथ्य न स्वीकार किया गया हो कि परिगणित जातियाँ हिन्दुओंसे अलग और विशिष्ट स्थान रखती हैं और वे भारतके राष्ट्रीय जीवनका महत्वपूर्ण अंग हैं, तथा (३) ऐसे प्रावधान न हों जिनसे उनके गुटोंकी वास्तविक भावना पैदा हो गये।

द्वितीय विश्वयुद्धकी समाप्तिके बाद जब स्वतन्त्र भारतके संविधानके प्रारूपके लिए संविधान परिषद्का निर्माण हुआ तो कांग्रेस दलने तुरन्त ही यह स्वीकार कर लिया कि भारतके अल्पसंख्यकोंके धार्मिक भाषिक सांस्कृतिक तथा अन्य प्रकारके सभी अधिकारोंका संरक्षण प्रदान करना उसका प्रमुख कर्तव्य है, जिससे किसी भी सरकारी योजनामें उनके विकास करनेका अधिकसे अधिक मौका मिल सके और वे राष्ट्रके राजनीतिक आर्थिक और सांस्कृतिक जीवनमें पूर्णतम भाग ले सकें।

पण्डित गोविन्द वल्लभ पंतने विभिन्न अल्पसंख्यकों, कबीलों तथा पूर्णत एवं अंशत बहिर्गत क्षेत्रोंके मौलिक अधिकारोंके सम्बन्धमें एक सलाहकार समिति बनानेका प्रस्ताव उपस्थित किया। उन्होंने संविधान परिषद्को सम्बोधन करते हुए कहा

> साम्राज्यवाद संघर्षपर पनपता है। अबतक अल्पसंख्यकोंके प्रति ऐसा व्यवहार किया गया है जिससे वे उत्तेजित हुए हैं और सामाजिक ऐक्यके विकासमें बाधा पहुँची है। अब हमें अपने सामाजिक जीवनमें एक नया अध्याय शुरू करना आवश्यक है। हम सबको अपनी जिम्मेदारी महसूस करनी चाहिए। जबतक अल्पसंख्यक वर्ग पूरी तरह सन्तुष्ट नहीं हो जाते हम निर्बाध रूपसे शान्ति-व्यवस्था भी कायम नहीं कर सकते।

इसी लक्ष्यसे पण्डित पंतने आगे कहा था कि

> अल्पसंख्यकों और बहिर्गत तथा कबायली क्षेत्रोंके प्रतिनिधियोंकी आवाज ही इस समितिमें सबसे अधिक सुनी जायगी। वे अपने निर्णय करनेके

लिए स्वतन्त्र होगे ।

डॉक्टर अम्बेडकरने अल्पसख्यको और मौलिक अधिकारोके सम्बन्धमें बनी सलाहकार समितिके समक्ष एक विस्तृत टिप्पणी प्रस्तुत की थी । परिगणित जातियोके मान्य नेता होनेके कारण उन्होने उनके लिए राजनीतिक और सामाजिक सरक्षण प्रदान करनेपर विशेष ध्यान दिया और इस बातका ख्याल रखा कि नये सविधानमें उनके उन्नयनकी पूरी व्यवस्था हो ।

सलाहकार-समितिके अधिकाश सदस्य स्वय अल्पसंख्यक वर्गोके थे । समिति ने सावैधानिक संरक्षणोके प्रश्नपर अपने प्रतिवेदनमे निम्नलिखित विचार व्यक्त किये थे ·

> हमारे सामने कुछ ऐसे प्रस्ताव आये थे जिन्हें अस्वीकार करनेके लिए हम बाध्य थे । उदाहरणके रूपमे मन्त्रिमण्डलोमे सीटोके आरक्षणका प्रस्ताव रखा जा सकता है । ऐसे प्रस्तावोके अस्वीकार किये जानेका कारण यह है कि हमे ऐसा लगा कि इनकी वजहसे संसदीय लोकतत्र अव्यवहार्य हो जायगा । दूसरे तरहके प्रस्तावोके उदाहरणके रूपमे निर्वाचन व्यवस्था सबधी प्रस्ताव रखा जा सकता है । हमने इन्हें इसलिए अस्वीकार कर दिया कि हमारी दृष्टिमें अल्पसख्यकोके विशेष दावोका राष्ट्रीय जीवनके स्वस्थ विकासके साथ सामंजस्य आवश्यक है । हम इसे स्पष्ट कर देना चाहते है कि अल्पसंख्यकोकी समग्र समस्याके प्रति हमारा सामान्य दृष्टिकोण यह रहा है कि राजसत्ताका संचालन इस प्रकार होना चाहिए कि अल्पसख्यक केवल अल्पसख्यक होनेके नाते अपनेको उत्पीडित अनुभव न करें, इतना ही नही, हम यह भी चाहते है कि अल्पसख्यको-को यह अनुभव होने लगे कि उन्हे भी समाजके अन्य वर्गोके समान ही राष्ट्रीय जीवनमे सम्मानपूर्ण भूमिका अदा करनी है । हम मुख्यत ऐसा सोचते है कि राजसत्ताकी ओरसे ऐसे विशेष कदम उठाये जायेंगे जिनसे अल्पसख्यकोको, जो पिछडे हुए है, सामान्य जनताके स्तरपर ला दिया जायगा । राजसत्ता इसे अपना मौलिक कर्त्तव्य मानेगी ।

सविधान-परिषद्ने सविधानका निर्माण करते समय स्वभावत अल्पसख्यको-के सबधमे नियुक्त सलाहकार समितिकी सिफारिशोको सबसे अधिक महत्त्व प्रदान किया । ३० जनवरी, १९४८ को गाधीकी निर्मम हत्याके समय सविधान-परिषद् अपना आधा काम भी समाप्त नही कर पायी थी शोकसंतप्त राष्ट्रने यह निश्चय-कर लिया कि परिगणित जातियोके उद्धारके लिए गांधीजीने जो आन्दोलन चलाया

था उसके प्रति सबस व्यवहारिक श्रद्धाञ्जलि यह होगी कि सविधानम उनकी प्रगति और कल्याणके लिए पर्याप्त प्राविघान रखे जायें। दूसरा साधे मवद्ध लागा के प्रतिनिधियोने जो प्रावधान वनाये वे बहुत ही व्यापक हैं और उनसे समस्या का कोई पक्ष छटा नही ह।

परिगणित जातियो और कबायलियाकी सबागीण प्रगतिके लिए गाधाने जा आन्दोलन आरम्भ किया था गत २० वर्षोंम उसके बहुत ही महत्त्वपूर्ण परिणाम निकले ह। यह ठीक ह कि अभी देहाने देहाती क्षत्रा और अय दुगम स्यानाम उनको अनहताओके प्रमाण मिलते हैं किन्तु जल्दी या देरसे इस आन्दालनका पूण सफलता सुनिश्चित ह।

गाधीजीने समस्त मानव जातिका दा महत्त्वपूर्ण क्षेत्रामें मागदशन किया ह— विदेशी शासनसे शान्तिपूर्ण साधना द्वारा मुक्ति और हर तरहके सामाजिक, आर्थिक और जातीय भेदभावका उन्मूलन। इन दिशाओमें गाधीजा द्वारा निरूपित लक्ष्य ही आज सयुक्त राष्ट्रके घोषणापत्र और मानवीय अधिकाराकी सावभौमिक घोषणामें निहित ह।

उनके लिए एक तीसरा महान लक्ष्य भी बडा महत्त्व रखता था। १९४७ में एशियाई सम्बन्ध सम्मलनमें उन्होंने सक्षिप्तरूपम इसका सकेत किया था

> आज पश्चिमको विवेककी जडो अपेक्षा ह। वह परमाणु बमोंकी सख्या वृद्धिसे निराश हो चुका ह। इससे पूरे समारका विनाश हो जायगा। आपका यह कतव्य ह कि आप न कवल एशिया अपितु सारे ससारको दुष्टता और पापसे मुक्त करें। हमारे और आपके धर्मोपदेशका और महान उपदेष्टाओकी हमारे लिए यही सबस बहुमूल्य विरासत ह।

पूर्ण निःशस्त्रीकरणके पक्षमें चलनेवाले आन्दोलनको प्रेरणा देनेके लिए आज वे हमारे बीच नही ह। किन्तु ऊपर हमने उनकी जो वाणी उद्धृत की ह स्वतन्त्र भारतको उसे बराबर याद रखना चाहिए और युद्धसे जर्जर विश्वम निःशस्त्रीकरणकी दिशाम महत्त्वपूर्ण योगदान करना चाहिए।

वी० एन० राव

महात्मा गांधीका प्रभाव

सुदूर पूर्वमे व्यक्तिको महत्त्व देनेवाली प्रवृत्तियाँ सबल रूपमे पायी जाती है। सयुक्तराष्ट्र संघके घोषणापत्रकी शब्दावलीमें कहे तो हम केवल व्यक्तिके महत्त्व ही नही अपितु उसकी महती आतरिक शक्तिमे भी विश्वास करते है। हमे समय-समयपर इसका तीव्र अनुभव होता है। उदाहरणके लिए, मै यहाँ महात्मा गाधी-के जीवनका जिक्र करूँगा।

अगस्त १९४७ मे जिस समय मै वर्माके नये सविधानके निर्माणमे सहायता देनेके उद्देश्यसे वहाँ जा रहा था रास्तेमे, कलकत्तेमे दो दिनोके लिए रुक गया था उस समय महात्माजी भी वहाँ मौजूद थे। उस समय देशका वातावरण हिन्दू-मुसलिम तनावसे विषाक्त हो गया था। फिर भी कलकत्तेमे अपेक्षाकृत शाति थी। मैने वहाँके पुलिस-प्रधानसे पूछा कि नगरमे जो शाति है उसका कारण गाधीजी-की उपस्थिति है या अन्य कुछ? उसने जवाब दिया, "नही, इसके अनेक कारण है और मुख्य कारण तो पुलिसकी कार्यकुशलता ही है। किसी एक व्यक्तिके कारण पूरे नगरमे शान्ति स्थापित नही हो सकती।" मैने पुलिसको धन्यवाद दिया और रगूनकी यात्रापर चल पडा।

सितम्बरके दूसरे सप्ताहमे मै अपनी वापसी यात्रामे फिर कलकत्ता आया। इस बार भी यहाँ पूरी शान्ति थी, किन्तु बीचमे यहाँ साम्प्रदायिक उपद्रवकी बहुत बडी घटना हो चुकी थी। ३१ अगस्तको तो नगरकी हालत बहुत ही खराब हो गयी थी। यहाँतक कि महात्माजी जिस मकानमे रहते थे उसपर भी आक्रमण हुआ था और वे बाल-बाल बच गये थे। दूसरे दिन उन्होने आमरण अनशन शुरू कर दिया। उन्होने यह व्रत ले लिया कि जबतक दोनो सम्प्रदायोके लोग होशमे नही आ जाते और सही ढगसे व्यवहार करनेका आश्वासन नही दे देते, वे अनशनका त्याग न करेंगे। यह अनशन ७२ घंटे चला। इसका इतना प्रभाव पडा कि नगर-

के हिन्दू मुस्लिम और ईसाई सभा सम्प्रदायो और व्यवसायिया, दूकानदारा, मजदूरा आदिके सभी सघटनाए नेता और प्रतिनिधियोने उनके पास आकर उन्हें यह लिखित आश्वासन द दिया कि अब नगरमें कोइ उपद्रव नही होगा। उसी दिनसे आग महीनोतक कलकत्ता या बगालम अयत्र कही भी कोई उपद्रव नही हुआ, यद्यपि दशके दूसरे भागाम यापक उपद्रव होते रहे।

कलकत्तामें यह नाटकीय परिवतन उपस्थित होनेर बाद ही म रगूनस अपनी वापसी यात्राम कलकत्ता पहुँचा था। मन फिर उसी पुलिस प्रधानस पूछा कि इस समयकी स्थितिक सम्बधम आपकी क्या धारणा ह। उसन जवाब दिया कि, इस बार ता मुझे यह मानना होगा कि शाति केवल एक व्यक्तिके प्रयासस ही स्थापित हुइ ह। यह घटना सितम्बर १९४७ में कलकत्ताम हुई थी। उसी वष गाधीने यही काम दिल्लीम भी किया—यद्यपि इस बार उन्हें छ दिनाका अनशन करना पडा। अतिम दिन दिल्लीक हिंदू मुसल्मान और सिख सम्प्रदायाक नताओने उन्हें आश्वासन दिया कि यदि उनके नगरमें किसी भी प्रकारका उपद्रव होगा तो इसके लिए व यक्तिगत रूपम जिम्मदार होग और वे हर तरह स एसा अच्छा यवहार करेंग जिसम नगरम बराबर शाति बनी रहगी। गाधीजीन उनके शादिक आश्वासनापर ही विश्वास न करके कार्योम उसका प्रमाण देनेको मांगा और उन्होन तथा उनकी अनुयायी जनताने यह प्रमाण भा प्रस्तुत कर दिया। उन्हान भारत सरकारसे भी कुछ एस कतय करनेक लिए बाध्य कर दिया जिसक सबधमें व साचत थे कि सरकार ढिलाई कर रही ह। आजकल जबकि हम बराबर सवसत्तावादी शासन प्रणालियो और राजसत्ताकी शक्तिक सम्बधमें पत्त-सुनत रहत हैं यह अनुभव अत्यन्त उत्साहवधक ह कि एक यक्तिने अपना शक्तिस न कवल बड बड सम्प्रदायो अपितु राजसत्ता और सरकारको भी झुका दिया था। मुझे एक दाम जहाँ यक्तिका महत्त्व विवादका विषय बना हुआ है और जहाँ समय समयपर उसकी शक्तिक प्रमाण बराबर मिलत रहत है सवसत्ता वादी सिद्धान्तकी जड नहा जम सकती।

[illegible] दिन समारम उलझन और निराशाका वातावरण बना हुआ ह। हम समझ नहा पा रहे ह कि हमारे चारा आर आखिर क्या रहा ह, परन्तु हम [illegible] लिय जा रह ह। हम विचारपूर्वक यह भी निणय नहा कर पा रह ह कि इन परिस्थितियोम हम क्या करना चाहिए। एस समयम हमारे लिए व्यक्तिकी अन्तर्निहित शक्तिका स्मरण करना बडा लाभ [illegible] ह। मने यहाँ उसका [illegible] एक श्रद्धालु [illegible] रूपम किया ह किन्तु इस [illegible]

उदाहरणसे भी पुष्ट किया जा सकता है। परमाणुवम आजकी दुनियामे सवसे वडी विस्फोटक शक्ति है। किन्तु इस महान् विस्फोटका आरम्भ कैसे होता है। सवसे पहले न्यूट्रन नामका एक सूक्ष्मातिसूक्ष्म अदृश्य कण वन्दूकके रूपमे छूटता है जिससे फिर दूसरे कण वन्दूकके रूपमे छूटते है। फिर इन दो कणोके विस्फोटसे प्रभावित होकर और नये दो कणोमे विस्फोट होता है। इस प्रकार विस्फोटका सिलसिला वढते-वढते पृथ्वीको हिला देनेवाली भीषण शक्ति पैदा हो जाती है।

जो कुछ भौतिक जगत्के लिए सत्य है वही नैतिक जगत्के लिए भी सत्य है। वहाँ भी एक अकेले व्यक्तिसे प्रतिक्रियाओकी महान् शृङ्खला शुरु हो सकती है। अतएव आधुनिक विज्ञानमे हम यह शिक्षा ग्रहण कर सकते है कि सूक्ष्माति-सूक्ष्म परमाणुका क्या महत्त्व है और इसीके उदाहरणसे हम व्यक्तियोमे निहित अपरिमेय शक्ति और व्यक्तिगत स्वतन्त्रताका महत्त्व भी पहचान सकते है। यदि कोई एक व्यक्ति, संघटन या देश सही विचारका प्रवर्तन कर दे तो यह विचार अन्ततोगत्वा सारी दुनियाको प्रभावित कर सकता है।

व्यष्टि और समष्टि

गांधीजीकी शहादतके बादसे उनका प्रभाव संसारमें बढ़ा हो ऐसा प्रतीत नहीं होता। यह भी संभव है वह घटा ही हो। मैं भारतमें उनकी स्थितिकी बात नहीं कह रहा हूँ क्योंकि मुझे वहाँके जनमतकी कोई निकट जानकारी नहीं है किन्तु दूरसे देखनेपर वहाँ भी मात्र राजनीतिक उलझन, उद्योगीकरणकी योजनाओंमें आगे बढ़नेकी प्रवृत्ति और मशीनीकरणका ही प्राधान्य दिखाई दे रहा है जो महात्माजीकी शिक्षाके विपरीत ही है। मैं यहाँ केवल यूरोप और अमरीकाके चिंतनशील लोगोंकी मानसिक अवस्थाके ही संबंधमें कुछ कहूँगा। इसकी प्रवृत्ति निराशा और उदासीनताकी ओर ही है। आधुनिक सभ्यताकी निरंतर वर्धमान बुराइयोंके विरुद्ध किसी प्रभावी अहिंसक प्रतिरोधकी कोई खास प्रवृत्ति उनमें नहीं दिखाई दे रही है। कवियों और अभिनेताओंके कुछ समूहोंने हमारे युगकी सामाजिक मान्यताओंके विरुद्ध अवश्य विद्रोह किया है और वे प्रायः किसी पूर्वी रहस्यवादमें अपनी निष्ठा भी व्यक्त किया करते हैं किन्तु उनकी प्रधान इच्छा सामाजिक जिम्मेदारियोंसे भागनेकी ही होती है। वे स्वयं वास्तविकतासे ही पलायन करना चाहते हैं। इसीलिए वे प्रायः तरह तरहकी नशीली दवाओंका भी सेवन करते हैं। किसी प्रकारके सचेत आत्मसंयमसे वे कोसों दूर हैं। उनमें [illegible] सत्याग्रहकी बात जरा भी नहीं है। सत्याग्रह तो एक ऐसा रचनात्मक कार्यक्रम है जिसमें सबसे पहले व्यक्तिगत दम्भ और किसी भी प्रकारकी आत्मप्रवंचनाका ही बहिष्कार करना होता है।

यूरोप और अमरीकामें शान्तिवादियोंके कुछ [illegible] संगठन भी हैं किन्तु उनके सिद्धान्त अत्यन्त उलझे हुए और अस्पष्ट हैं। वे सैद्धान्तिक आधारपर तो युद्धका विरोध और राजनीतिक दलबंदियोंकी निन्दा करते हैं किन्तु जब इसका कोई असली रूप सामने आता है [illegible] शान्तिवादियोंका आक्रमण तो वहीं [illegible]

वल-प्रयोगको क्षमाकर देते हैं या उससे दूर खडे रहकर वहाँकी सैनिक कारवाई-के परिणामपर मन-ही-मन खुश होते रहते है। कुछ ऐसे शान्तिवादी भी है जो किसी एक मामलेमें, जैसे वियतनाममे अमेरिकी आक्रमणका विरोध करनेमे, तो शान्तिवादी बने रहेंगे किन्तु जब रोडेशियाका प्रश्न आयेगा तो वहाँ स्मिथ सर-कारको गिरानेके लिए वल-प्रयोगका समर्थन करने लगेंगे। जब दो आक्रामक संघर्परत रहते है, जैसे दक्षिण-पूर्वी एशियामे कम्युनिस्ट और गैरकम्युनिस्ट, तो इन शान्तिवादियोकी सहानुभूति प्राय. कम्युनिस्टोके साथ ही होती है, चाहे वे इस सहानुभूतिको कार्यरूपमे भले ही परिणत न करे। किसी लडाकू-पक्षके हकमे किसी घोपणापत्रपर हस्ताक्षर करना भी हिंसाका ही कार्य माना जायगा—और यह तो हिंसाका अत्यन्त कायरतापूर्ण कार्य है। युद्धसे दूर खडे रहकर खुशियाँ मनानेसे तो स्वय लडना कही अच्छा है।

शान्तिवादियोकी सबसे बुरी स्थिति तो उस समय दिखाई देती है जब वे किसी-न-किसी प्रकारकी विश्वसरकारका समर्थन करनेवाले विभिन्न प्रकारके संघ-टनोद्वारा बहका दिये जाते हैं और उनके भुलावेमे आकर खुद ऐसी सरकारका समर्थन करने लगते है जैसा कि गाधीने बताया है और उनके पूर्व टॉल्स्टॉय भी बता चुके हैं सरकार चाहे जैसी भी हो वल प्रयोगका सहारा अनिवार्य रूपसे लेती है। मैने अवतक विश्वसरकारकी जिन सारी योजनाओको देखा है उनमे सभीमे एक ऐसे अन्तरराष्ट्रीय पुलिस-दलका प्राविधान अवश्य मिलता है जिसे अन्तरराष्ट्रीय (अथवा राष्ट्रातिशायी) न्यायालयके निर्णयोको "कार्यान्वित कराने" का काम सौपा जायगा। राष्ट्रीयताविहीन हो जानेके कारण ही वल-प्रयोग पवित्र नही हो जाता, वास्तविकता तो यह है कि ऐसी मूलहीन (और निर्मम) अन्तरराष्ट्रीय सेना कुछ ऐसे निपेधोसे भी मुक्त हो जायगी जो अभी भी किसी राष्ट्रीय सेनापर नियन्त्रण बनाये रखते है और उसके व्यवहारोको संयत करते रहते हैं। राष्ट्र (और जातियाँ) सावयव और सजीव होती हैं, विश्वसरकार या अन्तरराष्ट्रीय पुलिस-दल एक अमानवीय कल्पना हैं। सर्वसत्तावादका इतिहास इस तथ्यका साक्षी है कि काल्पनिक एकताके नामपर बने संघटन किस तरह क्रमश. अमानवीय होते गये है।

सामान्यत. यूरोप और अमेरिकाके शान्तिवादी आन्दोलन आक्रमणकी अन्त-र्निहित और अवदमित प्रवृत्तियोकी अभिव्यक्तियाँ मात्र है जैसा कि उनके विरोधियो-ने उन्हे कहा है। अभीतक लोगोने इसका अनुभव नही किया है कि गाधी जिसे सत्याग्रह कहते थे वह मात्र या मुख्यत. कोई राजनीतिक अभिवृत्ति नही है।

यह एक 'नतिक' अभिवृत्ति ह। इसमे मनुष्यका पूरा दिल दिमाग शामिल हो जाता ह। इससे भी आगे इसमें मनुष्यके बारेमें सद्धान्तिक दष्टिसे अथवा एक जातिक रूपमें भी विचार करनेका कोई प्रश्न नही उठता। वस्तुत इसमें ता हम एक व्यक्तिसे, स्वय अपने स्व से आरभ करना होगा। जसा कि जुगने बताया ह सत्याग्रह वस्तुत व्यक्तीकरणकी मनोवज्ञानिक प्रक्रिया ह। मनुष्य, मनुष्यके साथ उस समयतक शान्ति स्थापित नही कर सकता जबतक वह स्वय अपने अतमनम, अपने स्व' और अपने पर्यावरणके बीच शाति स्थापित न कर ले। उसके इस पर्यावरणमें वे सभी व्यक्ति आ जाते है जिनके सम्पर्कमें वह आता ह। गाधीके अहिंसकप्रतिरोधसबधी लेखोपर (कलेक्टड राइटिंग्स ऑन नानवायलेन्ट रजिस्टेंस, शाकेनबुक्स, न्यूयाक, १९५१) सम्पादकीय टिप्पणी लिखते हुए भारतन् कुमारप्पाने लिखा ह कि

> राजनीतिक क्षेत्रमें अहिंसाका प्रयोग उपन्न दन अथवा लीग आव नेशन्स जसी सस्थाएँ या अन्तरराष्ट्रीय पचायती अदालतें बनानेका विषय मात्र नही ह। एक एक इट चुनकर जिस तरह किसी भवनका निर्माण किया जाता ह, सत्याग्रह द्वारा उसी धय लगन और अध्यवसायसे एक नयी अहिंसक सामाजिक और आर्थिक व्यवस्थाके निर्माणकी साधनाकी जाती ह। सत्याग्रह 'अन्ततोगत्वा' हिंसाको व्यक्तिके हृदयसे निकालकर उसे पूणत सयत व्यक्तित्वमें बदल देनेपर आधारित ह।

मेरा केवल 'अन्ततोगत्वा' शब्दस विवाद ह जिसपर मने यहाँ बल दिया ह। मैं इस शब्दके स्थानपर 'मुख्यत' शब्द रखना पसद करूँगा। डाक्टर कुमारप्पा आगे लिखते हैं

> गाधीका अवदान इसके लिए एक आवश्यक टेकनीकका विकास करने और उदाहरण द्वारा यह दिखलानेमें ह कि यह सब कैसे किया जा सकता है।

आत्मानुशासनको सत्याग्रहका पहली आवश्यक बात बताकर उसपर ज्यादा जोर देनेस ऐसा लग सकता ह कि इसमें हमारे सामने उपस्थित उन सामाजिक समस्याओंकी उपेक्षाकी गयी ह जो समाजके सभी सघर्षोंका तात्कालिक कारण होती हैं। लेकिन लाचारी ह एक सच्चा शिष्य, जिसे सत्याग्रहका कोई स्पष्ट ध्येय न मालूम हो, भ्रान्ति और निराशा फलाकर समाजका कल्याण करनेकी अपेक्षा उसे हानि ही अधिक पहुँचायेगा।

गाधी अहिंसक प्रतिरोधमें भाग लेनेके पूर्व व्यक्तिके प्रशिक्षणको आवश्यक

कतापर बराबर बहुत बल देते थे। इसीसे व्यक्ति अपने कामके योग्य बन सकता था। यह प्रशिक्षण सैनिक-प्रशिक्षणसे भी अधिक कठोर होगा क्योंकि सैनिक-प्रशिक्षणमे मनुष्यके आन्तरिक जीवनका स्पर्श नही किया जाता। सत्याग्रह का प्रशिक्षण धर्मयुगमें उन ईसाई साधुओ और संन्यासियोको दिये जानेवाले प्रशिक्षणके समान ही कठोर होगा जिन्होने ईसामसीहका संदेश घर-घर पहुँचा दिया था। जब इन साधुओ और सन्यासियोने अपना अनुशासन और सयम शिथिल कर दिया तो ईसाके सदेशोका प्रभाव भी कम होने लगा। निश्चय ही सत्याग्रह एक धार्मिक निष्ठा है जिसमें सभी महान् धर्मोमे प्राप्त होनेवाले सर्वप्रमुख सत्यको ही सार रूपमे ग्रहण किया जाता है। किन्तु धर्मोकी स्थापना एक दिनमें नही होती और न तो केवल उपदेश द्वारा उनकी प्रतिष्ठा ही हो सकती है। उनकी स्थापना कार्योद्वारा होती है—एक सामान्य आत्मानुशासनके अन्तर्गत प्रशिक्षित व्यक्तियोके व्यवहार द्वारा होती है। ऐसे व्यक्तियोको अपना संघटन बनाना चाहिये और उनकी कार्यनीति भी एक जैसी होनी चाहिए, किन्तु जैसा कि गाधीने कहा था, "सामान्यत शान्ति-स्थापनका कार्य स्थानीय आदमियो द्वारा ही अपने-अपने स्थानोमे किया जा सकता है।" इसे केवल अपनी व्यक्तिगत उपस्थिति और दृश्यमान उदाहरण द्वारा ही किया जा सकता है। विनोबा जैसे शान्तिके महान् संघटकके कार्योकी आलोचना करना इसका उद्देश्य नही है। किन्तु समग्र संसारकी व्यापक दृष्टिसे विनोबा भी एक स्थानीय व्यक्ति ही हैं जो अपने ही स्थानमें शान्तिके लिए कार्य कर रहे हैं। वे भी वाचनिक न होकर कार्मिक व्यक्ति हैं।

यूरोप और अमेरिका जैसे उन्नत औद्योगिक देशोकी सामाजिक परिस्थितियाँ भारतसे इतनी भिन्न हैं कि हम अहिंसक प्रतिरोधके कठिन मार्गपर स्वेच्छापूर्वक चलनेवाले शिष्योंके प्रशिक्षणका तरीका खोज ही रहे हैं, किन्तु अभीभी यह एक समस्या ही बनी हुई है। मै स्वीकार करता हूँ कि इस समस्याके समाधानमे आसानीसे सफलता मिलनेकी मुझे कोई संभावना नही दिखाई दे रही है। अपनेको शान्तिवादी या अराजकतावादी घोषित कर देना (जैसा कि मैने किया है) एक निष्क्रिय सकेतमात्र है यद्यपि इसमे भी किसी-न-किसीके शब्द और कार्य कुछ लोगोंको प्रभावित कर सकते हैं। किन्तु गाधी द्वारा समर्थित कई तरीके यूरोप और अमेरिकाके उन जटिल औद्योगिक समाजोपर लागू नही किये जा सकते, जो सासारिक सम्पत्ति प्राप्त करनेकी दुर्दमनीय इच्छासे अभिभूत और मनोरजनके सार्वजनिक माध्यमोके तीव्र और अजस्र प्रभावसे दिग्भ्रान्त हैं। इस वीरानमे एक छोटी-सी आवाज मशीनोके हडकंपमे न जाने कहाँ खो जाती है। हमारे औद्योगिक

समाजमें पारस्परिक अजनबीपन, अलगाव और भावशून्यताकी सामाजिक बीमारी इस हदतक घुनकी तरह लग गयी है कि पवित्र व्यक्तियो फिरसे जोड देनेके कोई भी प्रयास (अथवा व्यक्तीकरणका प्रयास जो अलगाव महसूस कर रहे अस्वस्थ व्यक्ति के उपचारकी ही एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है) न केवल साहसिक कहा जायगा बल्कि मुख्यत निरर्थक भी होगा। फिर भी जैसा कि कमसने कहा है व्यक्तिका निरर्थक काम भी करना ही पडता है। किन्तु इस निरर्थक निष्कर्षपर पहुँचनेके लिए हम एक भिन्न मार्गकी स्थापना करनी होगी। तर्क करना या विदवसरकार जैसा तर्कसगत योजनाएँ बनाना मनुष्यकी सहजात अतार्किक प्रवृत्तिकी उपेक्षा कर देना है। मनुष्यको तर्कसगत विवेकशील प्राणी बनानेका प्रयत्न करना न तो सभव और न वाञ्छनीय। इससे तो मनुष्यकी जिजीविषा ही समाप्त हो जायगी क्योंकि जीवनकी इच्छा कोई तर्कसगत योजना नही है यह तो एक अन्धी सहजवृत्ति है। गाधीने इसे अच्छी तरह समझा था। इसीलिए उन्होने यह स्वीकार किया था कि सत्याग्रहमें परमात्माकी जीवन्त उपस्थिति और मार्गदर्शनमें विश्वास रखना पहली शर्त है। नेताको अपनी शक्तिपर नही बल्कि परमात्माकी शक्तिपर भरोसा होता है। वह अपनी अन्तर्वाणीके अनुसार काम करता है।' गाधी बार-बार इस अतार्किक अभिप्रेरणाकी ओर मुडते हैं किन्तु पश्चिमी लोगोके विलगीकृत भाव-शून्य मस्तिष्क इस वाणीको सुन नही पाते (और सुन नही सकते)। पहले उनके मस्तिष्क और मनका उपचार होना चाहिये तभी वे परमात्मा अथवा किसी प्रकार-की अन्तर्वाणीसे सम्पर्क स्थापित कर सकते हैं।

हमने यहा बराबर "परमात्मा" शब्दका व्यवहार किया है किन्तु आधुनिक व्यक्ति इस तरहकी पुरानी पौराणिक भाषाके प्रयोगसे इनकार कर सकता है। किन्तु वह धीरे धीरे उस सत्यकी पहचानना शुरू कर देगा जिसे अतीतमें इस शब्द द्वारा व्यक्त किया जाता है। आज वह जिस "अचेतन" मनकी उपस्थिति स्वीकार करने लगा है वह वस्तुत उसके अन्दर रहनेवाली एक अन्तर्वाणीकी उपस्थितिकी ही स्वीकृति है फिर चाहे उसे समझ पाना कितना ही कठिन क्या न लगता हो। यह ठीक है कि भौतिकवादी लोग अचेतनका अस्तित्व अस्वीकार करते हैं किन्तु वे मानव-समाजकी अतार्किक प्रवृत्तिकी व्याख्या नही कर सकते और पीडित व्यक्तिको किसी प्रकारकी सान्त्वना भी नही दे सकते। उनका भौतिकवाद उन्हें पौरुषहीन और निःस्व बना देता है। उनमें आत्म साक्षात्कारकी सामर्थ्य ही नही होती और सामाजिक अभ्युनुकूलनकी किसी भी प्रकारकी प्रक्रियामें आत्मसाक्षात्कार सर्वप्रथम अपरिहार्य होना है।

मेरा ऐसा ख्याल है कि गाधीने अपने जीवनके अन्तमे यह विश्वासकर लिया था कि हम समष्टिके लिए जिस सामञ्जस्य, न्याय और स्वतन्त्रताकी कामना करते है वह ऐसे ही व्यक्तियो द्वारा प्राप्त की जा सकती है जिन्होने स्वयं अपने अन्तर्मनमे सामञ्जस्यकी स्थिति प्राप्त कर ली है। गाधी ऑन नानवायलेंस नामक पुस्तक (न्यू डाइरेक्शन्स, न्यूयार्क, १९६५) की भूमिकामे टामस मर्टन मेरे इसी विचारकी पुष्टि करते दिखाई देते है :

> गाधीकी दृष्टिसे अहिसा केवल राजनीतिक पद्धति नही थी, जो उनके देश-की जनताको विदेशी शासनसे मुक्ति दिलानेमे भी अत्यन्त उपयोगी और प्रभावी सिद्ध हुई जिससे उस समय भारत अपने राष्ट्रीय स्वरूपको पह-चाननेमे समर्थ हो गया। इसके विपरीत अहिसाकी भावना उनके अन्दर आध्यात्मिक ऐक्यके आन्तरिक साक्षात्कारसे उद्भूत हुई थी। अहिसक कार्य और सत्याग्रहकी सम्पूर्ण गाधीवादी अवधारणाको यदि आन्तरिक ऐक्यका परिणाम माननेकी अपेक्षा ऐक्य प्राप्तिका साधन समझा जाय तो यह बिलकुल ही गलत और भ्रामक होगा।
>
> वस्तुत गाधीकी ऊपरसे दिखाई देनेवाली विफलताकी व्याख्या भी यही है (यह विफलता उन्हे अपने जीवनके अन्तमे स्पष्ट हो गयी थी)। उन्होने यह देख लिया कि उनके अनुयायी वह आन्तरिक ऐक्य नही प्राप्त कर सके है, जिसे उन्होने स्वय अपने अन्दर प्राप्तकर लिया है। अत उनका सत्याग्रह बहुत हदतक एक दिखावामात्र था क्योंकि वे लोग इसे एकता और स्वतन्त्रताका साधन समझते थे जब कि स्वयं गाधीके लिए यह आवश्यक रूपसे स्वत. आन्तरिक स्वतन्त्रताका परिणाम होता है।

जिन लोगोका दिमाग हरतरहके आन्दोलनो और सामूहिक प्रयासोकी ओर ही ऐकान्तिक रूपसे लगा हुआ है उन्हे यह एक निराशाजनक निष्कर्ष ही प्रतीत होगा किन्तु यदि इसे सामान्य रूपसे स्वीकार कर लिया जाय तो इससे राजनीतिमे एक नये युगका समारभ हो सकता है। यह ठीक है कि इसकी प्रक्रियाएँ निश्चय ही खण्ड-खण्ड रूपमे चलेंगी और कुछ व्यक्तियो तथा कुछ छोटे समुदायो-तक ही सीमित रहेंगी और उनकी गति भी मन्द होगी। इसके साथ ही यह भी हो सकता है कि इसी बीच विनाशकारी घटनाएँ हमको अभिभूत कर ले और हम जिस सभ्यताको बचाना चाहते है वह नष्ट हो जाय। विश्व इतिहासमे सभ्यताकी रक्षा कुछ एकाकी व्यक्तियो और कुछ थोडेसे छिटफुट समुदायोके धैर्य, विनम्रता, कष्टसहिष्णुता और त्यागसे ही हुई है और भविष्य भी यदि ऐसा ही होता है

तो यह कोई अभूतपूर्व बात न होगी।

मैं चार आवश्यक गुणोंकी चर्चा कर चुका हूँ किन्तु इनके अलावा एक पाँचवाँ गुण भी है जिसमें इन सभीका समावेश हो जाता है और जिसे गांधी प्रेम की संज्ञा देना पसंद करते थे। पश्चिममें इस शब्दका इतना दुरुपयोग और अध पतन हुआ है कि मुझे इसे अपनी जुबानपर लानेमें संकोच हो रहा है। यहाँतक कि दान (चरिटी) शब्द भी जो लैटिन शब्द कैरियस पर आधृत है और जिसका न्यूटेस्टामेण्टके प्रामाणिक संस्करणमें भी प्रयोग हुआ है अब द्वयर्थक बन गया है और निश्चय ही अब उसका वह अर्थ नहीं रह गया है जिस अर्थमें हम प्रेमका मान-वीय मोक्षके संदर्भमें ग्रहण करते हैं। पवित्र शब्दोंके अर्थोंका जो अध पतन हुआ है वह आधुनिक मनुष्यके आध्यात्मिक अध पतनके अनुरूप ही है। उलझनसे भरी हुई अस्पष्ट अपरिचित शब्दावली अपरिचित और विलगीकृत मस्तिष्कको ही प्रकट करती है। आध्यात्मिक उपचारकी प्रक्रिया प्रेम जैसे शब्दोंके सच्चे अर्थोंके पुनरुद्धारसे ही संभव हो सकती है। इस बीच कुछ लोगोंमें 'मौन संवाद शुरू हो सकता है और जैसा कि मार्टिन बूबरने कहा है इस सांवादिक संबंधमें प्रश्न शब्दोंका नहीं उठता पारस्परिकताका उठता है—एक ऐसी पारस्परिकताका जिसमें एक दूसरेको अपनेमें शामिलकर लेनेकी पारस्परिक अनुभूति सम्मिलित होती है जो भले ही सूक्ष्म हो।' इससे किसी राजनीतिक आंदोलनका प्रभावकारिता आपाततः भले ही कम होती दिखाई दे, किन्तु आज पहली आवश्यकता यही है कि हम शब्दोंपर विश्वास करना छोड़ दें फिर चाहे वह प्रेम शब्द ही क्यों न हो और परस्पर एक दूसरेके सम्मुख अपने कर्मों द्वारा ही उपस्थित हों।

रुक्मिणी देवी

कुछ संस्मरण

किसी महापुरुषकी जन्मशतीके अवसरपर बडे पैमानेपर श्रद्धांजलियाँ अर्पित की जाती है। गाधीजीकी जन्मशतीपर भाषणो और लिखित शब्दो द्वारा भी सारा ससार उनके प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित करेगा इसमे मुझे कोई सदेह नही है। मेरी समझमे ऐसे अवसरपर केवल प्रशंसा ही पर्याप्त न होगी। मै यहाँ यह कहना चाहती हूँ कि गाधी-जन्मशती किस तरहसे लोगोको प्रेरणा प्रदान करनेमे सहायक हो सकती है। आज ऐसे लोगोकी संख्या तेजीसे कम होती जा रही है जिन्हे गाधीजीका प्रत्यक्ष अनुभव-ज्ञान था। जिन लोगोने उनसे प्रेरणा प्राप्त की थी उनमे आज जो लोग हमारे बीच मौजूद है उनका यह कर्तव्य हो जाता है कि वे यह प्रेरणा दूसरोतक पहुँचा दें। यह एक कठिन काम है क्योकि किसी महान् व्यक्ति-के प्रत्यक्ष प्रभावको फिरसे दुहरा पाना अथवा उसे दूसरोतक पहुँचा देना आसान काम नही है।

मेरा गाधीजीसे कोई घनिष्ठ सम्बन्ध नही था, किन्तु जिन थोडेसे अवसरोपर मै उनसे मिली हूँ उनकी स्मृतियाँ आज भी ताजी है। मुझे उनके बारेमे सबसे पहली जानकारी डाक्टर एनी बेसेण्टसे मिली जो, जैसा कि सभी भारतीय जानते है, भारतीय स्वशासनके लिए काम करनेके कारण ब्रिटिश सरकार द्वारा उटकमण्डमे नजरबन्द की गयी थी। मैने गाधीजीके विषयमे डाक्टर अरुण्डेलसे भी सुन रखा था जो डाक्टर एनीबेसेण्टके साथ ही नजरबन्द किये गये थे। डाक्टर बेसेण्ट भारतीय स्वातन्त्र्य आन्दोलनकी नेत्री थी और हमारा देश उनसे अनुप्रेरित होता था। भारतीय स्वतन्त्रताका समर्थन करनेके कारण गाँव-गाँव और शहर-शहर उनकी प्रशसा होती थी। उनकी नजरबंदीकी हालतमे ही गाधीजीने घोषणा कर दी कि मै उनकी नजरबंदीके विरोधमे हजारो लोगोके साथ ऊटकमण्डकी ओर अभियान करूँगा और उन्हें तथा उनके साथियो डाक्टर अरुण्डेल और श्री एम०पी० वाडिया-

को रिहा करवाऊँगा। सौभाग्यवश गांधीजीकी यह घोषणा इतना प्रभावशालिनी हुई कि इसका तत्काल असर हुआ और वे अपने साथियोंके साथ रिहा कर दी गयी।

स्वशासन आन्दोलनके बाद ही गांधीजीके नेतृत्वमें सत्याग्रह आन्दोलन भी छिड़ गया। इससे गांधीजी और डाक्टर बेसेण्टमें वैचारिक मतभेद हो गया। वे सामान्य जनताको, जिसमें छात्र भी शामिल थे, कानूनके उल्लंघनका सलाह दिये जानेके विरुद्ध थीं। उन्होंने असहयोग आन्दोलनके पीछे काम करनेवाली सारी विचारधाराके विरुद्ध बड़ा ही उग्र लेख लिखा। उस समय मैं केवल सोलह सालकी थी। मेरी समझमें नहीं आ रहा था कि ऐसे बड़े लोग, जो स्वयं उच्च आध्यात्मिक जीवनके प्रतीक हैं और जिनमें हरेकके पीछे हजारों अनुयायियोंकी भीड़ एकत्र है, आपसमें इतना गहरा मतभेद रख सकते हैं। स्वभावतः डाक्टर बेसेण्टके प्रति अधिक अनुराग रहनेके कारण मन यह अनुभव किया कि गांधीजी इतने बड़े आदमी नहीं हैं। इसीलिए यह जाननेके उद्देश्यसे कि लोग उन्हें इतना प्रेम क्यों करते हैं और उन्हें इतना आदर कैसे दे पाते हैं मैं एक ऐसी बड़ी सभामें गयी जिसमें वे स्वयं उपस्थित थे। मेरे ऊपर उनका जो पहला प्रभाव पड़ा वह निराशाजनक ही था क्योंकि देखने-सुननेमें बाहरसे उनका व्यक्तित्व कोई उतना प्रभावशाली नहीं मालूम पड़ता था और न तो उनकी उपस्थिति ही मुझे खास प्रभावोत्पादक लगी। बादमें मैंने उन्हें भाषण करते हुए सुना। वे धीमी और मधुर आवाजमें बोल रहे थे और उनके होठोंपर सदा एक सुंदर मंद मुसकान बनी रहती थी। उस समय मुझे यह अनुभव हुआ कि उनकी यह सरलता ही उनके आकर्षणका कारण है और इसीने लोगोंका हृदय जीत लिया है। मैं यह देखकर अत्यंत प्रभावित हुई कि लोग उनमें किस तरह प्रेरित और मुग्ध हो उठते हैं। कई वर्षों बाद मुझे उनके व्यक्तिगत सम्पर्कमें आनेका मौका मिला। मैं यहाँ यह भी कह देना चाहती हूँ कि यद्यपि उनसे डाक्टर बेसेण्टका तीव्र मतभेद था फिर भी बातचीतमें डाक्टर बेसेण्ट और डाक्टर अरुण्डेल मुझसे कहा करते थे गरीबोंके प्रति गांधीजीका प्रेम अद्वितीय और आश्चर्यजनक है और वे सचमुच एक निःस्वार्थ संत पुरुष हैं। उन्होंने अनेक सार्वजनिक भाषणोंमें और लेखोंमें भी यही बात कही है। वे यह भी कहा करती थीं कि अपने विभिन्न विरोधोंमें मतभेद रहते हुए भी उसके व्यक्तिगत चरित्रके प्रति सम्मान आदरका भावना रखना पूर्णतः सम्भव है जैसा कि अर्जुन और भीष्मके पारस्परिक सम्बन्धोंसे स्पष्ट हो जाता है। मुझे यह कहते हुए बड़ी प्रसन्नता हो रही है कि मैंने डाक्टर बेसेण्ट और गांधीजी दोनोंमें

द्दा इस गुणको मूर्तिमान होते हुए देखा है। उनके जीवनके आखिरी वर्षोंमे जब भी मै उनसे मिली वे प्राय डाक्टर वेसेण्टकी चर्चा करते हुए कहते थे कि, "मै उन्हे देवीकी तरहसे पूजता था।" उन्होने वेसेण्ट-शती समारोह मनानेमे मेरी वडी सहायता भी की थी।

उन दिनो जब मै उनसे पहली वार मिली थी, वे मेरे वारेमे केवल इतना ही जानते थे कि मैं डाक्टर अरुण्डेलकी पत्नी हूँ। गाधीजी ने मुझे लिखा था कि, "मै आपसे मिलनेके लिए आना चाहता हूँ किन्तु मेरा कार्यक्रम इतना व्यस्त रहता है और मै धीरे-धीरे वृद्ध होता जा रहा हूँ इसलिए मै लिखकर आपसे अनुरोधकर रहा हूँ कि आप स्वय आकर मुझसे मिल लें।" इस स्नेहभरे पत्रकी आकर्षक विनम्रता देखकर मै आश्चर्यचकित हो गयी। मैं उनसे मिलने गयी। उन्होने वडे ही मधुर शब्दोमे डाक्टर अरुण्डेलको स्मरण करते हुए कहा कि वे उन थोडे-से लोगोमे थे जो जीवनभर वच्चोकी तरह पवित्र और प्यारे वने रहते है। यदि आज वे जीवित होते तो मुझे अडयार अवश्य बुलाते। उन्होने डाक्टर वेसेण्टसे अपने मतभेदोकी भी मुझसे चर्चाकी थी और कहा था कि इससे उनके प्रति मेरी भावनाओमे कभी कोई परिवर्तन नही आया। मैने अनुभव किया कि मुझे एक सच्ची महानताके दर्शन हो रहे है। उनमे किसी तरहका आक्रोश या संकीर्णताकी कोई भावना नही थी। मै सोचने लगी कि यह व्यक्ति किसीके प्रति अनुदार और निर्मम वननेमे पूर्णत असमर्थ है। इस अनुभूतिसे उनके प्रति मेरा दृष्टिकोण पूरी तरह वदल गया। इसके वाद मुझे उनसे मिलनेके वहुत ही कम अवसर मिले है। मै उनके चरित्रकी एक सर्वोत्कृष्ट विशेषतासे अत्यधिक प्रभावित और मुग्ध हुई हूँ। गाधीजीकी यह एक वहुत वडी विशेषता थी कि वे हर किसीसे मित्रके रूपमे मिलते थे चाहे उससे उनका वर्षोका परिचय रहा हो या वे उससे पहली ही वार क्यो न मिल रहे हो। वे हरेक आदमीसे मिल लेनेके लिए ही नही वल्कि उसे अपने हाथसे स्वयं कुछ लिख भेजनेके लिए भी समय निकाल लेते थे। इसमे उनसे मिलनेवाला प्रत्येक व्यक्ति उनका मित्र हो जाता था। आखिर विना यह माने हुए कि प्रत्येक व्यक्ति विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण है, वे ऐसा कैसे कर सकते थे? इसी तरीकेसे वे प्रत्येक व्यक्तिके अन्तर्निहित सुप्त गुणोको प्रकाशित एवं जागरित कर देनेमे समर्थ थे। स्वभावत आदरकी भावनाके कारण अनुकरणको प्रोत्साहन मिलता है। मै ऐसे अनेक लोगोसे मिल चुकी हूँ जो उन्हीकी तरह वोलने या काम करनेकी कोशिश करते थे। किन्तु उन लोगोका व्यवहार उतना प्रत्यायक नही होता था क्योकि केवल वाहरी रंगढंगका अनुकरण किसीको प्रत्यय नही दिला

सकता। आज भी मेरी यही धारणा है कि गांधीशती मनानेके लिए यह आवश्यक नहीं है कि हम खद्दर पहनने लगें या सफेद गांधी टोपी धारण कर लें या चरखे-पर सूत कातने लगें। ये सब तो बाह्य प्रतीकमात्र हैं। यदि हमें सचमुच उनकी शती उस रूपमें मनानी है, जिस रूपमें वे स्वयं चाह सकते थे कि हम मनावें, तो हमें अपनी आन्तरिक भावनाओंको नया रूप देना होगा और अपना हृदय परिवर्तन करना होगा।

गांधीजी चाहते थे कि लोग समर्पणकी भावनासे प्रत्येक गाँवमें काम करें। उनकी दृष्टिमें गाँव ही भारतके हृदय हैं, वही हमारी संस्कृति, हमारी कलाओं और हमारी आध्यात्मिक विरासतके हृदय हैं। उनकी यह धारणा थी कि हमें गाँवोंसे प्रभूत प्रेरणा लेनी चाहिये। उनके चले जानेके बादसे हम गाँवोंको भूल गये हैं। हमारी सामुदायिक योजना और ग्रामीण कार्यक्रमोंने गाँवोंका सौन्दर्य नष्ट कर डाला है और शान्ति तथा सहकारी सह-अस्तित्वकी भावनाकी हत्या कर डाली है।

ग्रामोद्योगों और स्वस्थ जीवनकी दिशामें उनकी बहुत बड़ी देन है। प्राकृतिक वस्तुओंमें उनकी बड़ी दृढ़ आस्था थी। मैं तो यह कहना चाहूँगी कि भारतमें वे पहले आदमी थे जिन्होंने स्वास्थ्यवर्धक खाद्यभाण्डारों और सुधार-गृहोंकी स्थापनाकी परिकल्पना की थी। इन भाण्डारोंके माध्यमसे वे स्वास्थ्यवर्धक शुद्ध आहारोंको जनताके समक्ष प्रस्तुत करना चाहते थे। दुर्भाग्यवश आज खादी ग्रामोद्योग भवन बिना पालिश किये हुए चावल, चीनी तथा ऐसी ही अन्य चीजोंका विक्रय बहुत छोटे पैमानेपर करते हैं। यदि इस आन्दोलनका अच्छी तरह विकास किया जाय और इसमें और भी अनेक तरहकी स्वस्थ एवं शुद्ध वस्तुओंको शामिल कर लिया जाय तो राष्ट्रके स्वास्थ्यका अभूतपूर्व विकास किया जा सकता है। यह और किसी तरीकेसे संभव नहीं है। गांधीजी हमेशा आदर्शोंको व्यावहारिक योजनाओंके साथ प्रस्तुत करते थे। आदर्श व्यावहारिक दृष्टिसे चाहे जितने भी कठिन लगते हों, वे उन्हें ही अपने समस्त कार्योंका आधार बनाते थे। इसके लिए उन्होंने अपने अहिंसाके आदर्शको व्यवहारमें लानेके लिए अहिंसक चमड़ा बन गया (चमरौधा—जो अपनेसे मरे हुए पशुओंकी खालसे बनाये जाते हैं) का ही पहनावा शुरू कर दिया था। हमें यह याद रखना चाहिए कि उनके समयमें प्लास्टिक तथा अन्य रासायनिक सम्मिश्रणोंसे तैयार की गयी वस्तुओंका प्रचलन नहीं हुआ था। इसी तरह उन्होंने अहिंसक रेशमी वस्त्रोंके उपयोगको भी प्रोत्साहन दिया था। ये वस्त्र एक खास ढंगसे तैयार किये जाते थे जिन्हें

प्राप्त करनेके लिए रेशमी कीडोको मारना नही पडता था वल्कि उन्हे उडा दिया जाता था ।

उन्होने चिकित्साक्षेत्रमे प्राकृतिक चिकित्साको प्रोत्साहन दिया था । उनका विश्वास था कि यदि लोग प्राकृतिक ढंगसे, प्रकृतिके नियमोके अनुसार रहना सीख लें तो व्याधियोका स्वत. निरोध किया जा सकता है । वे औषधियोके प्रयोगमे विश्वास नही करते थे । उन्हे डाक्टरी ज्ञानके लिए जानवरोकी चीर-फाड और पशुओपर किये गये प्रयोगोसे सख्त नफरत थी । सारी दुनिया जानती है कि उन्होने जीवनके सभी क्रिया-कलापोमे अहिंसाके सिद्धान्तोको वडी ईमानदारीसे लागू करनेका प्रयत्न किया था । इस दिशामे वे महान् अग्रणी सुधारक थे । दुर्भाग्यवश वहुतसे लोग अहिंसाके उनके सिद्धान्तोको केवल राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करनेका साधन समझने लगे है । मेरी दृष्टिमे उनके अहिंसाके सिद्धान्तोको जीवनके समस्त व्यवहारोमे लागू करना ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है । हमें सम्पूर्ण जीवनके प्रति सम्मानकी भावना पैदा करनी चाहिये । जीवन जिस रूपमे भी उपलब्ध होता हो उसके प्रति हममे अहिंसक अभिवृत्ति होनी चाहिये । इसी स्थितिमे हम गाधीजीकी अहिंसाके सिद्धान्तके प्रति ईमानदार वन सकते है । दुर्भाग्यवश उन्हे अपने अनुयायियोपर इतना विश्वास था कि वे यह अनुभव ही नही कर सकते थे कि सारी जनता उनके उच्च आदर्शोतक नही उठ सकती है । इसीलिए उनके अहिंसक सत्याग्रह आन्दोलनोमे भी कुछ हिंसक घटनाएँ हो जाती थी जिससे उन्हे वडा कष्ट होता था ।

सभी लोग उन्हे राष्ट्रपिताके रूपमे याद करते है और उनके प्रति यह कहते हुए श्रद्धाञ्जलियाँ अर्पित करते है कि अन्तत. उन्हीके प्रयत्नोसे आजादी मिली है किन्तु आजादी मिलनेके वादसे हमने जो जीवन-प्रणाली अपनायी है वह उनकी कल्पनाके विलकुल विपरीत है । धार्मिक समुदायोकी पारस्परिक घृणासे देशपर कैसी-कैसी विपत्तियाँ नही आयी और कितने क्रूरतापूर्ण अत्याचार नही किये गये । यहाँ तक कि स्वतन्त्रता प्राप्तिके अवसरपर ही कैसा भीषण रक्तपात हुआ । इन सव कारणोसे भारतको धर्म-निरपेक्ष राज्य वनानेका निश्चय कर लेना स्वाभाविक ही था, किन्तु धर्म-निरपेक्षताका यह अर्थ नही होता कि देश किसी भी प्रकारके आध्यात्मिक नेतृत्व और आदर्शोको तिलाञ्जलि दे दे । मेरा यह दृढ विश्वास है कि यदि गाधीजीने आध्यात्मिक जीवनका कोई ख्याल किये विना केवल भारतकी राजनीतिक स्वतन्त्रताके लिए कार्य किया होता तो उन्हे जनताका उतना समर्थन नही मिलता और उनके अनुयायियोकी संख्या इतनी वडी न होती । जनताने

सकता। आज भी मेरी यही धारणा है कि गांधीशती मनानेके लिए यह आवश्यक नहीं है कि हम खद्दर पहनने लगें या सफेद गांधी टोपी धारण कर लें या चरखे-पर सूत कातने लगें। ये सब तो बाह्य प्रतीकमात्र हैं। यदि हमें सचमुच उनकी शती उस रूपमें मनानी है, जिस रूपमें वे स्वयं चाह सकते थे कि हम मनावें, तो हमें अपनी आन्तरिक भावनाओंको नया रूप देना होगा और अपना हृदय परिवर्तन करना होगा।

गांधीजी चाहते थे कि लोग समर्पणकी भावनासे प्रत्येक गाँवमें काम करें। उनकी दृष्टिमें गाँव ही भारतके हृदय हैं, वही हमारी संस्कृति, हमारी कलाओं और हमारी आध्यात्मिक विरासतके हृदय हैं। उनकी यह धारणा थी कि हमें गाँवोंसे प्रभूत प्रेरणा लेनी चाहिये। उनके चले जानेके बादसे हम गाँवोंको भूल गये हैं। हमारी सामुदायिक योजना और ग्रामीण कार्यक्रमोंने गाँवोंका सौन्दर्य नष्ट-कर डाला है और शान्ति तथा सहकारी सह-अस्तित्वकी भावनाकी हत्या कर डाली है।

ग्रामोद्योगों और स्वस्थ जीवनका विकास उनकी बहुत बड़ी देन है। प्राकृतिक वस्तुओंमें उनकी बड़ी दृढ़ आस्था थी। मैं तो यह कहना चाहूँगा कि भारतमें वे पहले आदमी थे जिन्होंने स्वास्थ्यवर्धक खाद्यभाण्डारों और सुधार-गृहोंकी स्थापनाकी परिकल्पनाकी थी। इन भाण्डारोंके माध्यमसे वे स्वास्थ्यवर्धक शुद्ध आहारको जनताके समक्ष प्रस्तुत करना चाहते थे। दुर्भाग्यवश आज खादी ग्रामोद्योग भवन बिना पालिश किये हुए चावल, चीनी तथा ऐसी ही अन्य चीजोंका विक्रय बड़े छोटे पैमानेपर करते हैं। यदि इस आन्दोलनका अच्छी तरह विकास किया जाय और इसमें और भी अनेक तरहकी स्वस्थ एवं शुद्ध वस्तुओंको शामिल कर लिया जाय तो राष्ट्रके स्वास्थ्यका अभूतपूर्व विकास किया जा सकता है। यह और किसी तरीकेसे सम्भव नहीं है। गांधीजी हमेशा आन्दोलनोंको कार्यान्वयनके व्याव-हारिक योजनाओंके साथ प्रस्तुत करते थे। उनमें व्यावहारिक दृष्टि थी, जिसकी भी कमी लगती हो, वे उन्हें ही अपने सफल कार्योंका आधार बनाते थे। उदा-हरणके लिए [illegible] अपना अहिंसात्मक आन्दोलन व्यवहारमें लानेके लिए अहिंसक [illegible] बन गया (सत्याग्रही—जो आन्दोलनमें शरीक हुए [illegible] कहे जाते हैं) था। [illegible] पहलेका स्वरूप न लिया था। हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि [illegible] प्लास्टिक तथा अन्य रासायनिक सामग्रियोंसे बनायी गयी वस्तुओंका प्रचलन नहीं हुआ था। ऐसा करके उन्होंने अहिंसक ढंगसे बनायी गयी वस्तुओंके प्रयोगका ही प्रोत्साहन किया था। ये वस्तुएँ [illegible] तैयार किये जाते थे जिन्हें

प्राप्त करनेके लिए रेशमी कीडोको मारना नही पडता था बल्कि उन्हे उडा दिया जाता था ।

उन्होने चिकित्साक्षेत्रमे प्राकृतिक चिकित्साको प्रोत्साहन दिया था । उनका विश्वास था कि यदि लोग प्राकृतिक ढंगसे, प्रकृतिके नियमोके अनुसार रहना सीख ले तो व्याधियोका स्वत निरोध किया जा सकता है । वे औषधियोके प्रयोगमे विश्वास नही करते थे । उन्हे डाक्टरी ज्ञानके लिए जानवरोकी चीर-फाड़ और पशुओपर किये गये प्रयोगोसे सख्त नफरत थी । सारी दुनिया जानती है कि उन्होने जीवनके सभी क्रिया-कलापोमे अहिंसाके सिद्धान्तोको वडी ईमानदारीसे लागू करनेका प्रयत्न किया था । इस दिशामे वे महान् अग्रणी सुधारक थे । दुर्भाग्यवश वहुतसे लोग अहिंसाके उनके सिद्धान्तोको केवल राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करनेका साधन समझने लगे है । मेरी दृष्टिमे उनके अहिंसाके सिद्धान्तोको जीवनके समस्त व्यवहारोमे लागू करना ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है । हमे सम्पूर्ण जीवनके प्रति सम्मानकी भावना पैदा करनी चाहिये । जीवन जिस रूपमे भी उपलब्ध होता हो उसके प्रति हममे अहिंसक अभिवृत्ति होनी चाहिये । इसी स्थितिमे हम गाधीजीकी अहिंसाके सिद्धान्तके प्रति ईमानदार वन सकते है । दुर्भाग्यवश उन्हे अपने अनुयायियोपर इतना विश्वास था कि वे यह अनुभव ही नही कर सकते थे कि सारी जनता उनके उच्च आदर्शोतक नही उठ सकती है । इसीलिए उनके अहिंसक सत्याग्रह आन्दोलनोमे भी कुछ हिंसक घटनाएँ हो जाती थी जिससे उन्हे वडा कष्ट होता था ।

सभी लोग उन्हे राष्ट्रपिताके रूपमे याद करते है और उनके प्रति यह कहते हुए श्रद्धाञ्जलियाँ अर्पित करते है कि अन्तत. उन्हीके प्रयत्नोसे आजादी मिली है किन्तु आजादी मिलनेके वादसे हमने जो जीवन-प्रणाली अपनायी है वह उनकी कल्पनाके विलकुल विपरीत है । धार्मिक समुदायोकी पारस्परिक घृणासे देशपर कैसी-कैसी विपत्तियाँ नही आयी और कितने क्रूरतापूर्ण अत्याचार नही किये गये । यहाँ तक कि स्वतन्त्रता प्राप्तिके अवसरपर ही कैसा भीषण रक्तपात हुआ । इन सव कारणोसे भारतको धर्म-निरपेक्ष राज्य वनानेका निश्चय कर लेना स्वाभाविक ही था, किन्तु धर्म-निरपेक्षताका यह अर्थ नही होता कि देश किसी भी प्रकारके आध्यात्मिक नेतृत्व और आदर्शोको तिलाञ्जलि दे दे । मेरा यह दृढ विश्वास है कि यदि गाधीजीने आध्यात्मिक जीवनका कोई ख्याल किये विना केवल भारतकी राजनीतिक स्वतन्त्रताके लिए कार्य किया होता तो उन्हे जनताका उतना समर्थन नही मिलता और उनके अनुयायियोकी संख्या इतनी वडी न होती । जनताने

उनका अनुगमन इसीलिए किया था कि उसे विश्वास था कि वे उसके ही प्रवक्ता हैं उनकी अपनी कोई वैयक्तिक महत्त्वाकांक्षा नहीं है और सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उनका जीवन राष्ट्रके लिए समर्पित है और वे एक साधु पुरुष हैं। यहाँतक कि अपने अंतिम श्वासमें भी उन्होंने श्रीराम-नामका ही उच्चारण किया। फिर भी हमारे धर्म निरपेक्ष राज्यके शिक्षाक्रममें धर्म, दर्शन या आध्यात्मिक आदर्शों के सन्निवेशका कोई प्रयत्न नहीं किया गया। गांधीजीकी जन्मशतीके अवसरपर क्या हमें अपनेसे यह सवाल नहीं करना चाहिये कि क्या हमने अपने महान नेताओं की विरासतके प्रति विश्वासघात नहीं किया है? हमने अपनी नयी पीढ़ीके लिए क्या किया है? हम उन्हें किस तरहकी विरासत दे रहे हैं? हमने उनके सामने कौन-से आदर्श प्रस्तुत किये हैं? हमने उन्हें भारतीय भावना और भारतीय जीवन में आदर्शोंका कौनसा ज्ञान दिया है? क्या हम स्वयं उन बहुमूल्य सिद्धांतोंका तिरस्कार नहीं कर रहे हैं जिनकी शिक्षा गांधीजीने दी थी? प्राणियोंमें हिंसाकी प्रवृत्ति व्याप्त है। देशमें पशुवध बढ़ता जा रहा है। सुअरोंको मारनेके लिए नये नये बूचड़खाने खुलते जा रहे हैं। स्वास्थ्यके नामपर मांसाहारको बढ़ावा दिया जा रहा है। आज हम अपने आहार विहार, वेश भूषा, सोच-समझ और प्रतिदिन के जीवनमें पश्चिमकी जितनी नकल कर रहे हैं वैसा हमारे समग्र इतिहासमें कभी नहीं हुआ था। हम ऐसे विचारोंको प्रोत्साहन दे रहे हैं जिनसे पूर्ण भौतिकवादी सभ्यताका मार्ग प्रशस्त हो रहा है।

गांधीजीने पशुओंपर किये जानेवाले प्रयोगोंके संबंधमें कहा था कि, "यह परमात्मा और उसकी सुन्दर सृष्टिके प्रति किया जानेवाला सबसे कलुषित और नृशंस अपराध है जिसे आजकल मनुष्य कर रहा है। फिर भी हमने विदेशी मुद्रा प्राप्त करनेके लोभसे विदेशी प्रयोगशालाओंके लिए बंदरोंका निर्यात करना नहीं बंद किया और स्वयं अपने देशमें पशुओंपर प्रयोग किये जानेके लिए नयी-नयी प्रयोगशालाएँ खोलने जा रहे हैं। क्या यह कार्य गांधीजीकी मान्यताके अनुरूप है? हमें अपनेसे इसी तरहके अनेक सवाल पूछने हैं। जीवोंके प्रति दयाकी कैसी प्रबल भावना गांधीजीमें थी उसे मैं उन्हींके भाषणसे उद्धृत इन शब्दोंमें यहाँ प्रस्तुत कर रही हूँ

> धर्मके नामपर पशुओंका बलिदान करना बर्बरताका प्रतीक है अपनी दैनिक प्रार्थनाओंमें करुणानिधान भगवान्‌की कृपा प्राप्त करनेकी पुकार व्यर्थ है, और यह हमें शोभा नहीं देता, यदि हम व्यवहारमें प्राणियोंके प्रति दयाका भाव नहीं रखते मेरी दृष्टिमें एक मेमनेका जीवन किसी भी

मनुष्यके जीवनसे कम कीमती नही है। मै मानव-शरीरकी रक्षा करनेके लिए किसी बकरेकी जान लेना कभी पसंद नही कर सकता। मेरी यह मान्यता है कि जो प्राणी जितना ही दुर्बल है वह मनुष्य द्वारा किसी भी मनुष्यके अत्याचारसे संरक्षण प्राप्त करनेका उतना ही बडा अधिकारी है। "यदि हमारे जीवनके लिए किन्ही भी प्राणियोको उत्पीड़ित करना अपेक्षित हो तो हमे ऐसा जीवन जीनेसे इनकार कर देना चाहिए।

मुझे स्वयं भी गांधीजीके साथ कुछ समय वितानेका सौभाग्य मिला था। उस समयकी स्मृतियाँ अविस्मरणीय है। मै उनके असामयिक निधनसे बीस दिनो पूर्व अन्तिम बार मिली थी। उनमे कोई कलात्मक अववोध या योग्यता न थी, किन्तु आध्यात्मिक अभिव्यक्तिवाली कला उनके लिए बोधगम्य होती थी। मेरी आखिरी मुलाकातमे उन्होने मुझसे नृत्य और उसकी अभिव्यक्तिके संबंधमे चर्चा की थी। उन्होने अन्तमे मुझसे कहा था कि . "मै अब बहुत दिनोंतक जिन्दा न रहूँगा। मैं भरतनाटयम्के संबंधमें कुछ नही जानता। इसे आध्यात्मिक कहा जाता है। मै इसे देखना चाहूँगा।" उन्हे यह पता चल गया था कि अब उनका अन्त करीब आ रहा है। वे आजके भारतको देखकर प्रसन्न न होते। अपने जीवन-के आखिरी समयमे देशके विभाजनके पूर्व हुई व्यापक हिंसाको देखकर उन्हे इसका बडा आघात पहुँचा था कि उनके देशकी जनता जीवनके उन उच्च आदर्शोके अनुरूप आचरण न कर सकी जिन्हें उन्होने उसके सामने प्रस्तुत किया था। अन्त-मे वे दु खी थे किन्तु उनके दु खमें किसी प्रकारकी कटुता नही थी। यह उनके उदार हृदयकी बहुत बडी विशेषता थी।

मै नही जानती कि अब हमारे देशवासियोके हृदयोमे सर्वोच्च प्रेरणाओको पुनरुद्दीपित करने और संसारके सामने उद्योगीकरणका नही अपितु चारित्रिक समन्वय और दृढताका उदाहरण प्रस्तुत करनेका समय रह गया है या नही, इस कार्यमे काफी विलब हो गया है, या नही, किन्तु मैं विश्वास करती हूँ कि यदि हम अपने महान् नेताओ और विशेषकर गाधीजीकी भावनाको फिरसे ग्रहण करनेका प्रयत्न करें तो हमे निराश होनेकी आवश्यकता नही है। हमें मनसा, वाचा और कर्मणा अपने उच्चतम आदर्शोके अनुरूप आचरणका प्रयत्न करना चाहिये जिससे हमारा यह देश भारत जो सभी धर्मो और जातियोका सम्मिलनस्थल है, एक आवाजसे बोल सके और युद्धो एवं सब प्राणियोके प्रति हिंसाके व्यवहारसे जर्जरित विश्वमे शान्तिका शंखनाद कर सके। मेरी समझमे इस महान् भारतीयकी जन्मशती मनानेका यही आदर्श तरीका होगा।

के० सन्तानम्

गाधी और भावी पीढियाँ

मुद्रणयुगके पूव आविर्भूत अतीत युगके महापुरुषोको समझने और उनका मूल्याकन करनेमे हमारे सामने सबसे बडी कठिनाई प्रामाणिक जानकारीका अभाव ह। यहाँतक कि सुकरातके सम्बधमें भी जिसके सवाद आज भी प्लेटोकी भव्य और काव्यत्मक कल्पनाके माध्यमसे उसकी लेखनी द्वारा हमारे लिए सुरक्षित ह हमारी कल्पना यही होती ह कि वह एक विवादी किस्मका वद्ध व्यक्ति था जिसका बालकी खाल निकालना और कुतक करना ही प्रिय व्यसन था। बुद्ध और ईसा मसीहके सम्बधमें हमें जो विवरण प्राप्त होते हैं वे उनकी मृत्युके बहुत दिना बाद शिष्यो द्वारा तयार किये गये थे। उनमें ऐसी अनेक अति प्राकृतिक एव चामत्का रिक कथाओका उल्लेख ह जो निश्चय ही अधश्रद्धा रखनेवाली जनताम प्रचलित रही होंगी।

हमारे युगके महापुरुषोको समझनेम भावी पीढियोंके सामने यह कठिनाई होगी कि इन महान् व्यक्तियोके जीवनका विस्तृत और निर्दोष विवरण इतना प्रचुरतासे उपलब्ध होगा कि उनमें परस्पर एकसूत्रता स्थापित करना और उन्हें हजम कर पाना ही दुष्कर हो जायगा। महात्मा गाधीके सम्बधमें यह बात विशेष रूपसे लागू होती ह। उनके सम्बधम अभीतक सैकडो पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं। भारत सरकारका सूचना विभाग गाधी-साहित्यका जो सङ्कलन ग्रन्थ प्रकाशित कर रहा है उसमें उनकी बाल्यावस्थासे लेकर हत्यातकके ६० वर्षोंमें उनके द्वारा लिखित और भाषित सारी सामग्री एकत्र की जा रही ह जिसके फलस्वरूप यह ग्रन्थ सभवत ६-६ सौ पृष्ठोंके ७० भागोमें जाकर समाप्त होगा। यदि इसमें विभिन्न विषयोंपर उनके द्वारा प्रस्तुत लिखित सामग्रीके सकलना और उनके बारेमें ऐसे लोगों द्वारा जो उनके व्यक्तिगत सम्पर्कमें आ चुके ह लिखित ग्रथोको भी जोड दें तो यह इतना विशाल साहित्य हो जाता ह जिसका अवगाहन कर पाना

किसी व्यक्तिके लिए असम्भव है। संसारमे शायद ही ऐसा कोई विषय मिले जिस-पर गाधीजीने किसी समय अपना कोई विचार न प्रकट किया हो। उनके ऐसे उत्साही प्रशंसकोकी कमी नही रही है जिन्होने उनके इन विचारोको सकलित करके जीवन और समाजके सभी अगोपर उनकी शिक्षाको एक क्रमवद्ध चिन्तन और दर्शनका रूप दे दिया है। इस तरह हमे गाधीके अर्थदर्शन, उनके द्वारा निरूपित राजनीतिक दर्शन तथा गाधीवादी शिक्षाशास्त्र, प्राकृतिक चिकित्सा, जल-चिकित्सा आदि नाना प्रकारके विषयोसे सम्बद्ध गाधीवादी ग्रन्थ मिल जायेंगे।

गाधीजीकी आस्थाओ और शिक्षाओकी व्याख्या प्रस्तुत करनेवाले इन ग्रन्थो-का अपना मूल्य है किन्तु इससे यह खतरा अवश्य पैदा हो गया है कि कही इस अवारमे गाधीजीका सच्चा स्वरूप ही न खो जाय और हमे यह निश्चय कर पाना कठिन हो जाय कि गाधीजीकी सामयिक महत्त्वकी पर्यवेक्षणजन्य उक्तियाँ क्या है और इनसे अलग उनके गंभीर विश्वास क्या है, उनके मुख्य उपदेश क्या है और उनकी गौण संस्तुतियाँ क्या है। ऐसी स्थितिमे हमारे लिए उनकी निजी झको और खामखयालियोको उनकी गम्भीर आन्तरिक निष्ठासे अलग कर पाना मुश्किल हो सकता है। वैदिक वाङ्मयके सम्बन्धमें इसी तरहकी कठिनाई सामने आनेपर महान् शङ्कराचार्यने उसे दो भागोमे विभाजित कर दिया—कर्मकाण्ड (कर्मोसे सम्बद्ध साहित्य) और ज्ञानकाण्ड (ज्ञानसे सम्बद्ध साहित्य) और घोषित कर दिया कि ज्ञानकाण्डमे ही मनुष्यकी अनश्वर सम्पदा निहित है।

मै समझता हूँ कि गाधीवादी साहित्यके सम्बन्धमे भी ऐसा ही कार्य करना होगा। मेरा विश्वास है कि राजनीति, अर्थशास्त्र, शिक्षा, चिकित्सा और औषधि तथा इसी तरहके अन्य विषयोपर गाधीजीके विचारोको इससे अधिक महत्त्व नही दिया जा सकता कि वे एक ऐसे व्यक्तिके विचार है जो परम्परागत विचारो और रूढियोसे प्रभावित न होकर स्वतन्त्र दृष्टिसे विचार कर सकता था। इन विचारोके कारण गाधीजी देशके सर्वश्रेष्ठ व्यक्तिके रूपमे सामने नही आते। इन विचारोको उनकी उन मनोरंजक प्रवृत्तियोके रूपमे देखना चाहिये जिनपर उनकी महानताके कारण ही ध्यान दिया जा सकता है।

इसीलिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण वात यह है कि हम उनके उन पक्षोपर ध्यान दें जिनसे मानवीय चिन्तन और प्रगतिमें वे अपना विशिष्ट अवदान कर सके है। मेरी दृष्टिसे इन्हें मोटे तौरपर चार श्रेणियोमे विभाजित किया जा सकता है (१) उनका अतुलनीय व्यक्तित्व, (२) वे आधारभूत गुण जिनपर उनकी नैतिक प्रणाली आधृत है, (३) सत्याग्रहकी उनकी वह प्रविधि जो मानवजाति-

की बुराइयाके विरुद्ध सघष करनेका अद्वितीय शस्त्र ह और (४) नेतत्वके व कारण जिनसे सामाजिक पद प्रतिष्ठा, सम्मति या अन्य किसी साधनसे प्राप्त होने वाले प्रभाव या शक्तिके अभावमें भी वे लाखो करोडो लोगोका मागदशन करनेम समथ हो गये।

भावी पीढ़ियोको उनके व्यक्तित्वकी ययाथ कल्पना करवानेमें बडी कठिनाई होगी। उन्हें पढनेसे यह मालूम हो जायगा कि गाधीजी जहाँ कही भी जाते थे नर-नारी और बच्चे हजारोकी सख्याम वहाँ आ जाते थे। प्राय वे उनसे ऐसी भाषामें बोल्ते थे जिन्हें वे नही समझ पाते थे। सामान्यत वे कुछ मिनटो तक ही भाषण करते थे। इस भाषणमें वे जनताको अस्पृश्यता, नशीली वस्तुआ और शराब आदि मादकद्रव्य एव विदेशी वस्त्रोका बहिष्कार कर देनेकी सलाह देते थे, किन्तु अधिकाश लोग तो केवल उनके दशनका पुण्य लेने हा आया करते थे।

जनताकी श्रद्धा पूजाकी भावनाका कारण प्रचार आदि साधनासे उत्पन्न जन सम्मोहनका परिणाम भी हो सकता ह किन्तु जब वे यह पढेंगे कि उन्हें वाइसराय, गवनर और विदेशी सवाददाता भी बडा आदर करते थे तो उन्हें इसका विश्वास हो जायगा कि गाधीजीका बडप्पन अज्ञान जनताका भ्रम मात्र न था। गोपालकृष्ण गाखले, वी० एस० श्री निवास शास्त्री जी० ए० नटेसन जमे लोग भी, जा उनके विचारो और कायपद्धतिको बिलकुल पसद नही करते थे, जब उनके प्रति प्रेम और आदरकी भावना रखते दिखाई देंगे तो उन्हें इसका पर्याप्त प्रमाण मिल जायगा कि एक व्यक्तिके रूपमें गाधीजी अपने युगके अन्य आदमियोंसे कही श्रेष्ठ थे।

उनके व्यक्तित्वमें ऐसे अनेक गुणोका सम्मिश्रण हुआ था जिनका किसी व्यक्तिमें एकत्र पाया जाना कठिन ह। उनका अपने मन वचन और कमपर पूण नियन्त्रण था। उनके चारो ओर उच्चकोटिकी गभीरताका वातावरण बराबर बना रहता था किन्तु इसमें किसी प्रकारकी कृत्रिमता या दम्भका लेशमात्र भी न था। वे बराबर हँसने और विनोद करनकी प्रिय मुद्रामें बने रहते थे किन्तु वे कभी शब्दोका दुरुपयोग और अपव्यय नही करते थे। बोलते समय भी व लिखनेके समान ही सयम, सक्षेप और सावधानी बरतते थे। वे अपने व्यक्तिगत निजी जीवन में अत्यन्त सयमी थे किन्तु दूसरोंके प्रति उनमें अत्यधिक सहिष्णुता थी और वे उनकी हर बातका प्रेमपूवक ख्याल रखते थे।

अगस्त १९२० में वे मौलाना शौकतअली, राजाजी तथा अन्य लोगोंके साथ मद्रासमे कलकत्ताकी यात्रा कर रहे थे। मुझे भी उस समय उनके साथ रहनेका

सौभाग्य मिला था। एक स्टेशनपर स्वयंसेवक उनके लिए बकरीका दूध ले आये और इसके साथ ही उनकी बगलमे बैठे मौलानाके सामने एक प्लेटमे मासका एक बडा-सा लाल टुकडा भी रख दिया। मुझे इससे इतनी घृणा हुई कि मै वहाँ से हटकर दूरके कोनेमे चला गया। गाधीजीसे मेरी बेचैनी छिपी न रही किन्तु वे मुस्कुराते हुए नाश्ता करते रहे। कालीकटमे उनके गुजराती मेजवानने उन्हे तथा उनके साथके अन्य लोगोको एक शानदार दावत दी। जिस समय हम भोजन कर रहे थे गाधीजी थालियोमे परसे हुए तरह-तरहके पदार्थोको देखते हुए हमारे सामने से गुजर गये। उन्होने हँसते हुए कहा कि, "अच्छा तो आप लोग इसी तरह अग्रेजोके खिलाफ लडेंगे।"

एक बार पत्रोमे एक रिपोर्ट छपी थी जिसमे बताया गया था कि दिल्लीकी एक काकटेल पार्टीमे, जिसमे भारतीय विधान सभाके काग्रेस पार्टीके नेता पण्डित मोतीलाल नेहरू भी शामिल थे, वाइसरायकी कौसिलके तत्कालीन वित्त-मंत्रीने कहा है कि जबतक मोतीलालजी विरोध पक्षके नेता है मुझे मद्यनिषेधके प्रचारका कोई भय नही है। उस समय सारे देशमे शराबकी दूकानोके बहिष्कारका प्रबल अभियान चल रहा था और इस सिलसिलेमे अनेक कार्यकर्ता जेल जा चुके थे। हममें से कुछ लोग गाधीजीके पास गये और हमने वह रिपोर्ट उन्हे दिखाई जिसमे मोतीलालजीके सार्वजनिक रूपसे शराब पीनेकी बात कही गयी थी। इसपर गाधी-जी केवल मुस्करा दिये और बोले, "जब तुम लोग मोतीलालजी बन जाओगे तो मै तुम लोगोको भी जरूरी छूट दे दूगा।" सकलित गाधी साहित्यसे हमे पता चलता है कि इस मामलेको भी उन्होने यो ही नही छोड दिया और निजी ढग-से इसपर मोतीलालजीसे विचार-विमर्श किया।

बेलगाँव काग्रेसमे गाधीजीने अपने एक प्रभावशाली भाषणमे यह अपीलकी कि काग्रेसके सभी कार्यकर्ताओको अनिवार्य रूपसे तकली कातनी चाहिये। हम सब जानते थे कि चित्तरंजनदास इस प्रस्ताव के उग्र विरोधी हैं। वे इसे अव्यव-हार्य और अवाछनीय मानते है किन्तु भाषणके अन्तमे जब इस प्रस्तावपर मत लिया गया तो दास और उनके अनुयायियोने भी इसके पक्षमे मत दिये। यह पूछे जानेपर कि उन्होने सहसा अपना मतपरिवर्तन क्यो कर दिया दासने कहा

> गाधीजी हमे अग्निकी दीप्त ज्वालाके समान प्रतीत हो रहे थे। मुझे ऐसा अनुभव होने लगा कि इस ज्वालाका विरोध करनेकी अपेक्षा इसमे भस्म हो जाना ही श्रेयस्कर है।

इस तरहके अनेक उद्धरण दिये जा सकते है। शायद ही ऐसा कोई व्यक्ति

रहा हो जो गांधीजीसे असहमत होते हुए भी उनके सम्पर्कमें आकर उनके प्रति प्रेम और आदरकी भावनासे न भर उठा हो। १९०८ में ही रेवरेंड ज० जे० डोकने उनके बारेमें लिखा था कि

"वे ऐसे विशिष्ट व्यक्तियोंमें हैं जिनके साथ वार्ता करना उदारतावादी शिक्षा प्राप्त करना है और जिन्हें जान लेना ही प्रेम करने लगना है। नैतिक मूल्योंके महान् पुरस्कर्ताके ही रूपमें गांधीजी हमेशा याद किये जायेंगे। वे अत्यधिक धर्मनिष्ठ व्यक्ति थे। उनका दिन प्रातःकालीन प्रार्थनाओंसे शुरू होता था और शाम भी ऐसी ही प्रार्थनाओंके साथ होती थी। ईश्वरके प्रति उनकी गम्भीर निष्ठा बौद्धिक और दार्शनिक प्रकारकी न होकर अन्तःप्रेरित और भावनात्मक थी। समय-समयपर वे ब्रह्मसम्बन्धी अद्वैत अवधारणासे सहमति प्रकट करते थे किन्तु अधिकांशतः सच्चे भक्तके रूपमें ही व्यवहार करते थे। हर हालतमें धर्म उनकी अपनी निजी वस्तु थी। उन्होंने कभी किसीको अपने धर्ममें परिवर्तित करनेका प्रयत्न नहीं किया। जहाँ तक दूसरोंका प्रश्न था वे यही कहकर सन्तोष करते थे कि परमात्मा ही सत्य है और सत्य ही परमात्मा है। धर्म उनके लिए साधु और न्यायपूर्ण जीवनकी पृष्ठभूमि मात्र था। धार्मिक जीवन का उन्होंने जो व्याख्या प्रस्तुत की है वह उनके द्वारा मानवताकी की गयी सबसे बड़ी सेवा है।

गांधीजीके अनुसार धार्मिक जीवनमें सत्य, अहिंसा और प्रेमका समन्वयपूर्ण सम्मिलन होता है। ये गुण गतिशील होते हैं, ये स्थितिशील नहीं होते अतएव धार्मिकता इन तीन दिशाओंमें किये गये सतत विकासमें ही निहित होती है। इसमें सत्यासत्य और शुभाशुभ का तीव्र विवेक जागरित होना चाहिये। इस जागरणको निरन्तर अनुभव द्वारा शुद्ध और व्यापक बनाते रहना चाहिये।

अहिंसा केवल भौतिक हिंसासे विरति मात्र नहीं है, इस विरतिको अहिंसाका शुभारम्भ कहा जा सकता है किन्तु यही पर्याप्त नहीं है। हमें अपना विकास करते हुए उन लोगोंके प्रति भी किसी तरहकी घृणा और कटुतासे मुक्त हो जाना चाहिये जिन्हें हम दूषित और दुष्ट मानते हैं। गांधीजी कहा करते थे कि पूर्ण अहिंसा एक आदर्श है। हम उसकी ओर विकास कर सकते हैं किन्तु उसे कभी प्राप्त नहीं कर सकते। प्रेम सम्बन्धी उनकी अवधारणा सक्रिय समवेदना की थी। गांधीजीके लिए गरीबी या कष्टके प्रति मात्र भावुकतापूर्ण सहानुभूति व्यर्थ थी। उनका विश्वास ऐसी बुराइयोंको दूर करनेके लिए अथक श्रम तथा पीड़ितोंकी सेवा करनेमें था फिर चाहे उसका जो भी परिणाम क्यों न हो। उन्होंने ज्योंही अस्पृश्यताके विरुद्ध संघर्ष करनेका निश्चय किया तुरन्त हरिजन सेवक संघके नामसे

आवश्यक संघटन भी बना डाला, उसके लिए कार्यकर्ता तैयार कर लिये, निधि एकत्र कर ली और हरिजनोके उन्नयनका कार्यक्रम भी प्रस्तुत कर दिया। चरखाका प्रबल समर्थन वे इसलिए करते थे कि इसीसे हम गाँवोके बेरोजगार और गरीब लोगोको तुरन्त सहायता पहुँचा सकते है। उन्होने इसके लिए अखिल भारतीय चरखा संघकी स्थापना की और सारे देशमे उसकी शाखाएँ खुल गयी।

सत्याग्रह सामाजिक बुराइयोके विरुद्ध संघर्ष करने और विश्वबन्धुत्वके आदर्शकी ओर अग्रसर होनेमे सत्य, अहिंसा और प्रेमका व्यावहारिक प्रयोग है। जिन विशिष्ट परिस्थितियोमे उन्हे काम करना पडा कानूनका उल्लघन और जेल जाना इसके प्रमुख लक्षण बन गये किन्तु इसका मुख्यतत्त्व बुराईसे असहयोग और भलाईसे सहयोग करनेमे निहित है और इसके साथ शर्त यह है कि इन दोनोपर सत्य और अहिंसाका नियन्त्रण हो। दुर्भाग्यवश गाधीजीकी उसी समय हत्या हो गयी जब वे स्वतन्त्र भारतके कार्यो और उसके अन्तरराष्ट्रीय सबधोमे सत्याग्रहको व्यापक रूपसे लागू करनेकी स्थितिमे आ रहे थे।

मै यह अनुभव किये बिना नही रह सकता कि यदि भारतने सुसंगत रूपमें निरन्तर अहिंसा और सत्याग्रहके सिद्धान्तोका समर्थन किया होता तो संयुक्त राष्ट्रसघ तथा अपने वैदेशिक संबंधोमें उसकी नैतिक शक्तिका कही अधिक प्रभाव पडा होता।

भारतीय स्वातन्त्र्य सग्रामके नेताके रूपमे गाधीजीकी उपलब्धि अपने समसामयिक लेनिन, चर्चिल या रूजवेल्ट जैसे किसी भी महान् नेतासे कम नही थी। उन्होने अपने ऊपर स्वत. जो प्रतिबध लगा रखे थे उनके कारण उनकी सत्ता और शक्ति पूर्णत नैतिक थी और उनके आदेशो एव निर्देशोका पालन किया जाना स्वेच्छया उनके नेतृत्वको स्वीकार कर लेनेपर ही निर्भर था। इसमे किसी तरहकी जोर-जबर्दस्तीकी कोई गुंजाइश ही नही थी। फिर भी इतिहासमे इतने लोगोने किसी एक व्यक्तिका इतने दीर्घकालतक ऐसा आज्ञापालन नही किया है। वे कभी द्व्यर्थक बात नही करते थे और उनके विचारोमे कभी भटकाव भी नही आता था। वे शीघ्रतासे अत्यन्त स्पष्ट, सक्षिप्त और समीचीन निर्णय कर डालते थे। वे अपने सभी कार्योमे अत्यन्त समयनिष्ठ रहे हैं। उन्होने सदैव समयका सर्वोत्तम उपयोग किया है। वे यह जानते थे कि समझौता कब और कैसे करना चाहिये। वे यह नही चाहते थे कि उनके साथी केवल अपनी विनम्रताके कारण ही उनकी आज्ञाका पालन करते चलें। उन्हे बराबर इसकी चिन्ता रहती थी कि वे पहले उनकी बातोको समझें और उससे सहमत हो जायँ तभी उनके अनुसार कोई कार्य करें।

मिखेल शोलोखोव

हृदयकी महानता

मानव इतिहास एवं राष्ट्रीय संस्कृतिके विकासक्रममें होनेवाली अनेकानेक क्रूर एवं नृशंस घटनाओंके बीच मानवीय आत्माके महान उत्थान और मानवकल्याणके लिए एकजुट होकर काम करनेवालोंका प्रेरणादायक साक्ष्य भी मिलता है। राष्ट्रों के इतिहास और जातियोंके भाग्य विधानकी गाथाओंमें प्रगति स्वतन्त्रता और सुखद भविष्यके लिए समर्पणकी भावनाके साथ किये गये महान संघर्षोंके गौरव पूर्ण अध्याय भी मिलते हैं।

प्रत्येक राष्ट्र अत्यन्त विभिन्न परिस्थितियोंमें इस संघर्षको आगे बढ़ाता रहा है और अपने तरीकेसे अपनी राष्ट्रीय संस्कृतिका विकास करते हुए भविष्यका निर्माण करता रहा है। इसलिए यह अत्यन्त स्वाभाविक है कि हमारे वर्तमान युगमें राष्ट्रोंके बीच पारस्परिक अवबोधकी भावना दिन-पर दिन तीव्र होती जाय। इसके बहुत अच्छे नतीजे भी निकल रहे हैं।

राष्ट्रोंके इस बढ़ते हुए ऐक्यको भंग करनेके लिए विघटनकारी शक्तियोंके कुचक्र भी चल रहे हैं। वे अपने स्वार्थोंकी सिद्धिके लिए राष्ट्रोंमें फूट डाल देना चाहते हैं किन्तु इसके बावजूद हमारे युगकी तीव्र प्रगति उन तत्त्वोंको उभारकर सामने लाती जा रही है जो सभी राष्ट्रोंमें समान रूपसे पाये जाते हैं जिससे उनके महान प्रयासोंको संयुक्त रूपसे संघटित किया जा रहा है और इसमें प्रत्येक राष्ट्रका अपना भाग्यविधायक स्वतन्त्र मार्ग किसी तरहकी बाधा नहीं डाल पा रहा है।

प्रत्येक राष्ट्रके महान सन्तानोंने उसके लिए जो कुछ किया है उनकी जो भी उपलब्धियाँ रही हैं और उन्हें जिन आदर्शोंने अनुप्राणित किया है उसके प्रति मानवीय चिन्तन में गहरी श्रद्धा और समादरकी भावना व्याप्त है। मानवजाति के इतिहासमें मोहनदास करमचन्द गांधी एक ऐसे ही महापुरुष थे।

भारतके राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य आन्दोलनके इस महान् नेताकी जन्मशतीके अवसर

पर समर्पित इस ग्रन्थमें जिन अनेक लेखकोने श्रद्धानिवेदनके रूपमे अपने लेख दिये है उनमे एक रूसी लेखक होनेके नाते मै भारतीय पाठकके समक्ष गाधीके जीवन, उनकी विशाल साहित्यिक विरासत, उनके सतत अनुसधान और उनके विचारोके जटिल विकासके संबंधमे कुछ नही कहना चाहता। ये सारी बातें वे दूसरे लेखक लिखेंगे जिन्हें इन विषयोका विशेष ज्ञान है। मै भारतीय पाठकोको यह बताना चाहता हूँ कि सामाजिक और राजनीतिक नेताके रूपमें हमारे सामने गाधीकी जो मूर्ति बनती है उसका मेरे और मेरी रूसी जनताके हृदयमें कैसी महती प्रतिक्रिया होती है। अतएव यहाँ मै जो कुछ लिखूँगा उससे गाधीका समग्र व्यक्तित्व नही स्पष्ट होगा। मै उसके लिए अधिकारी व्यक्ति भी नही हूँ। मैं यहाँ गाधीके चतुरस्र क्रिया-कलापोके कुछ पक्षोपर ही विचार कर सकता हूँ।

कोई भी व्यक्ति इस महत्त्वपूर्ण तथ्यकी उपेक्षा नही कर सकता कि गाधी और महान् रूसी लेखक लेव टाल्स्टायमें कितना विचार साम्य था। यह इस बातका महत्त्वपूर्ण उदाहरण है कि उन दिनोमे भी दूरस्थ लोगोमे मतैक्य और पारस्परिक अवबोधकी कैसी सभावना वर्तमान थी और इसमे भारत तथा रूसकी एक दूसरेमे नितान्त भिन्न ऐतिहासिक परिस्थितियाँ किसी प्रकारसे बाधक नही होती थी। मैं यहाँ टाल्सटायके "लेटर टू अ हिन्दू (एक हिन्दूके नाम पत्र)" का ही उल्लेख करूँगा जिसे गांधीजीने बहुत सराहा था। मै गाधी और टाल्स्टाय के दार्शनिक विचारो और उनकी विषयवस्तुका परीक्षण किये बिना ही इसपर जोर देना चाहता हूँ कि वह कौन-सी बात थी जिसने उन दोनोको दर्शन और व्यावहारिक क्रिया-कलापोमें समानरूपसे तीव्र प्रेरणा प्रदानकी। इन दोनों महा-पुरुषोंके अनुसधानोके मूलमें उत्पीडन और अत्याचारका विरोध करनेकी प्रेरणा और अपनी जनता तथा दूसरे राष्ट्रोकी जनताके कष्टोका अनुभवकर सकनेकी सामर्थ्य थी। इसी कारणसे वे दोनो महापुरुष, जिनमे एक भारतकी स्वतन्त्रताका महान् पुरोधा और सर्वसमर्पणकारी नेता था और दूसरा रूसका महान् लेखक और मानवतावादी था, एक दूसरेके निकट आ सके।

मुझे उम्मीद है कि भारतीय पाठक मुझे गलत न समझेंगे। उन्हे यह समझ-कर भ्रम न होना चाहिये कि मैं एक कम्युनिस्ट लेखक होनेके नाते अपना दृष्टि-कोण उनपर लादनेका प्रयत्नकर रहा हूँ या तथ्योकी व्याख्या अपने ढंगसे करने जा रहा हू। मै उनपर कुछ भी लादनेका प्रयत्न नही कर रहा हूँ। मैं केवल तथ्योको करीबसे देखने, उनपर मनन करने और उनके विचारोंमें हिस्सा लेनेका प्रयत्न कर रहा हूँ।

वतमान कालका अनिवाय अपक्षाओक प्रति जागरूक होनके कारण म गाधी के व्यक्तित्वकी उन सुस्पष्ट विशेषताओपर अत्यन्त निकटसे विचार करनेके लिए वाध्य हो रहा हूँ जिनका सबध जातिवाद तथा कुछ राष्ट्रोकी दूसरे राष्ट्रोकी अपेक्षा श्रेष्ठताकी भावनाके प्रति उनके उग्र विरोध एव जातीय और औपनिवशिक उत्पीडनके विरुद्ध उनकी असहिष्णुताकी उच्च भावनास ह । गाधीका यह वक्तव्य *गभीरतापूवक विचारणीय और सम्माननीय* ह कि, ' म ऐसी देश भक्तिका तिरस्कार करता हू जो दूसरे राष्टोकी विपत्ति और शोषणपर फलना फूलना चाहती ह ।

गाधी विभिन धर्मोके पारस्परिक विरोधसे उत्पन शत्रुता और सघर्षके विरुद्ध दीघकाल तक लडते रहे । स्पष्टत उन्हें इस सघषकी प्रेरणा अपनी उन नतिक अवधारणाओ और नतिकतासबधी उन सामान्य नियमोस मिली थी जिनके आधार पर उनका जीवन-दशन विकसित हुआ था किन्तु व्यवहारमें इसकेलिए एक नये प्रकारके विशाल, जीवन्त, राष्ट्रभक्तिपण राजनीतिक विषयवस्तुकी अपेक्षा था । इसमे उन्हें दूसरोको गुलाम बनानेवाल प्राचीनकालके रोमनाकी फूट डालो और शासन करो की उस नीतिका विराध करना पडा जिसे उपनिवेशवादी कार्यान्वित करना चाहते थे ।

गाधीने उन युगानुगत पारस्परिक मान्यताओको ध्वस्त कर देनेका बीडा उठाया था जिनके कारण भारतीय जीवनम अस्पश्यताकी विभीषिका व्याप्त हो गयी थी । गाधीने स्वय इसे "अस्पश्यताके कलक" की सज्ञा दी ह । हमें यह याद रखना चाहिए कि भारतकी कुल आबादीम 'अछूत कही जानवाली जातियाकी सख्या बीस प्रतिशत ह । यदि गाधी अपने इस नागरिक कत्तव्यको पूरा करनेमें चूक जाते तो भारतीय समाजका एक बहुत बडा भाग औपनिवशिक निरकुशताम मुक्ति पानके लिए छिड राष्ट्रीय आदोलनस अलग ही रह जाता । गाधीको इसकी स्वय तीव्र अनुभूति होती था कि यदि एसा हुआ होता तो उनका वह स्वर्णिम लक्ष्य जिसे उन्होन स्वराज की सज्ञा दी थी अर्थात स्वतत्र मातभूमिका लक्ष्य, कभी पूरा न होता ।

इसक बाद हमें भारतीय स्त्रियोकी मुक्तिक लिए किय गय गाधीक सघषपर विचार करना चाहिए । ये स्त्रियाँ सामाजिक जीवनम अलग पडी हुई थी । *गाधी* ने अपना इस आशा जनतामें निहित महान् सामाजिक शक्तिको पहचाना और उन्होन राष्ट्रकी समस्त शक्तियोको स्वराजके चिरप्रतीक्षित लक्ष्यकी प्राप्तिक लिए किये जानवाले सघषमें नियोजित कर दिया ।

इसमें कोई आश्चयकी बात नही ह कि जवाहरलाल नहरून गाधीको ' स्व

तन्त्रताप्राप्तिके भारतीय सङ्कल्पका प्रतीक" जैसी गौरवपूर्ण उपाधि प्रदान करते हुए कहा है कि, "वे राष्ट्रके हृदयस्पन्दनका अनुभव सहजभावसे प्राप्तकर लेते थे।"

गांधी भारतके घर-घरमे "चरखाका संगीत" गुंजा देना चाहते थे। पर इसके लिए उन्होंने जीवनभर संघर्ष किया। यह इस तथ्यका प्रमाण तो है ही कि वे हर व्यक्तिको रोजगार दे देना चाहते थे। इसके साथ ही इससे शायद यह भी पता चलता है कि वे औद्योगिक विकासको उतना महत्त्व देना नही चाहते थे। किन्तु कोई भी व्यक्ति इस तथ्यकी उपेक्षा नही कर सकता कि 'चरखा' गाधीकी एक अनुपम खोज थी क्योकि उनका यह विश्वास था कि जब लाखो-करोडो लोग अपने हाथसे चरखा कातकर अपना वस्त्र स्वयं तैयार कर लेगे तो उनके लिए उन उपनिवेशवादियोका विरोध करना आसान हो जायगा जो वस्त्रोद्योगके आक्रमणसे देशपर अपना शासन सुदृढ करनेके फेरमे थे।

इस तरह हम देखते है कि गाधीका सारा क्रिया-कलाप उपनिवेशवादी शासन-प्रणालीके विरुद्ध नियोजित था। वे बडे ही अध्यवसाय और लगनसे अपने इस उद्देश्यमे जीवनभर लगे रहे। उन्हे अपने देशके प्रति अगाध प्रेम था और वे उसे स्वाधीन एव स्वतन्त्र देखना चाहते थे।

यह ठीक है कि गाधीने "अहिंसा" के माध्यमसे "शान्तिपूर्ण क्रान्ति" लाने का प्रयास किया। हमलोगोने अपने देशमे यथासंभव कम-से-कम रक्तपात द्वारा क्रान्ति की और गृह-युद्ध नही होने दिया। हमारी श्रमिक जनता अशान्तिपूर्ण क्रान्तिके लिए विवश थी क्योकि हमारे यहाँ बराबर ऐसी प्रतिक्रान्तियाँ होती रहती थी जिनके पीछे चौदह साम्राज्यवादी राष्ट्रोका सशस्त्र हस्तक्षेप क्रियाशील था। ये राष्ट्र हमारी स्वतन्त्रताको कुचल देने तथा हमारी क्रान्तिकी ज्योतिको बुझा देनेपर उतारू थे।

हमारे क्रान्तिके रास्ते अलग रहे है किन्तु जनशक्तिमे गाधीकी जैसी अटूट निष्ठा थी उसकी सराहना किये बगैर हम नही रह सकते क्योकि क्रान्ति हमेशा विशाल जनसमुदायका ही आन्दोलन होती है। इसके अतिरिक्त हम इस तथ्यका मूल्याकन किये बिना भी नही रह सकते कि संघर्षकी तर्कसगत परिणतिके कारण एक दिन गाधीको "भारत छोडो" का नारा दे ही देना पडा जिससे उपनिवेश-वादियोके पैर उखड़ गये।

हम यह भी नही भूल सकते कि द्वितीय महायुद्धके दौरान गाधीने नाजीवाद-का विरोध किया था और रूसी जनताके प्रति गहरी सहानुभूति प्रकट की थी।

वे उन लोगोंम थे जिन्होंने हिरोशिमा और नागासाकीपर परमाणु बम गिरानेका विरोध किया था और पारमाणविक शस्त्रास्त्रापर प्रतिबंध लगाने, व्यापक नि शस्त्रीकरण तथा राष्ट्रोंको सभी प्रमुख समस्याओंको शान्तिपूण समझौता द्वारा हल करनेकी माँग की थी ।

गाधीका जीवन और कतत्व एक अनुसधानकी अथक साधना थी वे जीवनभर सत्य, नैतिकतासम्बन्धी अवधारणाओ, राजनीतिक सघषकी पद्धतियो और दार्शनिक सिद्धान्तोंकी खोज करते रहे । उनकी इस खोजकी सर्वाङ्गीणता और जटिलताम भारतके विकासकी विशेषता और जटिलता ही परिलक्षित होती है ।

भारतीय जनताने गाधीके नामके साथ सदाके लिए 'महात्मा' का अद्भुत विशेषण जोड दिया ह जिसका अथ होता ह एक महान हृदय । मैं यही कहूँगा कि *भारतके इस महान् सपूतमें भारतीय जनताकी सभी उच्चाभिलाषाएँ मूत* हो उठी थी । उसकी देश भक्ति और स्वतन्त्रताकी इच्छा इसमें साकार हो उठी थी । ऐसे हृदयवाला व्यक्ति सचमुच महान् ह ।

अर्ल सोरेंसेन

महात्मा

मोहनदास गांधीका जन्म २ अक्तूबर, १८६९ मे उसी प्रकार हुआ था जिस प्रकार किसी भी साधारण बच्चेका होता है। उन्हे भी वही मानवीय प्रकृति मिली हुई थी जो किसी भी बच्चेको मिलती है। फिर भी आनुवंशिक या और भी जो कारण रहे हो उनमें विभिन्न प्रकारके तत्त्वोका अद्‌भुत सम्मिश्रण हुआ था।

उन्हें हिन्दू धार्मिक परंपराएँ विरासतमे मिली थी फिर भी हिन्दू बने रहकर उनमे ईसाई न्यू टेस्टामेण्ट और जेसस क्राइस्टके प्रति बडे सम्मान और श्रद्धाकी भावना थी। वे बनिया-परिवार में पैदा हुए थे किन्तु उन्होने हरिजनोको अस्पृश्यता-के कलंकसे उबारनेका प्रयत्न किया, उन्होने अपने धार्मिक एवं नैतिक मूल्योको राजनीतिक क्रियाकलापोके साथ समन्वित करनेकी चेष्टाकी, ब्रिटेनके सामाज्यवादी प्रभुत्वके विरुद्ध दुर्धर्ष संघर्ष करते हुए भी उन्होने अहिंसाको इतना महत्त्व दिया, तेरह वर्षकी उम्रमे ही उनका विवाह हो गया, उन्हें कई सन्तानें भी हुई फिर भी वे जीवनके उत्तरार्धमे ब्रह्मचर्यका पालन करते रहे, उनमें यदि एक ओर सच्ची विनम्रता मिलती है तो दूसरी ओर अधिनायकों जैसी हठी प्रवृत्ति भी दिखाई देती है, वे यदि एक ओर उच्चकोटिके भारतीय देशभक्त थे तो दूसरी ओर उनमें हमारी सामान्य मानवताकी भी गभीर अनुभूति विद्यमान थी और वे सभी राष्ट्रो एवं जातियोके अन्योन्याश्रय संबंधमें दृढ विश्वास रखते थे।

दूसरे लोगोमे भी इसी तरह वैयक्तिक विशेषताएँ मिलती है किन्तु उनमे ये विशेषताएँ इतनी जीवन्त हो उठी थी कि वे भारतके स्वातन्त्र्य संग्रामके अत्यन्त प्रभावशाली और शक्तिशाली नेता तो बन ही गये उनके व्यक्तित्वसे सारा संसार भी प्रभावित हो उठा। एक अंग्रेजके रूपमें मैं उनके व्यक्तित्वका इसलिए आदर करता हूँ कि उनकी भावना और उनका आदर्श केवल उनकी मातृभूमि तक ही सीमित नही रह गया था। यद्यपि उनकी सेवाएँ प्रमुखत. एवं अनिवार्यतः भारत-

के लिए ही समर्पित थी किन्तु उनके जीवनके विशिष्ट गुणासे निखिल मानवता समृद्ध हुई है। वे कभी भी गुलामाकी सी चाटुकारिता नही पसन्द करते थे। भारतके दीघ राष्ट्रीय आदोलनके दौरान उन्होने बराबर अपने काग्रेसी मित्रोके विचार वैभिन्यका स्वागत किया। उनकी आध्यात्मिक और नतिक मायताएँ, उनकी शानदार साहसिक वत्ति, बौद्धिक विचक्षणता और सर्वात्मभावसे प्ररित उनकी सङ्कल्प शक्ति उनकी मानवीय दुबलताओका अतिक्रमण कर चुकी थी। म उनके कुछ विचारोसे असहमत था किन्तु उन्होने मुझे जो स्थायी प्रेरणा प्रदानकी हैं उसके लिए म उनका अत्यन्त कृतज्ञ हूँ।

ऐसे अनेक अग्रेज और अभारतीय लोग जो उनकी अनुपस्थितिम उनकी तीव्र आलोचना किया करते थे जब उनके सामने आ जाते थे तो उनकी सारी शत्रुता काफूर हो जाती थी। जिन अदालतोमें वे अपना फसला सुननेके लिए खड होते थे उनपर मुकदमा चलानेवाले लोग उनकी चारित्रिक दढता और उच्चाशयतासे अभिभूत हो उठते थे। लदनके मध्यम आज उनकी जो मूर्ति स्थापित ह वह सदा के लिए उनके गुणोके प्रति अग्रेजाके दिलोम रहनेवाली श्रद्धा और सराहनाका भावनाका दृश्य प्रतीक बनी रहेगी। गाधीजीको अपना इस तरहका स्मारक बनाया जाना कतई पसद न था और वे इस योजनासे काफी क्षुब्ध हुए होत किन्तु मेरा विश्वास ह कि उनके इस शोभका ख्याल न करते हुए उनका जो यह स्थायी सावजनिक स्मारक बना दिया गया ह वह बड़ा ही अच्छा काय हुआ है। यह हमारे युगमें उनकी चिरप्रतिष्ठित महत्ताका द्योतक होगा।

हम जानत ह कि गाधीजीको ब्रिटिश-जीवनका प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त था। उन्हाने लदनमें ही कानूनी शिक्षा पायी थी। यद्यपि यह कहा जा सकता ह कि जवाहरलाल नेहरूका यह अनुभव उससे अधिक था। मुझ उनकी पहली झलक उस समय मिली थी जब व १९३१ म आयोजित गोलमज सम्मेलनमें शामिल होनेके लिए लदन आये थ। उस समय एक दिन शामको उन्होने लन्दनस्थित क्वेकर फ्रेण्ड्स हालम भाषण किया था। यही मन उन्हें पहली बार देखा था। उन्होंने वेस्ट एण्ड होटलमें रहनसे इनकार कर दिया था और ईस्ट एण्डमें म्युरियल लेस्टर किंग्सले हालम टिके थे। म वहाँसे केवल पाँच मील दूरपर रहता था। मुझ उनसे व्यक्तिगत रूपसे बाता करनेका अवसर तो नही मिला क्योंकि मैं सम्मेलनके कार्योंमें विशेषरूपसे व्यस्त था किन्तु सामूहिक रूपसे उनकी जिन लोगा से वार्ता हुई थी उसमें मैं अवश्य शामिल था। मैं आज तक कई ऐसे लोगोंको जानता हूँ जो उस समय बच्चे थे और जिस समय गाधीजी प्रात काल आस-पास

की सडकोंपर टहलने निकलते थे ये लोग उनके पीछे लग जाते थे ।

सन् १९४६मे संसदीय सद्भावना मिशनके सदस्यके रूपमे भारत आनेपर मुझे अपने साथियोके साथ और व्यक्तिगत रूपसे भी गाधीजीसे मिलनेके अनेक मौके मिले । एक दिन सवेरे ७ वजे हमलोग एक घरकी छतपर हाथमें हाथ डाले टहल रहे थे । उस समय हमारी वार्ता राजनीतिके सम्बन्धमे न होकर धार्मिक विषयो और कुछ इसी तरहके अन्य विषयोपर हो रही थी । एक वार मेरी पुत्री मोरिया को युद्ध छिड जानेके कारण दक्षिण अफ्रीकामें ही रुक जाना पडा था । उस समय वह प्राय. गाधीजीके पुत्र मनीलाल और उनकी पत्नीसे मिलने डर्वनके निकट फेनिस्क स्थित उस आश्रममे जाया करती थी जिसकी स्थापना गांधीजीने अपने दक्षिण अफ्रीकी आन्दोलनके दौरानकी थी । मनीलाल और उनके भाई देवदास दोनो ही वालथमस्टो स्थित मेरे निवासपर आते रहते थे । उनसे उनके पिता तथा उनके सिद्धान्तोके सबंधमे हमारी अक्सर चर्चा हुआ करती थी । इसके अतिरिक्त गाधीजीसे मेरा प्रत्यक्ष सम्पर्क, अन्य लोगोकी अपेक्षा कम रहा है, किन्तु उनके सम्बन्धमे लिखी गयी पुस्तकोके अनुशीलनसे मै उनके अनुपम चरित्रका कुछ मूल्याकन कर सकता हूँ । उन्होने एक आपसी वार्ताके वाद उसके स्मारक रूपमे मुझे जो पुस्तक दी थी उसे मै आज भी वड़ी श्रद्धासे अपने पास रखे हुए हूँ । मैने उनके साथ एक घनिष्ठ आत्मिक सम्बन्ध का अनुभव किया है । यह अनुभव उन सभी लोगोको हुआ है जो अपनी विशिष्ट जातीय, घरेलू और सास्कृतिक विरासतोका अतिक्रमण कर सके है । यह वन्धुत्व पार्थिव विच्छेदसे परे होता है ।

मेरा देश भारतसे अत्यन्त भिन्न प्रकारका है । किन्तु दीर्वकालीन ऐतिहासिक सम्पर्कके कारण इन दोनो देशोके संवंधमे कई तरहकी अच्छी और वुरी दोनो तरहकी चीजें आ गयी है । अव जव कि व्रिटिश साम्राज्यवादी प्रभुत्व समाप्त हो चुका है, मै आशा करता हूँ कि राष्ट्रीय गौरव और उत्तरदायित्वके समान आधारोपर वने सवंध राष्ट्रमण्डलके अन्तर्गत इन दोनो देशोंके वीच स्थायी मैत्रीकी स्थापनामें सेतुका कार्य करेंगे । गाधीजी अंग्रेजोके कुछ गुणोकी वरावर सराहना करते थे । उनमे कुछ ऐसी सामर्थ्य थी कि सघर्षके दिनोमे भी वे व्रिटिश-राजके औद्धत्य और अग्रेज जनताकी लोकतान्त्रिक भावनामें पाये जानेवाले अन्तरको वरावर विवेकपूर्ण दृष्टिसे देखते रहे । जव भारत द्वितीय विश्व-युद्धकी लपेटमें वलात् आ गया तो गाधीजीको व्रिटेनकी जनता और अन्य लोगोपर आयी विपत्तिसे स्वाभाविक कष्ट होता था । मेरा यह भी दृढ विश्वास है कि गाधीजी यह भी जानते थे कि यदि देशपर नाजियोका शासन हो गया तो आपसी समझौतेसे

भारतकी स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेनेकी सभावना बहुत दूर हो जायगी। नाजियोका जातिवाद जितना उग्र था और वे अपने अधीनस्थ लोगोंके प्रति जैसा क्रूर व्यवहार करते थे उसे देखते हुए गाधीजीने यह समझ लिया था कि वे भारतकी स्वतन्त्रताकी माँगका कही अधिक उग्र प्रतिरोध करेंगे।

हर हालतमें आज हम जिस व्यक्तिकी जन्मशती मना रहे हैं उसका हमपर अपरिमेय ऋण ह। उन्होने नतिक और आध्यात्मिक मूल्योके प्रति जसी अविचल निष्ठा प्रदर्शितकी थी, बडी-से-बडी उत्तेजनाओके बावजूद उन्होने उदारताकी भावनाको जसी दढतासे ग्रहणकर रखा था और विपाक्त घृणासे मुक्त अहिंसक सत्याग्रहका जो रास्ता उन्होने हमें दिखाया था उसके लिए हमपर उनका ऐसा ऋण ह जिसे हम कभी नही चुका पायेंगे। हम सत्याग्रहको हर परिस्थितिमें तक्सगत-दृष्टिसे भले ही लागू न कर सकें, किन्तु इतना तो स्पष्ट ह कि ब्रिटेन भारतसे कब और किस प्रकार हटे इसके सबधमें जो लम्बी एव कष्टसाध्य वार्ताए हुइ उनके लिए गाधीवादी भावनासे ही बल प्राप्त हो सका और वही भावना अग्रेजोंके भारतसे हटनेके बाद दोनो देशोंके बीच बचे खुचे मनोमालिन्यको भी धो-बहानेमें सफल हुई ह। भारत विभाजन और उसके तात्कालिक परिणामस्वरूप होनेवाले साम्प्रदायिक उपद्रवोंसे गाधीजीको बडी पीडा हुई थी और आज दिन यदि वे जीवित होते तो भारत और पाकिस्तानके बीच बने तनावोंसे भी उनका वैसी ही व्यथा होती। पीछे मुडकर देखते हुए हम इस तरहकी बात सोच सकते ह कि यदि अमुक काय कर दिया गया होता तो वह ददनाक घटना न होता किन्तु आज यह सब सोचना व्यथ ह। जिस समय भारत विभाजनका निणय किया गया उसके लिए वार्ता करनेवाले सभी पक्ष जो कुछ वे ठीक या तात्कालिक दृष्टिसे उपयोगी समझते थे उसके प्रति अत्यधिक आग्रहान्वित थे और कोई यह समझ न सका कि देशके व्यवच्छेदकी इस प्रक्रियाका तत्काल इतना भयानक परिणाम होगा। इसका दोष सभीपर समानरूपसे आता ह। हम अपनी मानवीय उत्तर दायित्वकी भावनामें चूक गये। क्या गाधीने स्वय एक बार अपने द्वारा प्रवर्तित हडतालके पूण नियन्त्रण और सयमके बाद कुछ जिलोंमें एकाएक हिंसकरूप धारण कर लेनेपर यह नही कहा था कि उनसे यह सोचकर चलनेमें हिमालय जैसी भारी भूल हो गयी कि यह हडताल एक विशाल शान्तिपूण प्रदशन तक ही सीमित रहेगा।

वे यह नहीं समझ सके कि अच्छे-से-अच्छे विचार और अभिप्राय भी जब एसे लोगो द्वारा कार्यान्वित होते हैं जिनमें अपेक्षित आध्यात्मिक योग्यताका अभाव होता ह तो कितने कुरूप और बीभत्स हो सकते ह। ऐसी चूक और त्रुटियोंके

वावजूद महात्मा गाधीका नैतिक प्रभाव वडा ही गंभीर था और आज व्यापक हो जानेपर भी उसकी गम्भीरता कम नही हुई है। भारतपर केन्द्रित होनेवाले इतिहासके पन्नोसे उनका नाम कभी मिटाया न जा सकेगा और भविष्यके पाठक कभी भी उनके उन कार्योकी उपेक्षा न कर सकेंगे जिन्हे उन्होने अपनी उस जनता-के कल्याणके लिए किया था जिसके सामूहिक संघर्षसे उन्होने अपनेको एकाकार कर दिया था। उन्होने जनान्दोलनको उन नैतिक गुणोसे समन्वित करनेका काफी सफल प्रयास किया जिन्हे सामान्यत कुछ लोगोके व्यक्तिगत जीवनके लिए ही आरक्षित समझा जाता है और इस तरहसे वे अपरिहार्य राजनीतिक विक्षोभमें नैतिक वाध्यताओकी जटिलताका एक हदतक समावेश कर सके। वे उन लोगो-को भी निरन्तर प्रेरणा देते है जो अपने सीमित क्षेत्रमे अपनी अकिञ्चनतर योग्यतासे उनके आदर्शोके अनुकरणका विनम्र प्रयास करते रहते है। नमक-कानून तोडनेके लिए समुद्रतटकी ओर अभियान करनेसे पूर्व उन्होने वाइसरायको जो पत्र लिखा था उसके निम्नलिखित शब्दोमें उनकी भावना उज्ज्वल रूपसे प्रकाशित हो उठी है .

> मेरी व्यक्तिगत निष्ठा सुस्पष्ट है। मै किसी भी जीवित प्राणीको जानवूझ-कर किसी प्रकारकी चोट नही पहुँचा सकता फिर अपने ही मानव-वंधुओकी तो वात ही क्या है। यह मै उस हालतमे भी नही कर सकता जिस समय वे मेरे और जो कुछ मेरा है उसके खिलाफ वड़ीसे वडी वुराई ही क्यो न कर रहे हो ' इसलिए व्रिटिश शासनको अभिशाप मानते हुए भी मै किसी भी अंग्रेजको अथवा भारतमे उसके किसी भी न्यायोचित स्वार्थको किसी तरह आघात नही पहुँचाना चाहता ' मै आपके अपने लोगोको किसी तरहका आघात नही पहुँचाना चाहता' "मै उनकी उसी प्रकार सेवा करना चाहता हूँ जिस प्रकार मै अपनी जनताकी सेवा करना चाहता हूँ।

ये शब्द आश्चर्यजनक लगते है किन्तु उस व्यक्तिने ऐसे असंख्य शब्द कहे है जिसका यह विश्वास था कि सत्यका उसने जो प्रतिमान कायम किया है उसके अनुसार मानवीय स्वतन्त्रताके प्रति अनुरागको निश्चित रूपसे सदैव सद्भावनाओ-के शस्त्रागार पर ही निर्भर होना होगा। इसी रूपमे शस्त्रसज्ज होकर उसने साम्राज्यवादी दम्भ, उत्पीडन और अन्यायके विरुद्ध संघर्ष किया था और उन सव लोगोको, जो वुराई पर विजय प्राप्त करना चाहते है, वह अपने जीवनादर्शके रूप-मे ऐसी विरासत छोड गया है जिसे कोई भी हत्यारा कभी नष्ट नही कर सकता।

श्री राम

गाधीजीके निर्माणकारी तत्व

दुनियामें किसी भी समय और किसी भी देशमें ऐसे लोगोकी सख्या उँग लियापर गिने जाने योग्य ही होती है जिनके आचरणमें सत्यकी निष्ठा असदिग्ध रूपसे विद्यमान हो और जो उस सिद्धान्तकी रक्षामें अपनी प्रियसे प्रिय वस्तुको भी त्याग देने तथा बडासे बडा अपमान सहनेको तयार हो। टाल्स्टॉय ऐसे ही व्यक्ति थे और ऐसे ही कुछ अन्य लोगाके भी नाम लिये जा सकते ह।

श्री एम०के० गाधीने, जिन्हें आदरपूवक गाधीजी कहा जाता था इस तथ्यको लिखित रूपमें स्वीकार किया है कि वे टॉल्स्टॉयको अपना आदश मानते थे और वे स्वय भी उन्हींके वग और श्रेणीमें आते थे। सामयिक आवश्यकताओंसे निरू पित और जन भावनाके अनुकूल राजनीतिक कामके क्षत्रमें भी व अपने अन्दर सत्यका ही अनुगमन करते रहते थे। इसी तरह उन्होंने सत्याग्रह शब्दका आविष्कार कर डाला था जिसका आज दुर्भाग्यवश बहुत ही गलत ढगसे किसी भी तरहकी अनुशासनहीनता अथवा अपनी माँगोंको मनवानेके लिए का गया हिंसातत्त्वको छिपानेके लिए एक अच्छे खास लेबुलके रूपमें प्रयोग किया जाता ह। ऐसा होना अनिवाय है क्योकि सावजनिक मनोविज्ञान और सत्यमें मेल नही खाता फिर भी यह तथ्य सुप्रकाशित ह कि सत्यमें गाधीजीकी निष्ठा बराबर अविचल बनी रही।

दुनियामें किसी भी समय और किसी भी देशमें एसे लोगोकी सख्या उँगलिया पर गिने जाने योग्य ही होती है, जिनकी अहिंसाके प्रति निष्ठा असदिग्ध हो और जो उस पथका अनुसरण करते हुए जिसे वे धमपथ समझते हं किसी भी तरहका आघात या हिंसा सहनेको तैयार हो किन्तु इसके लिए अपने बधुजनोंको आक्रोश या प्रतिक्रिया रूपमें किसी प्रकारकी क्षति न पहुँचाएँ। गाधीजी इस वर्गके भी थे। टॉल्स्टॉय भी इस वगमें आते थे। वे शान्तिवादी थे और उन्होंने पशु-वधके विरोध

मे बडी ही हृदयद्रावक भाषामे लिखा है। मै फिरसे टॉल्सटॉयका उल्लेख इसी-लिए कर रहा हूँ कि यहाँ भी गाधीजीसे उनकी समानता अत्यधिक स्पष्ट है।

सुकरातके बारेमे यह कहा जाता था कि भविष्यवाणीमे उसे यूनानका सबसे बुद्धिमान व्यक्ति इसलिए समझा गया था कि वह अपने अज्ञानसे परिचित था जबकि दूसरे लोगोको अपने अज्ञानकी कोई जानकारी नही होती। इसी तरहकी भावनासे यह भी कहा जा सकता है कि सभी व्यक्तियोसे गलतियाँ होती है। एक अज्ञान जनताका नेतृत्व करनेमे हिमालय जैसी भारी भूले हो सकती है जैसा कि गाधीजीने स्वयं अपने बारेमे एक बार उस समय कहा था जब उनके द्वारा चलाया गया आन्दोलन उनके नियन्त्रणके बाहर चला गया किन्तु वे उन इने-गिने लोगोमेंसे है जो बच्चो जैसी सरलतासे स्पष्टरूपमे अपनी गलतियाँ स्वीकार कर लेते है।

गाधीजी महान् इसलिए बने थे कि उन्होने देशहितके लिए अपनी सभी प्रिय वस्तुओका त्यागकर दिया, वे अपने सिद्धान्तोपर कभी समझौता नही करते थे और उनके दिलमें किसीके प्रति कोई आक्रोश नही रहता था। भारत उनके द्वारा घोषित उन आदर्शोसे बहुत दूर चला गया है जिन्हे उनके अनुयायी अपने स्वार्थोकी सिद्धिके लिए केवल नाममात्र स्वीकार करते थे। किन्तु चाहे इन आदर्शोका कितने अपूर्णरूपमें ही पालन किया गया हो, यद्यपि हमारे इतिहासमे इन्हे कुछ लोगोने अपने जीवनमे पूरी तरह उतारकर इनका उदाहरण भी प्रस्तुत कर दिया है, इन्ही के कारण अन्य राष्ट्रोमे भारतका अद्वितीय स्थान बन गया। हमें आशा करनी चाहिए कि वर्तमान प्रलोभनो और उत्तेजनाओंके समाप्त हो जानेपर भारत एक बार पुन. इनकी याद करेगा और अपनी प्राचीन निष्ठाकी ओर वापस जायगा।

ऊ था

अहिंसा और विश्व शाति

गाधी ज म शती-स्मारक ग्रन्थमें लेख लिखनेके लिए डाक्टर राधाकृष्णनने मुझे जो निम त्रण भेजा है उसे स्वीकार करनेमें मुझे प्रसन्नता हो रही ह। इसका कारण यह ह कि महात्मा गाधीके विचारोने दुनियाके अनेक भागोमें छिडनेवाले आ दालनोपर गहरा प्रभाव डाला है। अमेरिकामें नागरिक अधिकारोके लिए चलने वाला आ दोलन इसका एक उदाहरण ह। इसके अतिरिक्त उनके अनक विचार सयुक्त राष्ट्रसघके घोपणापत्रमें निहित सिद्धा तो और उद्देश्योके भी अनुरूप ह।

घोपणापत्रमें हमें "सामाजिक प्रगति, जीवनके उच्चतर प्रतिमान और व्यापक तर स्वत त्रताको प्रोत्साहन" देनके लिए कहा गया ह। घोपणापत्रम भौतिक मानवीय अधिकारा, मानवकी गरिमा और मूल्य, स्त्रियो और पुरुपो तथा छोटे और बडे सभी राष्ट्रोके समान अधिकारोमें" दढ निष्ठा व्यक्तकी गयी ह। घोपणा पत्रम यह लक्ष्य स्थिर किया गया है कि ससारमें कोई भी राष्ट्र किसी अन्य राष्ट के अधीन न होगा। घोपणापत्रमें हमें वास्तविक बल प्रयोग और उसकी धमकी देनेसे दूर रहनेका आदेश दिया गया ह।

मानवकी गरिमा और मूल्यकी रक्षाके लिए ही गाधीजीने इस शताब्दीके आरम्भमें दक्षिण अफ्रीकामें प्रथम निष्क्रिय प्रतिरोधका सूत्रपात किया जिसे उ होन "सत्याग्रह ' की सज्ञा दी। सत्याग्रह शब्दसे यह अथ पूणत स्पष्ट हो जाता ह कि गाधीजीके अनुसार यदि सत्यका शस्त्र हम दढतापूवक ग्रहणकर लें और सोद्देश्यता के साथ उसका प्रयोग करें तो इससे हिंसाका सहारा लिये बिना ही शा तिपूण परिवतन लाया जा सकता ह।

निश्चय ही यह हमारी शताब्दीका एक महान् विचार था।

यह ठीक ह कि गाधीजीको उस अहिंसाका स देशवाहक कहा गया ह जिसकी अवधारणा ससारके प्राय सभी धर्मोंमें पायी जाता ह। मेरे अपने बौद्ध धमका

तो यह एक आधारभूत सिद्धांत है । असहिष्णुता, हिंसा और दूसरोको किसी भी उद्देश्यसे सताना बौद्धधर्मके सर्वथा विरुद्ध है । जिस दिनसे बुद्धने अपने सर्वोद्धारक और सर्वव्यापी प्रेमसे लोगोके हृदय-परिवर्तनका कार्य आरम्भ किया तबसे लेकर आजतक उनके नामपर या उनके लिए एक बूँद खून भी नही गिरा है । बुद्धने अपने शिष्योको यह शिक्षा दी है कि यदि कोई व्यक्ति उनके विरुद्ध कुछ बोलता है तो उसके प्रति वे किसी तरहका क्रोध या दुर्भावना न रखें । अहिंसा को किसी भी हालतमे नकारात्मक मानना गलत होगा । गाधीजीका विश्वास था कि यदि प्रमुख समस्याग्रस्त क्षेत्रोमे अहिंसक तरीकोका प्रयोग किया जाय तो इसके बल-प्रयोगकी अपेक्षा अधिक ठोस और स्थायी परिणाम निकलेंगे। उनके लिए यह बात बहुत महत्त्वपूर्ण थी कि सभी तरहके परिणाम शान्तिपूर्ण साधनोसे ही प्राप्त किये जाने चाहिये क्योकि साधन भी उतने ही महत्त्वपूर्ण होते है जितने स्वयं साध्य ।

हम प्राय यह उक्ति सुना करते है कि, "साधनोका औचित्य साध्यपर आधारित होता है ।" गाधीजीने इस विचारको स्पष्ट रूपमे ठुकरा दिया, वे यह कभी माननेको तैयार नही हो सकते थे कि कोई भी भला कार्य बुरे साधनोसे किया जा सकता है । उनकी दृष्टिसे साधन पूरी तरह साध्यमे विलीन हो जाते है । इस तरह साध्य साधनोको पवित्र बनाते है; वे उनका औचित्य नही सिद्ध करते । यह एक दूसरा गंभीर विचार है जिसे संयुक्त राष्ट्र संघके हम सब लोगोको घोषणापत्र मे निरूपित लक्ष्योके लिए काम करते समय बराबर याद रखना चाहिए।

गाधीजीने ब्रिटिश शासनसे भारतकी मुक्ति पानेके लिए निष्क्रिय प्रतिरोध या अहिंसक दबावकी टेकनीकका सफलतापूर्वक प्रयोग किया था । भारतकी सामाजिक बुराइयोकी उन्हे उतनी ही चिन्ता थी जितनी इसकी राजनीतिक स्वतन्त्रता की । वस्तुत सत्याग्रहके सबसे आरभिक प्रयोगोमे एक प्रयोग दक्षिणी भारतके एक गाँवमे अस्पृश्यताके विरुद्ध ही किया गया था । इस तरह गाधीजी जाति या धर्मका ख्याल किये बिना मानवकी गरिमा और मूल्य तथा समस्त मनुष्योके समान अधिकारके सिद्धान्तके महत्त्वपर जोर देते थे। भारतमे सामाजिक न्यायकी स्थापनाके लिए महात्मा गाधी जीवनभर प्रयत्नशील रहे ।

मै इसके पूर्व भी कह चुका हूँ कि अहिंसाका सिद्धान्त हमारे घोपणापत्रका भी एक मौलिक सिद्धान्त है । राष्ट्रसघके सदस्य राष्ट्र इस बातके लिए वचनबद्ध है कि वे अन्तरराष्ट्रीय संबंधोमे धमकी देने या बल-प्रयोग करनेसे दूर रहेगे । यह राष्ट्रसंघका एक सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है । इतिहास हमे यह शिक्षा देता है कि अनुनय-विनय द्वारा सामान्य सहमतिके अतिरिक्त मानवीय समस्याका कोई

भी स्थायी समाधान प्राप्त करनेका कोई दूसरा तरीका हो ही नहीं सकता। हिंसा दुधारी तलवार होती है। प्रत्येक क्रियाकी प्रतिक्रिया होती है—इस सिद्धान्तके अनुसार हिंसासे प्रतिहिंसाको उत्तेजना मिलती है। इसके फलस्वरूप शीघ्र ही कानूनके शासनकी जगह जंगलका शासन लागू हो जाता है। इसीलिए हमें प्राथमिक महत्त्वके सिद्धान्तोंकी ओर लौटना होगा और घोषणापत्रकी इस वचनबद्धताका पालन करना होगा कि कोई भी राष्ट्र अपने अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धोंमें धमकी या बल प्रयोग करनेसे दूर रहे।

यह एक अद्भुत विडम्बना है कि शान्तिके सन्देशवाहकको बीस वर्षों पूर्व एक हत्यारेके हाथों मरना पड़ा। जीवनभर शान्तिका उपदेश देनेवाले किसी व्यक्तिकी यह पहली हिंसक मौत नहीं है और मुझे आशंका है कि यह अन्तिम भी न होगी। किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि अहिंसाका सिद्धान्त या शान्तिपूर्ण परिवर्तनकी अनिवार्यता झूठी पड़ गयी है। इसके विपरीत यह अहिंसाके स्थायी मूल्यकी ही पुष्टि करता है। इससे यही पता चलता है कि हिंसाके मार्गका अनुसरण करनेवाले अहिंसाके पैगम्बरकी जान लेनेके लिए इसलिए बाध्य हो जाते हैं कि उन्हें इसकी आशा ही नहीं रह जाती कि वे जनताको हिंसाका मार्ग अपनानेके लिए सहमत और प्रभावित कर सकते हैं। इतिहासकी पुनरावृत्ति होती है। अभी हालमें रेवरेण्ड मार्टिन लूथर किंग जूनियरकी जो हत्या हुई है उसकी भी प्रतिरूप वही है। इस हत्यासे भी यही सिद्ध हो रहा है कि हिंसाके विरुद्ध सारे संसारमें जो नफरतकी लहर उठती है उससे अहिंसाका मूल्य ही बढ़ता है।

आज हम एक हिंसक संसारमें रह रहे हैं। सर्वत्र बेचैनीकी स्थिति है और परिवर्तनकी इच्छा दिखाई देती है। मैं यह विचार कई बार व्यक्त कर चुका हूँ कि यदि दुनियाके अधिकांश सत्तारूढ़ व्यक्ति समयके इस संकेतको पहचानकर परिवर्तनकी आवश्यकता स्वीकार नहीं कर लेते तो अनिवार्यतः यह परिवर्तन हिंसक साधनों द्वारा उपस्थित होगा। मेरा विश्वास है कि घोषणापत्रके अनुरूप शान्तिपूर्ण साधनों द्वारा लाया गया परिवर्तन न केवल वाञ्छनीय अपितु अधिक स्थायी भी होगा।

मेरे लिए गांधीजीके दर्शनका अर्थ और महत्त्व उनके अपने देश और कालसे कहीं अधिक व्यापक है। उनके अनेक सिद्धान्त सार्वभौमिक रूपमें लागू हो सकते हैं और उनकी प्रामाणिकता शाश्वत है। मैं आशा करता हूँ कि कुछ वर्षोंमें ही हम यह समझमें आ जायगा कि शान्तिपूर्ण परिवर्तनके साधनके रूपमें अहिंसक दबावके तरीकेकी प्रभावकारितामें उनकी जो निष्ठा थी उसका औचित्य सारे संसारके लिए भी उतना ही सत्य हो गया है जितना वह उनके समयमें भारतके लिए था।

आर्नोल्ड जोसेफ टायनबी

एक श्रद्धाञ्जलि

गाधीजीको महात्माकी जो उपाधि दी गयी है वह केवल मानद नही है, यह उनके विषयमे सत्यका निर्वचन करती है। वे सचमुच "एक महान् आत्मा" थे। यह भी हो सकता है कि वे हमारे समयमे प्रकट होनेवाले अन्य सभी महापुरुषो-से भी महान् हो। वे निस्सन्देह हमारे पूर्वयुगीन उन ऊँचे-से-ऊँचे महात्माओके जोडके महात्मा थे जिन महापुरुषोके संबंधमे हमे ऐतिहासिक अभिलेख मिलते है। उनके संबंधमे मेरा यह व्यक्तिगत निर्णय है। मेरा विश्वास है कि यही निर्णय अधिकांशत. उन सभी लोगोका होगा जिन्हें गाधी और उनके कार्योकी कोई भी जानकारी होगी। किन्तु क्या शायद जन्मत अग्रेज होनेके नाते इसे मेरा गाधीके पक्षमे पूर्वाग्रह कहा जायगा ?

मै इस सभावनाके प्रति जागरूक हूँ कि यह मेरा पूर्वाग्रह हो सकता है क्यो-कि मेरे विचारसे गाधी हमारे देशके लिए भी उतने ही उपकारी थे जितने वे अपने देशके लिए थे। गाधीने अंग्रेजोका भारतपर शासन करना असंभव कर दिया, किन्तु इसके साथ ही उन्होने हमारे लिए यह संभव भी कर दिया कि हम विना किसी द्वेप अथवा असम्मानकी भावनासे भारतमे अपनी सत्ताका परित्याग कर सके। उनके कारण भारतीय सरकार अंग्रेजोके हाथसे निकलकर भारतीयोके हाथमे चली गयी और इसके लिए पारस्परिक रक्तपात नही हुआ। हम राजनीतिक दृष्टिसे समानताके आधारपर भारतसे विदा हो गये। हम भारतसे मानवोचित वधुभावना और स्वाभाविक मानवीय सम्बन्धके आधारपर अलग हो गये। यह एक ऐसा सबंध है जिसकी स्थापना दो राष्ट्रोके बीच तवतक हो ही नही सकती जवतक उनमे एक दूसरेको परस्पर अपरिचित बनानेवाला शासक और शासितका कृत्रिम संबंध कायम है। गाधीने अंग्रेजोको इस उलझनसे मुक्त कर उनकी एक वडी सेवाकी है क्योकि साम्राज्य स्थापितकर लेना उससे मुक्त हो जानेकी अपेक्षा

का स्थायी समाधान प्राप्त करनेका कोई दूसरा तरीका हो ही नहीं सकता। हिंसा दुधारी तलवार होती है। प्रत्येक क्रियाकी प्रतिक्रिया होती है—इस सिद्धान्तके अनुसार हिंसासे प्रतिहिंसाको उत्तेजना मिलती है। इसके फलस्वरूप शीघ्र ही कानूनके शासनकी जगह जंगलका शासन लागू हो जाता है। इसलिए हमें प्राथमिक महत्त्वके सिद्धान्तोंकी ओर लौटना होगा और घोषणापत्रकी इस वचनबद्धताका पालन करना होगा कि कोई भी राष्ट्र अपने अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धोंमें धमकी देने या बल प्रयोग करनेसे दूर रहे।

यह एक अद्भुत विडम्बना है कि शान्तिके सन्देशवाहकको बीस वर्ष पूर्व एक हत्यारेके हाथों मरना पड़ा। जीवनभर शान्तिका उपदेश देनेवाले किसी व्यक्तिकी यह पहली हिंसक मौत नहीं है और मुझे आशंका है कि यह अन्तिम भी न होगी। किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि अहिंसाका सिद्धान्त या शान्तिपूर्ण परिवर्तनकी अनिवार्यता झूठा पड़ गयी है। इसके विपरीत यह अहिंसाके स्थायी मूल्यकी ही पुष्टि करता है। इससे यही पता चलता है कि हिंसाके मार्गका अनुसरण करनेवाले अहिंसाके पैगम्बरकी जान लेनेके लिए इसलिए बाध्य हो जाते हैं कि उन्हें इसकी आशा ही नहीं रह जाती कि वे जनताको हिंसाका मार्ग अपनानेके लिए सहमत और प्रभावित कर सकते हैं। इतिहासकी पुनरावृत्ति होती है। अभी हालमें रेवरण्ड-मार्टिन लूथर किंग जूनियरकी जो हत्या हुई है उसका भी प्रतिरूप यही है। इस हत्यासे भी यही सिद्ध हो रहा है कि हिंसाके विरुद्ध सारे संसारमें जो नफरतकी लहर उठती है उससे अहिंसाका मूल्य ही बढ़ता है।

आज हम एक हिंसक संसारमें रह रहे हैं। सर्वत्र बेचैनीकी स्थिति है और परिवर्तनकी इच्छा दिखाई देती है। मैं यह विचार कई बार व्यक्त कर चुका हूँ कि यदि दुनियाके अधिकांश सत्तारूढ़ व्यक्ति समयके इस संकेतको पहचानकर परिवर्तनकी आवश्यकता स्वीकार नहीं कर लेते तो अनिवार्यतः यह परिवर्तन हिंसक साधनों द्वारा उपस्थित होगा। मेरा विश्वास है कि घोषणापत्रके अनुरूप शान्तिपूर्ण साधनों द्वारा लाया गया परिवर्तन न केवल वाञ्छनीय अपितु अधिक स्थायी भी होगा।

मेरे लिए गांधीजीके दर्शनका अर्थ और महत्त्व उनके अपने देश और कालसे कहीं अधिक व्यापक है। उनके अनेक सिद्धान्त सार्वभौमिक रूपमें लागू हो सकते हैं और उनकी प्रामाणिकता शाश्वत है। मैं आशा करता हूँ कि कुछ वर्षोंमें ही हमें यह समझमें आ जायगा कि शान्तिपूर्ण परिवर्तनके साधनके रूपमें अहिंसक दबावके तरीकेकी प्रभावकारितामें उनकी जो निष्ठा थी उसका औचित्य सारे संसारके लिए भी उतना ही सत्य हो गया है जितना वह उनके समयमें भारतके लिए था।

आर्नोल्ड जोसेफ टायनबी

एक श्रद्धाञ्जलि

गाधीजीको महात्माकी जो उपाधि दी गयी है वह केवल मानद नही है, यह उनके विषयमे सत्यका निर्वचन करती है । वे सचमुच "एक महान् आत्मा" थे। यह भी हो सकता है कि वे हमारे समयमे प्रकट होनेवाले अन्य सभी महापुरुषो-से भी महान् हो । वे निस्सन्देह हमारे पूर्वयुगीन उन ऊँचे-से-ऊँचे महात्माओके जोडके महात्मा थे जिन महापुरुषोके संवंधमें हमे ऐतिहासिक अभिलेख मिलते है । उनके संवंधमे मेरा यह व्यक्तिगत निर्णय है । मेरा विश्वास है कि यही निर्णय अधिकाशत. उन सभी लोगोका होगा जिन्हें गाधी और उनके कार्योकी कोई भी जानकारी होगी । किन्तु क्या शायद जन्मत अंग्रेज होनेके नाते इसे मेरा गाधीके पक्षमे पूर्वाग्रह कहा जायगा ?

मै इस सभावनाके प्रति जागरूक हूँ कि यह मेरा पूर्वाग्रह हो सकता है क्योकि मेरे विचारसे गाधी हमारे देशके लिए भी उतने ही उपकारी थे जितने वे अपने देशके लिए थे । गाधीने अंग्रेजोका भारतपर शासन करना असंभव कर दिया, किन्तु इसके साथ ही उन्होने हमारे लिए यह संभव भी कर दिया कि हम विना किसी द्वेप अथवा असम्मानकी भावनासे भारतमे अपनी सत्ताका परित्याग कर सके । उनके कारण भारतीय सरकार अंग्रेजोके हाथसे निकलकर भारतीयोके हाथमे चली गयी और इसके लिए पारस्परिक रक्तपात नही हुआ । हम राजनीतिक दृष्टिसे समानताके आधारपर भारतसे विदा हो गये । हम भारतसे मानवोचित वधुभावना और स्वाभाविक मानवीय सम्बन्धके आधारपर अलग हो गये । यह एक ऐसा सवंध है जिसकी स्थापना दो राष्ट्रोके बीच तवतक हो ही नही सकती जवतक उनमें एक दूसरेको परस्पर अपरिचित वनानेवाला शासक और शासितका कृत्रिम संवंध कायम है । गाधीने अंग्रेजोको इस उलझनसे मुक्त कर उनकी एक वडी सेवाकी है क्योकि साम्राज्य स्थापितकर लेना उससे मुक्त हो जानेकी अपेक्षा

कहीं अधिक होता है।

प्रथम विश्वयुद्धके दौरान सन् १९१७ में जब मि० मान्टेग्युने भारतको क्रमश स्वशासन देनेका आश्वासन दिया था और यह शुभ निर्णय करते समय उस ब्रिटिश जनताकी भावनाओं और इच्छाओंको ही निष्ठापूर्वक प्रतिबिम्बित किया था। उस समय यूरोपमें हमारी जैसी सकटपूर्ण स्थिति थी उसमें भारतीय जनताकी प्रतिक्रियामें हमें उनकी जिस उदारताका परिचय मिला था उसने हमारे दिलोंको छू लिया था। हम भारतीयोंके दिलोंमें गांधीजीके प्रति भी उन्होंने हमारे सकटकालमें उदारतापूर्वक स्वेच्छापूर्वक शामिल ब्रिटिश फौज की सहायतामें हजारों-लाखों भारतीय सिपाहियोंकी भर्ती की थी। मेरा ख्याल है कि भारतमें यह भावना थी कि इस तथ्यके बावजूद कि ब्रिटेन स्वशासनकी भारतीय मांगको ठुकराता आ रहा है यह युद्ध मित्रराष्ट्र सिद्धान्तत स्वतन्त्रताके पक्षमें है और इस समय वह यूरोपमें स्वतन्त्रताके लिए ही लड़ रहा है और यह कि यदि वह इस युद्धमें भारतकी सहायतासे विजयी हो गया तो यह पूरी तरह संभव है कि ब्रिटेनका अन्तःकरण भारतको भी स्वतन्त्रता प्रदान करनेके लिए प्रेरित हो जाय जिसे स्वयं अपने लिए रक्षित करनेके उद्देश्यसे वह इस समय लड़ रहा है।

वस्तुत अंग्रेजोंके हृदयपर भारतकी प्रतिक्रियाका गहरा प्रभाव पड़ा सन् १९१७ में ब्रिटेनने जो निर्णय किया उसमें पूरी ईमानदारी था और ब्रिटेन उसे कार्यान्वित करनेकी ओर अग्रसर भी होने लगा किन्तु एक बार सत्ता प्राप्त कर लेनेपर उसे स्वेच्छापूर्वक छोड़ देना मानव स्वभावके विपरीत होता है भारतको धीरे धीरे परायधीनतासे मुक्तकर स्वतः अपने आश्वासनोंको क्रियान्वित करनेमें संभवत ब्रिटेनने देरी कर दी—उसने उस दिशामें बढ़े हुए अपने कदमोंको शायद पीछे लौटा लिया जिसके फलस्वरूप भारतीय जनताका विश्वास उसपरसे उठ गया और वह अधीर हो उठी ऐसी स्थितिमें भारतीय पक्षमें क्रान्तिकारी हिंसा हो सकती थी और ब्रिटिश पक्षमें दमनात्मक प्रतिहिंसा शुरू हो सकती थी, और ऐसी हालतमें यदि बड़े पैमानेपर रक्तपात हुआ होता तो स्थिति नियन्त्रणसे बाहर जा सकती थी। इतिहासमें इस तरहके अनेक दर्दनाक उदाहरण मौजूद हैं जिनसे यही संभावना प्रबल होती है कि इस कहानीने भी वैसा ही दर्दनाक मोड़ ले लिया होता किन्तु गांधीने घटनाचक्रको एक नयी दिशा दे दी और इससे जहाँतक ब्रिटेन और भारतकी जनताके पारस्परिक संबंधोंका प्रश्न है कहानी सुखान्त हो गयी यद्यपि दुर्भाग्यवश जहाँतक हिन्दू और मुसलमानोंके पारस्पिक संबंधोंका

सवाल है यह उतनी सुखद न हो सकी।

यही कारण है कि अंग्रेज होनेके नाते सभवत. गाधीके प्रति मेरा दृष्टिकोण पक्षपातपूर्ण हो गया हो। किन्तु क्या यदि मैं जन्मत. ईरानी, इथियोपियन या स्वीडिश होता तो गाधीके संबंधमें मेरा निर्णय कम पक्षपातपूर्ण होता ? मैं ऐसा नही मानता; क्योकि गाधीने भारत और ब्रिटेनकी जैसी सेवाकी है, उसका स्वरूप ही कुछ ऐसा है कि वह निखिल मानव जातिकी सेवा हो जाती है। गाधीने एक महान् राजनीतिक परिवर्तनका—बहुत बडे पैमानेपर राजनीतिक सत्ताके हस्तान्तरणका—एक ऐसा रास्ता निकाल लिया जिससे किसी प्रकारका रक्तपात नही हुआ और किसी तरहकी घृणा नही पैदा हुई। उन्होने केवल रास्ता ही नही निकाला; उन्होने लाखो-करोड़ो लोगोको उस रास्तेपर अपने पीछे चलनेके लिए भी अनुप्रेरित कर दिया; भारत और ब्रिटेनकी जनताके पारस्परिक सवधोमे अपनी इस उपलब्धिसे गाधीने सारे संसारके सामने एक अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत कर दिया। उन्होने मानवजातिको राजनीतिके क्षेत्रमे एक नैतिक पाठकी शिक्षा दी, और वह भी उस समय जब परमाणुयुगका आरंभ हो रहा था।

परमाणुओमे निहित अपरिमेय भौतिक शक्तिको मानवीय उपयोगके लिए नियन्त्रित करनेवाली टेकनोकका आविष्कार प्रविधि और विज्ञानके क्षेत्रमें की गयी मानवकी उस समुच्चयात्मक प्रगतिका प्रतीक है जो उसी समयसे आरम्भ हो गयी है जब हमारे प्राक्-मानवपूर्व पुरुष मानव बने थे। विज्ञान और प्रविधिकी इस महान् उपलब्धिको तत्काल विनाशकारी शस्त्रास्त्रोके निर्माण और उनके उपयोगमे नियोजित करनेकी प्रवृत्ति उस वैषम्यका प्रतीक हे जो एक ओर मानवकी प्राविधिक प्रगति और दूसरो ओर मानवीय संबधोके क्षेत्रमे अर्थात् नैतिक मूल्योके क्षेत्रमे रहनेवाले उसके पिछडेपनमे दिखाई देती है। मानवकी वैज्ञानिक और प्राविधिक सामर्थ्य उसके हाथोमे जितनी हो बडी भौतिक शक्ति देती जाती है उसकी भौतिक सफलता और उसकी आध्यात्मिक विफलताके बीच पायी जानेवाली खाई उतनी ही चौडी होती जाती है और यह खतरा भी उसी अनुपातमे बढता जाता है कि मनुष्य अपनी बढी हुई भौतिक शक्तिका दुरुपयोग स्वयं अपनेको ही नष्ट कर डालनेके दुष्ट और अविवेकपूर्ण प्रयोजनमे ही करेगा। पारमाणविक शस्त्रोके आविष्कार और उपयोगने इस खतरेको बहुत बढ़ा दिया है। इससे मनुष्यके लिए यह नितान्त आवश्यक हो गया है कि वह अपनेको स्वयं अपनेसे बचानेके लिए तत्काल महान् नैतिक प्रगतिका कार्य पूरा कर ले। अब मनुष्यके लिए यह कर्त्तव्य अपरिहार्य हो गया है कि वह न केवल किसी परंपरागत विशिष्ट युद्धमे ही बल्कि

थे उन्होंने राजनीतिक जीवन शुरू करनेसे साफ इनकार कर दिया यद्यपि उनके समयका यहूदी समुदाय ऐसे किसी भी व्यक्तिसे जो मसीहा होनेका दावा करता हो या जिसको इसी रूपमें मान्यता हो यह अपेक्षा करता था कि वह सैनिक *और राजनीतिक जीवन अवश्य बितायेगा।*

गांधी अपनी इच्छासे जानबूझकर ही राजनीतिमें आये थे किन्तु गांधीने अपने जीवनमें आये किसी संकटके दबावसे ऐसा नही किया था। गांधीने जिस समय राजनीतिमें प्रवेश किया था उनकी वकालत चल निकली थी। उनके सामने व्यवसायका कोई प्रश्न न था। राजनीतिमें प्रवेश करनेका निश्चय उन्होने न तो किसी व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाकी पूर्तिके लिए किया था और न किसी ऐसी ही आशासे किया था कि इससे उन्हें एक क्षेत्रमें मिली विफलताकी पूर्ति दूसरे क्षेत्रमें करनेका मौका मिल जायगा। राजनीतिमें प्रवेशके पीछे गांधीका कोई व्यक्तिगत स्वार्थ न था। गांधीका एकमात्र उद्देश्य आध्यात्मिक कीचडमें उतरकर राजनीति के गंदे वातावरणमें, जीवनके आध्यात्मिक स्तरको उन्नत बनाना था। गांधीने इस कदमका अवगाहन किया और यह दिखा दिया कि इसकी सफाई कैसे की जा सकती है फिर भी इस कीचडमें उतरनेसे उनके व्यक्तिगत जीवनमें इसकी कोई गदगी न आ सकी। इससे हम मानवीय इतिहासके एक नये मोडपर गांधीकी आध्यात्मिक ऊँचाई और उनके द्वारा की गयी मानव-जातिकी सेवाकी विशालता का बोध होता है।

सोफिया वाडिया

बापू का रास्ता

भारत और सारा संसार इस समय महात्मा गाधीकी जन्मशती वहुत वडे पैमानेपर मनानेकी तैयारी कर रहा है। २ अक्तूवर १८६९ को पोरवंदर या सुदामापुरीमे उस वच्चेका जन्म हुआ था जो आगे चलकर महात्मा गाधी वननेवाला था।

मैं यह स्वीकार करती हूँ कि जन्मशतीसंवंधी समारोहोके वीच मुझमे एक तरहके विपादकी भावना भी आरही है। क्योकि हम गाधीजीको राष्ट्रपिता कहते है और इसी रूपमे उनका सम्मान करते है किन्तु क्या हम भारतवासी उनके दिखाये हुए रास्तेपर, सत्य और अहिंसा, सेवा और वलिदानके रास्तेपर चल रहे है ? यदि हमारे राष्ट्रपिता वापूजी इस समय हमारे वीच आ जाते तो वे क्या कहते ? क्या वे हमारा अनैक्य, हमारी असहिष्णुता, हमारा स्वार्थ और अनुशासनहीनता देखकर खूनके आँसू न रोने लगते ? हम उनकी स्मृतिके प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पितकर रहे हैं, एक शताब्दी पूर्व भारतकी इस धरतीपर उनके परम आह्लादकारी अवतरणके उपलक्ष्यमे वडे उत्साहसे समारोहोकी तैयारी कर रहे है किन्तु क्या हमारे दिल साफ है, हमारा अन्त करण पवित्र और स्वच्छ है ? यदि हममें ईमानदारी है तो हमारे सामने गाधीजीके प्रति सम्मान प्रकट करनेका एक ही सार्थक तरीका हो सकता है और वह है उनके सपनोको साकार करनेके लिए प्रयत्न करना—एक ऐसे ऐक्यवद्ध भारतका निर्माण करना जो आत्मशक्तिसे सम्पन्न और सुदृढ हो।

गाधीजीने कहा था :

> मै भारतको स्वतन्त्र और शक्तिशाली देखना चाहता हूँ जिससे वह स्वेच्छापूर्वक संसारके उन्नयन और कल्याणके लिए अपना वलिदान कर सके।

इस तरह मै एक साथ ही दु.खी भी हू और नही भी हूँ। दु खी इसलिए हूँ

कि हम लोग सत्य और अहिंसाके मार्गसे विचलित हो गये हैं, और फिर यह सोचकर मेरा दुःख दूर हो जाता है कि यह भारत कैसा अद्भुत देश है जहाँ गांधीजी जसे व्यक्ति पैदा होते हैं। उनके जीवनका सौरभ कभी पूरी तरह लुप्त नहीं हो सकता। उन्होंने हमारे सामने जो उदाहरण प्रस्तुत किया है उसे कोई मिटा नहीं सकता। हम आशा करते हैं और ईश्वरसे प्रार्थना करते हैं कि हमारी यह निष्ठा अविचल बनी रहे कि आज जो बादल घिरे हुए हैं वे एक दिन अवश्य छँट जायेंगे और वह प्रकाश फिर प्रकट हो जायगा जो आजके निबिड़ अंधकारके पीछे भी जल रहा है। भगवानकी कृपासे हम शीघ्र ही सत्यके प्रकाशका दर्शन करें। इस बीच हमें अपना साहस बनाये रखना है और उस स्वर्णिम विहानको शीघ्रतासे लानेमें लग जाना है। इस कार्यमें प्रत्येक व्यक्ति महत्त्वपूर्ण है—प्रत्येक व्यक्तिकी अपेक्षा है और उसे अपनी भूमिका अदा करनी है। देशका कोई भी ऐसा छोटा-से छोटा व्यक्ति नहीं है जो इस महान कार्यमें अपना योगदान न कर सकता हो।

इस तरह नयी शक्ति और साहस प्राप्त कर हम बापूकी ओर मुड़ना चाहिये जिन्हें पुरानी पीढ़ीके हम लोगोंको व्यक्तिगत रूपसे इतना करीबसे जानने और उनका आशीर्वाद प्राप्त करनेका सौभाग्य मिला था। किन्तु हममेंसे कितने लोग उन्हें वस्तुतः जान पाये थे?

प्रत्येक व्यक्तिके जीवनमें दो तरहकी धाराएँ होती हैं—उसके दो स्वरूप होते हैं—बाह्य और आन्तरिक। उनका बाह्य जीवन वस्तुगत तथ्यों और बाहरी घटनाओंका इतिहास होता है जिसमें उसकी वंशपरंपरा, परिवार, धर्म, पर्यावरण, शिक्षा, जीवन आदिका विवरण प्रस्तुत किया जाता है। उसका यह इतिहास उसके जन्मकी तिथि और जन्मस्थानसे शुरू होकर उसके शरीरान्तकी तिथि और स्थानका उल्लेखकर समाप्त हो जाता है। इस प्रकार इसके अन्तर्गत उसकी सत्ताके बाह्य स्तरपर मिलनेवाली उसकी उपलब्धियों एवं विफलताओंका ब्योरा दिया जाता है और उसके द्वारा निर्मित उस बाह्य प्रतिरूपकी चर्चा होती है जिसे उससे सम्बद्ध सभी लोग जानते रहते हैं।

इस बाह्य प्रतिरूपके साथ-साथ चलनेवाला अथवा इसके पीछे रहनेवाला उसका वह दूसरा प्रतिरूप भी होता है जो अधिकांशतः अज्ञात ही रह जाता है और उसके शाश्वत आन्तरिक व्यक्तित्वमें ही वह उज्ज्वल अक्षरोंमें अङ्कित रहता है। इसे हम चाहें आत्मिक जीवनका रहस्य कहें, चाहे जीवनका चिन्तनपर्दान कहें, यह उसके मनोलोकके तन्तुओंमें अन्तर्निहित होता है और उसके बाह्य

जीवनकी गाथासे कही अधिक सत्य और वास्तविक होता है। यह तथ्य प्रत्येक व्यक्तिपर लागू होता है किन्तु महात्मा गाधी जैसे व्यक्तिके संवंधमे तो इसका सर्वाधिक महत्त्व होता है। वे इतने महान् थे कि उन्हे केवल उनके वाह्य जीवनके आधारपर समझा ही नही जा सकता। इसीलिए वे अपने समकालीन लोगोके वीच अधिकाशत. अज्ञात रूपमे ही जीवित रहे और लोगोने उन्हे प्राय. गलत समझा क्योकि वे उनके बाह्य व्यक्तित्वके आवरणमे छिपे उनके आन्तरिक स्वरूप को देखपानेमे असमर्थ थे और सोचते थे कि वह कोई दूसरी ही वस्तु है। सभी महान् पुरुषोके जीवनके संवंधमे यह एक अत्यन्त मार्मिक और कष्टकारक तथ्य होता है कि लोग उनके वास्तविक स्वरूपको पहचान ही नही पाते और मानवीय स्तरपर वह एकाकी वना रह जाता है और उसकी वाणी प्रायश अरण्यरोदन वनकर रह जाती है किन्तु फिर भी यह एक वडे आश्चर्यकी वात है कि ऐसे महापुरुषोके ही जीवनमे कभी-कभी अत्यन्त नाटकीय रूपसे किसी घटनामे उनके आन्तरिक और वाह्य स्वरूपका ऐसा युगपद् सम्मिलन हो जाता है जो उनकी आत्माकी महानताका शाश्वत साक्ष्य प्रस्तुत कर देता है जिससे भावी पीढियाँ उन्हे पहचाननेमे समर्थ हो जाती है।

गाधीजीका महाप्रयाण एक ऐसी ही घटना थी। इसीलिए आज वीस वर्षोके वाद भी इसकी इतनी अधिक चर्चा होती रहती है और हालमे ही 'लाइफ' पत्रिका (एशियाई सस्करण) मे मनोहर मालगाँवकरने "गांधीका निधन : कैसे और क्यो ?" शीर्षक लेखमे इसपर विचार किया है।

एक हत्यारेके हाथसे होनेवाली गाधीकी हत्या उनकी शहादतका सवूत थी और उसमे उनके अन्तिम बलिदानका आदर्श ही साकार हो उठा था। उन्होने एक वार कहा था कि

सत्याग्रह की विजय सत्यका अनुसरण करते हुए मृत्युका वरणकर लेनेमे ही निहित है।

वे मरकर विजयी हो गये और उनकी ओजस्विनी वाणी, जिसे आज उनकी सन्तानें नही सुन पा रही है, सारे संसारमे प्रतिध्वनित हो रही है और सभी साधनारत व्यक्तियोके हृदयमे वह नयी झंकार पैदा करती जा रही है क्योकि जीवन एक वडी महत्त्वाकाक्षा है : इसका उद्देश्य परिपूर्णता प्राप्त करना—आत्मसाक्षात्कारकी महती उपलब्धि है।

गांधीजीका जीवन आरंभसे लेकर अन्ततक एक उच्च महत्त्वाकाक्षासे ही अनुप्रेरित होता रहा है। इसीने उन्हें इतना महान् वना दिया था। उनकी महा-

नता केवल इस बातमें नहीं है कि उन्होंने सत्य और अहिंसाके मार्गसे भारतको स्वतन्त्रता दिला दी। उनकी वास्तविक महानता इस तथ्यमें निहित है कि वे स्वयं सत्यके प्रकाशमें विकसित होते गये। वे निरन्तर सत्यका संधान करते रहे और अन्ततः उसे उपलब्धकर उन्होंने घोषित कर दिया कि सत्य परमात्माका ही अंग है, वही परमात्मा है और प्रत्येक व्यक्ति सत्यकी उपलब्धिके लिए प्रयास करनेमें समर्थ है।

हमें इस समय यह स्मरण करना चाहिए कि महात्मा गांधीने हमें उस परमात्माके सम्बन्धमें क्या बताया जो स्वयं सत्यका ही रूप है और हमें उन्होंने उस मनुष्यके संबंधमें क्या जानकारी दी जो युग-युगसे एक रहस्य बना हुआ है। हममेंसे प्रत्येक व्यक्ति यदि अपने वास्तविक स्वरूपको पहचान लें तो हमें परमात्मा और मानवमात्रके साथ अपने वास्तविक संबंधका ज्ञान हो जाय। हमें क्या होना चाहिए इस ओर बढ़नेके लिए पहला कदम निश्चय ही यह है कि पहले हम यह जान लें कि हम क्या हैं? आत्मज्ञानके आधारपर ही हम अपने भावी आदर्श जीवनकी प्रतिष्ठा कर सकते हैं।

गांधीजी निरन्तर परमात्माके साहचर्यका अनुभव करते थे। वे अपनी जीवन यात्रा परमात्माके साथ कर रहे थे। परमात्माकी सेवा करना और समूची मानवताकी सेवा करना ही उनका परम धर्म था। वे हमें यही शिक्षा देते हैं :

> अहिंसामें अपनी निष्ठा कायम रखनेके लिए यह आवश्यक नहीं है कि हम किसी ऐसी अतिलौकिक अपार्थिव शक्तिमें विश्वास करें जिसे परमात्मा कहा जाता है, किन्तु परमात्मा आकाशमें रहनेवाली कोई शक्ति नहीं है। परमात्मा तो वह अदृश्य शक्ति है जो हम सबमें निवास करती है। हमारी उंगलियोंके नाखून त्वचाके जितने करीब हैं परमात्मा हमसे उससे भी अधिक निकट है। हममें ऐसी छिपी हुई अनेक शक्तियाँ हैं जिन्हें हम सतत साधनासे प्रकट करते हैं। इसी तरहसे हम उस सर्वोच्च शक्तिको भी प्राप्त कर सकते हैं यदि हम उसकी प्राप्तिके लिए दृढ़ संकल्प कर लें और अध्यवसायपूर्वक उसका अनुसंधान करते रहें। अहिंसा भगवान्‌को प्राप्त करनेका एक ऐसा ही मार्ग है। यह अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि परमात्मा हममेंसे प्रत्येक व्यक्तिमें निवास करता है इसलिए हमें निरपवाद रूपसे मानवमात्रके साथ तादात्म्य स्थापित करना होगा। वैज्ञानिक भाषामें इसे सम्पर्षण या आकर्षण कहते हैं। सामान्य भाषामें इसे प्रेम कहते हैं। प्रेम हमें एक दूसरेसे और परमात्मासे आबद्ध कर देता है। अहिंसा और

प्रेम एक ही वस्तु है।[२]

एक दूसरे स्थानपर वे कहते हैं

परमात्माका साक्षात्कार करना ही मनुष्यका चरम लक्ष्य है। उसके सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक सभी प्रकारके क्रियाकलापोंको इसी चरम लक्ष्य द्वारा निर्दिष्ट होना चाहिए। मानवमात्रकी तात्कालिक सेवा इस प्रयासका आवश्यक अंग बन जाती है क्योकि परमात्माको प्राप्त करनेका एकमात्र मार्ग यही है कि हम उसका दर्शन उसकी सृष्टिमे करे और उसके साथ एकाकार हो जायें। यह केवल सबकी सेवा करनेसे ही सभव है। मै समग्रका ही अविच्छेद्य अंग हूँ। मै अपनेसे भिन्न शेष मानवजातिसे अलग होकर उसे नही प्राप्त कर सकता। मेरे देशवासी मेरे सबसे करीबके पडोसी हैं। वे इतने असहाय, इतने साधनहीन और इतने निष्क्रिय एवं जड बन गये है कि मुझे उनकी सेवामे लगना होगा। यदि मै अपनेको यह समझा पाता कि मै भगवान्‌को हिमालयकी किसी गुफामे पा सकता हूँ तो मै तत्काल वहाँ चला जाता किन्तु मै जानता हूँ कि मै उसे मानवताके अतिरिक्त और कही नही प्राप्त कर सकता।[३]

गाधीजीके लिए मानव मात्रकी एकता एक वास्तविक तथ्य थी .

मै परमात्माके एकान्त ऐक्यमें विश्वास करता हू अतएव मेरा विश्वास मानवताके ऐक्यमे भी है। यदि हमारे शरीर अलग-अलग है तो इससे क्या हुआ ? हमारी आत्मा तो एक ही है। सूर्यकी किरणें असंख्य होती है किन्तु उनका स्रोत तो एक ही होता है।[४]

इस तरह यह अनुभव कि हम सभी एक ही आत्माकी किरणे है हमे प्रत्यक्षत. इस अनुभूतिपर पहुँचा देता है कि निखिल मानवता एक और अविभाज्य है। भगवद्गीताका, जिसके प्रति बापूका इतना अनुराग था, भी यही उपदेश है। बापू भगवद्गीताको माता कहकर पुकारते थे और एक अबोध शिशुकी तरह वे बराबर सहायता और मार्ग दर्शनके लिए उसीके पास जाते थे। गीताने कहा है . "हे भारत ! जिस तरह एक ही सूर्य सारे संसारको प्रकाशित कर रहा है इसी तरह एक ही आत्मा प्रत्येक व्यक्तिको प्रकाशित कर रही है।" बापू कहते है .

अपनी सत्ताके नियमका निर्धारण करलेनेबादके हमे अपनी सामर्थ्यके अनुसार उसे आचरणमे लानेका प्रयत्न शुरूकर देना चाहिये…… …[५]

हमारी अपनी सत्ताका नियम हमे यह निर्देश करता है कि जैसे एक ही आत्माकी किरणें हम सबमे निवास करती है उसी तरह हम भी उसी एक आत्मा-

में ही निवास करें और अपने बधुजनोंमें भी हम वसे ही निवास करें जसे वे किरणें उनमें रहती ह। एक बार जब हमारे सामने यह आदश प्रस्तुत हो गया तो हमारा यह क्तव्य हो जाता है कि हम अपने इस आदशमें अपनी निष्ठा अविचल बनाये रखें। बापूने हमें बताया है कि अपने आदर्शोंमें निष्ठा ही मनुष्यका वास्तविक सच्चा जीवन ह। वस्तुत यही मनुष्यका 'सारसवस्व" ह। हमें कभी अपने जीवन में निराशाको स्थान नही दना चाहिये। अपनी सम्पूण शक्तिसे प्रयत्न करते रहना ही महत्त्वपूण ह। सतत प्रयत्न करते रहना ही सफलता ह—प्रयत्नका रुक जाना ही एकमात्र विफलता ह

> जब तक हमारे प्रयत्नमें शिथिलता नही आती हमारा लक्ष्य प्राप्त हुआ या नही इसका महत्त्व नगण्य है।[६]
>
> हम अपने आदर्शोंसे कभी भयभीत होनेकी आवश्यकता नही ह और हम उसे अधिकसे अधिक अपने आचरणोंमें लानेमें भी नहीं डरना चाहिये।[७]
>
> प्रयत्न करनेमें ऐसे किसी गुणकी अपेक्षा नही है जिसे हममसे छोटेसे छोटे व्यक्ति भी न प्राप्तकर सकते हों क्योंकि सत्याग्रह तो आन्तरिक आत्माका ही गुण ह। यह प्रत्येक व्यक्तिमें अन्तर्निहित होता ह।[८]

उपयुक्त शब्द विवेक और ज्ञानके शब्द हैं। उनमें सुनहले उपदेश भरे हुए ह। हम गाधी साहित्यसे ऐसे न जाने कितने अशोंका उद्धरण द सकते हैं। ये एक एसी जीवन्त शक्तिसे परिपूण हैं कि उनमे बराबर, शान्ति सान्त्वना, विश्राम साहस और धयका सचार होता रहता ह। अब बापूकी समस्त रचनाओंका सकलन प्रकाशित हो चुका ह। हमें उनकी जन्मशतीके अवसरपर इनका अनुशीलन करते हुए उनके मस्तिष्क और हृदयके साथ प्रत्यक्ष सबध स्थापित करना चाहिये। किन्तु हम यहीं रुक न जायें बल्कि उनके द्वारा प्रदर्शित मार्गपर चलनेका भी सङ्कल्प ले लें। हमें उनके सत्य और अहिंसाके सन्देशको जीवनमें लागू करनेका प्रयत्न करना चाहिये।

भारत और ससारको आज कल्पनासम्पन्न, ईमानदार चरित्रवान् निष्ठावान् एव निस्वाथ नर-नारियोंकी अपेक्षा है। गांधीजीके प्रिय शब्दोंमें कहें तो हमें 'शतप्रतिशत विश्वसनीय व्यक्ति' अपेक्षित हैं।

हम जन्मशतीके इस समारोहके अवसरपर अपने तेग स्थिर गुणोंको विकसित करनेका व्रत लें जिससे हम 'शतप्रतिशत विश्वसनीय व्यक्ति' बन सकें। इसके लिए सच्चा लगन और आत्मानुशासनकी दिशामें सतत अध्यवसाय करते रहनेकी आवश्यकता होगा। आत्मानुशासनके बिना व्यक्ति अपने निम्नतर स्वभावपर

विजय नही प्राप्त कर सकता और अपने पर नियन्त्रण स्थापित किये विना आत्म-साक्षात्कार असभव है ।

गाधीजीने लिखा है कि व्यक्ति पर ध्यान देना सबसे महत्त्वकी बात है क्योकि प्रत्येक व्यक्ति समूचे समाजके साथ एकाकार है

> मै इस बातमे विश्वास नही करता कि किसी एक व्यक्तिके आध्यात्मिक विकाससे उसके आस-पास रहनेवाले लोग अप्रभावित रह सकते है और उनका कुछ भी विकास नही हो सकता है । मै अद्वैतमे विश्वास करता हूँ । मुझे मनुष्यके आधारिक ऐक्यमे विश्वास है अतएव सभी प्राणियोमे भी मेरी स्वाभाविक निष्ठा है । इसीलिए मेरा यह भी दृढ विश्वास है कि आध्यात्मिक दृष्टिसे एक व्यक्तिके विकास करनेपर सारा संसार उससे लाभान्वित होता है और एक व्यक्तिका भी पतन होनेपर सारे संसारका उसी अनुपातमे पतन होता है ।[१]

मानवताके प्रति हमारा यह कर्त्तव्य है कि हम अपना चरित्र सुधारने और अपना मन पवित्र बनानेका प्रयत्न करें और "न्यायपूर्वक व्यवहार और नम्रता-पूर्वक आचरण" की कोशिश करें ।

मेरी यही प्रार्थना है कि महात्मा गाधीके व्यक्तित्वसे नि.सृत होनेवाली शक्ति हममेसे प्रत्येकके हृदयमे निरन्तर प्रेरणाकी स्रोत बनी रहे और हम उनके अनुग्रह और आशीर्वादके योग्य अधिकारी बन सकें ।

---

१. इस वाणीने रेवरेंड मार्टिन लूथर किंगके हृदयमे झंकार पैदा कर दी थी । उन्होंने अमेरिकी हब्शियोंको जैसा नेतृत्व प्रदान किया था उसमें गांधीजीके लक्ष्यों और साधनोंकी पवित्रता ही परिलक्षित होती है । यह कितने दु:खकी बात है कि गांधीजीके रास्तेपर चलकर उन्हें भी गाधीके समान ही मृत्युका वरण करना पड़ा ! यह समाचार मुझे करीब-करीब उसी समय मिला जब मैं यह लेख लिख रही थी । उनकी स्मृतिके प्रति हमारी श्रद्धांजलियाँ समर्पित हैं !

२. सेवाग्रामके १ जून, १९४२ के एक निजी पत्रसे ।

३. हरिजन, २९ अगस्त १९३६ ।

४. यग इण्डिया, २५ सितम्बर १९२४ ।

५. वही, ५ फरवरी १९२५ ।

६ गांधीजीज करेस्पाण्डेंस विद द गवनमेंट, १९४२ ४४ (नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, द्वितीय संस्करण १९४२) ७४।

७ स्पीचेज एण्ड राइटिंग्स आव महात्मा गांधी (जी० ए नटेसन ऐण्ड कम्पनी मद्रास, चतुर्थ संस्करण) पृ० ३५५।

८ यंग-इण्डिया २६ दिसम्बर १९२४।

९ वही, ४ दिसंबर १९२४।

हेरोल्ड विल्सन

भारत-ब्रिटिश संबंध

सितंबर १८८८ के उत्तरार्धमे एक दिन शनिवारको साउथम्पटनमे एक तेरह-वर्षका भारतीय छात्र पहुँचा। वह पहली वार ब्रिटेन आया था। राजकोटस्थित उसके परिवारके लोग इस वातमे काफी आनाकानी कर रहे थे और उन लोगोके मनमे वडा आगापीछा हो रहा था कि उसके लिए समुद्र पारकर इतनी लवी यात्रा करना कहाँ तक ठीक होगा किन्तु वह स्वय लदन आकर वैरिस्टरी पास करने और इग्लैंडको खुद देख सकनेके लिए वडा लालायित था। श्री एम० के० गाधी-को लंदनमे स्वभावत आरभिक कुछ हफ्तोतक कुछ कठिनाइयाँ हुईं। सवसे वडी दिक्कत इसलिए हुई कि वे निरामिप आहारका अटूट सङ्कल्प ले चुके थे। इसके कारण कुछ समय तक उनको उचित और पर्याप्त भोजन नही मिल सका। वहुत खोज करनेके वाद उन्हे लंदनके शहरमें एक निरामिष भोजनालयका पता लग गया। उन्होने निरामिप आहारपर एक पुस्तक भी खरीदी। इसके वाद इंग्लैण्ड-मे उनका मन लगने लगा। कुछ समय तक तो वे इंग्लैण्डके फैशनेवुल नागरिक ही वन गये थे किन्तु शीघ्र ही उन्होने फैशनपरस्ती छोड दी और मितव्ययिता और सादगी अपना ली। वे लंदन शहरमे काफी दूर तक पैदल ही चलते थे और अपना भोजन भी स्वयं वनाते थे। जव तक वे ब्रिटेनमे रहे उन्होने शराव और मास छुआ तक नही। वे यहाँ जिस तरहका अनुशासित जीवन विताते थे उससे यह पता लगाना कठिन न होगा कि उन्होने अपने आगेके जीवन कालमे वरावर जिस लौह आत्मानुशासनको अपनेपर लागू कर रखा था उसकी शुरुआत किस तरह उनके ब्रिटेनके आवास कालमे हो चुकी थी।

वैरिस्टरीके लिए अध्ययन करना उन्हे कोई खास कठिन नही मालूम हुआ। वे वीच-वीचमे यात्राएँ करने और भगवद्गीता तथा वाइविल जैसे ग्रन्थोके अध्ययन-का भी समय निकाल लेते थे। इन ग्रन्थोके अनुशीलनका उनके जीवनपर वड़ा

गभीर प्रभाव पडा । आगे चलकर उन्होंने स्वय कहा है कि सत्याग्रहके प्रतिपादिक विकासमे उन्हे पर्वतीय उपदेश (बाइबिलके सरमन आन द माउण्ट) से बडी प्रेरणा मिली है । यदि वे कुछ और बहिर्मुखी प्रवृत्तिके युवक होते तो उस समय इग्लण्डमे उनके मित्रोकी सख्या बहुत बढ गयी होती । फिर भी इग्लण्डमें अपने तीन वर्षके आवास कालमें उन्होंने स्वाध्यायकी प्रवृत्ति तो विकसित कर ही ली और नैतिकता एव धर्मसबधी अनेक समस्याओपर अपने विचार स्थिर कर ही लिये। मेरा ऐसा ख्याल है उन्होने इस देशकी साधारण जनताके बारेमें बहुत ज्ञान प्राप्त कर लिया, उन्होने इसकी अच्छी जानकारी कर ली कि यहाँके साधारण लोग अपनी रोजकी जिंदगी कैसे बिताते है, उनके क्या पूर्वाग्रह होते हैं, उनकी किन चीजोमे विशेष रुचि होती है और उनका दिमाग किस ढगसे काम करता है । आगे ब्रिटेनमे बननेवाली विभिन्न सरकारो तथा भारत सरकारके साथ उनका जो दीर्घकालीन एव वैविध्यपूर्ण सबध स्थापित हुआ उसमें उनको यह जानकारी बहुत उपयोगी और महत्त्वपूर्ण रही होगी । ब्रिटेनके सरकारी ढाँचेके पीछे रहनेवाले ब्रिटेनके उस साधारण और घरेलू जीवनको, जिसका उन्होने प्रत्यक्ष परिचय प्राप्त कर लिया था वे शायद बराबर देखते रहे । हमारी दृष्टिसे यह बड सौभाग्यकी बात थी कि उन्हे यह अनुभव प्राप्त हो चुका था । मेरा ऐसा विश्वास है कि राजनीतिके अनेक उत्थान और पतनके बावजूद ब्रिटिश जनताके प्रति उनका प्रेम कभी समाप्त नही हुआ ।

सन १९३१ मे जब महात्मा गाधी काग्रेस पार्टीके एकमात्र प्रतिनिधिके रूप मे द्वितीय गोलमेज सम्मेलनमें शामिल होनेके लिए लदन आये तो वे अपनी ख्यातिके चरम शिखरपर पहुँच चुके थे । उनकी इस लदन यात्राके प्रति ब्रिटेन और भारत दोनो जगह बडी उत्सुकता और दिलचस्पी पैदा हो गयी थी । इसके पूर्व वे बारह वर्षोतक भारतीय जनताके स्वातन्त्र्य-सग्रामका नेतृत्वकर चुके थे एकाधिक बार जेल भी जा चुके थे राष्ट्रपिताके रूपमें उस समय ही उन्हें जो प्रतिष्ठा मिल रही थी वह अभूतपूर्व थी । सम्मेलनके अधिवेशनोके समय उन्होने बोस्थित किंग्स्ले हालमें ठहरनेका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया । वे ईस्ट लदनकी सडकोपर नित्य प्रात काल दूर-दूर तक पैदल भ्रमण किया करते थे । उन्हें वहाँके बच्चे बहुत चाहने लगे थे । लदन काउण्टी काउन्सिलने आगे चलकर उनके निवासकी स्मृतिमे इस इमारतपर एक शिलालेख लगा दिया । इसके हालमें गाधीजीका एक सुन्दर चित्र भी लगा हुआ है ।

गोलमेज सम्मेलनकी कारवाइयोसे उन्हें बडी निराशा हुई किन्तु वे अपना

अधिकाश समय सेण्ट जेम्स पैलेससे बाहर लोगोसे दोस्ती करने और धैर्यपूर्वक भारतीय स्वशासनके पक्षमें प्रचार और व्याख्या करनेमे ही बिताते थे । वे कहते थे इस प्रकार वे "गोलमेजका वास्तविक कार्य कर रहे हैं ।" वे लंकाशायरके वस्त्रोद्योगके मजदूरोके बीच भी गये । इन मजदूरोपर काग्रेस पार्टी द्वारा विदेशी कपडोका बहिष्कार किये जानेके कारण भारी आफत आ गयी थी । अपनी इस यात्रामे उन्होने ब्रिटिश मजदूरोके सामने भारतकी गरीबीकी पूरी पृष्ठभूमि व्याख्याके साथ प्रस्तुत की । उन्होने ब्रिटेनके छात्रोके सामने भी भाषण किया और आक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज भी गये । उन्होने अनेक राजनीतिक नेताओसे भी वार्ताकी और बकिंघमके राजमहलमे सम्राट् जार्ज पंचमके साथ चायपान भी किया ।

श्री विन्सटन चर्चिलने गाधीजीसे मिलनेसे साफ-साफ इन्कार कर दिया था । वे महात्माके बढते हुए प्रभावसे अत्यत क्षुब्ध हो उठे थे । उन्हे ऐसा लग रहा था कि गाधीजीके प्रभावके कारण "मुकुटके उज्ज्वलतम रत्न" के लिए खतरा पैदा हो गया है । इसीलिए वे शायद चौकन्ने भी हो उठे थे । यदि इन दोनो महान् व्यक्तियोकी कभी प्रत्यक्ष भेंट हो गयी होती तो यह सचमुच एक ऐतिहासिक घटना होती । उनका कभी आपसमें न मिल पाना निश्चय ही ब्रिटेन और भारत दोनोंके लिए एक बडा अभाव रहा है । सम्मेलनमे अपने उद्देश्यको जो क्षति पहुँची थी उसके बावजूद महात्मा गाधी, जिन तीन महीनोतक ब्रिटेनमे रहे, वे बराबर प्रसन्न ही बने रहे । पत्रोको उनके व्यक्तित्वके प्रति अनन्त आकर्षण था । उन्हे ब्रिटेनकी जनताको भारतकी समस्याओसे अवगत कराने और उसकी सहानुभूति प्राप्त कर लेनेमे भी कुछ सफलता मिली । अपने एक श्रोताके प्रश्नका उत्तर देते हुए गाधीजीने कहा था कि मै चाहता हूँ कि भारत अन्य डोमिनियन देशोके साथ समान साझीदार बन जाय लेकिन इतना अवश्य है कि यह साझीदारी बिलकुल समानताके आधारपर होनी चाहिए । वस्तुत वे यही माग कर रहे थे कि स्वायत्तशासी भारत राष्ट्रमडलका एक स्वतंत्र देश बन जाय । आज हम प्राय इसी अवधारणाको मान चुके है ।

सन् १९३० और सन् १९३१ मे हुए गोलमेज सम्मेलनोका समय लगभग महात्मा गाधीके नेतृत्वमे चलनेवाले भारतीय स्वातंत्र्य संघर्षकी पूरी अवधिके मध्यमे पडा था । इन वर्षोमे ब्रिटेन और भारतके सम्बन्धोमें अनेक तरहकी निराशाएँ और कुंठाएँ आ चुकी थी । उस समयमे बनी ब्रिटेनकी विभिन्न सरकारें भारतको तत्काल कुछ रियायतें देने और अन्तत. डोमिनियन राज्य अथवा उसके बराबरकी कोई अन्य प्रतिष्ठा प्रदान करने का विचार कर रही थी किन्तु उनका

कदम बहुत सभाल कर पड रहा था । अनेक भारतीयोकी दृष्टिसे यह प्रगति अत्यत कष्टकारक और मद थी । अनेक बार अग्रेजी सरकार और कांग्रेस पार्टीमें झगडे हो गये । फिर भी समय समयपर कुछ सुखद क्षण भी आये । सन १९३० मे आरम्भ नमक सत्याग्रहके सिलसिलेमें अपना प्रसिद्ध डडी अभियान शुरू करनेके पहले वाइसराय लार्ड इर्विनको लिखे गये पत्रमे महात्मा गाधीने हमारे प्रति मैत्री की भावनाको बडे स्पष्ट शब्दोमें इस प्रकार व्यक्त किया था

> यद्यपि मै भारतमे अँग्रेजी शासनको एक अभिशाप मानता हूँ किन्तु इसका यह मतलब नही है कि मै अग्रेजोको दुनियाके अन्य लोगोकी अपेक्षा खराब मानता हूँ। मुझे यह दावा करनेमे गौरवका अनुभव होता है कि कई अग्रेज मेरे सबसे प्रिय मित्रोमें है

अगले साल जिस समय श्रीरामसे मैक्डोनल्डने दूसरी बार मजदूर प्रधानमंत्री के रूपमे पदग्रहण किया लार्ड इर्विन और महात्मा गाधीके बीच दिल्ली समझौता सम्पन्न हुआ । वाइसरायने स्पष्ट शब्दोमे महात्मा गाधीके प्रति अपनी व्यक्तिगत सम्मानकी भावना व्यक्त की थी। इस समझौतेके फलस्वरूप दोनो पक्षोमें विचारो का महत्त्वपूर्ण समन्वय हुआ और बहुत दिनोसे चली आ रही गलतफहमियाँ काफी हदतक दूर हो गयी ।

सन १९३७ और १९३९ के बीच १९३५ में भारत सरकार कानून पास हो जानेके बाद एक ऐसा समय भी आया जब निर्वाचनोके फलस्वरूप महात्मा गाधीके पूर्ण समर्थनके साथ कांग्रेस पार्टीने ६ प्रातोमें शासनभार ग्रहण कर लिया । उस समय दोनों पक्षोमें इस बारेमे कुछ सदेह किया जाता था कि प्रातोमें कांग्रेसी शासन और केन्द्रमें अग्रेजी शासनके चलते दोनोमें सहयोगका यह नया प्रयोग कहाँतक व्यवहार्य होगा लेकिन अन्तत सद्विवेक और वस्तुवादी दृष्टिकोण की विजय हुई । कांग्रेसी मत्री महात्मा गाधीके प्रोत्साहनसे इन अवसरोका उप योग रचनात्मक सामाजिक कार्योमें करने लगे जो उन्हें नवार्जित सत्ताने प्रदान किये थे । प्रान्तोके अग्रेज गवर्नरोने वाइसरायके नेतृत्वमे इसका पूरा-पूरा ख्याल रखा कि सिद्धान्तोका प्रश्न लेकर किसी प्रकारका अनावश्यक झगडा न उठ खडा हो और नयी सांविधानिक व्यवस्थाएँ यथासभव सरलतापूर्वक कार्यान्वित होती रहें ।

मैने उन तरीकोंके सबधमें अभी बहुत थोडा लिखा है जिनका उपयोग महात्मा गाधीने भारतमें ब्रिटिश सरकारका विरोध और उसके शासनको समाप्त करनेमें किया था । अपने दीर्घकालीन सघर्षमें जो करीब २५ वर्षो तक चलता

रहा, गाधीजीने अहिंसक सविनय अवज्ञाके तीन बडे आन्दोलन चलाये थे जिनमे सत्याग्रहके सिद्धान्तका पालन किया गया था। आन्दोलनोके दौरान महात्माजीने जो भी काररवाईकी उसमे उन्होने इस बातपर बराबर जोर दिया कि यदि सरकारी अधिकारी उसका विरोध करें तो उनके विरुद्ध किसी प्रकारकी हिंसक शक्तिका प्रयोग न किया जाय। नमक उत्पादन अथवा विदेशी वस्त्रोकी दूकानोका बहिष्कार जैसी उनकी सभी काररवाइयाँ मुख्यत. अहिंसक थी। यह कहनेकी आवश्यकता नही है कि ऐसी नीतिके कार्यान्वियनमे महान् भौतिक और नैतिक साहस अपेक्षित था। पुलिससे किसी तरहकी मारपीट करनेकी इजाजत नही थी, सविनय अवज्ञा मे भाग लेनेवाले सत्याग्रहियोको यह निश्चित् आदेश था कि वे बिना किसी प्रतिरोधके जेल जानेको तैयार रहे। उद्देश्य यह था कि नैतिक दबावसे अपने विरोधी ब्रिटेनका हृदय परिवर्त्तन कर दिया जाय और वह आजादीके लिए काग्रेस द्वारा बार-बार प्रस्तुत अनुरोधोको अन्तत स्वीकार कर ले। १९२० मे महात्मा गांधीने लिखा था कि

> सर्वाधिक प्रतिकूल परिस्थितियोमे भी मैंने अंग्रेजोको तर्क और अनुनय-विनयके प्रति नमनीय पाया है। वे हमेशा अपनेको न्यायप्रिय रूपमे प्रस्तुत करना चाहते हैं। इसीलिए उन्हें किसी अनुचित बातपर लज्जित करके उनसे उचित काम करा लेना दूसरोकी अपेक्षा कही अधिक आसान है।

अन्तमे १९४५ के ब्रिटिश आम चुनावके बाद विश्व योद्धोत्तर प्रथम मजदूर सरकारके प्रधानकी हैसियतसे क्लीमेण्ट एटलीने यह निश्चयकर ही डाला कि अब बहुत विलंब किये बिना "उचित काम" कर ही डालना चाहिए। अगस्त १९४७ मे भारतको वह स्वतत्रता प्राप्त हो गयी जिसके लिए महात्मा गाधी इतने लम्बे अरसेसे संघर्ष करते आ रहे थे, सत्ता-हस्तान्तरणका कार्य पूरा हो गया; सत्याग्रहका लक्ष्य पूर्ण हो गया। क्या इसमे बहुत समय लग गया? भारत और ब्रिटेनमे भी कुछ ऐसे लोग थे जो ऐसा ही समझते थे, किन्तु यदि यह मान लिया जाय कि सविनय अवज्ञा आन्दोलन पहलेसे ही हिंसा और रक्तपातसे चलाया जाता तो—यदि गाधीजी चाहते तो वे नि.सदेह ऐसा आन्दोलन चला सकते थे—इसका परिणाम कटुता और घृणाकी एक ऐसी विरासत होती जिससे ब्रिटेन और भारतका संबध आनेवाली कई पीढियो तक विषाक्त हो जाता। महात्मा गाधीके अहिंसा तथा अपने लक्ष्यको उचित साधनोसे ही प्राप्त करनेकी निष्ठाके प्रति आग्रह के कारण ही भारतकी स्वतन्त्रता दोनो पक्षोके बीच पूर्ण सहमति और समझौतेसे संपन्न हो गयी और किसीके मनमे विजय और पराजयकी भावना नही आयी;

लेखकों का परिचय

होरेस अलेक्जेण्डर (जन्म सन् १८८९) : क्वेकर, भारत आनेपर मार्च १९२९ मे पहली बार गाधीजी से मिले; गांधीजीके कहनेपर सोसाइटी आफ फ्रेण्ड्सकी भारतीय शाखामे काम करनेके लिए पुन सन् १९४६ मे भारत आये; प्रकाशित ग्रन्थ द इण्डियन फर्मामेण्ट, इण्डिया सिंस क्रिप्स, कंसिडर इण्डिया ।

मुल्कराज आनन्द (जन्म सन् १९०५) . उपन्यास लेखक और कला-समीक्षक, सपादक 'मार्ग', अध्यक्ष, ललित कला अकादमी, तीससे भी अधिक पुस्तकोंके लेखक ।

वीरा ब्रिटेन सन् १९२५ मे जार्ज कैटलिनसे विवाहित, सन् १९४९–५० मे भारत और पाकिस्तानमे भाषण यात्रापर आयी; भारतमे १९६३ मे, प्रकाशित ग्रन्थ टेस्टामेण्ट आव यूथ, टेस्टामेण्ट आव फ्रेण्डशिप, इंग्लैण्ड्स आवर, द रिबेल पैशन, ए शार्ट हिस्ट्री ऑव सम पीसमेकर्स, एन्वाय एक्स्ट्राडिनरी . ए स्टडी ऑव मिस्ट्रेस विजयालक्ष्मी पण्डित ।

लार्ड केसो (जन्म सन् १८९०) : १९६५ से आस्ट्रेलियाके गवर्नर जेनरल, १९४४–४६ मे बंगालके गवर्नर जेनरल, आस्ट्रेलियाई सरकारमे १९४९–६० मे मन्त्री, प्रकाशित ग्रन्थ–ऐन आस्ट्रेलियन इन इण्डिया, डबल आर क्विट, फ्रेण्ड्स ऐण्ड नेवर्स, द फ्यूचर ऑव कामनवेल्थ ।

डेम सिबिल थार्नडाइक (जन्म १८८२) · अभिनेत्री और व्यवस्थापिका, १९०८ मे सर लेवी कैसनसे विवाह; प्रकाशित ग्रन्थ रिलिजन ऐण्ड द स्टेज ।

जार्ज कैटलिन (जन्म सन् १८९६) · राजनीति विज्ञान और दर्शनके प्रोफेसर एमेरिटस; टैगोर शताब्दीके भाषणकर्ता, रायल सोसाइटी ऑव आर्टस् १९६१, राजनीति विज्ञानके प्रोफेसर, मैक गिल विश्वविद्यालय, १९५६–६०, प्रकाशित ग्रन्थ द साइंस ऐण्ड मेथड्स ऑव पालिटिक्स, स्टडी ऑव द प्रिंसिपल्स ऑव पालिटिक्स, प्रिफेस टू ऐक्शन, न्यू ट्रेण्ड्स इन सोशलिज्म, वार ऐण्ड डेमोक्रैसी, महात्मा गाधी, ह्वाट डज़ द वेस्ट वाण्ट ?

एम सी. छागला (जन्म सन् १९००) : जूरिस्ट और शिक्षाशास्त्री, संयुक्त राष्ट्र संघमें भारतके प्रतिनिधि, १९४६; वाइस चासलर, बंबई विश्वविद्या-

लय, १९४७ प्रधान न्यायाधीश बम्बई उच्च न्यायालय तदय न्यायाधीश, अन्तरराष्ट्रीय न्यायालय हग १९ ७ शिक्षा मन्त्री, भारत, १९६७–६८ सदस्य, राज्यसभा ग्रथ–द इण्डियन कान्स्टिट्यूशन, लॉ लिबर्टी एण्ड लाइफ।

सुनीतिकुमार चटर्जी पद्म भूषण (जन्म सन् १८९०) खैरा प्रोफसर ऑव इण्डियन लिंग्विस्टिक्स ऐण्ड फोनेटिक्स सन् १९२२–५१ पश्चिमी बगाल विधान परिषद्के अध्यक्ष १९५६ नेशनल प्रोफेसर आव ह्यूमनिटीज अग्रजी बगला और हिन्दीम साहित्यिक और भाषिक विषयापर करीब २० ग्रथ और शोधप्रबध प्रकाशित हो चुके ह।

कमलादेवी चट्टोपाध्याय (जन्म सन् १९०३) कुछ समय तक अखिल भारतीय नारी सम्मेलनकी महामन्त्रिणी और अध्यक्ष ८ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी ह।

मागरेट इसाबेल काले (जन्म सन १८९३) लेखिका और भाषणकर्त्री सन् १९१८ में जा० डी० एच० कोलेसे विवाह १९३५–३९ में यू फेबियन रिसच ब्यूरोकी अवैतनिक मन्त्रिणी सदस्या आइ० एल० इ० ए० एजुकेशन कमिटी, १९६५–६७ प्रकाशित ग्रथ–टवेल्व स्टडीज आन सोवियट रशा द न्यू एकानामिक रेवोल्यूशन वीमेन आव टुडे द स्टोरी आव फेबियन सोशलिज्म।

मोरारजी देसाई (जन्म सन १८९६) १९१६ म बबई प्रान्ताय सेवामें शामिल हुए किन्तु १९३० म इस्तीफा दे दिया स्वतन्त्रता आन्दोलनमें कई बार जेल गये राजस्वमन्त्री बबई सरकार, १९३७–३९ गृहमन्त्री, बबई सरकार १९४६–५२, मुख्यमन्त्री, बबई १९५२–१६ वाणिज्य और उद्योग मन्त्री, भारत सरकार सन १९५६ और बादमें वित्तमन्त्री वतमानम उप प्रधानमन्त्री और वित्तमन्त्री।

यू० एन० ढेबर (जन्म सन १९०५) काग्रेसी नेता भारतीय स्वातन्त्र्य सघषम कई बार जेल गय सौराष्ट्र राज्यके मुख्यमन्त्री १९४८–५४ काग्रेसाध्यक्ष १९५५ और १९५६–५७।

आर० आर० दिवाकर (जन्म सन् १८९४) सूचना और प्रसारणमन्त्री भारत सरकार और बाद में बिहारके राज्यपाल अध्यक्ष गाधी राष्ट्रीय स्मारक न्यास और गाधी पीस फाउण्डेशन अवतनिक मन्त्री, गाधी जन्मशती राष्ट्रीय समिति कन्नड और अग्रेजीमें करीब ३० पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी ह।

लुई फिशर (जन्म सन् १८९६) पत्रकार और लेखक १९२१ स यूरोपीय देशों में अमेरिकी सवाददाता, खासकर रूस और स्पेन में, १९४२ से भारत

मे भी, लेक्चरर, न्यू स्कूल फॉर सोशल रिसर्च, एन० वाई० सिटी, प्रकाशित ग्रंथ —आयल इम्पीरियलिज्म, द सोवियट्स इन वर्ल्ड अफेयर्स (दो भाग), लाइफ ऑव महात्मा गांधी, लाइफ ऐण्ड डेथ आव स्टालिन, दिस इज आवर वर्ल्ड, द लाइफ आव लेनिन।

इन्दिरा गांधी (जन्म सन् १९१७) स्विटजरलैण्ड, शान्ति निकेतन और आक्सफोर्डके सोमर विले कालेजमे, जिसकी वे सम्मानित सदस्या भी है, शिक्षा प्राप्त किया, कांग्रेस पार्टीके महिला विभागकी सहसंस्थापिका और अध्यक्षा, अध्यक्षा, अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस १९५९, सूचना और प्रसारणमन्त्री भारत सरकार, १९६४, वर्तमानमे भारतकी प्रधान मंत्री।

वी० वी० गिरि (जन्म १८९४). अखिल भारतीय रेलकर्मचारी संघके एक संस्थापक, अध्यक्ष, अखिल भारतीय ट्रेडयूनियन कांग्रेस, १९२६ और १९४२, मजदूरोके प्रतिनिधिके रूपमे द्वितीय गोलमेज सम्मेलनमे शामिल हुए, १९३१, श्रम मंत्री, भारत सरकार, १९५२-५४, अध्यक्ष, इण्डियन कानफरेंस ऑव सोशल-वर्क, १९५८; उत्तर प्रदेश, केरल और मैसूरके राज्यपाल, डाक्टर जाकिर हुसेनके निधनके बाद कार्यकारी राष्ट्रपति, भारत गणतत्र।

वलेरियन कार्डिनल ग्रेसियस (जन्म १९००) एलेक्टेड टिट्यूलर विशप ऑव टैनिस एण्ड आक्जिलियरी ऑव बाम्बे, १९४६, नामिनेटेड आर्क विशप ऑव बाम्बे, १९५०, कार्डिनल बने, १९५३ मे।

रिचर्ड बी० ग्रेग अमेरिकी चिन्तक और लेखक प्रकाशित ग्रन्थ—द पावर ऑव नानवायलेंस, एकानामिक्स ऑव खद्दर, व्हिच वे लाइज होप ? कम्पास ऑव सिविलिजेशन।

हेलसिलासी प्रथम (जन्म १८९२) इथोपियाके सम्राट्, दासता उन्मूलन की घोषणाकी, १९२४, १९३० मे सिंहासनारूढ हुए, १९३५ मे इटलीके आक्र-मणके कारण १९३६ मे अपनी राजधानी छोड़ने और ब्रिटेनमे आश्रय लेनेको बाध्य हुए, १९४१ मे पुन राजधानीमे प्रवेश किया।

कीथ हैनकॉक (जन्म १८९८). इतिहासके प्राध्यापक, आस्ट्रेलियन नेश-नल यूनिवर्सिटी, कैनबरा, १९५७-६५, प्रकाशित ग्रन्थ आस्ट्रेलिया, सर्वे ऑव ब्रिटिश कामनवेल्थ अफेयर्स, आर्गुमेण्ट ऑव एम्पायर, वेल्थ ऑव कोलोनीज; वार ऐण्ड पीस इन दिस सेंचुरी, स्मट्स द सैग्विन इयर्स।

वर्नर हीसेनबर्ग (जन्म १९०१). निदेशक, मैक्सप्लाक इन्स्टीट्यूट फॉर फीजिक्स एण्ड ऐस्ट्रोफीजिक्स, म्यूनिख, १९५८ मे, और यूनिवर्सिटी ऑव म्यूनिक-

के प्रोफेसर अध्यक्ष, अलेक्जेण्डर वोन हम्बोल्ट फाउण्डेशन भौतिकीमें नोबेल पुरस्कार, भौतिकी और दर्शनपर अनेक शोध ग्रन्थों और पुस्तकोंके लेखक।

डोरोथी क्रोफूट हाजकिन (जन्म १६१०) वोल्फसन रिसर्च प्रोफेसर रायल सोसाइटी १९६० से सोमरविल कालेज, आक्सफोर्डके फेलो, रायल सोसाइटीके रायल मेडलिस्ट, १९५६ रसायनके लिए नोबेल पुरस्कार १९६४ विभिन्न प्रकाशन।

जाकिर हुसेन, भारतरत्न (जन्म १८९७, मृत्यु १९६९) वाइसचासलर, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, १९२६ ४८ और अलीगढ मुस्लिम विश्वविद्यालय १९४८ ५६ बिहारके राज्यपाल भारत गणतन्त्रके उपराष्ट्रपति १९४८ ५६ बिहारके राज्यपाल भारतगणतन्त्रके उपराष्ट्रपति १९६२ ६७ राष्ट्रपति भारत गणतन्त्र, १९६७ से मृत्यु पर्यन्त ग्रन्थ–क्पिटलिज्म ऐन एसे इन अण्डरस्टैण्डिंग तथा अन्य प्रकाशन।

होमर ए० जैक (जन्म १९१६) यूनिटेरियन मिनिस्टर वर्तमानमें सोशल रिसपासिबिलिटी, यूनिटेरियन यूनिवर्सलिस्ट असोसियेशन बोस्टनके निदेशक प्रकाशित ग्रन्थ द गाधी रीडर द विल ऐण्ड विजडम आव गाधी टू अलबर्ट श्विटजर।

बारबरा वार्ड जैक्सन (जन्म १९१४) लेखिका सर राबर्ट जैक्सनसे विवाहित, १९५० द इकोनामिस्टमें सहायक सपादिकाके रूपमें शामिल हुई १९३९ विजिटिंग स्कालर हार्वर्ड विश्वविद्यालय, १९५७ कार्नेगी फेलो, १९५९ ६६ प्रकाशित ग्रन्थ–द इण्टरनेशनल शेयर-आउट फेथ एण्ड फ्रीडम, फाइव आइडियाज दट चेन्ज द वर्ल्ड इण्डिया ऐण्ड वेस्ट द रिच नेशन्स ऐण्ड द पुअर नेशन्स, नेशनलिज्म ऐण्ड आइडियालाजी।

जगजीवन राम (जन्म १९०८) मन्त्री बिहार हरिजन सेवक सघ १९३८ महामन्त्री, अखिल भारतीय दलित वर्ग सघ, १९३६ तक और अध्यक्ष १९३६ ४६ श्रम मंत्री भारत सरकार १९४६ ५८ सचार मंत्री १९'२ वर्तमानमें खाद्य और कृषि मंत्री।

एफ० सिरिल जेम्स (जन्म १९०३) प्रिंसिपल और वाइसचासलर मैक्गिल विश्वविद्यालय कनाडा, १९३९ ६२ प्रिंसिपल एमेरिटस १९६२ से विश्व विद्यालय अन्तरराष्ट्रीय सघके अध्यक्ष १९६० ६५ प्रकाशित ग्रन्थ–द इकॉनामिक्स ऑव मनी, क्रेडिट ऐण्ड बैंकिंग द एकानामिक डाक्ट्रिन्स आव —स्टर जे० एम० केनिस, आन अण्डरस्टैंडिंग रूस।

कार्ल जैस्पर्स (जन्म १८८३) . दर्शन प्राध्यापक, वसेल विश्वविद्यालय, १९४८–६१, सदस्य, हीडेलवर्ग अकादमी ऑव साइंसेज, सम्मानित सदस्य, सोसाइटी ऑव जर्मन न्यूरोलोजिस्ट्स ऐण्ड साइकिऐट्रिस्ट्स, जर्मनमें अनेक ग्रन्थो-के प्रकाशन ।

ई. स्टैनली जोन्स (जन्म १८८४) . भारतस्थित एपिस्कोपल मेथाडिस्ट-चर्चके मिशनरी १९०७, लखनऊस्थित इंगलिश चर्चके पैस्टर; प्रकाशित ग्रन्थ— द क्राइस्ट ऑव द इण्डियन रोड, क्राइस्ट ऐट द राउण्ड टेवुल, क्राइस्ट ऐण्ड ह्यूमन सफरिंग, कनवर्जन, इन क्राइस्ट, विक्टरी थ्रू सरेण्डर ।

हुमायुन् कविर (जन्म १९०६) : कलकत्ता और आक्सफोर्ड विश्वविद्या-लयोमें शिक्षित, कुछ समयके लिए भारत सरकारमे मंत्री, वंगला और अंग्रेजीमे २० से भी अधिक पुस्तके प्रकाशित ।

खान अव्दुल गफ्फार खान (जन्म १८९०) . खुदाई खिदमतगारोके संस्थापक, राष्ट्रीय स्कूल आन्दोलनसे सम्बद्ध, कई वार जेल यात्रा, १४ वर्षसे भी अधिक समय जेलोमे वीता, भारतीय स्वातन्त्र्य संघर्षके दौरान सीमान्त गाधीके नामसे लोकविख्यात ।

कुर्ट जार्ज कीसिंगर (जन्म १९०४) . जर्मन सघीय गणतन्त्रके चांसलर १९६६ से , टयूविन जेन और वर्लिन विश्वविद्यालयोंमे शिक्षा, वकील, १९३५-४८, सदस्य, व्रण्डेस्टैग, १९४९-५८ ।

जे वी कृपालानी (जन्म १८८८) कुछ समयतक भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के महामन्त्री और एक वार उसके अध्यक्ष; संस्थापक 'विजिल', गाधीवादी विपयोपर कई पुस्तकोंके लेखक; लोक सभाके सदस्य ।

सुचेता कृपालानी (जन्म १९०३) लेक्चरर वनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, १९३१-३९, भारतीय स्वातन्त्र्य सग्राममे कई वार जेल यात्रा, सदस्या, संविधान परिपद, १९४६, सदस्या, लोकसभा १९५२-६३, उत्तर प्रदेशकी मुख्य मन्त्री, १९६३-६७ ।

एच. एन कुंजरू (जन्म १८८७) : अध्यक्ष, सर्वेण्ट्स ऑव इण्डिया सोसाइटी १९३६ से, अध्यक्ष, द इण्डियन काउंसिल ऑव वर्ल्ड अफेयर्स; सदस्य, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ।

कैथलीन लोसडेल (जन्म १९०३) . रसायन प्राध्यापक और प्रधान, क्रिस्टलोग्राफी विभाग, यूनिवर्सिटी कालेज, लंदन, अध्यक्ष, इण्टरनेशनल यूनि-यन ऑव क्रिस्टलोग्राफी, १९६६; प्रकाशित ग्रन्थ-स्ट्रक्चर फैक्टर टेवुल्स, क्रिस्टल्स

ऐण्ड एक्स रेज इण्टरनेशनल टेबुल्स फॉर एक्स रे क्रिस्टलोग्राफी (३ भागोंमें) रिमूविंग काजेज ऑव वार, इज पीस पासिबुल ?

ईथेल मैनिन [श्रीमती आर ए रैनोल्डस] (जन्म १९००), ब्रिटिश लेखिका और पत्रकार सह सपादक, द पेलिकन, १९१८ २० प्रकाशित ग्रन्थ ग्रोफ वायसेज, द फ्लावरी सोर्ड, अ लास फॉर द अरन्स, आस्पेक्टस ऑव इजिप्ट, द लवली लैण्ड कामनसेंस ऐण्ड द चाइल्ड, कामनसेंस ऐण्ड द ऐडोलेसेण्ट, कामन सेंस ऐण्ड मोरलिटी, वीमेन ऐण्ड द रेवोल्यूशन ।

जेण्टा मौरिना *जर्मन लेखिका द इमेज ऑव गाधीकी लेखिका ।*

मीरा बेन (जन्म १८९२) गाधीजीके साबरमती आश्रममें १९२५ म शामिल हुइ १९३१ में गोलमेज सम्मेलनके सिलसिलेमें महात्मा गाधीजीके साथ लन्दन गयी भारतीय स्वतन्त्रता सघर्षमें कई बार जेल गयी, द स्पिरिट्स पिलग्रिमेज की लेखिका ।

द अर्ल माउण्टबैटन ऑव बर्मा (जन्म १९००) ऐडमिरल आव ब्रिटिश फ्लीट, दक्षिण-पूर्वी एशिया स्थित मित्रसेनाके सर्वोच्च सेनापति, भारतके वाइसराय, १९४७ स्वतन्त्र भारतके प्रथम गवर्नर जेनरल ।

हीरेन मुकर्जी (जन्म १९०७) *बगला और अग्रेजीमें १५ से भी अधिक* पुस्तकें प्रकाशित जिनम 'इण्डिया स्ट्रगल्स फार फ्रीडम' और 'गाधीजी' भी शामिल हैं, लोकसभामें कम्युनिस्ट नेता ।

गुन्नार मिर्डाल (जन्म १८९८) स्वीडेनके अर्थशास्त्री और राजनीतिज्ञ, राजनीतिक अर्थशास्त्र और वित्तीय विज्ञानके प्राध्यापक, स्टाकहोम विश्वविद्यालय १९३३ ५० वित्तीय, आर्थिक और सामाजिक समस्याओंपर सरकारी सलाहकार १९३३ व्यापार और वाणिज्य मन्त्री, १९४५ ४७, अधिशासी सचिव, राष्ट्र सघीय यूरोपीय आर्थिक आयोग १९४७ ५७ प्रकाशित ग्रन्थ—इकानामिक थ्यूरी ऐण्ड अण्डरडेवल्प्ड रीजन्स, ऐन अमेरिकन डाइलेमा बिआण्ड द वेल्फेयर स्टेट, चैलेंज टू अफ्लुएंस, एशियन ड्रामा ।

सुशीला नायर (जन्म १९१५) गाधीजी तथा उनके आश्रमकी आवासीय चिकित्साधिकारी *१९४८ के साम्प्रदायिक उपद्रवोंम गाधीजीके साथ* नोआखालीकी यात्रा स्वास्थ्य मन्त्री, दिल्ली राज्य, १९५२ ५५ अध्यक्ष, दिल्ली विधानसभा, १९५५ ५६ स्वास्थ्य मन्त्री, भारत सरकार १९६२ ६७ ।

एल० बी० पियसन (जन्म १८९७) कनाडाके प्रधानमन्त्री, १९६३ ६८ कनाडाकी लिबरल पार्टीके नेता पार्लमेण्टमें विरोध पक्षके नेता, १९५८-६३

'डेमोक्रैसी इन वर्ल्ड पालिटिक्स', 'डिप्लोमैसी इन द न्यूक्लियर एज' के लेखक, नोबेल पुरस्कार, १९५७।

फादर डोमिनिक पायर (जन्म १९१० बेल्जियन एकलेजियास्टिक ऐण्ड सोशल वर्कर, एशियामें प्रायोगिक आदर्शग्रामके संस्थापक (पूर्वी पाकिस्तान) १९६२ में जिसे शान्तिद्वीपकी संज्ञा दी गयी; भारतमें १९६७ में दूसरे शान्ति-द्वीपके संस्थापक (मद्रास राज्यमें); नोबेल शान्ति पुरस्कार १९५८, 'बिल्डिंग पीस' के लेखक, संस्थापक महात्मा गांधी शान्ति विश्वविद्यालय, हुई, बेल्जियमके संस्थापक।

प्यारेलाल (जन्म १८९९) महात्मा गांधीके निजी सचिव; संपादक, यंग इण्डिया, १९३२ और हरिजन, १९४६-४८, महात्मा गांधी द लास्ट फेज, महात्मा गांधी . द अर्ली फेज तथा अन्य कई पुस्तकोंके लेखक।

सी० राजगोपालाचारी, भारतरत्न (जन्म १८७९): भारतके गवर्नर जेनरल, १९४९, तमिल और अंग्रेजीमें ३० से भी अधिक पुस्तकोंके लेखक जिनमें रामायण और महाभारत भी शामिल हैं।

जी० रामचन्द्रन् सचिव, गांधी पीस फाउण्डेशन; संपादक, गांधी मार्ग, गांधीवादी विषयोंपर अनेक पुस्तकोंके लेखक, राज्यसभाके सदस्य, गांधीग्राम, मद्रासके निदेशक।

स्वामी रंगनाथानंद : रामकृष्ण मिशनके साधु, रामकृष्णमिशन इंस्टीट्यूट, कलकत्ताके प्रधान, १९६२ से, प्रायः विदेशोंमें भाषण देते रहते हैं।

बी० शिवराव (जन्म १८९१) सदस्य विश्वविद्यालयीय अनुदान आयोग १९६२ से, अन्तरराष्ट्रीय श्रम संघटन, जेनेवामें भारतीय मजदूरोंके प्रतिनिधि, १९२९-३०, गोलमेज सम्मेलनमें प्रतिनिधि, १९३०-३१, राष्ट्रसंघकी साधारण सभामें गये भारतीय प्रतिनिधि मण्डलके सदस्य, १९४७-५० और १९५२, भारतकी संविधान परिषद्के सदस्य, १९४६-५०, लोकसभा, १९५२-५७, राज्य-सभा, १९५७-६०, प्रकाशित ग्रन्थ इण्डियाज कान्स्टीट्यूशन इन द मेकिंग, द इण्डस्ट्रियल वर्कर इन इण्डिया।

बी० एन० राव (१८८७-१९५३) . न्यायाधीश, कलकत्ता उच्चन्यायालय १९३५, अध्यक्ष, सिन्धुनदी आयोग, १९४२, प्रधान मंत्री, जम्मू और कश्मीर १९४४-४५, संविधान परिषद्के सांविधानिक परामर्शदाता, १९४६, राष्ट्रसंघमें भारतके प्रतिनिधि, १९५२; हेगस्थित अन्तरराष्ट्रीय न्यायालयके न्यायाधीश।

हर्बर्ट रीड (१८९३-१९६८): ब्रिटिश कवि और आलोचक ललितकला

प्राध्यापक, एडिनबरा विश्वविद्यालय, १९३१ ३३ संपादक, बर्लिगटन पत्रिका १९३३-३९, अध्यक्ष, इन्स्टीट्यूट आव कण्टम्पाररी आर्ट स, लंदन, ब्रिटिश सोसाइटी आव ऐस्थटिक्स एरास्मस पुरस्कार १९६६, प्रकाशित ग्रन्थ इंगलिशप्रोज स्टाइल, आर्ट ऐण्ड सोसाइटी कलेक्टेड एसेज इन लिटररी क्रिटिसिज्म द पालिटिक्स आव द अन पोलिटिकल, अ काट आव मेनी कलर्स द ग्रास रूट्स ऑव आर्ट, द फिलासफी ऑव माडन आर्ट, द आर्ट ऑव स्कल्पचर, कान्साइज हिस्ट्री ऑव माडन पेंटिंग अ कोन्साइज हिस्ट्री आव माडन स्कल्पचर, कलेक्टेड पोएम्स, पोएट्री ऐण्ड एक्सपीरियेंस ।

रुक्मिणी देवी (जन्म सन १९०४) कला और नृत्यका अभ्यास, भरत नाट्यमकी विशेषज्ञता संस्थापक सचालिका कलाक्षेत्र अडयार द मेसेज ऑव ब्यूटी टू सिविलिजशन आर्ट एण्ड एजुकेशन आदि कई पुस्तकोंकी लेखिका ।

के० सन्तानम् (जन्म सन १८९५) उप राज्यपाल, विन्ध्य प्रदेश, १९५२–५६, अध्यक्ष वित्तीय आयोग, १९५६–५७ तमिल और अंग्रेजीमें १६ से भी अधिक पुस्तकोंके लेखक जिनमें इण्डियाज रोड टू सोशलिज्म क्राइ ऑव डिस्ट्रेस सत्याग्रह ऐण्ड द स्टेट भी शामिल हैं ।

मिखेल शोलोखोव (जन्म सन् १९०५) उपन्यासकार १९४६ से रूस की सर्वोच्च सोवियतके उपप्रधान साहित्यके लिए नोबल पुरस्कार १९६५ प्रकाशित ग्रन्थ एण्ड क्वायट फ्लोज द डोन (४ भागोंमें), द हरिटनी ऑव मन कलेक्टड वर्क्स (भाग १—८) ।

अल सारेसेन (जन्म सन् १८९१) अध्यक्ष इण्डियालीग, वन्ड कांग्रेस आव फेथ्स गांधी मेमोरियल फण्ड कमेटी अध्यक्ष इण्टरनेशनल फैलोशिप लीग प्रकाशित ग्रन्थ—गाड एंड ब्रेड, मन और शीप द न्यू जनरेशन, इण्डिया एण्ड अटलाण्टिक चाटर माई इम्प्रेशन्स ऑव इण्डिया इत्यादि ।

श्री राम (जन्म सन् १८८९) पत्रकार और लेखक अध्यक्ष द थियोसाफिकल सोसाइटी मद्रास ।

ऊ थाँ (जन्म सन् १९०९) संयुक्तराष्ट्रसंघके महामन्त्री १९६२ से प्रकाशित ग्रन्थ (बर्मीमें)—सिटीज एण्ड स्पर्स स्वराज लीग आव नेशन्स हिस्ट्री आव पोस्ट वार बर्मा टूवर्ड्स वर्ल्ड पीस ।

आर्नोल्ड जोसेफ टायनबी (जन्म सन् १८८९) रॉयल इन्स्टीट्यूट ऑव इन्टरनेशनल अफेयर्समें अध्ययन निदेशक १९२५ और लन्दन विश्वविद्यालयमें अन्तरराष्ट्रीय इतिहासके प्राध्यापक प्रकाशित ग्रन्थ—स्टडी ऑव हिस्ट्री (१२

भागों में), चेंज ऐण्ड हैबिट, अक्वेण्टेंसेज, बिटवीन माले ऐण्ड अमेजन ।

सोफिया वाडिया (जन्म सन् १९०१) पेरिस, कोलम्बिया और लदन विश्वविद्यालयोमे शिक्षा, संस्थापिका–सपादिका, द इण्डिन पेन, सपादिका, द आर्यन पाथ, द ब्रदरहुड ऑव रिलिजन्स, प्रिपरेशन ऑव सिटिजनशिप आदि पुस्तकोकी लेखिका ।

हेरोल्ड विल्सन (जन्म सन् १९१६) प्रधानमन्त्री ब्रिटेन और फर्स्ट लार्ड ऑव ट्रेजरी, अक्तूबर १९६४ से, लेवर पार्टीके नेता १९६३ से, ब्रेडफोर्ड विश्वविद्यालयके चासलर १९६६ से, प्रकाशित ग्रन्थ—न्यू डील फॉर कोल, इन प्लेस ऑव डॉलर्स, द वार ऑन वर्ल्ड पावर्टी, द रेलेवेंस ऑव ब्रिटिश सोशलिज्म, परपज इन पावर ।